गोरा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक ।
प्रभात प्रकाशन,
२०५, चावड़ी बाजार,
दिल्ली-६

●

अनुवादक :
राजेश दीक्षित

●

●

१९७१ ई०

●

मुद्रक :
चन्दूभाई पटेल,
अशोका प्रिंटर्स,
हाथरस ।

●

मूल्य ।
१०.००

सत्य किसी समाज विशेष के बन्धन में बँधकर रहता। सत्यान्वेषी चाहे हिन्दू हो अथवा ब्राह्म, क्रिश्चियन हो अथवा अन्य मतावलम्बी, वह केवल सत्य का ही आश्रय ग्रहण करेगा। अन्तरात्मा की सच्ची पुकार के सम्मुख, कितने ही सामाजिक दन्द्व तथा भय क्यों न आ उपस्थित हों, वह उनसे कभी विचलित न होगा।

परेश बाबू कहने को तो ब्राह्म थे, परन्तु ब्राह्मसमाज का बन्धन उन्हें अपनी संकुचित परिधि में बाँधकर कभी नहीं रख सका। सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने समाज और संसार सभी को चुनौती दी, अनेकों अपमान सहकर भी अपने पथ से कभी विचलित नहीं हुए।

इसी प्रकार आनन्दमयी तथा विनय के सम्पर्क में रहते हुए भी गोरा का दृष्टिकोण जब तक सीमित रहा, तब तक वह कोई उत्थान नहीं कर सका, परन्तु जब उसे वास्तविकता का पता लगा तब भारतवर्ष का सच्चा स्वरूप उसके समक्ष चित्रित हो उठा।

रवीन्द्रबाबू के उपन्यासों में 'गोरा' का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उपन्यास के सभी पात्र इतने सजीव तथा सशक्त हैं कि वे पाठकों के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहते हैं।

—प्रकाशक

निर्मल धूप से कलकत्ते का आकाश भर उठा। मार्ग में गाड़ी, बग्घियों का आवागमन जारी था। आफिसों, कालेजों तथा अदालतों में जाने वालों के लिए घर-घर में तरकारियाँ लाई गई थीं तथा चूल्हे जलने का धुँआ उठ रहा था। कलकत्ता नगर की सैकड़ों गलियों तथा सड़कों में स्वर्णिम प्रकाश की धारा अपूर्व यौवन का प्रवाह लिए, बढ़ती चली जा रही थी।

ऐसे ही समय में एक दिन कोई काम न रहने से विनय भूषण अपने मकान की दूसरी मंजिल के बरामदे में अकेला खड़ा हुआ, लोगों का आवागमन देख रहा था। कॉलेज की पढ़ाई बहुत दिन पहले समाप्त हो चुकी थी, तो भी वह घर-गृहस्थी के कामों की कुछ देख भाल नहीं करता था। उसने अपना मन सभा-समितियों का संचालन करने और अखबारों में लेख लिखने की ओर लगा दिया था—परन्तु इस कार्य से उसके मन को पूर्ण सन्तोष नहीं मिला था। अब उसे कौन सा काम करना चाहिए, यह ठीक निश्चय न हो पाने के कारण ही, उसका मन चंचल हो रहा था। बरामदे के कोने में पक्षियों द्वारा घोंसला तैयार करते समय की बोलियां, उसके मन में किसी अस्पष्ट भाव को जन्म दे रही थीं।

ठीक इसी समय उसने पास की दुकान पर खड़े होकर, लम्बा तथा ढीला कुरता पहिने हुए एक भिखारी साधु को यह गाते हुए सुना—

वह अद्भुत पंछी पिंजड़े में
कैसे आता जाता ?
इसे पकड़ कर मन की बेड़ी
पहिनाता है माता।'

विनय की इच्छा हुई कि वह उस साधु को बुलाकर, अनजान पक्षी वाला वह गीत लिख ले। परन्तु आलस्यवश वह उसे बुला नहीं सका। केवल उस गीत को ही अपने मन में गुनगुनाता रहा।

ठीक इसी समय उसके मकान के सामने, एक किराये की गाड़ी से किसी रईस की एक बहुत बड़ी बग्घी आकर टकरा गई और उस किराये की गाडी को चकनाचूर करती हुई तेजी से आगे बढ़ गई. किराये की गाड़ी उससे टकरा कर, एक ओर झुक गई तथा उसका एक पहिया टूट कर अलग जा पड़ा।

विनय यह दृश्य देखते ही झटपट बरामदे के नीचे उतर कर सड़क पर जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उस टूटी हुई गाड़ी में से एव १७-१८ साल की युवती उतर कर नीचे आ गई है तथा अन्य लोग अभी तक गाडी के भीतर बैठे हुए एक बूढ़े भले-मानुष को नीचे उतारने की चेष्टा कर रहे हैं।

विनय ने आगे बढ़कर उस वृद्ध पुरुष को सहारा देते हुए नीचे उतार लिया, फिर उसकी ओर देखता हुआ बोला—'आपको चोट त नहीं लगी ?'

'नहीं चोट नहीं लगी,, उन्होंने कहते हुए हँसने की चेष्टा क परन्तु वह हँसी उसी क्षण विलीन हो गई जैसे ही वह अचेत होक धरती पर गिरने लगे, विनय ने उन्हें मजबूती से पकड़ लिया फिर उर घबराई हुई लड़की की ओर देखता हुआ बोला— मेरा घर यहीं सामन ही है, आप अन्दर चलिए, चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

लड़की ने कोई विरोध नहीं किया। तब विनय उन्हें साथ ले अपने घर चला आया। भीतर लाकर उसने वृद्ध को एक बिछौने प लिटा दिया। लड़की ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा—'वहीं पास ह कोने में एक सुराही रखी हुई थी। वह उठी और सुराही से गिलास पानी लेकर वृद्ध के मुँह पर छींटे देकर पंखा झलने लगी। एक क्ष ठहर कर उसने विनय से कहा—'आप किसी डाक्टर को बुला सकें त ठीक रहेगा।'

डाक्टर विनय के मकान के पास ही रहता था। उसने एक नौकर डाक्टर को बुलाने भेज दिया।

कमरे में एक ओर मेज तथा एक बड़ा आईना था। वहीं तेल की-शीशी, कंघा, ब्रुश आदि सामान भी रक्खा हुआ था। लड़की के चेहरे का प्रतिबिम्ब उस आईने में पड़ रहा था। उसके पीछे खड़ा हुआ विनय, उस रूप को मन्त्र-मुग्ध की भाँति एकटक देखने लगा।

विनय बचपन से ही कलकत्ते में किराये का मकान लेकर रहता आ रहा था। पुस्तकों से उसका जो परिचय था उसके अतिरिक्त किसी भले घर की बहू-बेटी के सम्पर्क में वह कभी नहीं आया था।

आइने पर दृष्टि डालते हुए, वह इस समय सोच रहा था, 'जिसके मुख का प्रतिबिम्ब उसे दिखाई दे रहा है, वह वास्तव में बहुत ही सुन्दर है।' परन्तु उस मुखमण्डल की प्रत्येक रेखा को प्रथक् भाव से देखने की क्षमता उसमें न थी। वह केवल उसके स्नेह से भरे, घबराए हुए तरुण मुख की कोमलता एवं उज्ज्वलता को ही देख सका, जो उसे सृष्टि के तत्काल प्रकाशित आश्चर्य की भाँति प्रतीत हुई।

कुछ देर बाद वृद्ध ने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं। फिर 'बेटी' कहकर एक दीर्घ निःश्वास छोडा। युवती ने आँखों में आसू भरते हुए उनसे पूछा—'पिताजी ! आपको कहा चोट लगी है ?'

'अरे, मैं कहां आगया ?' कहते हुए वृद्ध ने ज्योंही उठने की इच्छा प्रकट की, त्योंही विनय उन्हें रोकते हुए बोला—'अभी आप इसी प्रकार लेटे रहें। डाक्टर साहब आते ही होंगे—'

तब उन्हें जैसे सभी बातें याद आ गईं। बोले—'चोट तो कोई ज्यादा नहीं, यों ही सिर में कुछ दर्द-सा हो रहा है। डाक्टर बुलाने की तो कोई आवश्यकता ही न थी।'

तभी डाक्टर साहब भी अपनी साज-सज्जा सहित वहा आ पहुँचे। उन्होंने वृद्ध के शरीर को देखते हुए कहा—'कोई खास बात नहीं है। गर्म दूध के साथ थोड़ी-सी ब्राण्डी पिला देने से ही सब ठीक हो जायेगा।' इतना कहकर, वे दवा की एक छोटी शीशी देकर चले

विनय की इच्छा हुई कि वह उस साधु को बुलाकर, अनजान पक्षी वाला वह गीत लिख ले। परन्तु आलस्यवश वह उसे बुला नहीं सका। केवल उस गीत को ही अपने मन में गुनगुनाता रहा।

ठीक इसी समय उसके मकान के सामने, एक किराये की गाड़ी से किसी रईस की एक बहुत बड़ी बग्घी आकर टकरा गई और उस किराये की गाडी को चकनाचूर करती हुई तेजी से आगे बढ़ गई। किराये की गाड़ी उससे टकरा कर, एक ओर झुक गई तथा उसका एक पहिया टूट कर अलग जा पड़ा।

विनय यह दृश्य देखते ही झटपट बरामदे के नीचे उतर कर सड़क पर जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उस टूटी हुई गाड़ी में से एक १७-१८ साल की युवती उतर कर नीचे आ गई है तथा अन्य लोग अभी तक गाडी के भीतर बैठे हुए एक बूढ़े भले-मानुष को नीचे उतारने की चेष्टा कर रहे हैं।

विनय ने आगे बढकर उस वृद्ध पुरुष को सहारा देते हुए नीचे, उतार लिया, फिर उसकी ओर देखता हुआ बोला—'आपको चोट तो नहीं लगी ?'

'नहीं चोट नहीं लगी,, उन्होंने कहते हुए हँसने की चेष्टा की परन्तु वह हँसी उसी क्षण विलीन हो गई जैसे ही वह अचेत होकर धरती पर गिरने लगे, विनय ने उन्हें मजबूती से पकड़ लिया फिर उस घबराई हुई लड़की की ओर देखता हुआ बोला— मेरा घर यहीं सामने ही है, आप अन्दर चलिए, चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

लड़की ने कोई विरोध नहीं किया। तब विनय उन्हें साथ ले, अपने घर चला आया। भीतर लाकर उसने वृद्ध को एक बिछौने पर, लिटा दिया। लडकी ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा—'वहीं पास ही कोने में एक सुराही रखी हुई थी। वह उठी और सुराही से गिलास में पानी लेकर वृद्ध के मुँह पर छींटे देकर पंखा झलने लगी। एक क्षण ठहर कर उसने विनय से कहा—'आप किसी डाक्टर को बुला सकें तो ठीक रहेगा।'

डाक्टर विनय के मकान के पास ही रहता था। उसने एक नौकर डाक्टर को बुलाने भेज दिया।

कमरे में एक ओर मेज तथा एक बड़ा आईना था। वहीं तेल की शीशी, कघा, ब्रुश आदि सामान भी रक्खा हुआ था। लड़की के चेहरे का प्रतिबिम्ब उस आईने में पड़ रहा था। उसके पीछे खड़ा हुआ विनय, उस रूप को मन्त्र-मुग्ध की भाँति एकटक देखने लगा।

विनय बचपन से ही कलकत्ते में किराये का मकान लेकर रहता आ रहा था। पुस्तकों से उसका जो परिचय था उसके अतिरिक्त किसी भले घर की बहू-बेटी के सम्पर्क में वह कभी नहीं आया था।

आइने पर दृष्टि डालते हुए, वह इस समय सोच रहा था, 'जिसके मुख का प्रतिबिम्ब उसे दिखाई दे रहा है, वह वास्तव में बहुत ही सुन्दर है।' परन्तु उस मुखमण्डल की प्रत्येक रेखा को पृथक् भाव से देखने की क्षमता उसमें न थी। वह केवल उसके स्नेह से भरे, घबराए हुए तरुण मुख की कोमलता एवं उज्ज्वलता को ही देख सका, जो उसे सृष्टि के तत्काल प्रकाशित आश्चर्य की भाँति प्रतीत हुई।

कुछ देर बाद वृद्ध ने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं। फिर 'बेटी' कहकर एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। युवती ने आँखों में आँसू भरते हुए उनसे पूछा—'पिताजी! आपको कहाँ चोट लगी है?'

'अरे, मैं कहाँ आ गया?' कहते हुए वृद्ध ने ज्योंही उठने की इच्छा प्रकट की, त्योंही विनय उन्हें रोकते हुए बोला—'अभी आप इसी प्रकार लेटे रहें। डाक्टर साहब आते ही होंगे—'

तब उन्हें जैसे सभी बातें याद आ गईं। बोले—'चोट तो कोई ज्यादा नहीं, यों ही सिर में कुछ दर्द-सा हो रहा है। डाक्टर बुलाने की तो कोई आवश्यकता ही न थी।'

तभी डाक्टर साहब भी अपनी साज-सज्जा सहित वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वृद्ध के शरीर को देखते हुए कहा—'कोई खास बात नहीं है। गर्म दूध के साथ थोड़ी-सी ब्राण्डी पिला देने से ही सब ठीक हो जायेगा।' इतना कहकर, वे दवा की एक छोटी शीशी देकर चले

गए। उनके जाते ही वृद्ध अत्यन्त चिन्तित और संकोचशील हो उठे। लड़की ने उनके मन के भाव को समझते हुए कहा—'पिताजी! आप चिन्ता न करें। डाक्टर की फीस और औषधि का मूल्य हम घर चल कर इनके पास भेज देंगे।'

इतना कह कर उसने विनय के मुँह की ओर देखा। वे आंखें कैसी विचित्र थीं। उन्हें देखकर यह तर्क मन में उठता ही नहीं था कि वे छोटी या बड़ी, काली हैं या भूरी। पहली दृष्टि पड़ते ही यह जान पड़ता था, जैसे उनमें सन्देह, संकोच अथवा द्विविधा रंचमात्र भी नहीं है। यह दृष्टि एक स्थिर शक्ति से परिपूर्ण है।

विनय ने बोलने की चेष्टा की—'फीस बहुत मामूली है, उसके लिए आप लोग चिन्ता न करें, उसे तो मैं ही···।'

लड़की उसके मुँह की ओर देख रही थी, अतः वह अपनी बात को पूरी न कर सका। परन्तु उसके मन में यह निश्चय हो गया कि किसी भी प्रकार फीस का रुपया तो उसे लेना ही पड़ेगा।

तभी वृद्ध बोले—देखिये, मुझे ब्राण्डी की कोई आवश्यकता नहीं है,' परन्तु लड़की बीच में ही बोल पड़ी—'परन्तु, पिताजी! डाक्टर साहब तो कह गए हैं।'

'डाक्टर लोग तो यों ही कहा करते हैं'—उन्होंने उत्तर दिया 'मुझे जितनी दुर्बलता है, वह थोड़ा-सा गर्म दूध पीते ही दूर हो जायेगी।'

तभी नौकर दूध ले आया। वृद्ध ने उसे पीने के बाद कहा—'अब हम लोग जा रहे हैं आपको बहुत कष्ट दिया।'

तभी लड़की ने विनय के मुँह की ओर देखते हुए उत्तर दिया 'नहीं पिताजी! यह नहीं होगा। गाड़ी···'

'अब इन्हें और अधिक कष्ट क्यों देती हो?'—वृद्ध सज्जन बोले—'हमारा घर पास ही है। टहलते-टहलते चले जायेंगे।'

परन्तु विनय जाकर एक गाड़ी ले आया। गाड़ी पर चलते हुए वृद्ध ने विनय से पूछा—'आपका शुभ नाम।'

'मेरा नाम विनयभूषण चट्टोपाध्याय है' विनय बोला।

वृद्ध—'और मेरा नाम परेशचन्द्र भट्टाचार्य है। समीप ही ७८ नम्बर के मकान में रहता हूँ। कभी समय मिलने पर आप मेरे घर पधारें, तो बड़ी प्रसन्नता होगी।'

लड़की ने विनय की ओर दृष्टि उठाकर, जैसे इस अनुरोध का समर्थन किया। विनय इसी समय गाड़ी पर साथ बैठकर उनके घर को प्रस्तुत था, परन्तु ऐसा करना शिष्टाचार के कहीं विरुद्ध न हो, यह विचार कर वह खड़ा ही रहा। गाड़ी चलने पर लड़की ने उसे नमस्कार किया। परन्तु विनय जैसे इसके लिए तैयार नहीं था, अतः उसने नमस्कार का उत्तर न दिया। हतबुद्धि-सा स्थिर खड़ा रहा। इस त्रुटि के लिए जब वह घर लौटा, तो उसका हृदय उसे बार-बार धिक्कार रहा था। उन लोगों के आने से लेकर विदा होने के समय तक के अपने सम्पूर्ण व्यवहार पर जब उसने विचार करना आरम्भ किया, तो उसे लगा, जैसे वह निरन्तर अशिष्टता का प्रदर्शन करता रहा। इस विषय को लेकर, उसके हृदय में उथल-पुथल मचने लगी। जिस रूमाल से लड़की ने अपने पिता का मुँह पोंछा था, वह बिछौने पर अभी तक पड़ा हुआ था। विनय ने उसे झटपट उठा लिया। तभी उसके मन में भिखारी का स्वर गूँज उठा—

'यह अद्भुत पंछी पिंजड़े में ......।'

दिन चढ़ आया। बरसात की धूप तेज हो उठी। गाड़ियों के झुण्ड ऑफिसों की ओर द्रुतगति से दौड़ने लगे। विनय अपने किसी भी दैनिक कार्यक्रम में मन को न लगा सका। आज जैसी अपूर्व, आनन्दमयी घोर वेदना उसे पहले कभी नहीं हुई थी। उसे अपना छोटा-सा घर और उसके चारों ओर फैली हुई कुत्सित कलकत्ता नगरी एक माया पुरी के समान लगने लगी। वहाँ असम्भव हो जाता है, असाध्य साध्य हो जाता है तथा अरूप स्वरूप धारण कर लेता है। वर्षा काल के प्रभात की चमकती हुई धूप की आभा उसके मस्तिष्क में प्रवेश करने लगी। उसके हृदय के सामने ज्योतिर्मयी यवनिका-सी आ पड़ी, जि

उसके दैनिक जीवन की सारी तुच्छताओं को ढक दिया। उसे इच्छा होने लगी कि अपनी परिपूर्णता को आश्चर्यजनक रूप से प्रकट कर दे परन्तु उसका कोई उपाय न देखकर वह पीड़ित हो उठा। उसे विचार होने लगा—उसका घर बहुत मामूली है, सामान सब अस्त-व्यस्त पड़ा है. बिछौने साफ नहीं हैं। और अपने कमरे में वह फूलों का एक गुच्छा तक लाकर नहीं रख सकता। तभी उसे एक और ध्यान आया—'काश, जिस समय वे दोनों गाड़ियाँ लड़ी थीं, तभी मैं उस रईस की बग्घी के दोनों घोड़ों को जाकर पकड़ लेता और उन्हें रोक कर खड़ा हो जाता तो···?' अपने इस कल्पित विक्रम का हृदय पर प्रभाव पड़ते ही, वह एक बार फिर आईने के पास जाकर अपना चेहरा देखे बिना न रहा!

उसी समय उसकी दृष्टि पड़ी कि एक सात-आठ वर्ष का बालक नीचे खड़ा हुआ, उसके मकान का नम्बर देख रहा है विनय ने बिना किसी प्रकार का सन्देह किये, ऊपर से कहा—'चले आओ, यही मकान है।' फिर चप्पलों को चटकाता हुआ, सीढ़ियों से उतर कर तुरन्त नीचे जा पहुँचा और अत्यन्त आग्रहपूर्वक उस लड़के को अपने साथ कमरे में ले आया और उसके मुँह की ओर देखने लगा। लड़का बोला—'मुझे दीदी ने भेजा है।' इतना कहकर उसने विनय के हाथ में एक पत्र दे दिया।

विनय ने पत्र लेकर, पहले लिफाफे के ऊपर दृष्टि डाली। स्पष्ट स्त्रियों जैसी लिखावट में, अंग्रेजी अक्षरों में उसका नाम-पता लिखा था। भीतर कोई पत्र नहीं था, केवल रुपये रखे थे।

लड़का लौटने को उद्यत हुआ, परन्तु विनय ने उसे जाने न दिया वह उसके गले में हाथ डालकर, दूसरी मंजिल के एक कमरे में ले गया।

लड़के का रङ्ग अपनी बहिन की अपेक्षा कुछ सांवला था, परन्तु सूरत-शक्ल में वह मिलता था। उसे देखकर विनय के हृदय में एक विशेष स्नेह एवं आनन्द होने लगा।

लड़का बड़ा तेज था। कमरे में प्रवेश करते ही, वह दीवाल पर

लगे एक चित्र को देखते हुए बोला—'यह चित्र किसका है ?'

विनय ने कहा—'यह मेरे एक मित्र का चित्र है।'

लड़के ने पूछा—'मित्र का चित्र है! कौन हैं आपके ये मित्र ?'

विनय हँसता हुआ बोला—'तुम इन्हें नहीं पहचानते। ये मेरे मित्र हैं गौर मोहन, जिन्हें हम 'गोरा' कहकर पुकारते हैं। बचपन से हम एक साथ पढ़े हैं।'

लड़का—'क्या अब भी पढ़ते हैं ?'

'नहीं अब तो नहीं पढ़ते' विनय ने कहा।

'तो क्या आप सब पढ़ चुके ?' लड़के ने पूछा।

विनय उस छोटे बच्चे के सामने भी अपने गर्व का प्रलोभन न रोक सका। बोला—'हाँ, सब पढ चुका।'

लड़के ने आश्चर्य चकित हो, एक लम्बी सांस ली। शायद सोच रहा था कि वह भी इतनी विद्या न जाने कब तक पढकर समाप्त करेगा।

तभी विनय ने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम है सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय।' उसने उत्तर दिया।

'मुखोपाध्याय!' विनय ने आश्चर्य में पडकर कहा।

तब उसे धीरे-धीरे सब परिचय प्राप्त हुआ। परेश बाबू इनके पिता नहीं हैं–इन दोनों भाई बहिनों को उन्होंने बचपन से पाला-पोसा है। लड़के की बहिन का नाम पहले राधारानी था, परन्तु परेश बाबू की पत्नी ने उसे बदल कर अब 'सुचरिता' रख दिया है।

कुछ ही देर में विनय के साथ सतीश की खूब घनिष्टता हो गई। वह जब घर जाने को प्रस्तुत हुआ, तब विनय ने पूछा—'अकेले जा सकोगे ?'

'क्यों नहीं ?' उसने गर्व के साथ कहा—'आया भी तो अकेला ही हूँ।'

'मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ ?'

अपनी शक्ति के सम्बन्ध में विनय का यह अविश्वास देखकर

जगदीश का मन क्षुब्ध हो उठा। बोला—'क्यों ? मैं तो अकेला ही जा सकता हूँ।'

यह कहकर वह अपने अकेले जाने के विषय में अनेकों आश्चर्य-जनक उदाहरण प्रस्तुत करने लगा। परन्तु फिर भी विनय उसके साथ उसके मकान के दरवाजे तक क्यों गया, इसका ठीक कारण उसकी समझ में नहीं आया।

घर के द्वार पर पहुँच कर उसने पूछा—'आप भीतर नहीं चलेंगे क्या ?'

विनय ने अपने मन को संयत करते हुए कहा—'फिर किसी दिन आऊँगा।'

घर लौट कर विनय ने उक्त पता लिखे हुए, लिफाफे को जेब से निकाल कर बड़ी देर तक देखा। प्रत्येक अक्षर की बनावट एवं रेखायें-जैसे उसके हृदय में अंकित हो गईं। फिर उसने रुपयों सहित उस लिफाफे को यत्नपूर्वक बक्स में रख दिया। इन रुपयों को किसी कुसमय में भी व्यय करने की सम्भावना नहीं रही।

२

वर्षा ऋतु की सन्ध्या में, आकाश का अन्धकार मानो भीग कर भारी हो उठा था। वर्णहीन एवं वैचित्र्य-हीन मेघों के निःशक्त शासन के नीचे, कलकत्ता नगर जैसे अपनी ही पूँछ के बीच मुँह छिपाकर कुन्डली बनाये हुए. निरानन्द कुत्ते के समान चुपचाप पड़ा हुआ था। कल सायंकाल से ही रिमझिम पानी की बूँदें पड़ रही थीं। इस वर्षा ने मार्ग की मिट्टी को कीचड़ बना दिया था, परन्तु उस कीचड़ को बहा ले जाने की शक्ति वह न दिखा सकी थी। आज दिन के चार बजे से ही वर्षा बन्द हो गई थी, परन्तु बादलों का रुख अच्छा नहीं था। इस वर्षा की आशङ्का से, जब निर्जन कमरे में भी मन नहीं लगता और बाहर भी प्रसन्नता का अनुभव नहीं होता, उस समय दो व्यक्ति एक तिमजिले मकान की भीगी हुई छत पर, बेंत के मूढ़ों पर बैठे हुए वार्तालाप कर

रहे थे।

वे दोनों बचपन के मित्र थे। स्कूल से लौटने पर वे इसी छत पर दौड़ते और खेलते-कूदते थे। परीक्षा के दिनों में दोनों ही इस छत पर तेजी से घूमते और चिल्ला-चिल्ला कर अपना पाठ रटते थे। गर्मी के दिनों में कालेज से लौट कर, इसी छत पर रात को भोजन करते थे, कभी-कभी उन्हें तर्क करते हुए, रात के दो भी बज जाते थे और सुबह धूप पड़ने पर जब जगते, तो देखते कि रात को वही चटाई पर दोनों सो गए थे।

कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होने पर, इसी छत पर महीने में एक बार 'हिन्दू हितैषी सभा' का अधिवेशन हुआ करता था। इन दोनों मित्रों में से एक उस सभा का सभापति था, दूसरा मन्त्री।

सभापति का नाम था—गौर मोहन। परन्तु उसके सभी आत्मीय मित्र उसे गोरा कहते थे। वह अन्य लोगों से जैसे बिल्कुल भिन्न था। कालेज में संस्कृत के अध्यापक उसे रजतगिरि कहकर पुकारते थे। उसके शरीर का रङ्ग गोरा था, पीले रङ्ग की आभा ने उसे तनिक भी स्निग्ध नहीं किया था। उसकी लम्बाई प्रायः छः फुट थी—हड्डियां चौड़ी थी। दोनों हाथों की मुट्ठियां किसी बाघ के पंजे के समान बड़ी थी। गले की आवाज इतनी गम्भीर थी कि उसे सुनने वाला अचानक चौंक पड़ता था। उसके मुख की बनावट भी अनावश्यक रूप से बड़ी तथा दृढ़ थी। जबड़े और ठोड़ी किसी दुर्ग-द्वार की सांकल की भाँति थी। आँखों के ऊपर भौंहों की रेखायें नहीं थीं। ललाट कानों तक चौड़ा चला गया था। उसके ऊपर नाक तलवार की तरह झुक रही थी दोनों आँखें छोटी परन्तु तीक्ष्ण थीं। उसकी दृष्टि तीर की नोंक की भांति, अत्यन्त दूर के लक्ष्य को भी सन्तुलित किए रहती और क्षण भर में ही लौटकर समीप की किसी वस्तु को बिजली की भांति चोट पहुंचा सकती थी। गोरा को देखकर कोई सुन्दर नहीं कह सकता था, परन्तु उसे बिना देखे रहा भी नहीं जाता था। सभी के बीच में उसके ऊपर दृष्टि अचानक ही चली जाती थी।

उसका मित्र साधारण बङ्गाली सभ्य पुरुष की भांति शिक्षित, नम्र एवं उज्ज्वल था। स्वभाव की कोमलता एवं बुद्धि की प्रखरता ने उसके मुख की शोभा को विशेष महत्वपूर्ण बना दिया था। कालेज में वह निरन्तर ही ऊँचे नम्बर और छात्रवृत्तियां पाता आया था। गोरा किसी भी प्रकार उसके साथ नहीं चल पाता, क्योंकि पाठ्यविषयों में उसकी गति नहीं थी; वह उन्हें न समझता और न याद ही कर पाता। यद्यपि विनय ही उसका वाहन बनकर, उसे सब परीक्षाओं में अपने पीछे-पीछे घसीटता उत्तीर्ण करता आया था।

उस समय गोरा कह रहा था—'सुनो, अविनाश जो ब्राह्म-समाजियों की निन्दा कर रहा था, उससे प्रतीत होता है कि वह बहुत स्वस्थ एवं स्वाभाविक अवस्था में है। तुम उस पर एकाएक नाराज क्यों हो गए?'

विनय बोला—'कितना आश्चर्य है? उस विषय में भी कोई प्रश्न उठ सकता है, इसका मैंने विचार तक नहीं किया था।'

गोरा—'यदि यही बात है, तो अवश्य तुम्हारे हृदय में कोई दोष उत्पन्न हो गया है। एक दल के व्यक्ति सामाजिक बन्धनों को तोड़कर सभी बातों में उल्टी रीति से चलते रहे और समाज के लोग उनके प्रति अच्छे विचार रखें, यह स्वाभाविक नियम नहीं है। उसमें भी उन्हें अवश्य गलत समझेंगे। अपितु वे जो सीधा काम करेंगे, उसमें भी उन्हें टेढ़ापन दिखाई पड़ेगा। उसकी अच्छाइयाँ भी उन्हें बुरी लगेंगी। ऐसा करना उचित भी है। समाज को छोड़कर स्वेच्छाचारी हो जाने की जो सजायें हैं, यह भी उन्हीं में से एक है।'

विनय—'जो स्वाभाविक है, वह भला भी है, यह मैं नहीं कह सकता।'

गोरा कुछ तेज होते हुए बोला—'मुझे भले की आवश्यकता नहीं है। संसार में दो-चार व्यक्ति भले भी रहें तो रहें। परन्तु अन्य सब लोगों को स्वाभाविक रूप से ही रहना चाहिये। अन्यथा न तो काम ही

चलेगा और न प्राण ही बचेंगे। ब्राह्म-समाजी बनकर जिन्हें बहादुरी दिखाने का शौक है, उन्हें यह दुःख सहना ही पड़ेगा। ब्राह्मसमाजियों से जो लोग पृथक् हैं, वे उनके कार्यों को भूल समझकर निन्दा ही करेंगे। वे लोग भी अपनी बहादुरी पर छाती फुलायेंगे तथा प्रतिपक्षी भी उनके पीछे प्रशंसा करते हुए चलेंगे। संसार में ऐसा नही होता और यदि होता भी तो उससे संसार को कुछ सुविधा न होती।'

विनय—'मैं दल-निन्दा की बात नही करता, व्यक्तिगत•••'

गोरा—'दल की निन्दा, कैसी निन्दा ? यह तो मतामत का विचार हुआ। व्यक्तिगत निन्दा ही होनी चाहिये। अच्छा, तो तुम किसी की निन्दा नहीं करते थे ?'

विनय—'करता था और खूब करता था। परन्तु अब उसके लिए लज्जित हूँ।'

गोरा अपने दाँये हाथ की मुट्ठी बांधकर बोला—'परन्तु विनय, अब यह नही चलेगा, किसी भी प्रकार नहीं।'

विनय कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—'क्यों क्या हो गया ? तुम्हें किसका भय लगता है ?'

गोरा—'मैं देख रहा हूँ कि तुमने स्वयं को दुर्बल बना लिया है।'

विनय ने उत्तेजित होते हुए कहा—'दुर्बल ! क्या तुम नहीं जानते कि मैं चाहूँ तो अभी उनके घर जा सकता हूँ ? उन्होंने मुझे बुलाया भी, परन्तु मैं गया ही नही।'

गोरा—'यद्यपि गये नहीं, परन्तु उस बात को किसी तरह भूल नहीं पाते। हर समय यही कहते हो 'गया नही ? इससे तो अच्छा होता कि चले ही जाते।'

विनय—'तो तुम जाने के लिए कहते हो ?'

गोरा अपने घुटने को थपथपाते हुए बोला—'मैं तो नहीं कहता, परन्तु यह लिखे देता हूँ कि जिस दिन तुम जाओगे उस दिन चले ही

जाओगे। जाने के दूसरे ही दिन तुम उनके साथ खाना शुरू कर दोगे तथा ब्राह्म-सभा के खाते में अपना नाम लिखकर, उसके दिग्विजयी प्रचारक भी बन जाओगे।'

विनय—'यह क्या कह रहे हो ? फिर ?'

गोरा—'फिर ? इससे बढ़कर बुरी चीज और कोई नहीं है। ब्राह्मण-पुत्र होकर भी तुम बुरी तरह जाकर मरोगे, तुम्हारा आचार-विचार नष्ट हो जायगा, कम्पास टूटे हुए नाविक की भाँति तुम्हें पूर्व पश्चिम का ज्ञान न रहेगा। तब तुम समझोगे कि जहाज का बन्दरगाह पर पहुँचना ही कुसंस्कार है, उसका बहते जाना ही यथार्थ है। परन्तु इन बातों की बकवास के लिए मेरे पास धैर्य नहीं--तुम्हें जाना है तो चले जाओ। जब तुम अधः पतन के मार्ग पर पाँव बढ़ाते ही जा रहे हो, तो फिर हमें भी उसी ओर ले जाने की चेष्टा क्यों करते हो ?'

विनय हँस पड़ा, कहने लगा—'डाक्टर के निराश हो जाने पर रोगी सदैव मर ही जाता है-ऐसी बात नहीं है। मुझे तो अन्तकाल का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता।'

गोरा—'नहीं दीखता ?'

'नहीं।'

'नाड़ी शायद बन्द होने को है न ?'

'नहीं तो खूब चल रहा है।'

'क्या ऐसा अनुभव नहीं होता कि सुन्दर हाथों से परोसा हुआ भोजन, चाहे म्लेच्छ का अन्न ही क्यों न हो, देवता का भोग हो जायगा ?'

विनय बहुत उकता उठा था बोला—'गोरा ! बस, कुछ न कहो।'

गोरा—'इसमें लज्जित होने की तो कोई बात ही नहीं है। स्त्री हाथ असूर्यम्पश्य नहीं होता। पुरुषों के साथ जिसका 'शेक हैण्ड' चलता हो, उस पवित्र हाथ का उल्लेख तक जब तुमसे सहन नहीं हुआ, तो नासंशे मरणाय संजयः।'

विनय—'देखो गोरा, मैं स्त्री जाति के प्रति श्रद्धा रखता हूँ। हमारे शास्त्रों में भी······।'

गोरा—'तुम जिस भाव से स्त्री जाति के प्रति श्रद्धा रखते हो, उसके लिए शास्त्रों की दुहाई न दो। उसे भक्ति नहीं कहते उसे जो कहते हैं, वह यदि कहूँगा तो तुम मारने दौड़ोगे।'

विनय—'यह बात तुम अपनी शारीरिक शक्ति के कारण कह रहे हो।'

गोरा—'स्त्रियों के लिए शास्त्र में पूजाहि गृहदीप्तय:' कहा गया है। वे पूज्य ही हैं। वे गृह को प्रकाशित करती हैं, पुरुषों के हृदय को भी वे प्रदीप्त करती हैं, अत: पाश्चात्य परम्परानुसार उन्हें जो मान दिया जाता है, उसे पूजा न कहना ही उचित होगा।'

विनय—'यदि किसी जगह विकृति देखी जाती हो, तो क्या इसलिए एक उच्च विचार धारा पर कटाक्ष करना उचित होगा?'

गोरा अधीर होते हुए बोला—'विनय, जब तुम्हारी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है, तब तुम मेरी बात मानलो। मेरा कहना है कि पाश्चात्य शास्त्रों में जो स्त्रियों के लिए उक्तियाँ कही गई हैं, उनके भीतर वासना भरी है। स्त्री जाति पूजा करने का स्थान है-माता का घर, सती लक्ष्मी गृहणी का आसन। इन स्थानों से हटा कर उसकी अन्य स्तुति की जाये, उसमें अपमान छिपा हुआ है। पतंगे की भाँति तुम्हारा मन जिस कारण परेश बाबू के मकान के चारों ओर घूम रहा है, उसे अंग्रेजी में 'लव' कहते हैं। परन्तु मैं यही चाहता हूँ कि अंग्रेजी की नकल करके तुम उस 'लव' को ही संसार में चरम अथवा परम पुरुषार्थ मानकर, उसी की उपासना करने में जुट जाओ।'

कोड़े की चोट खाये हुए घोड़े की भाँति उछलता हुआ, विनय बोला—'गोरा! बस अब रहने दो। बहुत हो गया।'

गोरा—'बहुत कहाँ हुआ? कुछ भी नहीं हुआ है। हमने स्त्री और पुरुष को उनके उचित स्थान पर भली भाँति देखना सीखा ही नहीं है, इसीलिए हमने कितने ही कवित्व-भरे विचारों को एकत्रित कर

रक्खा है ।'

विनय बोला—'अच्छा, मैं माने लेता हूँ कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध जिस स्थान पर रखने से ठीक हो सकता था, उसे हम लोग अप्रवृत्तियों की झोंक में लांघ जाते और मिथ्या बना देते हैं, परन्तु क्या यह अपराध केवल विदेशों का ही है ? इस विषय में यदि अंग्रेजी का कवित्व मिथ्या है, तो हम लोग यह कामिनी और कंचन के त्याग की बातें लेकर बड़ी-बड़ी डींगें हांकते हैं, यह भी तो मिथ्या ही है। जिसे लेकर मनुष्य की प्रकृति सहज ही आत्म-विस्मृति हो जाये, इससे मनुष्य को बचाने के लिए, कोई प्रेम के सौन्दर्य अंश को ही कवित्व के द्वारा उज्ज्वल बना देता है और उसके बुरे अंश को छिपा देता है। परन्तु कोई-कोई उसके बुरे अंश को ही बड़ा बनाकर कामिनी और कंचन के त्याग का विधान बना देते हैं। यह योनों, दो विभिन्न प्रकृति के लोगों की प्रणालियां हैं। यदि तुम एक की निन्दा करते हो, तो दूसरी को रियायत देने से भी काम नहीं चलेगा।'

गोरा—'न, मैंने तुम्हें गलत समझा था। तुम्हारी हालत अभी अधिक खराब नहीं हुई है। अब भी, जब कि तुम्हारे मस्तिष्क के भीतर 'फिलास्फी' वर्तमान है, तुम निर्भीक बनकर 'लव' (प्रेम) कर सकते हो, परन्तु समय रहते अपने को सम्हाल लेना—मित्रों का तो यही अनुरोध है।'

विनय घबरा कर बोला—'अरे तुम पागल हो गये हो क्या ? मेरा लव कैसा ? फिर भी यह बात मुझे स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि परेश बाबू को जैसा मैंने देखा है, उनके बारे में जो कुछ सुना है उससे मेरे हृदय में उन लोगों के प्रति यथेष्ट श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।'

गोरा—'ठीक है। उस आकर्षण को ही सम्हाल कर चलना पड़ेगा। उन लोगों के सम्बन्ध में प्राणी-वृत्तान्त के अध्याय का आविष्कार न भी करो, तो क्या हर्ज है ? विशेषतः वे ठहरे शिकारी जीव उनके आन्तरिक मामलों को जानते हुए, तुम यहां तक भीतर

सकते हो कि सम्भवतः फिर तुम्हारी यह चोटी भी न दिखाई पड़े।'

विनय—देखो, तुममें एक बड़ा दोष है। तुम समझते हो कि ईश्वर ने सभी शक्तियां केवल तुम्हीं को दी हैं और हम सब दुर्बल प्राणी ही हैं।'

विनय की यह बात गोरा को कुछ नई-सी जान पड़ी। उसने उत्साह के आवेश में विनय की पीठ पर एक हल्की-सी थपकी लगाते हुए कहा—'ठीक है, मेरा यही दोष तो एक बड़ा भारी दोष है।'

इसी समय गोरा के बड़े भाई महिम अपना स्थूल शरीर लिये, हांफते-हांफते ऊपर आ पहुँचे। आते ही बोले—'गोरा!'

गोरा झट उठकर खड़ा हो गया बोला—'कहिये, क्या आज्ञा है!'

महिम—'मैं यह देखने आया हूँ कि बरसात के बादल गरजते-गरजते हमारी छत पर भी उतर आये हैं या नहीं। आज क्या बात है? शायद इतनी देर में तुम अँग्रेजों को हिंद महासागर में आधी दूर तक भगा आये हो। इसमें अँग्रेजों की कुछ हानि तो मुझे दिखाई नहीं देती, परन्तु नीचे कोठरी में बड़ी बहू (तुम्हारी भावज) सिर के दर्द से बेहाल पड़ी हैं। तुम्हारे सिंहनाद से उन्हें कष्ट हो रहा है।'

महिम यह कहकर नीचे चले गये।

गोरा लज्जित होकर खड़ा का खड़ा रह गया। उसे कुछ क्रोध भी आ रहा था—पता नहीं, अपने ऊपर अथवा किसी दूसरे पर। कुछ देर बाद उसने जैसे मन-ही-मन कहा—'सभी बातों में मैं आवश्यकता से अधिक तेज हो उठता हूँ। पता नहीं, दूसरों के लिये यह कितना असहनीय हो जाता है।'

तभी विनय ने गोरा के पास आकर स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया।

गोरा और विनय छत से नीचे उतरने को तैयार ही थे कि गो: की मां ऊपर आ पहुँची। विनय ने उनके चरणस्पर्श कर, प्रणा किया।

गोरा की मां 'आनन्दमयी' देखने से गोरा की मां जैसी मालू नहीं होती थीं। वे दुबली-पतली तथा इकहरे शरीर की थीं। मस्तक कुछ बाल श्वेत हो गये थे, परन्तु वे ऊपर से दिखाई ही नहीं देते थे अचानक देखने पर, उनकी आयु चालीस वर्ष से भी कम की प्रतीत हो थी। मुँह की बनावट बड़ी कोमल थी। नाक, होंठ, ठोढ़ी तथा लल ी रेखाओं को, जैसे किसी ने बड़े यत्न से अङ्कित किया था। चेहरे ज तथा बौद्धिक प्रखरता का भाव परिलक्षित होता था। रंग सांव ा—जिसकी गोरे रंग से तुलना नहीं हो सकती थी। उन्हें देखने क बात पर सभी की दृष्टि जा पड़ती थी, कि वे साड़ी के साथ शेमं हिनती थीं। जिस समय की बात हम कह रहे हैं, उस समय यद्य ावयुवतियों में शेमीज या कुर्ती पहनने की प्रथा प्रचलित हो चुकी रन्तु बड़ी आयु की गृहणियां उस पहनावे को क्रिस्तान कह कर घृ ी दृष्टि से देखती थीं। आनन्दमयी के पति कृष्णदयाल बाबू कमसरि ं कर्मचारी थे। आनन्दमयी विवाह के बाद से ही, उनके साथ पश्चि ांचल में रही थीं। इस कारण उनके हृदय में कभी यह विचार प्रा भी नहीं हुआ था कि अच्छी तरह अंग ढकने वाले कपड़ों को पहन लज्जा अथवा उपहास की बात भी हो सकती है। वे सवेरे उठकर ार की सफाई करतीं तथा बरतन मांज-धोकर ठीक स्थान पर रख थीं। रसोई पकातीं, सिलाई करतीं तथा कपड़ों को धूप में सुखाने लिये डाल दिया करती थीं। वे हिसाब-किताब ठीक करतीं, आत्मी स्वजनों तथा पड़ोसियों की खोज-खबर लेतीं, परन्तु तो भी उनका मानो बीतता ही नहीं था। शरीर अस्वस्थ हो जाने पर भी, वे उसे महत्व नहीं देती थीं। कहतीं—'मुझे कोई बीमारी नहीं हो सकत

बिना काम किये मैं जीऊँगी भी कैसे ?' उन्हें देखकर, हृदय में उनके प्रति स्वाभाविक रूप से श्रद्धा उत्पन्न हो उठती थी।

गोरा की माँ ऊपर आकर बोली—'गोरा की आवाज जब नीचे तक सुनाई देती है, तभी मैं जान लेती हूँ कि विनय अवश्य आया होगा। कई दिन से यहाँ सन्नाटा छा रहा था। बताओ बेटा विनय, आते क्यों नहीं ? तबियत तो खराब नहीं है न ?'

विनय ने कुछ कुण्ठित होकर कहा—'नहीं माँ, तबियत तो ठीक है। इधर बादल-पानी के कारण आना हो ही न सका।'

गोरा बीच में ही बोल पड़ा—'यही बात है। जब पानी न बरसेगा, तो यह कहेंगे कि धूप तेज पड़ रही थी। इनके मन की असली बात को तो अन्तर्यामी ही जानते हैं।'

विनय ने चिढ़ते हुए कहा—'गोरा, तुम व्यर्थ बकवास कर रहे हो।'

आनन्दमयी बोलीं—'ठीक तो है, गोरा ! मनुष्य का मन सदा एकसा नहीं रहता। इस प्रकार की बातें तुम्हें नहीं कहनी चाहिये। अधिक छेड़छाड़ से दूसरे का मन दुखने लगता है।' फिर विनय से कहने लगीं—'विनय बेटा, आओ मेरे कमरे में चलो, मैंने तुम्हारे लिए कुछ खाने का सामान तैयार कर रखा है।'

गोरा सिर हिलाते हुए बोला—'न माँ, यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे कमरे में विनय को खाना नहीं खाने दूँगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'अरे गोरा ! मैंने तो तुझसे किसी दिन खाने के लिए नहीं कहा। तुम दोनों बाप-बेटे अजीब शुद्धि आचार के पक्षपाती बन बैठे हो। वे भी कुछ दिनों से, अपने ही हाथ का पकाया हुआ खाना खाते हैं। परन्तु मेरा विनय बहुत सीधा लड़का है उसमें तेरी भाँति कट्टरता नहीं है। तू ही उसे सदाचारीपन का ढोंग सिखाता रहता है अपनी ही भाँति इसे भी कट्टर बनाना चाहता है।'

गोरा—'यह ठीक है माँ। मैं इसे अवश्य ही रोक रखूँगा।

जब तक तुम अपनी ईसाई दासी लछमियां को अपने यहाँ रक्खोगी, तब तक मैं अथवा विनय कोई भी, तुम्हारे कमरे में खाना नहीं खायेगा।'

आनन्दमयी—'अरे गोरा, तू ऐसी बातें न कर। बचपन में तू सदा उसी के हाथ से खाता-पीता था। सच पूछो तो लछमियाँ ने ही तुझे पाल-पोस कर इतना बड़ा बनाया है। कुछ दिन पहले तू उसके हाथ की बनी चटनी के बिना खाना ही नहीं खाता था। बचपन में जब तेरे चेचक निकली थी, तब लछमियां ने तेरी जैसी सेवा की. उसे तो मैं कभी भुला ही नहीं सकती।'

गोरा—'पर, अब उसे पेंशन दे दो, मां। उसे जमीन खरीद दो, घर बनवा दो, जो जी में आये करो, परन्तु अब उसे घर में रखने से काम नहीं चलेगा।'

आनन्दमयी—'गोरा तू समझता है कि किसी को धन दे देने से ही उससे उरिण हुआ जा सकता है? वह न रुपये चाहती है, न जमीन, न घर। वह तो केवल तुझे देखना चाहती है। बिना देखे तो वह मर ही जायेगी।'

गोरा—'तब तुम खुशी से उसे अपने पास रक्खो, परन्तु तुम्हारे घर में विनय खाना नहीं खायेगा। जो नियम बना है, उसे मानना ही पड़ेगा। उसके विरुद्ध नहीं जा सकता। मां तुम इतने बड़े प्रसिद्ध पण्डित-वंशी की पुत्री होकर भी सदाचार का पालन नहीं करतीं, इससे अधिक आश्चर्य और खेद की बात क्या होगी?'

आनन्दमयी—'बेटा, तेरी मां पहले बहुत कट्टर और सदाचार-रिणी थी। इस आचार, पालन के लिए ही मुझे बहुधा रोना भी पडता था। उस समय तेरा जन्म भी नहीं हुआ था। मैं प्रति दिन शिव की मूर्ति बनाकर पूजा करती थी और तेरे पिता उसे देखते ही उठाकर फेंक देते थे। उस समय अपरिचित ब्राह्मण के हाथ से बनी रसोई खाने में भी घृणा लगती थी, तब दूर-दूर तक रेलगाड़ी नहीं थी। तेरे पिता को यात्रा में बैल-गाड़ी, घोड़ागाडी, पालकी अथवा ऊँट पर चढ़कर जाना

पढ़ता था। उस समय दो-दो दिन मैं भूखी-प्यासी ही बनी रहती थी। तेरे पिता ने मेरे आचार-विचार को छुड़ाने की बहुत चेष्टा की। वे मुझे साथ लेकर ही सब जगह जाते थे। अतः साहब लोग उनकी बड़ी प्रशंसा करते थे। अब बुढ़ापे में नौकरी छोड़ देने पर, जब उनके पास खूब रुपया जमा हो गया, तो वे कट्टर सदाचारी हिन्दू बन गए हैं। परन्तु मुझसे अब यह नहीं हो सकता। मेरी सात पीढ़ियों के जो संस्कार एक-एक करके उखाड़ डाले गए वे अब फिर से नहीं जम सकते।'

गोरा—'अच्छा, तो पूर्व पुरुषों की बात जाने दो। वे अब आपत्ति करने के लिए नहीं आयेंगे, परन्तु तुम्हें हम लोगों के लिए कुछ बातें तो माननी ही पड़ेंगी। शास्त्र का मान चाहे न रखो लेकिन हमारे स्नेह का मान तो रखना ही पड़ेगा।'

आनन्दमयी—'अरे, तू मुझे इतना क्या समझा रहा है? मेरे मन की जो दशा है, उसे मैं ही जानती हूँ। मेरे पति और पुत्र को यदि मेरे आचरण से कष्ट हो, तो मुझे सुख कहाँ मिलेगा? परन्तु तू यह नहीं जानता कि तुझे गोद में लेने के दिन से मैंने सब आचार-विचार त्याग दिये। किसी छोटे बालक को गोद में उठाने पर ही यह समझ में आता है कि पृथ्वी पर कोई प्राणी जाति लेकर उत्पन्न नहीं होता। मैंने जिस दिन से इस बात को समझा, उसी दिन से मुझे यह निश्चय हो गया कि यदि मैं किसी को ईसाई अथवा छोटी जाति का समझ कर घृणा करूँगी तो ईश्वर तुझे भी मेरी गोद से छीन लेंगे। तू मेरी गोदी को, मेरे घर को सुशोभित रख, मैं संसार की सभी जातियों के हाथ का पानी पीती रहूँगी।'

आज आनन्दमयी की बातें सुनकर विनय के मन में अचानक किसी सन्देह का आभास उत्पन्न हुआ। उसने एक बार आनन्दमयी और फिर गोरा के चेहरे की ओर देखा, परन्तु फिर शीघ्र ही उस सन्देह को उन सभी तर्कों सहित अपने मन से निकाल फेंका।

गोरा बोला—'माँ, तुम्हारी यह युक्ति मेरी समझ में नहीं आई। जो लोग आचार मानते हैं, जाति का विचार रखते हैं, शास्त्र को मानते—

चलते हैं, उनके घर में भी लडके जीवित रहते हैं। फिर तुम्हें यह किसने वताया कि ईश्वर तुम्हारे सम्बन्ध में किसी विशेष नियम से काम लेंगे ?'

आनन्दमयी—'जिन्होंने तुझे दिया है, उन्होंने मुझे यह वुद्धि भी दी है। मैं इसके लिए क्या करूँ ? तू ही वता, इसमें मेरा क्या वश है। पर पागल, मैं सोचकर भी निश्चय नहीं कर पाती कि तेरे इस पागलपन पर हंसूं, या रोऊँ ? खैर, इन बातों को छोड़। तो, विनय मेरे कमरे में खाना नहीं खायेगा ?'

गोरा—'उसे अवसर मिले, तो अभी दौड़ पड़ेगा। खाने का उसे वड़ा लोभ है। परन्तु मां, मैं उसे नहीं जाने दूँगा। वह ब्राह्मण का लडका है दो मिठाइयां देकर भुलावा देने से काम न चलेगा। उसे वहुत त्याग करना पड़ेगा, प्रवृत्तियों को सम्हालना होगा, तभी ब्राह्मण के गौरव की रक्षा कर सकेगा। मां, मैं तुम्हारे पांव पड़ता हूं, तुम इसका बुरा न मानना।'

आनन्दमयी—'भला, मैं क्यों वुरा मानूँगी ? अरे, तू यह कह क्या रहा है ? परन्तु मैं तुझे इतना वताए देती हूं कि तू जो कुछ कह रहा है, उसके सम्बन्ध में तुझे पता नहीं है। मुझे वहुत कष्ट होता है कि मैंने तुझे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया। परन्तु, खैर—चाहे जो हो तू जिसे धर्म कहता है, मैं उसे मानकर नहीं चल सकती तू मेरे चौके में, मेरे हाथ की वनी हुई रसोई न खाये तो न सही—परन्तु मैं तुझे अपनी आंखों के सामने तो रख सकूँगी, मेरे लिए यही वहुत है।' फिर विनय से बोलीं—'वेटा विनय ! तुम उदास न होना, तुम्हारा हृदय कोमल है। तुम सोचते होगे कि गोरा की वातों से मुझे इतना दुःख मिला, परन्तु ऐसी कोई वात नहीं है। किसी और दिन मैं तुम्हें निमन्त्रण देकर, किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथ से रसोई वनवाकर खिलाऊँगी, परन्तु हां, मैं यह सवको वताए देती हूं कि मैं तो लछमियां के हाथ का ही पानी पीऊँगी।'

गोरा की मां नीचे चली गई। विनय कुछ देर मौन खड़ा रहा। फिर वह धीरे-से बोला—'गोरा, यह तो मुझे ज्यादती जान पड़ी।'

गोरा—'ज्यादती किसकी ?

विनय—'तुम्हारी ?'

गोरा—'न भाई, रत्ती भर भी नहीं। जहां जिसकी सीमा है मैं उसे वहीं रख कर चलना चाहता हूं। किसी प्रकार सुई की नोक के बराबर भी भूमि छोड़ देने से, फिर कुछ भी शेष नहीं रहता।'

विनय—'परन्तु मां की बात दूसरी है।'

गोरा—'मा का क्या महत्व है, यह मैं भली प्रकार जानता हूं। मेरी मां की भांति कितने ही लोगों की मां हैं। परन्तु यदि मैं आचार मानना छोड़ दूं, तो सम्भवतः एक दिन मां को भी छोड़ बैठूंगा। देखो विनय, तुम एक बात स्मरण रक्खो—हृदय एक उत्तम वस्तु है, परन्तु वह सर्वोत्तम नहीं है।'

विनय कुछ सोच कर बोला—गोरा! देखो, आज मां की बातें सुनकर मेरे हृदय में कुछ उथल-पुथल सी हो रही है। जान पड़ता है—मां के मन में कोई ऐसी बात है, जिसे वे किसी कारणवश हमें समझा नहीं पातीं और इसीलिए उन्हें इतना कष्ट हो रहा है।'

गोरा ने अधीर होते हुए कहा—'अरे विनय, इन कल्पनाओं में मत पड़ो इनसे कष्ट के अतिरिक्त कुछ लाभ न होगा।'

विनय—'तुम में यही एक बड़ा दोष है कि तुम किसी बात को भली प्रकार देखे बिना, उसे कल्पना कहकर उड़ा देते हो। मैं तुम्हें बताता हूं कि मैंने कई बार अनुभव किया है कि मां किसी विशेष चिंता में डूबी रहती हैं। किसी बात को वे ठीक से मिला नहीं पातीं। इसलिए उनको गृहस्थी भी उन्हें दुःख पहुंचाती है। परन्तु गोरा, तुम उनकी बातों को कभी कान लगाकर भी सुनो।'

गोरा—'कान लगाकर और ध्यान देकर जो सुना जा सकता है, उसे मैं सुन लेता हूं। उससे अधिक सुनने जाने की सम्भावना है। अतः मैं वह चेष्टा ही

जिस बात को मत की दृष्टि से एक बार सुन लिया है, उसे जब किसी व्यक्ति पर प्रयुक्त किया जाता है, तो वह निश्चित विचार टिकता नहीं है—कम से कम विनय का तो नहीं टिकता, क्योंकि उसके हृदय की अन्तः वृत्ति अत्यन्त प्रबल है। यही कारण है कि वह तर्क के समय एक मत को उच्च स्वीकार कर लेता है परन्तु व्यवहार के समय मनुष्य को उससे अधिक मानकर नहीं रह सकता। गोरा द्वारा प्रचारित जिन मतों को विनय ने मान लिया था, कितना अंश मत के कारण है—इसे कहना कठिन है।

वर्षा रितु की संध्या में, कीचड़ से बचता हुआ जब वह धीरे-धीरे अपने घर को लौटा, तो उसके हृदय में मत और मनुष्य के प्रति एक भीषण द्वन्द्व मचा हुआ था। वर्तमान समय के अनेकों गुप्त एवं प्रकट आघातों से बचने के लिए, समाज को अपनी रक्षा के निमित्त खानपान, छूआछूत सभी बातों के प्रति विशेष सतर्क रहना पड़ेगा—इस मत को उसने गोरा के मुँह से सुनकर सहज ही मान लिया था। विरोधी विचार वालों के साथ, इस सम्बन्ध में उसने अनेकों तीक्ष्ण तर्क किये थे। उसने कहा था, जब शत्रु ने किले पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया हो, उस समय प्रत्येक द्वार पर तथा छिद्र को हम प्राण-पण से बचाने की चेष्टा करें, तो इसे उदारता का भाव नहीं माना जायेगा।'

परन्तु आज आनन्दमयी के कमरे में भोजन करने से उसे गोरा ने रोका, तो उसके हृदय में भीतर ही भीतर एक वेदना का अनुभव होने लगा।

विनय के पिता नहीं थे। मां भी उसे बचपन में ही छोड़ गई थी। चाचा गांव में रहते हैं और बचपन से ही कलकत्ते में अकेला रहकर पढ़ा-लिखा तथा बड़ा हुआ है। गोरा के साथ मित्रता होने पर जिस दिन उसने आनन्दमयी को देखा, तभी से यह उन्हें माता के समान मानता चला आया है। उसके घर कई बार उसने छीना-झपटी कर

खाना खाया है। या भोजन के सम्बन्ध में आनन्दमयी ने गोरा के साथ पक्षपात किया है, यह लांछन लगाकर उसने कई बार बनावटी ईर्ष्या भी प्रकट की है। कभी दो-चार दिन विनय के न आने पर, आनन्दमयी कितनी उदास होकर उसकी प्रतीक्षा करती थीं, इन बातों को भी वह भली-भाँति जानता था। आज वही विनय सामाजिक घृणा के कारण आनन्द-मयी के कमरे में बैठकर न खाये—इसे आनन्दमयी तथा विनय कैसे सहन कर सकते हैं।

'अब मा किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथों रसोई बनाकर मुझे खिलायेंगी—अपने हाथों से कभी न खिलायेंगी'—यह मर्मभेदी बात उन्होने कितने हँसकर कह दी, इस को सोचता हुआ विनय अपने मकान पर जा पहुँचा।

खाली मकान मे अन्धेरा छाया हुआ था। चारों ओर कागज बिखरे पड़े थे। दियासलाई जलाकर उसने लैम्प जलाया। उस पर नौकर के हाथ के बहुत से दाग पड़े हुए थे। कमरे मे पहुँचकर, जैसे उसका दम घुटने लगा। मनुष्य के संग और स्नेह के अभाव ने मानो, आज उसके हृदय को दबा दिया। देशोद्धार तथा समाज-रक्षा इन कर्तव्यों को वह किसी भी प्रकार स्पष्ट एवं सत्य न बना सका। इन सबकी अपेक्षा अधिक सत्य तो वह अनजान' पक्षी था, जो एक दिन सावन के उज्ज्वल प्रभात मे, पिंजड़े के पास आकर, फिर उससे दूर चला गया। परन्तु वह उस अनजान पक्षी की बात को, किसी भी प्रकार अपने हृदय पर असर नही डालने देगा। अतः वह मन को सहारा देने के लिए आनन्दमयी के जिस कमरे से गोरा ने उसे लौटा दिया था, उसी कमरे का चित्र अपने हृदय मे अंकित करने लगा।

वह सोचने लगा—नक्काशीदार सफेद पत्थर का फर्श चमचमा रहा होगा। एक ओर चौकी पर हंस के पंख के समान श्वेत एवं कोमल बिछौना बिछा होगा। बिछौने के समीप ही छोटी-सी स्टूल पर रेंडी के तेल का दीपक जल रहा होगा। मा रंगीन सूत लेकर, [illegible] के पास बैठी झुककर चादर बुन रही होगी। लछमि



अपनी उल्टी-सीधी भाषा में अनर्गल वार्तालाप कर रही होगी। माँ उसकी बातों को अधिकांश अनसुनी कर देती होंगी। माँ को जब कोई मानसिक कष्ट होता होगा, तभी वे कोई-न-कोई सिलाई या कसीदे का काम लेकर बैठ जाती होंगी। उनके कार्य रत चेहरे पर विनय ने मन-ही-मन अपनी दृष्टि जमाली। वह मन-ही-मन बोल उठा--'इस स्नेहपूर्ण मुख की कान्ति मेरे मन के विक्षेप से मेरी रक्षा करे। वह मुख ही मेरे लिए मातृभूमि की प्रतिमा बन जाए। मुझे कर्तव्य की प्रेरणा दे तथा उसमें दृढ़ बनाये।'

उसने मन-ही-मन एक बार 'माँ' कहकर पुकारा, फिर बोला—'मां, तुम्हारा यह अन्न मेरे लिए अमृत नहीं है, इसे मैं किसी भी शास्त्र के प्रमाण से स्वीकार करने को तैयार नहीं हूं।'

कमरा निस्तब्ध था केवल घड़ी की टिक्-टिक् की आवाज आ रही थी। वहां ठहरना विनय को असह्य हो उठा। लैम्प के पास ही दीवाल पर, एक छिपकली किसी पतंगे को पकड़ने की घात लगाये थी। उसकी ओर देखता हुआ, विनय उठकर खड़ा हो गया। फिर हाथ में छाता लेकर बाहर निकल पड़ा।

उसके मन में कोई निश्चय नहीं था कि उसे कहां जाकर क्या करना है? सम्भवत: आनन्दमयी के पास ही लौट जाने की, उसकी इच्छा हो रही थी परन्तु फिर मन में विचार उठा—'आज रविवार है। ब्राह्म-समाज में बाबू केशवचन्द्रसेन का व्याख्यान होगा, उसे सुनना चाहिये।' यह विचार आते ही वह सब संकल्प-विकल्पों को त्याग, तेजी के साथ उधर ही चल पड़ा। वह यह अनुभव कर रहा था कि व्याख्यान अब समाप्त हो चुका होगा, तो भी वह अपने संकल्प से विचलित नहीं हुआ।

गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर उसने देखा कि उपासक लोग उपासना इत्यादि समाप्त कर, मंदिर से बाहर निकल रहे हैं। वह छाता लगाकर मार्ग में एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय परेशबाबू शान्त

और प्रसन्न मुख लिए बाहर निकले। उनके साथ चार-पांच व्यक्ति और थे। उनमें से एक युवक के मुख पर विनय की दृष्टि, गैस के प्रकाश में क्षण भर को जा पड़ी। उसके बाद गाडी के पहिये की आवाज सुनाई दी। फिर पल भर मे ही वह दृश्य अन्धकार के महासमुद्र में पानी के बुदबुदे की भांति विलीन हो गया।

विनय ने अंग्रेजी के बहुत से उपन्यास पढ़े थे, परन्तु भद्र बंगाली परिवार मे जो उसने जन्म लिया था, उसका संस्कार कहां जाता? 'इस प्रकार मन मे आकर्षण लेकर किसी स्त्री को देखने की चेष्टा करना उस स्त्री के लिए कितना अपमानजनक और निन्दनीय होता है।'

इस विचार को विनय किसी भी तर्क से अपने हृदय से नहीं निकाल पाया। अतः विनय का मन प्रसन्नता के साथ ही, अत्यन्त ग्लानी से भर गया। उसे ध्यान आया, जैसे उसका पतन हो गया। गोरा के साथ यद्यपि वह तर्क कर आया है, परन्तु जहाँ सामाजिक अधिकार न हो, वहाँ किसी नारी की ओर प्रेम की दृष्टि से देखना उसे पुरातन जीवन के संस्कार में जैसे खटकने लगा।

उस दिन फिर गोरा के घर विनय का जाना नहीं हुआ। अनेकों प्रकार के विचार करता हुआ, वह अपने घर लौट आया। दूसरे दिन तीसरे पहर, जब वह घूमते-घूमते गोरा के घर पहुँचा, उस समय बरसात समाप्त होकर सन्ध्या का अन्धकार घना हो चुका था। गोरा उस समय बत्ती जलाए, लिखने में व्यस्त था।

कागज की दृष्टि हटाये बिना ही गोरा ने कहा—'विनय, वायु किस ओर से बह रही है?'

विनय उसकी बात पर ध्यान न देता हुआ बोला—'गोरा, मैं तुमसे एक बात पूछना हूँ। क्या भारतवर्ष तुम्हारे समीप खूब [illegible] स्पष्ट है? तुम उसे दिन रात याद रखते हो, परन्तु मैं पूछता हूँ किस प्रकार याद रखते होगे?'

गोरा ने लिखना बन्द कर दिया। वह विनय के [illegible] कुछ देर तक तीक्ष्ण दृष्टि गड़ाये रहा। फिर कलम [illegible]

पीठ टेक कर बोला—'जिस प्रकार जहाज के समुद्र में चल देने पर, कप्तान आहार, विहार, काम तथा विश्राम के समय भी समुद्र पार के बन्दरगाह को अपने मन में रखता है, उसी प्रकार मैं भी भारतवर्ष को याद रखता हूँ।'

विनय–'तुम्हारा भारतवर्ष है कहां ?'

गोरा छाती पर हाथ रखते हुए बोला—'इस स्थान पर, जहां कम्पास दिन-रात अपना काँटा घुमाए हुए है, वहीं है। तुम्हारे मार्शमैन साहब की हिस्ट्री आफ इण्डिया' में नहीं।'

विनय—'तुम्हारे कम्पास का काँटा जिस ओर है, उस ओर भी कुछ है क्या ?'

गोरा उत्तेजित होता हुआ बोला—'क्यों नहीं ? मैं मार्ग भूल सकता हूँ, डूब कर मर सकता हूं, परन्तु मेरा वह लक्ष्य का बन्दरगाह ज्यों का त्यों है। वही मेरा पूर्णस्वरूप भारतवर्ष है। जो भारतवर्ष धन से पूर्ण, ज्ञान से पूर्ण तथा धर्म से पूर्ण है, वह कहीं भी नहीं है। चारों ओर केवल मिथ्या आडम्बर है। यही तुम्हारा कलकत्ता शहर, यह ऑफिस, यह अदालत, यही ईंट और काठ के बने हुए बुदबुदे। छि: !'

गोरा यह कहकर विनय के मुख की ओर कुछ देर तक एकटक देखता रहा। विनय कोई उत्तर न दे, सोचने लगा। गोरा बोला—'यहीं, जहां हम पढ़ते-सुनते हैं, नौकरी की आशा में घूमते हैं, भूत की भाँति परिश्रम करके हम क्या कर रहे हैं, इसका कुछ भी ठिकाना नहीं। इस मायावी के मिथ्या भारतवर्ष को हमने सत्य समझ रक्खा है। इसी कारण पच्चीस करोड़ मनुष्य झूठी प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा मानकर, मिथ्या कर्म को कर्म मानकर दिन-रात विभ्रान्त हुए से घूमते रहते हैं। इसी मरीचिका के भीतर से, क्या हम लोग किसी प्रकार की चेष्टा प्राप्त कर सकेंगे ? इसलिए हम प्रतिदिन सूख-सूख कर मर रहे हैं। यह एक सच्चा भारतवर्ष—परिपूर्ण भारतवर्ष है। उस स्थान पर स्थिर न होने से हम लोग क्या बुद्धि और क्या हृदय में वास्तविक प्राणरस को नहीं खींच

सकते ? इसलिए मैं कहता हूँ कि सब कुछ भूलकर पुस्तकों की उपाधियों का मोह, उच्चवृत्ति का प्रलोभन सबको फेंककर, हमें उसी बन्दरगाह की ओर जहाज को ले जाना होगा। डूबना होगा तो सब डूब जायेंगे, मरना होगा तो मर जायेंगे। भारतवर्ष की सच्ची मूर्ति, पूर्ण मूर्ति को मैं यों ही कभी नहीं भूल सकता।

विनय—'क्या ये सब बातें केवल आवेश की नहीं हैं ? क्या यह तुम सत्य कह रहे हो ?'

गोरा बादल की भांति गरजता हुआ बोला—'मैं सत्य कह रहा हूँ।'

विनय—'परन्तु जो लोग तुम्हारी तरह नहीं देख पाते ?'

गोरा ने मुट्ठी बांधते हुए कहा—'उन्हें दिखाना होगा। सत्य की स्पष्ट मूर्ति देखे बिना लोग किसी के सम्मुख आत्म-समर्पण नहीं करेंगे। भारतवर्ष की सर्वाङ्गीण मूर्ति को सबके सम्मुख उपस्थित कर दो। तभी लोग पागल होंगे। तब हमें द्वार-द्वार चन्दा मांगने के लिए नहीं दौड़ना होगा। प्राण देने के लिए सभी की उत्सुकता बढ़ जायेगी।'

विनय—'तब या तो मुझे संसार के अन्य दस आदमियों की तरह बहते हुए चले जाने दो, अन्यथा भारत की वह मूर्ति दिखाओ।'

गोरा—'उसके लिए पहले साधना करो। यदि मन में विश्वास रहेगा, तो उस कठोर साधना में भी सुख पाओगे। हमारे शौकीन पेट्रियट (देशभक्त) लोगों में सच्चा विश्वास नहीं है तभी वे अपने अथवा किसी अन्य के समक्ष कुछ जोर से दावा नहीं कर सकते। यदि कभी स्वयं कुबेर ही उन्हें वर देने आ जायें, तो भी वे लोग लाट साहब के चपरासी की चमकती हुई चपरास से अधिक, शायद कुछ नहीं माग सकेंगे। उसमें आत्म-विश्वास नहीं है, इसीलिए भरोसा भी नहीं है।'

विनय—'देखो गोरा, सबका स्वभाव एक-सा नहीं होता। तुमने अपने हृदय के भीतर अपना विश्वास पाया है। अतः तुम उसे अपने ही बल पर खड़ा भी रख सकते हो, परन्तु इसी कारण दूसरे —— ठीक से नहीं समझ सकते। मैं कहता हूँ, तुम मुझे-चाहे [illegible]

लगा दो, दिन-रात काम कराओ। अन्यथा लगता है, जब तक तुम्हारे पास रहकर जो वस्तु पाता हूँ, उसे तुमसे दूर चले जाने पर न पा सकूँगा, जिससे मैं उसे ग्रहण कर जीवित रह सकूँ।'

गोरा—'काम की बात कहते हो। इस समय उन लोगों का काम एकमात्र वही है जो कुछ अपने देश का है। उसी पर संकोचहीन, संशयहीन, सम्पूर्ण श्रद्धा को प्रकट कर देशवासियों के हृदय में उस श्रद्धा का संचार कर देना चाहिये। देश के सम्बन्ध में लज्जा करते हुए, हम लोगों ने अपने हृदय को दासता के विष द्वारा दुर्बल बना दिया है। यदि हम लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति अपने उदाहरण से उसका प्रतिकार करे, तो हमें कार्य के लिए क्षेत्र मिल जायेगा। अभी हम जो कार्य करना चाहते हैं वह केवल इतिहास की स्कूली किताब के द्वारा पराये काम की नकल बनकर रह जाती है। उस झूठे काम में क्या हम कभी सच्चे भाव से अपने सम्पूर्ण हृदय को लगा सकेंगे ? ऐसा करने से तो हम अपने को केवल हीन ही बना डालेंगे।'

इसी समय हाथ में हुक्का लिए महिम बाबू ने मन्द गति एवं आलस्य-भाव से उस कमरे में प्रवेश किया। प्रतिदिन ऑफिस से लौटने के पश्चात्, जलपान का आवश्यक कार्य समाप्त कर, एक पान मुँह में रख कर तथा पाँच-छः पान पानदान में रखकर, सड़क के किनारे बैठे हुए तमाखू पीना उनका इस समय का कार्य है। कुछ देर बाद, जब मुहल्ले के इष्ट-मित्र उनके पास आ जुड़ेंगे, तब सदर दरवाजे के पास वाली बैठक में महफिल-सी लग जायेगी।'

महिम के कमरे में प्रविष्ट होते ही, गोरा कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। महिम ने हुक्के में दम लगाते हुए कहा—'तुम भारत का उद्धार करने में लगे हो, पहले अपना तो उद्धार कर लो।'

गोरा महिम के मुँह की ओर देखता रहा। महिम ने फिर कहा—'हमारे दफ्तर में जो नया बड़ा साहब आया है, उसकी शक्ल बिलकुल शिकारी कुत्ते जैसी है। वह बहुत पाजी है। बाबू लोगों को 'बेबून' (एक जाति का बन्दर) कहता है। किसी की माँ मर जाने पर

छुट्टी भी नहीं देता। कहता है यह झूठ है। किसी बंगाली बाबू को महीने भर पूरा वेतन नहीं मिलता। छोटी-छोटी बातों पर जुर्माना करके पैसे काट लेता है। एक अखबार में उसकी शिकायत की चिट्ठी छपी थी। वह कहता है कि यह मेरा ही काम है। उसका कहना बिलकुल गलत भी नहीं है। अब, जब तक मैं अपने नाम से ही उस चिट्ठी का एक कड़ा प्रतिवाद लिखकर न छपवा दूँ, तब तक मुझे टिकने न देगा। तुम दोनों तो विश्वविद्यालय रूपी समुद्र को मथने से निकले हुए दो रत्न हो। अतः तुम्हें एक चिट्ठी मन लगाकर, लिख देनी होगी। उसमें जोड़ना होगा—'even-handed-justice, never-failing-generousity, king courteousness आदि आदि।'

गोरा चुप रहा। विनय हँसकर बोला—'दादा, इतनी झूठी बातें एक साँस में चलायेंगे ?'

महिम—'सुनो, शठे 'शाठ्यं समाचरेत्' मैं बहुत दिन उन लोगों के सम्पर्क में रहा हूँ। मुझसे कुछ छिपा नहीं है। झूठी बातें ऐसी जमा सकते हैं कि उसके लिये उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। आवश्यकता पड़ने पर, वे झूठ बोलने में भी नहीं हिचकते। यदि एक झूठ बोले तो सभी सियारों की भाँति उसके स्वर में स्वर मिला उठते हैं। वे हम लोगों की भाँति एक दूसरे को पकड़वाकर, वाहवाही लूटना नहीं चाहते। निश्चय जानो कि कोई पकड़वा न सके, तो उन्हे ठगने से पाप भी नहीं लगेगा।'

इतना कहकर महिम ठहाका मार कर हँसने लगे। विनय भी हँसे बिना न रहा।

महिम बोले—'तुम उनके मुँह पर सच्ची बात कह कर उन्हें चौंकाना चाहते हो। ईश्वर यदि तुम्हे बुद्धि न देंगे तो देश की ऐसी दुर्दशा क्यो होगी ? यह मानना ही पड़ेगा कि जिससे शरीर में शक्ति है, उसकी चोरी को बहादुरी कहने की चेष्टा कर दिखाओ, तो वह लज्जा से अपना सिर नहीं झुकाता, इसके विपरीत वह अपने सेंध लगाने के औजारों को उठाकर, बड़े सच्चरित्र व्यक्ति की भाँति, मारने के लिये

दौड़ता है। कहो, सत्य है कि नहीं ?'

विनय—'सत्य तो है ही।'

महिम—'इससे अच्छा उपाय यह है कि तुम ऐसे धूर्त व्यक्ति से, उसको पूर्ण रूप से सेवा-सुश्रूषा करते हुए यह कहो कि हे परम हंस महात्माजी ! आप कृपा करके अपनी झोली को थोड़ा-सा झाड़ दीजिए,—मैं उसकी धूल पाकर कृतार्थ हो जाऊंगा; तो उस स्थिति में तुम्हारे घर के माल का कम-से-कम एक हिस्सा तो लौटाकर आ ही सकता है। इसमें शान्ति-भङ्ग होने का भी कोई खटका नहीं रहता। यदि विचार कर देखो, तो यही वास्तविक देश-भक्ति है। परन्तु मेरे भाई गोरा इससे चिढ़ते हैं। ये जव से कट्टर हिंदू वने, तव से मुझे भैया कह कर खूब मानने लगे हैं। यद्यपि इनके सामने मेरी ये वातें ठीक वड़े भाई जैसी नहीं हुईं परन्तु भाई, मैं क्या करूं ? झूठी वात के विषय में भी तो सच्ची वात कहनी ही पड़ेगी। अच्छा विनय, मुझे उस लेख की आवश्यकता है। थोड़ा ठहरो, मैंने उसे नोट कर लिया है। उस कागज को ले आऊं।'

इतना कहकर महिम तमाखू पीते हुए वहाँ से चले गये।

गोरा ने विनय से कहा—'विनय, तुम वड़े भाई के कमरे में जाकर उन्हें रोके रक्खो। तव तक मैं अपना यह लेख लिख डालूं।'

५

'अजी, सुन रहे हो ? डरो मत, मैं तुम्हारी पूजा की कोठरी में नहीं आऊंगी। संध्या-पूजन समाप्त करने के वाद, तुम जरा मेरे कमरे में आना। मैं जानती हूँ कि दो नये सन्यासियों के आ जाने से कुछ दिन तुमसे भेंट न हो सकेगी। इसीलिए कहती हूँ कि भूल मत करना। एक वार आना अवश्य।' यह कहकर आनन्दमयी गृहस्थी के काम में लग गईं।

कृष्णदयाल वावू सांवले रंग और दोहरे शरीर के हैं। माथा विशेष लम्वा नहीं। चेहरे पर दो वड़े नेत्र ही ऐसे हैं, जिन पर दृष्टि

ारवश जा पड़ती है। शेष चेहरा दाढ़ी-मूँछ से ढक रहा है। बाल कुछ-कुछ सफेद हो चले हैं। वे गेरुआ रंग का रेशमी वस्त्र पहिनते और पीतल का कमण्डल लिए रहते हैं। पैरों में खड़ाऊँ रहती हैं। सिर के सामने के बाल कुछ गिर गये हैं, शेष में गांठ बांधकर उन्हें जटा-जूट सा बना दिया है।

एक समय था, जब ये पश्चिम में रहते थे और पल्टन में अँग्रेजो की सोहबत में रहकर मद्य-माँस का खूब सेवन करते थे। उस समय देश के पुरोहित, पण्डे, वैष्णव तथा सन्यासियों का अपमान करने में ही ये अपना पौरुष समझते थे। परन्तु आजकल हिन्दू धर्म का कोई ऐसा चिन्ह नही है जो इन्होने धारण न कर रक्खा हो। अब किसी नये सन्यासी को देखते ही, उसके पास किसी नई साधना का मार्ग सीखने जा बैठते हैं। समय का फेर जो ठहरा! मुक्ति के निगूढ़ मार्ग तथा योग की निगूढ़ प्रणाली को प्राप्त करने के लिए हर समय लालायित रहते हैं। कुछ समय से तान्त्रिक साधना का उपदेश ले रहे थे कि इसी समय उन्हे एक नये बौद्ध सन्यासी का पता मिल गया, तभी से उनके पास जाने को मन चचल किए रहते हैं।

कृष्णदयाल बाबू की पहली स्त्री एक पुत्र को जन्म देने के बाद ही स्वर्गवासिनी हो गई। उस समय ये तेईस वर्ष के थे। मां की मृत्यु का कारण लड़के को मानकर इन्होने उसे, क्रुद्ध हो, अपनी ससुराल मे छोड़ दिया तथा स्वयं वैराग्य की ओर बढ़ गए थे। परन्तु उसके छः महीने बाद ही वह नशा उतर जाने पर, काशीवासी सार्वभौम महाशय की पौत्री, पितृ-हीना आनन्दमयी के साथ अपना दूसरा विवाह कर बैठे थे।

पश्चिम मे जाकर कृष्णदयाल ने नौकरी की तथा अनेक उपायों द्वारा मालिकों को भी प्रसन्न कर लिया। इसी बीच जब सार्वभौम की मृत्यु हो गई, तब वे अपनी पत्नी को अपने साथ लेकर ही रहने लगे।

इन्हीं दिनों सिपाही विद्रोह हुआ। कृष्णदयाल ने अ

से एकाध उच्च पदाधिकारी अंग्रेज की जान बचाई। उसके बदले इन्हें यश तथा जागीरें मिलीं। गदर के कुछ दिनों बाद वे नौकरी छो बालक गोरा को साथ ले, कुछ दिनों काशी में रहे। गोरा जब प वर्ष का हुआ, तब वे काशी से कलकत्ते चले आये। वहाँ अपनी पह पत्नी के पुत्र (बड़े लड़के) महिम को भी उन्होंने ननिहाल से अपने प बुला लिया। महिम जब पढ़ लिखकर योग्य हुआ, तो अपने पिता मित्रों के सम्बन्ध से उसे सरकारी खजाने में नौकरी मिल गई। तभी वह अपना कार्य योग्यतापूर्वक कर रहा है।

गोरा बचपन से ही मुहल्ले तथा स्कूल के लड़कों की सरद करता था। वह हर समय अध्यापकों की नाक में दम किए रहता। बड़ा होते ही, वह छात्र संघ में 'स्वतन्त्रता खोकर कौन जीना चाहता तथा जहाँ बीस करोड़ मनुष्य रहें, वहाँ क्या नहीं किया जा सकता, आदि भावों से पूर्ण कविताएँ सुनाकर तथा अंग्रेजी में जोशीले भाषण दे देकर, नन्हे विद्रोहियों का सरदार बनने लगा। अन्त में जब एक समय उसने छात्र-सभा रूपी अण्डे के खोल को तोड़कर, सयानों के समाज में कल-काकली सुनाना शुरू किया तो कृष्णदयाल बाबू को उससे बड़ा अचरज होने लगा।

गोरा की प्रतिष्ठा बाहर के लोगों में देखते-देखते खूब बढ़ने लगी, परन्तु घर में उसे कोई कुछ नहीं समझता था। महिम उस समय नौकरी करता था। उसने 'पेट्रियट् दादा' तथा 'हरीश मुखर्जी दि सैकिण्ड' आदि व्यंग-वचन कहकर गोरा को दबाने की बड़ी चेष्टा की। कभी-कभी तो उनमें हाथापाई तक की नौबत आ जाती थी। अंग्रेजों के प्रति गोरा के इस विद्वेष को देखकर आनन्दमयी कभी-कभी बहुत चिन्तित हो जाती थीं। वे उसे अनेकों प्रकार से समझाने का प्रयत्न करती थीं, परन्तु फल कुछ नहीं निकलता था। गोरा सदैव ही बाजार अथवा मार्ग में अवसर मिलने पर, किसी अंग्रेज के साथ मार-पीट करने में अपना जीवन सफल समझता था।

अचानक केशवचन्द्र के व्याख्यानों पर रीझकर गोरा ब्राह्मसमाज की ओर विशेष आकर्षित होने लगा। उन्हीं दिनों कृष्णदयाल बाबू अधिक आचारनिष्ठ हो उठे, यहाँ तक कि कभी गोरा उनके कमरे में चला जाता तो वे घबड़ा जाते थे। घर में दो-तीन कमरे उन्होंने अलग कर रक्खे थे और अपने उस स्वतन्त्र भाग के एक द्वार पर उन्होंने 'साधना आश्रम' का बोर्ड लिखकर टांग दिया था।

पिता के इस स्वभाव से गोरा का मन विद्रोही हो उठा। उसने सोचा, यह सब मूर्खता मैं न सह सकूँगा, मेरे लिए यह सब आँख की किरकिरी है। तभी गोरा ने अपने पिता से सब सम्बन्ध विच्छेद कर घर से बाहर चले जाने का विचार किया, परन्तु उस समय आनन्दमयी ने किसी प्रकार उसे समझा-बुझाकर रोक लिया।

पिता के पास जो विद्वान् ब्राह्मण आते थे, गोरा समय मिलते ही उनसे विवाद करने लगता था। उस विवाद को हाथपाई कहना ही अधिक उचित होगा। उन ब्राह्मण पण्डितो मे अधिकांश ऐसे थे, जिनमें विद्वता तो बहुत कम थी, परन्तु धन का लोभ अधिक था। विवाद में गोरा से उनका वश न चलता था, अतः वे उससे वैसे ही भयभीत रहते थे, जैसे कोई बाघ से डरे। उनमे केवल हरिश्चन्द्र विद्यावागीश ही ऐसे निकले, जिनके लिए गोरा के हृदय मे श्रद्धा उत्पन्न हुई।

कृष्णदयाल बाबू ने विद्यावागीशजी को वेदान्त चर्चा के लिए बुला रक्खा था। अपने उद्धत स्वाभावानुसार जब गोरा उनसे विवाद करने पहिले २ पहुँचा, तभी उसे यह आभास हो गया कि उनसे वाग्युद्ध करना कठिन है। वे केवल विद्वान् ही नहीं थे, अपितु उनके मन में अद्भुत उदारता भी विद्यमान थी। गोरा को यह कल्पना भी नहीं थी कि केवल संस्कृत पर व्यक्ति ऐसी तीक्ष्ण एवं प्रशस्त बुद्धि वाला भी हो सकता है। विद्यावागीश जी के चरित्र में जो क्षमा एवं शान्ति से पूर्ण अविचल धैर्य की गम्भीरता थी, उसके समक्ष अपने को अशान्त रखना गोरा के लिए सम्भव न था। गोरा किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ता

था, अतः दर्शनशास्त्र की तह तक पहुँचने के लिए वह उसकी चिन्ता में डूब गया।

दैवयोग से उन्हीं दिनों किसी अँग्रेज पादरी ने हिन्दूशास्त्र एवं समाज पर लाँछन लगाते हुए एक समाचार-पत्र में लेख लिख कर भारत-वासियों को तर्क-युद्ध के लिये ललकारा। गोरा उसे पढ़कर आग-बबूला हो गया। यद्यपि अब तक वह स्वयं समय-समय पर शास्त्र एवं लोकाचारों की निन्दा किया करता था, परन्तु अब एक विदेशी द्वारा हिन्दू-समाज की अवज्ञा करना उसे सहन न हुआ।

गोरा ने भी समाचार-पत्रों में लेख लिखकर उस तर्क-युद्ध में भाग लेना आरम्भ कर दिया। विपक्षी ने हिन्दू-समाज पर जितने दोष लगाये थे, उनमें से किसी को गोरा ने स्वीकार न किया। दोनों ओर से अनेक उत्तर-प्रत्युत्तर छपे अन्त में, सम्पादक को भी यह कहना पड़ा कि अब इस सम्बन्ध में हम कोई तर्क नहीं छापेंगे।

परन्तु गोरा को धुन लग गई थी। अतः उसने 'हिन्दुत्व' नामक एक पुस्तक अँग्रेजी में लिखनी आरम्भ कर दी। उस पुस्तक में उसने अपनी शक्ति भर हिन्दूधर्म तथा समाज की श्रेष्टता के प्रमाण संग्रहीत किये थे।

इस प्रकार पादरी के साथ विवाद कर धीरे-धीरे गोरा ने अपनी वकालत के सम्मुख, स्वयं ही अपनी हार मान ली। वह कहने लगा— 'हम अपने देश को विदेशी की अदालत में अभियुक्त की भांति खड़ा कर उसकी मर्जी के अनुसार विचार नहीं करने देंगे। हम उसका विलायती आदर्शों से मेलकर लज्जित न होंगे और न इसमें किसी गौरव का ही अनुभव करेंगे। हमने जिस देश में जन्म लिया है, उस देश के आचार विश्वास, शास्त्र तथा समाज के लिये, अपने तथा दूसरों के निकट तनिक भी लज्जित न होंगे। देश का जो कुछ अच्छा अथवा बुरा है उस सब को शक्ति एवं गर्व पूर्वक शिरोधार्य कर, उसे अपमान से बचायेंगे।'

यह निश्चय कर गोरा नित्य गंगा-स्नान तथा सन्ध्या-पूजन करने लगा। उसने चोटी रख ली और छुआछात का विचार भी आरम्भ कर दिया। अब वह नित्य सवेरे उठकर माता-पिता के पैर छूता है तथा जिस महिम को वह बात-बात में अंग्रेजी में 'कैड' तथा 'स्नाब' कहता था, उसी को देखकर उठ खड़ा होता है तथा प्रणाम करता है इस सहसा उत्पन्न होने वाली भक्ति को देखकर, महिम जो मुंह में आता है कहता है, परन्तु गोरा उसे कोई जवाब नहीं देता।

गोरा ने अपने उपदेश तथा आचरण से जैसे देशवासियों के एक दल को जगा दिया। वे एक प्रकार की खींचातानी से मुक्ति पा गये। वे भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर कह उठे—हम अच्छे हैं या बुरे, सभ्य हैं अथवा असभ्य, परन्तु इसके लिए किसी से जवाबदेही नहीं करना चाहते। हम भली भांति यह अनुभव कर सकते हैं कि हम हमी हैं।

परन्तु कृष्णदयाल बाबू को, गोरा के इस नवीन परिवर्तन से कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने एक दिन गोरा को अपने पास बुलाकर कहा—'देखो हिन्दूधर्म बहुत गहन है। जिसे ऋषियों ने स्थापित किया है उसकी गहराई तक पहुँचना प्रत्येक का काम नहीं है। मेरी सम्मति में बिना समझे-बूझे, धर्म के लिए आन्दोलन करना ही उत्तम है। तुम अभी बच्चे हो, केवल अंग्रेजी ही पढ़े हो। पहिले जो तुम ब्राह्म-समाज की ओर झुके, वह तुम्हारे लिए ठीक था। इसीलिए मैं तुम पर नाराज होने की अपेक्षा प्रसन्न हुआ था, परन्तु इस समय तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, वह मुझे तुम्हारे लिए ठीक नहीं जान पड़ता। यह मार्ग तुम्हारे लिए अच्छा न रहेगा।'

गोरा ने उत्तर दिया—'बाबूजी, आप कहते हैं? मैं हिंदू हूं। हिंदूधर्म के गूढ़ मर्म को आज नहीं तो कल समझ लूंगा और यदि कभी न कभी समझ सका, तो चलना तो इसी मार्ग से है। हिन्दू समाज के साथ मेरा जो पूर्व जन्म का सम्बन्ध है, उसे तोड़ नहीं सकता। ब्राह्मण के घर जन्मा हूँ, अत: किसी न किसी जन्म में तो इस

हिन्दू धर्म की चरम सीमा को प्राप्त कर लूँगा। यदि भूल से किसी दूसरी ओर झुक गया, तो फिर भी अन्त में दूने वेग से मुझे इसी ओर तो लौटना पड़ेगा।'

कृष्णदयाल ने मस्तक हिलाते हुए कहा—'परन्तु भैया! केवल हिंदू कह देने से ही हिंदू नहीं हुआ जा सकता। मुसलमान होना सरल है, क्रिश्चियन भी हर कोई हो सकता है, परन्तु हिंदू, बस भाई, यह तो बड़ी कठिन बात है।'

गोरा—'आपका कहना ठीक है, परन्तु मैं जब हिंदू होकर हिंदू के घर जन्मा हूँ, तब तो थोड़ी-थोड़ी साधना कर आगे पहुँच ही जाऊँगा।'

कृष्णदयाल—'बहस करके तो मैं तुम्हें ठीक से नहीं समझा सकता। हां, जो तुम कहते हो वह भी सत्य हो सकता है। जिसका जो कर्मफल है, निर्दिष्ट धर्म है, उसे एक दिन घूम-फिरकर अपने धर्म में आना ही होता है। रोक तो कोई सकता नहीं। फिर ईश्वर की इच्छा में हम कर भी क्या सकते हैं?'

कर्म-फल तथा भगवान की इच्छा, सोऽहंवाद एवं भक्ति-तत्व सभी को कृष्णदयाल पूर्णतः समान भाव से ग्रहण करते हैं, परन्तु इसमें परस्पर किसी प्रकार के समन्वय की भी आवश्यकता है, इसे वे अनुभव नहीं करते।

६

आज बहुत दिन बाद कृष्णदयाल पूजा-पाठ आदि नित्यकर्म तथा स्नान-भोजनादि से छुट्टी पाकर, आनन्दमयी के कमरे में फर्श पर अपने कम्बल का आसन बिछाकर, जैसे अलग से आ बैठे।

आनन्दमयी ने कहा—'अजी, सुनते हो? तुम तो तपस्या में लगे रहते हो, घर की कुछ चिन्ता नहीं है, परन्तु मैं गोरा के लिए हमेशा डरते-डरते अधमरी हुई जाती हूं।'

कृष्ण०—'क्यों, क्या भय है?'

आनन्दमयी—'सो तो मैं ठीक नहीं कह सकती। परन्तु मुझे जान पड़ता है कि गोरा ने जो हिन्दू-आचार पर चलना आरम्भ किया है, यह उसके लिए अच्छा न होगा। मेरा हृदय कहता है कि इस ढङ्ग से चलने पर कभी-न-कभी एक विपत्ति अवश्य आ उपस्थित होगी। मैंने तुमसे तभी कहा था कि उसका जनेऊ मत करो, परन्तु उन दिनों तो तुम हिंदू-धर्म को कुछ मानते ही नहीं थे। तुमने कहा था कि गले में एक डोरा पहिना देने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं। परन्तु डोरा केवल डोरा ही नहीं रहता—'अब उसे कैसे सम्भालोगे, किस प्रकार रोकोगे?'

कृष्ण०—'वाह, शायद सारा दोष मेरा ही है? आरम्भ में तो तुम्हीं ने गलती की। तुमने उसे किसी प्रकार छोड़ना ही नहीं चाहा। उन दिनों मैं भी गँवार था—धर्म कर्म को कुछ जानता ही न था। आज का सा समय होता तो कभी ऐसा काम न करता।'

आनन्द०—तुम चाहे कुछ भी कहो, परन्तु मैं किसी प्रकार नहीं मान सकती कि मैंने वैसा करके कोई अधर्म किया था। तुम्हें स्मरण होगा कि पुत्र-प्राप्ति के लिए मैंने क्या किया? जिसने जो बताया, वही करती रही। कितने ही गण्डे, तावीज और मन्त्र मनाते-मनाते थक गई। तब एक दिन स्वप्न में मैंने क्या देखा कि ठाकुरजी की पूजा के लिए एक डलिया भर कर बेला के फूल लिए बैठी हूँ। फिर देखा कि फूल नहीं रहे, उनके स्थान पर डलिया में एक छोटा-सा गोरा लड़का बैठा है। आह, वह कैसा स्वप्न था, क्या कहूँ? मेरी आँखों मे उस समय आनन्द के आँसू बहने लगे थे। उस समय ज्यों ही उस लड़के को गोद मे उठाने का विचार किया, त्यों ही मेरी आँखें खुल गईं। उस स्वप्न के दस दिन बाद ही मैंने गोरा को पाया। वह तो ठाकुरजी का प्रसाद है। वह क्या है और किसका है, जो किसी को लौटा देती? पूर्व जन्म मे उसे गर्भ मे धारण करके शायद मैंने बहुत कष्ट पाया था, इसीलिए अब वह मुझे माँ कहने आया है। तुम्हीं सोचो कि वह कहाँ से किस प्रकार आया?

उन दिनों चारों ओर मारकाट मच रही थी। हम स्वयं भी अपने प्राण बचाने की फिक्र में थे, कि उसी समय एक दिन आधी रात को एक गर्भवती मेम हमारे घर में आ छिपी। तुम तो उसे भय के मारे अपने घर में रखना ही न चाहते थे। परन्तु मैंने तुमसे छिपाकर एक कोठरी में ठहरा दिया। उसी रात उसने लड़के को जन्म दिया और फिर तभी बेचारी स्वयं भी मर गई। उस माता-पिता से वंचित बालक को, यदि मैं न पालती, तो क्या करती? हमने उसे पादरी को सौंप देना चाहा पर पादरी क्या उसका माँ-बाप था, अथवा उसने उसके प्राण बचाये थे? इस प्रकार मैंने जिस बालक को पाया क्या वह किसी प्रकार के बालक से कम है? तुम कुछ भी क्यों न कहो, परन्तु जिस ईश्वर ने मुझे यह दिया है, वे उसे यदि स्वयं न ले लें, तो अपने प्राण रहते इस बालक को अन्य किसी को न लेने दूँगी।'

कृष्ण०—'यह तो मैं जानता हूँ। तुम गोरा के लिए रहो। मैंने भी तो कोई रुकावट नहीं डाली। परन्तु जनेऊ करके, उसे अपना लड़का बताकर परिचय दिये बिना, समाज में भी तो नहीं रह सकता था। यह लाचारी थी। अब केवल दो बातें विचारणीय हैं। न्याय से मेरी सारी पूँजी और जायदाद महिम को ही मिलनी चाहिए, क्योंकि वही उसका सच्चा उत्तराधिकारी है।'

आनन्द०—'तुम्हारी सम्पत्ति और जायदाद में हिस्सा लेना चाहता ही कौन है? तुमने जो धन इकट्ठा किया है, उसे महिम को दे देना, गोरा उसमें से एक पैसा भी न लेगा। वह मर्द का बालक है। पढ़ा लिखा है, स्वयं परिश्रम करके कमा खायेगा—पराये धन में वह क्यों हिस्सा लेने लगा? वह जीवित रहे, मेरे लिए तो यही बहुत है। मुझे किसी और सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है।'

कृष्ण०—'न, मैं उसे कुछ भी न दूँ, यह न होगा। अपनी जागीर उसे दे दूँगा। किसी समय उसकी आय एक हजार रुपये वार्षिक तक हो सकेगी। चिन्ता है तो केवल यही कि उसके ब्याह का क्या होगा? अब तक मैंने किया सो किया, परन्तु अब हिन्दू धर्मानुसार

का विवाह किसी ब्राह्मण के घर न कर सकूँगा, तुम इसमें चाहे क्रोध क्यों न करो।'

आनन्द०—'अरे, तुम्हारी तरह यह सारी पृथ्वी गंगाजल और र से ही चौका नहीं लगाती। शायद इसीलिए मुझे भी धर्म का ज्ञान ं है। मैं उसका विवाह ब्राह्मण के घर करूँगी और नाराज भी क्यों ँगी ?'

कृष्ण०—'क्या कहा ? तुम तो ब्राह्मण की पुत्री हो !'

आनन्द०—'ब्राह्मण-पुत्री हूँ तो क्या ? ब्राह्मण के आचार का न तो मैंने छोड़ ही रक्खा है। महिम के विवाह के समय लोगों से के ईसाई चाल की बताकर काम बिगाड़ना चाहा था, परन्तु तभी मैं नी खुशी से अलग हो गई। सारी दुनियां मुझे क्रिस्तानी कहती है र न जाने क्या-क्या कहती है, परन्तु मैं उन सबकी बात सुन लेती हूँ। कहती हूँ कि क्रिस्तानी मनुष्य नहीं हैं ? तुम हिन्दू ही यदि ऊँची ति हो और भगवान के अधिक प्रिय हो, तो वही भगवान तुम्हारे तक को भी कभी मुगल और कभी क्रिस्तानी के चरणों पर क्यों काते हैं ?'

कृष्ण०—ये सब बहुत गम्भीर बातें हैं तुम स्त्री जाति उन्हें न मझ सकोगी। परन्तु हमारा समाज एक है, इसे तुम जानती हो अतः सी को मानकर तुम्हें चलना चाहिये।'

आनन्द०—मुझे यह सब समझने से क्या प्रयोजन ? जब मैंने रा को अपना लड़का मान कर पाला-पोसा है तो आचार-विचार का डम्बर करने से समाज रहे अथवा न रहे परन्तु, धर्म अवश्य नहीं हेगा। मैंने धर्म के भय से किसी दिन कुछ छिपाया नहीं, केवल एक ी बात छिपाई है और भय से अधमरी हो रही हूँ। ईश्वर न जाने व क्या करें, इसलिए चाहती हूँ कि गोरा से सब बात खुलासा कह दूँ। फर जो भाग्य में लिखा होगा, वह हो जायगा।'

कृष्णदयाल ने घबराकर कहा—'न, न, मेरे जीवन में यह ा होगा ! गोरा को तो तुम जानती ही हो।

क्या कर बैठे ? उसके बाद समाज में हलचल मच जावेगी, उस समय सरकार भी इस समाचार को पाकर न जाने क्या कर बैठे ? यद्यपि गोरा का पिता लड़ाई में मारा गया और यह भी मैं जानता हूं कि उसकी मां भी मर गई। परन्तु यह सब समाचार हमें तभी मजिस्ट्रेट को दे देना चाहिये था अब इस बात को लेकर कोई गड़बड़ी हुई तो मेरा सारा साधन भजन मिट्टी में मिल जावेगा। तब सिर पर क्या मुसीबत आयेगी, यह भी नहीं कहा जा सकता।'

आनन्दमयी ने कोई उत्तर न दिया, वह चुप बैठी रही। कुछ देर बाद कृष्णदयाल फिर बोले—'मैंने गोरा के विवाह के लिए एक उपाय सोचा है। परेश भट्टाचार्य मेरे साथ पढ़ते थे। स्कूल इन्स्पेक्टरी से पेन्शन लेकर, अब वह कलकत्ते में ही रह रहे हैं। वे कट्टर ब्राह्म-समाजी हैं। सुना है, उनके कई लड़कियाँ हैं। गोरा को यदि उनके घर आने-जाने दिया जाय तो सम्भव है कि उनमें से कोई लड़की उसे पसन्द आ जाये। फिर जैसी ईश्वरेच्छा।'

आनन्द०—'तुम क्या कह रहे हो ? क्या गोरा एक ब्राह्म के घर आये-जायेगा ? वह तो कट्टर हिन्दू है, ब्राह्मों से उसे घोर घृणा है।'

अभी बात पूरी भी न हुई थी कि गोरा मेघ-गर्जन के समान स्वर से 'मां' कहता हुआ वहां आ पहुंचा। कृष्णदयाल को वहां बैठा देख, उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ। आनन्दमयी तुरन्त उठकर गोरा के पास पहुँचीं और अपनी दोनों आंखों से स्नेह बरसाती हुई बोलीं—'क्यों बेटा, क्या चाहिए ?'

'कोई खास बात तो नहीं है। इस समय रहने दो।' कह कर गोरा ने लौटने का उपक्रम किया।

कृष्णदयाल बोले—'गोरा, जरा बैठ जाओ। तुमसे एक बात कहनी है। मेरे एक ब्राह्म मित्र हाल ही में कलकत्ते आये हैं। वे हेदो-तल्ला मुहल्ले में रहते हैं।'

गोरा—'परेश बाबू तो नहीं ?'

कृष्ण०—'तुम उन्हें कैसे जानते हो !'

गोरा—'विनय उनके मकान के पास ही रहता है उसी से समाचार सुना था।'

कृष्ण०—'मेरी इच्छा है कि तुम उनके पास जाकर कुशल-समाचार ले आओ।'

गोरा ने अपने मन में कुछ सोचा, फिर एक साथ बोला, 'अच्छा कल चला जाऊँगा।'

आनन्दमयी को इस उत्तर से कुछ आश्चर्य हुआ।

तभी गोरा फिर कुछ सोचकर बोला—'न, कल तो मैं न जा सकूँगा।'

कृष्ण०—'क्यों ?'

गोरा—'कल मुझे त्रिवेणी जाना है।'

कृष्णदयाल कुछ चकित होकर बोले—'त्रिवेणी।'

गोरा—'जी हां, कल सूर्यग्रहण का स्नान जो है।'

आनन्द०—'गोरा, तेरी बातें बड़ी विचित्र हैं। स्नान करने को कलकत्ते की गङ्गा नहीं है क्या ? त्रिवेणी बिना क्या स्नान ही न होगा ? तू तो देश के सब आदमियों से आगे बढ़ा जाता है !'

गोरा इसका उत्तर दिए बिना ही लौट गया।

गोरा ने त्रिवेणी स्नान को निश्चय किया था, उसका एक मात्र यही कारण था कि वहां अनेक तीर्थयात्री एकत्रित होंगे। वह जहाँ भी तनिक अवसर पाता, वहीं सब सङ्कोच तथा पूर्व संस्कार को बल पूर्वक त्याग कर देश के सर्व साधारण लोगों के समक्ष खड़ा हो, हृदय से यह कहना चाहता था कि 'मैं तुम लोगों का हूँ और तुम मेरे हो।'

७

प्रातः काल उठकर विनय ने देखा कि सुबह का प्रकाश दुधमुँहे बालक की हँसी की भाँति निर्मल होकर खिल उठा है। दो एक श्वेत

बादल बिना प्रयोजन के इधर से उधर आकाश में उड़ रहे हैं।

निर्मल प्रभात के स्मरण में डूबा जिस समय वह पुलकित हो, अपने बरामदे में खड़ा था उसी समय उसने देखा कि परेश बाबू हाथ में छड़ी लिये तथा दूसरे में सतीश का हाथ पकड़े, सड़क पर धीरे चले आ रहे हैं। सतीश ने जैसे ही मुँह उठाकर विनय को ब में खड़ा देखा, तैसे ही वह उसका नाम लेकर चिल्ला उठा। विन झटपट ऊपर से नीचे उतर आया। तभी परेश बाबू ने सतीश को लिये उसके घर में प्रवेश किया।

सतीश ने विनय का हाथ पकड़ते हुए कहा—'विनय बाबू दिन आपने हमारे घर आने को कहा था, परन्तु आये क्यों नहीं ?

विनय सतीश की पीठ पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरता हुआ लगा। परेश बाबू छड़ी को टेबिल के सहारे सावधानी से खड़ा बोले— सुना, उस दिन सतीश यहाँ आया था। आपको बहुत किया। यह इतना बकता है कि इसकी दीदी ने इसे बख्तियार की उपाधि दे दी है।'

विनय बोला—'मैं भी खूब बक सकता हूं। इसी से हम दोनों पटती है। क्यों सतीश बाबू !'

सतीश चुप रहा, परन्तु फिर यह सोचकर कि इस नये आगे कहीं उसका गौरव न घट जाये, बोला—'खूब, ठीक तो है, यार खिलजी का नाम क्या बुरा है ? बख्तियार खिलजी ने तो लड़ी थी ! उसने बंगाल भी जीता था न ?'

विनय हँसकर बोला—'पहिले वह लड़ाई लड़ता था, पर उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिए अब वह केवल लैक्चर और बंगाल को भी जीत लेता है।'

इस प्रकार बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। परेश बहुत कम बातें कीं। वे प्रसन्न और शान्त मुख से बीच-बीच हँस देते थे। दो-एक बातों में बोले भी बहुत कम। विदा हो

उन्होंने कुर्सी से उठकर कहा—'हमारे घर का नम्बर अठहत्तर है। यहां से बराबर दाहिने हाथ की ओर जाकर······।'

सतीश बीच में ही बोल उठा—'ये हमारा घर जानते हैं। उस दिन मेरे साथ घर के द्वार तक भी गये थे।'

कोई कारण तो न था, परन्तु विनय इस बात से मन-ही-मन लज्जित हो उठा। जैसे उनकी चोरी पकड़ ली गई हो।'

वृद्ध बोले—'तब तो आप हमारा घर जानते हैं। अस्तु, फिर कभी आपको······।'

विनय—'उसके लिए आपको कहना न होगा। कलकत्ता जैसा बड़ा शहर होने के कारण ही, अभी तक हम अपरिचित रहे थे।'

विनय परेश बाबू को सड़क तक पहुँचा आया। फिर दरवाजे के पास कुछ देर खड़ा रहा। परेश बाबू छड़ी टेकते हुए धीरे-धीरे चले। सतीश उनके साथ लगातार बातें करता जाता था।

विनय ने मन-ही-मन कहा—'परेश बाबू जैसा वृद्ध मैंने कोई नहीं देखा। जिन्हें देखते ही मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है और चरण छूने को जी करता है। सतीश भी कितना अच्छा और तेज लड़का है। भविष्य में वह योग्य व्यक्ति बनेगा। जैसी बुद्धि है वैसा ही भोला भी है।'

वे वृद्ध और बालक चाहे कितने भी भले क्यों न हों, परन्तु इतनी थोड़ी देर के परिचय से उनके प्रति ऐसी भक्ति और स्नेह का उमड़ना साधारणतः कभी सम्भव न होता, परन्तु विनय का हृदय ऐसी स्थिति में था कि इससे अधिक परिचय की उसने आकांक्षा नहीं की।

तत्पश्चात् विनय मन-ही-मन सोचने लगा—'परेश बाबू के घर जाना ही चाहिये। न जाना शिष्टाचार एवं सभ्यता के विरुद्ध है।'

परन्तु गोरा द्वारा बताया गया, उसके दल का भारतवर्ष कहने लगा, 'खबरदार! तुम्हारा वहां जाना नहीं हो सकता।'

विनय ने हर बार अपने दल के भारतवर्ष की निषेधाज्ञा मानी है—मन में अनेक बार द्विविधा होने पर भी मानी है। परन्तु आज

उसके हृदय में एक प्रकार का विद्रोह दिखाई दिया। उसे अनुभव हुआ भारतवर्ष जैसे केवल निषेध की मूर्ति ही है।

नौकर ने आकर कहा—'भोजन तैयार है।' परन्तु विनय ने अभी तक स्नान भी नहीं किया था। बारह बज चुके थे उसने जोर से सिर हिलाकर कहा—'मैं नहीं खाऊँगा, तुम जाओ।' यह कहकर वह कंधे पर छाता रख, घर से बाहर निकल गया।

विनय सीधा गोरा के घर गया। वह जानता था कि एम्हर्स्ट स्ट्रीट में एक किराये का मकान लेकर 'हिन्दू हितैषी कार्यालय' स्थापित हुआ है। गोरा प्रतिदिन दोपहर को कार्यालय में जाकर, उसके दल के सम्पूर्ण बंगाल के लोगों को सजग तथा तत्पर रखने के लिए अपने हाथ से पत्र लिखता था। वहीं उसके भक्त उसका उपदेश सुनने आते थे और उसके सहकारी बनकर अपने को धन्य समझते थे।

उस दिन गोरा उस समय उसी कार्यालय में काम करने गया था। विनय एक साथ दौड़कर आनन्दमयी के कमरे में जा पहुँचा। आनन्दमयी उस समय बैठी हुई भोजन कर रही थी तथा लछमियाँ उनके पास बैठी पंखे से हवा कर रही थी।

आनन्दमयी ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'अरे विनय, आज तुझे क्या हो गया है?'

विनय सामने ही बैठ गया और बोला—'माँ, बड़ी भूख लगी है खाने को दो।'

आनन्दमयी चिंतित होकर बोलीं—'तूने तो मुश्किल खड़ी कर दी। रसोई बनाने वाला महाराज तो चला गया। तुम लोग···।'

विनय बोला—'मैं क्या महाराज के हाथ की रसोई खाने आया हूँ? मैं तुम्हारी थाली का प्रसाद खाऊँगा, माँ! लछमियाँ, ला एक गिलास पानी तो दे।'

लछमियाँ जैसे ही पानी लाई, वह उसे एक ही साँस में चढ़ा गया। तब आनन्दमयी ने एक और थाली मँगाकर, उसमें स्नेहपूर्वक अपनी थाली का अन्न रख दिया और विनय, जैसे बहुत दिनों का भूखा

हो बैठकर उसे खाने लगा।

आनन्दमयी के हृदय की एक वेदना, आज जैसे दूर हो गई। उनका प्रसन्न मुख देखकर, विनय की छाती से भी जैसे एक बोझ उतर गया। फिर वे बैठकर तकिये का गिलाफ सीने लगीं। विनय उन्हीं के पैरों के पास कुहनी पर अपना मस्तक रखकर लेट गया तथा सब कुछ भूलकर ठीक पहले दिनों की भाँति प्रसन्न होकर बातें करने लगा।

८

विनय आनन्दमयी के घर से निकलकर मार्ग में जैसे उड़ता चला आ रहा था। उसका जी चाहता था कि जिस बात को लेकर वह कई दिनों तक संकोच से पीड़ित रहा, उसे आज सबके सामने सिर ऊँचा करके कह दे।

जिस समय वह ७८ नम्बर के मकान के दरवाजे के पास पहुँचा, ठीक उसी समय परेशबाबू दूसरी ओर से वहाँ खड़े हुए।

'आओ विनय बाबू, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई!' कहते हुये वे विनय को भीतर ले गए। सड़क के किनारे ही उनकी बैठक थी, वहाँ ले जाकर विनय को बैठाया। कमरे में एक टेबिल था, उसके एक ओर पीठदार बेंच तथा दूसरी ओर काठ और बेंत की दो कुर्सियाँ रक्खी हुई थीं। दीवाल पर एक ओर ईसा का रंगीन चित्र तथा दूसरी ओर केशवचन्द्रसेन का फोटो लगा हुआ था। टेबिल के ऊपर दो-चार दिन के समाचार-पत्र तह किए हुए रखे थे। कोने में एक छोटी-सी अल्मारी थी जिसके ऊपर कपड़े से ढका हुआ एक ग्लोब रक्खा था।

विनय बैठ गया। उसका हृदय चंचल हो उठा। ज्ञात होता था, जैसे उसकी पीठ की ओर खुले हुए दरवाजे से कोई बैठक के भीतर प्रवेश कर रहा हो।

परेश बाबू बोले—'सोमवार को सुचरिता मेरे एक मित्र की पुत्री को पढ़ाने जाती है। वहाँ सतीश की आयु का एक लड़का भी है,

इसी से सतीश भी उसके साथ जाता है। मैं अभी उन्हें पहुंचा कर लौटा हूँ। यदि थोड़ी भी देर हो जाती तो आपसे भेंट न हो पाती।'

परेश बाबू से विनय खुलकर बातें करने लगा। उस दौरान में परेश बाबू को विनय का सब हाल मालूम हो गया। विनय के मां-बाप नहीं हैं। चाचा-चाची गांव में रह कर जमीन-जायदाद को देखते हैं। उसके दो चचेरे भाई उसी के साथ कलकत्ते में, एक घर में, रह कर पढ़ते थे। उनमें से बड़ा भाई वकालत पास करके, जिले की अदालत में प्रैक्टिस करता है तथा छोटा भाई हैजे की बीमारी से कलकत्ते ही में मर गया। चाचा कहते हैं कि विनय डिप्टी कलेक्टर के लिए प्रयत्न करे, परन्तु वह कोई प्रयत्न न कर, व्यर्थ के कामों में लगा हुआ है।

इस प्रकार कोई एक घण्टा बीत गया। बिना कार्य के और अधिक ठहरना उचित न समझ, विनय उठ खड़ा हुआ। बोला—'सतीश भाई के साथ मुलाकात न हो सकी, यही दुःख रहा। उससे कह दें कि मैं आया था।'

परेश बाबू बोले—'आप कुछ देर और ठहरते तो उन लोगों से भी भेंट हो जाती। अब उनके आने में अधिक देर नहीं है।'

केवल इसी कारण और बैठ जाने में विनय को लज्जा-सी लगी। कुछ और आग्रह होने पर बैठ भी जाता, परन्तु परेश बाबू अधिक बोलने या आग्रह करने के आदी नहीं थे। अतः उसे चल ही देना पड़ा। परेश बाबू बोले—'यदि आप फिर आयें तो मुझे बहुत खुशी होगी।'

सड़क पर आकर विनय ने अपने घर लौटने की कोई आवश्यकता न समझी। वहां कोई कार्य भी न था। विनय अखबारों में लेख लिखता था, उसके अंग्रेजी लेखों की लोग प्रशंसा भी खूब करते थे। परन्तु पिछले दिनों से उसे लिखने के समय कुछ सूझता ही न था। टेबिल के सामने अधिक देर बैठने पर उसका जी उचट जाता, इसी से आज वह अकारण उल्टी ओर चल पड़ा।

दो-चार कदम आगे बढ़ते ही उसे एक बालक की आवाज सुनाई

—'विनय बाबू ! ओ विनय बाबू ?'

उसने सिर उठा कर देखा कि एक गाड़ी की खिड़की पर झुका था, सतीश उसे पुकार रहा है। गाड़ी के भीतर गद्दी पर कुछ साड़ी और कुछ सफेद कुर्त्ते की आस्तीन देखकर, यह समझने में भी देर न लगी कि वहाँ कौन बैठा है।

बङ्गाली शिष्टता के अनुसार गाड़ी की ओर देखना, उसे कठिन था। तभी सतीश ने गाड़ी से उतर कर, उसका हाथ पकड़ते हुए —'हमारे घर चलिये।'

विनय बोला—'मैं अभी तुम्हारे घर से ही आ रहा हूँ।'

सतीश ने कहा—'वहाँ हम लोग तो थे नहीं। अब फिर लिए।'

सतीश का हठ विनय नहीं टाल सका। सतीश विनय को लेकर घर में घुसते ही चिल्लाकर बोला—'बाबा, विनय बाबू को ले आया हूँ।'

विनय घर में आकर बैठ गया उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। परेश बाबू बोले—'मालूम होता है, आप थक गये हैं। सतीश ऊधमी लड़का है!'

घर में अपनी दीदी के साथ जब सतीश ने प्रवेश किया, तब विनय को एक हल्की-सी सुगन्ध का अनुभव हुआ। इसके बाद सुनाई दिया, परेश बाबू कह रहे थे—'राधे ! विनय बाबू आये हैं, इन्हें तो तुम जानती ही होगी ?'

विनय ने चकित हो, सिर उठाकर देखा—सुचरिता उसे नमस्कार कर सामने की कुर्सी पर बैठ गई। विनय भी उसे प्रति नमस्कार करना न भूला।

सुचरिता ने वृद्ध से कहा—'ये रास्ते में जा रहे थे। सतीश इन्हें देखते ही गाड़ी से उतर कर, यहाँ खींच लाया।' फिर विनय की ओर देखती हुई बोली—'विनय बाबू, आप शायद किसी काम से जा रहे थे

आपको कुछ असुविधा तो नहीं हुई ?'

विनय को यह कभी आशा न थी कि सुचरिता उसे सम्वोधन करके कोई वात कहेगी। वह कुण्ठित और व्यग्र होता हुआ वोला– नहीं असुविधा तो कुछ नहीं हुई।'

तभी सतीश सुचरिता की साड़ी खींचता हुआ वोला—'दीदी, चाभी दो न। अपना वाजा लाकर विनय वावू को दिखा दूं।'

सुचरिता हँसकर वोली–'यह लो, आरम्भ हो गया। वख्तियार के साथ जिसकी मैत्री हो, फिर उसकी जान नहीं वचेगी—वाजा तो सुनना ही पड़ेगा—विनय वावू, आपका यह छोटा मित्र अभी अनेक प्रकार से आपको तंग करेगा। क्या पता, आप इसके उत्पातों को सह भी सकेंगे या नहीं!'

विनय ने संकोच के भाव से कहा–'न, आप कुछ ख्याल न करें। मुझे यह वहुत अच्छा लगता है।'

अपनी दीदी से चाभी लेकर, सतीश वाजा और कुछ खिलौने उठा लाया। वह वहुत देर तक अपने सीखे हुए अनेक खेलों तथा वाजे से सवका मनोरंजन करता रहा।

कुछ देर वाद लीला ने वहाँ आकर कहा—'वावूजी, आप लोगों को मां ऊपर वुला रही हैं।'

६

ऊपर वाले वरामदे में एक टेविल पर सफेद कपड़ा विछा हुआ था। उसके चारों ओर कुर्सियां रखी हुई थीं। रेलिंग के वाहर, कार्निस के ऊपर छोटे-छोटे गमलों में पाम तथा अन्य फूलों के पौधे थे। वरामदे के ऊपर से रास्ते के किनारे मौलश्री तथा कृष्णचूड़ा के वृक्ष, वर्षा के जल से, धुलकर स्निग्ध दिखाई दे रहे थे।

अभी तक सूर्य अस्त नहीं हुये थे। पश्चिमी आकाश से हल्की धूप सीधी होकर, वरामदे के एक कोने में पड़ रही थी।

उस समय छत पर कोई नहीं था। कुछ देर वाद सतीश एक

सफेद और काले रङ्ग के छोटे से कुत्ते को लेकर आ पहुँचा। उस कुत्ते का नाम था टेनी। वह कुत्ता जितनी क्रियायें जानता था, उन सबको सतीश ने विनय को दिखलाया। उसने एक पैर उठाकर सलाम किया तथा बिस्कुट का टुकड़ा देखते ही, दोनों पैर सटाकर भीख माँगी। इस प्रकार टेनी ने जो ख्याति पायी, उससे सतीश को एक गर्व का अनुभव होने लगा। बीच-बीच में किसी कमरे से लड़कियों की हँसी, खिल-खिलाहट तथा उसके साथ ही एक मर्द की आवाज सुनाई दे रही थी। विनय का मन उसे सुनकर, एक अपूर्व मधुरता के साथ-साथ ईर्ष्या से भरा जा रहा था। स्त्रियों के गले की ऐसी आनन्दमयी ध्वनि उसने पहले कभी न सुनी थी। यह आनन्द की माधुरी उसके इतने समीप बह रही है, फिर वह उससे इतनी दूर है! सतीश उसके कानों के पास न जाने क्या-क्या कह रहा था, परन्तु उसका मन किसी और ही तरफ था।

परेश बाबू की पत्नी अपनी तीनों लड़कियों को साथ लिए, छत ट आईं। उनके साथ ही एक युवक भी आया, जो उनके दूर के रिश्ते कोई आत्मीय लगता था।

परेश बाबू की पत्नी का नाम था वरदासुन्दरी। उनकी आयु म नहीं है, परन्तु उन्हें देखते ही प्रतीत होता है कि बड़े यत्न से ंगार करके आई हैं। अपनी आयु का अधिकांश भाग देहातिन स्त्रियों ो भाँति बिताकर, अब कुछ समय से वह नये जमाने के साथ लने को चिन्तित बनी रहती हैं। यही कारण है कि उनकी रेशमी ाड़ी बार-बार मरक जाती है और ऊँची एड़ी का जूता खूब खट्-खट् ालता है। संसार में कौन वस्तु ब्राह्म है, कौन अब्राह्म इस म्बन्ध में वे सदैव सतर्क रहती हैं। इसीलिये उन्होंने राधारानी का ाम बदल कर सुचरिता रख दिया। किसी ब्राह्म परिवार के व्यक्ति ो पृथ्वी पर आसन बिछाकर खाते देखकर, उन्हें सहज ही आशंका ो उठती थी कि कहीं ब्राह्मसमाज, मूर्ति-पूजा की ओर तो अग्रसर नहीं ो रहा है।

उनकी बड़ी लड़की का नाम लावण्य है। वह मोटी ताजी तथा

हँसमुख है। लोगों से वार्तालाप करना उसे प्रिय है। उनका चेहरा गोल, आंख बड़ी तथा रङ्ग उज्ज्वल श्याम है। वेषभूषा के सम्बन्ध में वह कुछ उदासीन-सी है, परन्तु इस बारे में उसे अपनी माता की आज्ञानुसार ही चलना पड़ता है। ऊँची एड़ी का जूता उसे सुविधाजनक नहीं लगता, फिर भी पहिनना ही पड़ता है। तीसरे प्रहर शृङ्गार करते समय मां अपने हाथ से उसके मुँह पर पाउडर तथा गालों पर रङ्ग लगा देती है। वह कुछ मोटी है, इसलिए वरदासुन्दरी उसका ब्लाउज ऐसा कसा हुआ बनवाती हैं कि लावण्य जब पहन कर निकलती है, तब ऐसा लगता है, जैसे जूट के बोरे को मशीन में कसकर दबा दिया गया हो।

मझली लड़की का नाम है ललिता। वह बड़ी लड़की से भिन्न है। उसका सिर लम्बा है तथा रुग्ण सी जान पड़ती है रंग भी अधिक सांवला है तथा विशेष बातचीत भी वह नहीं करती है। चाहे जिसे कठोर बातें सुना बैठती है। वरदासुन्दरी मन-ही-मन उससे डरती है और सहज में उससे बोलने की हिम्मत नहीं करती।

छोटी लड़की का नाम लीला है। उसकी उम्र दस वर्ष के करीब है। दौड़ने तथा उपद्रव करने में बहुत तेज है। हमेशा सतीश के साथ मारपीट करती है।

वरदासुन्दरी के आते ही विनय उठ खड़ा हुआ तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। परेश बाबू बोले—'उस दिन इन्हीं के घर में हम लोग···।'

वरदासुन्दरी बीच में ही कह उठीं—'अरे आपने बड़ा उपकार किया। मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूं।'

विनय यह सुनकर इतना शरमाया कि वह ठीक प्रकार से कुछ उत्तर भी न दे सका।

जो युवक लड़कियों के साथ आया था, उसके साथ भी विनय का परिचय हुआ। उसका नाम सुधीर था और वह बी० ए० में पढ़ता था। उसका चेहरा सुन्दर तथा आकर्षक था। रंग गोरा था। आंखों

पर सुनहरी कमानी का चश्मा लग रहा था। उसका स्वभाव चंचल लगता था, क्योंकि वह घड़ी भर भी ठीक न बैठ पाता था, कुछ-न-कुछ करता ही रहता था। लड़कियों के साथ हँसी-मजाक कर उन्हें खिजाया करता था लड़कियों के साथ उसका यह संकोचहीन व्यवहार विनय को बड़ा नवीन और आश्चर्यजनक-सा लगा। पहले तो उसने अपने हृदय में इस व्यवहार को निन्दनीय अनुभव किया, परन्तु फिर उससे ईर्ष्या हो उठी।

वरदासुन्दरी बोलीं—'मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मैंने एकाध बार आपको समाज-मन्दिर में देखा है।'

विनय को लगा, जैसे उसकी कोई चोरी पकड़ ली गई हो। वह लज्जित-सा होकर बोला—'जी कभी-कभी केशव बाबू का भाषण सुनने चला जाता हूँ।'

वरदासुन्दरी—'आप शायद कालेज में पढ़ते हैं ?'

'जी, अब तो वहाँ नहीं पढ़ता।' विनय ने उत्तर दिया।

'कालेज में आपने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की ?'

'मैंने एम० ए० पास किया है।'

यह सुन कर वरदासुन्दरी को, बालकों जैसे भोले चेहरे वाले विनय के प्रति हृदय में श्रद्धा उमड़ आई। वे एक उसास लेकर परेश बाबू की ओर देखती हुई बोलीं— मेरा मनुआ यदि आज होता तो वह भी एम० ए० पास कर चुका होता !'

वरदासुन्दरी का पहला पुत्र मनोरंजन नौ वर्ष की आयु में ही स्वर्गवासी हो चुका था। अतः वह जब किसी नवयुवक को उच्च शिक्षा प्राप्त करते, ऊँचा पद पाते, किताब लिखते अथवा कोई अच्छा काम करते देखतीं, तो उन्हें उस समय यही आभास होने लगता था कि यदि उनका मनुआ आज जीवित होता तो वह भी इन सब कामों को अवश्य कर चुका होता। परन्तु अब जब वह नहीं था तो इस समय जन-समाज *में अपनी पुत्रियों के गुणों का प्रचार करना ही उन्होंने अपना विशेष* कर्तव्य बना रक्खा था। उन्होंने विनय को यह बात विशेष रूप से

बताई कि उनकी पुत्रियां पढ़ने-लिखने में बहुत तेज हैं। विनय ने यह भी सुना कि मेम ने उनकी पुत्रियों की बुद्धि गुण तथा चातुर्य के सम्बन्ध में कब-कब कौन-सी बात कही थी। उसने यह भी सुना कि गर्ल्स स्कूल में पारितोषक-वितरण करने के लिए जब लफ्टीनेन्ट गवर्नर तथा उनकी लेडी आई थीं, तब उन्हें हार पहिनाने के लिए विद्यालय की समस्त छात्राओं में केवल लावण्य को ही चुना गया था।

अन्त में वरदासुन्दरी ने लावण्य से कहा—'बेटी ! सिलाई के जिस काम पर तुमने इनाम पाया था, जरा उसे तो ले आ।'

एक रेशमी कामदार तोते की तसवीर, इस घर के परिचित घनिष्ठों के बीच विशेष प्रसिद्ध हो चुकी थी। बहुत दिन हुए, तब मेम की सहायता से लावण्य ने उस अद्भुत वस्तु को बनाया था। यद्यपि इस कारीगरी में लावण्य का अपना कोई विशेष हाथ न था, परन्तु जिस व्यक्ति से नया-नया परिचय होता था, उसे यह नुमायशी तोता अवश्य दिखाया जाता था। जिस समय उस तोते की रचना में की गई कारीगरी को विनय विस्मयपूर्ण मुद्रा में देख रहा था, ठीक उसी समय नौकर ने एक चिट्ठी लाकर परेश बाबू के हाथ में दी।

परेश बाबू उस पत्र को पढ़कर प्रसन्न हो उठे। बोले—'उन्हें ऊपर ले आओ।'

वरदासुन्दरी ने पूछा—'कौन है ?'

परेश बाबू बोले—'मेरे बाल्यकाल के मित्र कृष्णदयाल ने अपने पुत्र को, हम लोगों से मिलने के लिए भेजा है।'

यह सुनते ही विनय का हृदय उछलने लगा और मुंह विवर्ण हो उठा। परन्तु शीघ्र ही वह मुट्ठी बांध, कड़ा जी करके ऐसा बैठ गया मानो वह किसी प्रतिपक्षी के विरुद्ध अपने को तैयार कर रहा हो 'इस परिवार के लोगों को गोरा अवज्ञापूर्वक देखेगा तथा उन पर अश्रद्धा से विचार करेगा—यह ध्यान आते ही विनय को जैसे किसी ने कुछ उत्तेजित-सा कर दिया।

१०

एक तश्तरी में कुछ मिठाई तथा चाय का सब सामान सजाकर, उसे एक नौकर के हाथ मे दे सुचिरता छत के ऊपर आ बैठी। उस समय, दरवान के साथ गोरा भी वहां पहुँच गया। उसका लम्बा-चौड़ा डील-डौल, गोरा शरीर तथा भारतीय पहनावा देख कर सब आश्चर्यचकित मे हो उठे।

गोरा के मस्तक पर गोपीचन्दन का तिलक लग रहा था। मोटे कपड़े की धोती, मोटे सूत की चादर तथा पैरों में देशी जूता, यही उसकी वेष-भूषा थी, मानो वह वर्तमान युग के विरुद्ध एक मूर्तिमान विद्रोह की भांति आ उपस्थित हुआ हो। विनय ने भी उसका ऐसा वेष पहिले कभी नहीं देखा था।

गोरा के हृदय में आज एक विशेष प्रकार की अग्नि जल रही थी जिसका एक कारण भी था।

कल सवेरे ग्रहण-स्नान के लिए जो स्टीमर यात्रियों को लेकर त्रिवेणी गया था, उसमे अनेक स्त्रियां अपने एकाध अभिभावक पुरुषों के साथ मार्ग के बीच-बीच मे सवार हुई थीं। जहाज में अधिक यात्री हो जाने पर जो स्थानाभाव हुआ, उससे धक्का-मुक्की तक की नौबत आ चुकी थी। अनेकों यात्री जिनके पैर कीचड़ से भरे थे, उसी भीड़ की धक्का-मुक्की में, जहाज के तख्ते पर चढते समय, फिसल जाने से नदी के पानी में गिर पड़ते थे। किसी-किसी को जहाज का खलासी भी धकेल कर बाहर कर देता था। कोई तो स्वयं चढ़ तो गया, परन्तु अपने साथियों के बिछुड़ जाने से दुखी हो रहा था। कभी-कभी पानी बरस उठता तो यात्री भीग भी जाते थे। बैठने की जगह कीचड़ से भर गई थी। सब लोगों के चेहरे पर भय तथा दीनता के चिन्ह दीख रहे थे। वे सब ऐसे सामर्थ्यहीन तथा भाग्यहीन थे कि जहाज के मल्लाह से लेकर कप्तान तक, किसी से भी अपने कष्ट में सहायता की आशा नहीं रखते थे। ऐमी दशा में गोरा अपनी शक्ति भर उनकी सहाय । कर

रहा था।

ऊपर जहाज के फर्स्ट क्लास के डेक पर एक अंग्रेज तथा एक नई रोशनी के बंगाली बाबू रेलिंग पकड़े, परस्पर हास्यालाप करते हुए तथा सिगरेट का धूआँ उड़ाते हुए उस दृश्य को देख रहे थे। कभी-कभी किसी यात्री की विशेष दुर्दशा पर अंग्रेज हँस उठता था तथा उसके साथ ही, वे बंगाली बाबू भी अपनी क्रूरतापूर्ण हँसी से साथ देने लगते थे।

दो-तीन स्टेशन जब इस प्रकार पार हो गये तो गोरा से और अधिक सहन न हुआ। वह ऊपर जाकर, गरजते हुए बोला—'तुम लोगों को धिक्कार है जो जरा शर्म तक नहीं आती।' अंग्रेज ने यह सुनते ही कुछ कड़ी दृष्टि से गोरा को सिर से पांव तक देखा। तभी बंगाली बाबू बोले—'शर्म कैसी ? क्या देश के इन पशु समान मूर्खों के लिए शर्म की जाए ?'

गोरा ने क्रोध में तमतमाते हुए कहा—'मूर्ख की अपेक्षा सबसे बड़ा पशु वह है जिसके हृदय नहीं है और उस हृदय में दया नहीं है।'

बंगाली खिसियाता हुआ बोला—'यह तुम्हारी जगह नहीं, यह फर्स्ट क्लास है, तुम नीचे उतर जाओ।'

गोरा बोला—'वास्तव में यह जगह मेरे योग्य नहीं है। मैं तुम्हारे साथ नहीं वल्कि इन यात्रियों के साथ रहूँगा। परन्तु मैं यह कहे जाता हूँ कि फिर तुम मुझे अपने इस फर्स्ट क्लास में आने के लिए मत कहना।' इतना कह कर गोरा तेजी से नीचे उतर गया।

चन्दननगर पहुँचने पर वह अंग्रेज जहाज से नीचे उतरने लगा, तो अचानक ही गोरा के पास पहुँचकर, उसने अपने सिर से टोप उठाते हुए कहा—'मैं अपने निर्दय व्यवहार पर लज्जित हूँ। आशा है, आप क्षमा करेंगे।'

अंग्रेज तो यह कहकर झटपट चला गया, अपने देशवासी शिक्षित बंगाली बाबू का वह अहंभाव, जो उन्होंने एक विदेशी के साथ मिलकर, अपने देशवासियों की दुर्दशा पर प्रदर्शित किया था, गोरा के

हृदय को जलाने लगा। देश के लोगों ने अपने को इन भयानक अपमान के तथा दुर्व्यवहार के सम्मुख नत कर रक्खा है, उन्हें यदि पशु समझा जाये तो वे अपना पशुत्व भी स्वीकार कर लेते हैं तथा इस बात को वे स्वाभाविक तथा उचित भी मान लेते हैं, यह हमारा पतन नहीं तो और क्या है ? अवश्य ही इस विचार की जड़ में एक देशव्यापी गहरा अज्ञान भरा हुआ है। गोरा का हृदय इन बातों से फटने लगा। उसके मन में सबसे बड़ा दुःख यही था कि देश के चिरकालिक अपमान तथा दुर्गति को देखते हुए भी, यहां के पढ़े-लिखे लोग इतने निष्ठुर बन जाते हैं कि अपने को इससे पृथक् समझने में ही गर्व का अनुभव करने लगते हैं।

यही कारण था कि ऐसे शिक्षित लोगों की पढ़ी हुई विद्या तथा नकल करने के संस्कार की एकदम उपेक्षा करने के लिए ही आज गोरा अपने माथे पर गोपीचन्दन का तिलक लगाकर तथा देशी जूता पहिन कर, छाती फुलाये हुए, एक ब्राह्म समाजी के घर आया था।

विनय मन-ही-मन समझ गया कि गोरा का आज का यह पहिनावा साधारण नहीं अपितु मामरिक है। वह किस समय न जाने क्या कर बैठे यह विचार कर विनय कुछ भयभीत भी हुआ।

वरदासुन्दरी जिस समय विनय से कुछ बातें कर रही थीं, उस समय सतीश छत के कोने में लट्टू घुमा रहा था, परन्तु गोरा को देखते उसका खेल बन्द हो गया। वह चुपचाप विनय के पास आ खड़ा हुआ तथा गोरा की ओर टकटकी लगाये हुए, विनय के कान में धीरे से बोला—'क्या यही तुम्हारे मित्र हैं ?'

विनय—'हां !'

छत पर पहुंच कर गोरा ने विनय की ओर देखा जैसे उसे देखा हो न हो। फिर परेशबाबू को नमस्कार करके, वह मेज के समीप एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। वहीं एक ओर लड़कियों को भी बैठी हुई देखकर, उसे यह बात मर्यादा के विरुद्ध लगी।

इस असभ्य व्यक्ति (गोरा) के पास से वरदासुन्दरी

लड़कियों को हटा ले जाना चाहती थीं, परन्तु उसी समय परेश बाबू ने उसकी ओर देखते हुए कहा—'ये मेरे मित्र कृष्णदयाल बाबू के लड़के गोरमोहन हैं।'

तब गोरा ने भी उनकी ओर देखते हुए प्रणाम किया। यद्यपि सुचरिता ने प्रसंगवश विनय के मुँह से गोरा की बात सुन रक्खी थी, परन्तु उसे यह कभी अनुमान भी न हुआ था कि विनय का मित्र यही व्यक्ति होगा। गोरा की वेषभूषा को देखकर सुचरिता को उससे कुछ घृणा हुई। अँग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति में हिन्दूपन की यह बनावट उसे सह्य न थी।

परेशबाबू ने पहले तो अपने मित्र कृष्णदयाल बाबू की कुशल का समाचार पूछा। फिर अपने विद्यार्थी जीवन की बात स्मरण करते हुए गोरा से बोले—'कालेज में हम दोनों एक मत के थे। दोनों ही मनमोजी थे तथा आचार-विचार कुछ भी नहीं मानते थे। हम लोग मजे से होटल में बैठकर खाना खाते और कभी-कभी तो शाम को गोलदिग्घी वाले मुसलमान की दूकान से कबाब लेकर भी खा लिया करते थे। इसके उपरान्त आधी-आधी रात तक हिन्दू-समाज के सुधार की आलोचना किया करते थे।'

वरदासुन्दरी ने प्रश्न किया—'अब वे क्या करते हैं?'

गोरा—'अब तो वे हिन्दू-आचार-विचार से रहते हैं।'

हिन्दू आचार-विचार का नाम सुनते ही वरदासुन्दरी क्रोध के मारे जल उठीं—'क्या इसमें उन्हें लज्जा नहीं आती?'

गोरा ने हँसते हुए कहा—'लज्जा तो दुर्बल स्वभाव का लक्षण है। बहुत से व्यक्ति अपने पिता का परिचय देने में भी लज्जित होते हैं।'

वरदा०—'परन्तु पहले तो ब्राह्म थे न?'

गोरा—'किसी समय तो मैं भी ब्राह्म ही था।'

वरदा०—'अब आप शायद साकार उपासना में विश्वास कर उठे हैं?'

गोरा—'मेरे हृदय में ऐसा कोई कुसंस्कार नहीं, जो मैं अकारण

ही साकार उपासना पर अश्रद्धा रक्खूँ। आकार की निन्दा करने से वह छोटा नहीं हो जाता। उसके रहस्य का भेद किसे मिल सका है?'

तभी परेश बाबू नम्र-भाव से बोले—'परन्तु आकार नाशवान् है। उसका अन्त अवश्यम्भावी है।'

गोरा—'जिसका 'आदि' है, उसका 'अन्त' भी अवश्य होगा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अनन्त ब्रह्म स्वयं को प्रकाशित करने के लिए ही अन्त का आश्रय लेता है। अन्त भी उसी अनन्त के अन्तर्गत है अन्त उस प्रकाश का विधायक है। प्रकाश की स्थिति उदय-अस्त के भीतर ही समझनी चाहिये। जिस प्रकार वाक्य के भीतर भाव रहता है, उसी प्रकार आकार के भीतर निराकार भी सम्पूर्ण रूप से व्याप्त है।'

वरदासुन्दरी बोली—'आकार निराकार से भी बड़ा है—यह आप क्या कह रहे हैं?'

गोरा—'मैं न कहूँ तो कुछ न होगा, जो जैसा है, वैसा ही रहेगा। आकार कोई मेरे कथन पर ही निर्भर नहीं है। यदि निराकार की पूर्णता यथार्थ होती, तब तो आकार को कहीं स्थान ही नहीं मिलता।'

सुचरिता मन में सोचने लगी—काश, इस समय कोई ऐसा व्यक्ति यहाँ होता, जो इस उद्दण्ड युवक को विवाद में हराकर ऐसा नीचा दिखाता कि फिर यह आकार का कभी नाम ही न लेता।'

विनय गोरा की बातों को चुपचाप सुन रहा था, यह देखकर वरदासुन्दरी और भी अधिक क्रुद्ध हुई। गोरा इस प्रकार उत्तेजित होकर बातें कर रहा था कि उसकी उत्तेजना दबाने के लिए सुचरिता मन-ही-मन उत्तेजित हो उठी।

इसी समय नौकर चाय बनाने के लिए केटली में गरम पानी ले आया। सुचरिता उठकर चाय बनाने लगी। बीच-बीच में विनय ने एक दो बार चकित दृष्टि से उसके मुँह की ओर देखा। यद्यपि उपासना के सम्बन्ध में विनय का गोरा से विशेष मतभेद न

परन्तु एक ब्राह्म-परिवार के बीच बिना बुलाये आकर, इस समय वह जिस धृष्टतापूर्वक विपक्षी के मतों की आलोचना कर रहा था, उससे विनय के हृदय को ठेस लगी। गोरा की इस धृष्ठता के समक्ष भी परेश बाबू जिस प्रशान्त भाव से उसके तर्क से विपरीत गम्भीर प्रसन्नता की झलक लिए हुए थे, उसे देखकर विनय का हृदय उनके प्रति भक्ति से भर गया। वह सोचने लगा—'मतामत मिथ्या है। हृदय के भीतर परिपूर्ण आनन्द का विकास तथा शान्ति ही सबसे अधिक दुर्लभ है। सत्यासत्य के सम्बन्ध में लोग कितना ही विवाद क्यों न करें, परन्तु जो सत्य है, वह सत्य ही रहेगा। परेश बाबू का स्वभाव था कि वे हर प्रकार के वार्तालाप के बीच में कभी-कभी आँखें बन्द कर अन्तःकरण में प्रस्तुत विषय का अनुशीलन कर लिया करते थे। विनय उनके ध्यान-मग्न प्रसन्न मुख को टकटकी लगाये देख रहा था, गोरा जो इस समय परेश बाबू के विरुद्ध बढ़-बढ़ कर बातें कर रहा था, उससे उसके हृदय को बड़ी चोट लग रही थी।

सुचरिता ने चाय के कई प्याले तैयार कर, परेश बाबू के मुँह की ओर देखा। वह किसे चाय पीने के लिए कहे और किससे न कहे—उनके हृदय में वह बड़ी द्विविधा थी। तभी वरदासुन्दरी ने गोरा के मुँह की ओर देखते हुए कहा—'आप तो यह सब कुछ खायेंगे ही नहीं ?'

गोरा—'जी नहीं।'

'क्यों जाति चली जायगी क्या ?' वरदासुन्दरी बोलीं।

'जी हाँ !'

'आप जाति-पांति को भी मानते हैं ?'

'जाति कोई मेरी बनाई हुई तो है नहीं, जो उसे नहीं मानूँगा ? जब समाज को मानता हूँ तो जाति को भी क्यों न मानूँगा ?'

'क्या समाज की सभी बातें माननीय हैं ?'

'जी हाँ, न मानने का अर्थ है—समाज को तोड़ना।'

'समाज को तोड़ने में हानि ही क्या है ?'

'जिस डाली पर सब लोग बैठे हों उसे काट कर गिरा देने में भी

या दोष है ?'

सुचरिता हृदय में कुढ़ती हुई बोली—'माँ, तुम इनके साथ व्यर्थ विवाद क्यों कर रही हो ? ये हमारे हाथ का कुछ नहीं खायेंगे, बस !'

गोरा ने तब एक बार सुचरिता की ओर देखा। उधर सुचरिता ने विनय की ओर देखते हुए, सन्देह भरे स्वर में कहा—'क्या आप...?'

विनय कभी चाय नहीं पीता था। मुसलमान के हाथ की बनी हुई पावरोटी तथा बिस्कुट खाना भी उसने बहुत दिनों से छोड़ रक्खा था। परन्तु आज वह सुचरिता के हाथ की चाय कैसे न पिये ? वह बोला—'क्यों नहीं अवश्य पीऊँगा।' इतना कह कर उसने गोरा के मुँह की ओर देखा। गोरा के होठों पर व्यंगपूर्ण मुस्कान थी। विनय को चाय यद्यपि अच्छी न लगी तो भी उसने पीना नहीं छोड़ा। वरदासुन्दरी मन-ही-मन सोचने लगी—'ओह, विनय कितना अच्छा लड़का है।'

वे गोरा की ओर से मुँह फिरा कर विनय की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं। परेश बाबू यह देखकर, धीरे-धीरे अपनी कुर्सी को गोरा के पास खिसका कर ले गए और उससे बातचीत करने लगे।

इसी समय चीना बादाम वाला आवाज लगाता हुआ, नीचे मार्ग से जा रहा था। लीलावती उसकी आवाज को सुनकर ताली बजाती हुई उठ खड़ी हुई और कहने लगी—'भैया ! चीना बादाम वाले को बुलाओ।'

सतीश यह सुनकर छत के बरामदे पर पहुँचकर उसे पुकारने लगा।

इसी समय वहाँ एक सज्जन और आ उपस्थित हुए। सबने उनसे पानूबाबू कहकर बात की, परन्तु उनका वास्तविक नाम हारानचन्द्र था। अपनी विद्वता एवं बुद्धिमता के कारण, वे समाज में बहुत वि[illegible]। यद्यपि कोई स्पष्ट रूप से कुछ कहता तो न था, परन्तु सब [illegible]

यही था कि सुचरिता का विवाह उन्हीं के साथ होगा। पानू वावू वास्तव में सुचरिता की ओर आकर्षित भी थे। इस कारण कभी-कभी सखियाँ सुचरिता से हँसी भी कर वैठती थीं।

पानू वावू हरिश्चन्द्र विद्यालय में अध्यापक थे। अध्यापक होने के कारण, वरदासुन्दरी की उन पर कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी। वह सदैव यही दिखाने का प्रयत्न करती थीं कि पानू वावू, जो उनकी किसी पुत्री पर अपना स्नेह प्रदर्शित नहीं करते हैं यह अच्छी ही वात है, क्योंकि वे अपना दामाद केवल उसी को वनायेंगी, जो कम-से-कम डिप्टी मजिस्ट्रेट होने की योग्यता रखता हो।

सुचरिता ने पानू वावू के सामने जव चाय का एक प्याला रक्खा तो लावण्य दूर से ही यह देखकर, मुँह टेढ़ा कर मुस्करा दी। विनय से उसकी हँसी छिपी न रही। थोड़े समय में ही विनय की दृष्टि अव वहुत सतर्क हो गई है। पहले वह इतना चतुर न था।

पानू वावू और सुधीर इस घर की लड़कियों से वहुत समय से परिचित हैं तथा इस परिवार के साथ ऐसे घुलमिल गए हैं कि अव वे लड़कियों के वीच परस्पर इशारेवाजी का विषय भी वन चुके हैं। यह वात देखकर विनय के हृदय में अविचार उत्पन्न होने लगा।

इधर पानू वावू उर्फ हारान वावू को देखकर सुचरिता के हृदय को कुछ ढाढ़स वँधा। वह सोचने लगी—यदि ये किसी प्रकार गोरा को अपने तर्क से हरा दें तो उसे वड़ी प्रसन्नता होगी। यद्यपि वह कई वार हारान वावू के मतसम्वन्धी वाद-विवाह से नाराज हो चुकी थी, परन्तु आज उन्हीं तर्कवीर को देखकर, उसने प्रसन्नतापूर्वक चाय तथा डवल रोटी से अपना सत्कार किया।

परेश वावू वोले—'पानू वावू, ये हमारे···।'

हारान वावू वीच में ही कह उठे— मैं इन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। किसी समय ये हमारे ब्राह्म समाज के अत्यन्त उत्साही युवक थे।'

इतना कह, गोरा से कोई वातचीत न कर, हारान वावू चाय

ीने लगे।

उन दिनों दो बंगाली व्यक्ति सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके लौटे थे। सुधीर ने इनमें से एक की प्रशंसा करनी आरम्भ कर दी। उसे सुनकर हारान बाबू ने कहा—'बङ्गाली चाहे परीक्षा क्यों न पास करलें, परन्तु वे कोई काम नहीं कर सकते।' कोई भी बंगाली मजिस्ट्रेट या जज जिले के काम को नहीं चला सकता। यह सिद्ध करने के लिए हारान बाबू बंगालियों के चरित्र सम्बन्धी अनेकों दोष एवं दुर्बलताओं की व्याख्या करने लगे।

उनकी आलोचना सुनते-सुनते गोरा की भौंहें चढ़ गईं तथा मुँह लाल हो गया। उसने यथा शक्ति अपने सिंहनाद को रोकने का प्रयत्न करते हुए कहा—'यदि आपका यही मत सच्चा है तो आराम कुर्सी पर बैठे पाव रोटी किस मुँह से खाते हैं?'

हारान बाबू ने यह सुनकर भौंहें सिकोड़ते हुए उत्तर दिया—'आप क्या करने को कहते हैं?'

गोरा—'यदि हो सके तो आप बंगालियों के चरित्र सम्बन्धी दोषों को दूर कीजिए, अन्यथा गले में फांसी लगाकर मर जाइए। 'हमारी जाति कुछ नहीं कर सकती'—यह बात यों ही सहज कह देने की नहीं है। यह बात करते समय, आपके गले में यह पाव रोटी अटक क्यों नहीं गई?'

हारान—'सत्य बोलने में भी कोई भय है?'

गोरा—'आप क्रुद्ध न हों, यदि इस बात को आप वास्तव में सत्य समझ सकते तो इस प्रकार गर्व से न कहते। आप इस बात को हृदय में असत्य जानते हुए भी, किसी कारणवश सत्य मान बैठे हैं, इसीलिए ऐसी बात आपके मुँह से निकली। हारान बाबू, झूठ बोलना पाप है और झूठी निन्दा करना और भी बड़ा पाप है। स्वजाति की निन्दा से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है।'

हारान बाबू क्रोध से भर गए। गोरा बोला—'क्यों, आप ही अपनी जाति में सबसे बड़े हैं? क्या आप क्रोध करें और हम लोग आपके

मुँह से अपने पूर्वजों की निन्दा सुनते रहें ?'

अब तो हारान बाबू को चुप बैठे रहना और भी कठिन हो गया, वे और भी तेज आवाज में बंगाई जैसी निन्दा करने लगे। उन्होंने बंगाली समाज की अनेकों कुप्रथाओं का वर्णन करते हुए कहा कि इन्हीं कारणों से बंगाली जाति की उन्नति की कोई आशा नहीं रही है।

गोरा बोला—'आप जिन्हें कुप्रथा कहते हैं, वह केवल अंग्रेजी की किताब में पढ़ी हुई बातें ही हैं—उस सम्बन्ध में आप स्वयं कुछ नहीं जानते। जब आप ठीक इसी प्रकार अंग्रेजों की समस्त कुप्रथाओं के सम्बन्ध में भी कह सकें, तभी आगे बात कर सकते हैं।'

परेश बाबू ने इस प्रसंग को समाप्त कर देना चाहा, परन्तु क्रुद्ध हारान बाबू उसे न छोड़ सके। इसी समय सूर्य अस्त हो गया। पश्चिमी आकाश में चारों ओर लालिमा भर गई। चिड़िया अपने घोंसलों को चल दीं। इस जातीय आलोचना से विनय के हृदय में अनेकों प्रकार के बेसुरे तार बज उठे। तभी परेश बाबू सांयकालीन उपासना के लिए छत से नीचे उतर कर, बाग में बने हुए पत्थर के एक चबूतरे पर जा बैठे।

जिस प्रकार बरदासुन्दरी का मन गोरा से फिर गया था, उसी प्रकार हारान बाबू से भी वे प्रसन्न न थीं। इन दोनों का विवाद जब उन्हें असह्य हो गया, तब वे पुकार कर बोलीं—'चलो विनय बाबू, हम लोग उस कमरे में चलते हैं।'

बरदासुन्दरी का यह प्रेमपूर्ण पक्षपात स्वीकार कर, विनय सब को छोड़ कर उनके साथ चल दिया। बरदासुन्दरी ने अपनी पुत्रियों को भी बुला लिया और विनय से उनके गुणों का वर्णन करने लगीं। वे लावण्य से बोलीं—'बेटी, तुम अपनी कापी तो विनय बाबू को दिखा दो।'

घर में आने वाले नये व्यक्ति को कापी दिखाने का अभ्यास लावण्य को पुराना हो गया था। वह किसी भी नये व्यक्ति के आते ही

जान लेती थी कि अब उसे कापी दिखानी होगी। इस कार्य के लिए वह प्रतीक्षा भी करने लगती थी; परन्तु आज इन तर्क की बातों में उलझ जाने से, वह अब तक उदास बैठी थी।

विनय ने कापी को खोल कर देखा। उसमें अंग्रेजी के किमूर तथा लॉगफेलो की कवितायें लिखी थीं। अक्षर खूब बनाकर लिखे गये थे। कविताओं के शीर्षक तथा प्रारम्भिक अक्षर रोमन लिपि में थे।

उस लिपि को देखकर विनय को बहुत आश्चर्य हुआ। उन दिनों स्त्रियों द्वारा मूर की कविता हाथ से लिखना असाधारण बात थी। विनय के मन को उससे प्रभावित देखकर, वरदासुन्दरी ने अपनी मँझली पुत्री से कहा—'बेटी ललिता ? तुम्हारी वह कविता……'

ललिता ने बीच ही में कठोर स्वर में कहा—'नहीं, माँ, मुझसे यह सब न होगा। वह मुझे ठीक-ठीक याद भी तो नहीं है।' इतना कह, खिड़की के समीप खड़ी हो, सड़क की ओर देखने लगी।

तब वरदासुन्दरी ने विनय को समझा दिया कि इसे सब कुछ याद है, परन्तु यह इतनी गूढ़ प्रकृति की है कि अपने गुणों को किसी के सामने प्रकट नहीं करती। फिर उन्होंने ललिता की विचित्र विद्याबुद्धि के प्रमाण में दो-एक घटनायें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं कि वह बचपन से ही ऐसी है। किसी से अधिक बोलती नहीं, शोक के अवसर पर भी उसकी आँखों में आँसू नहीं आते, आदि। यह भी कहा—कि उसका आचरण अपने पिता के समान है।

अब लीला की बारी थी। उससे कुछ पढ़ने के लिए कहते ही, वह खूब जोर से खिलखिला उठी, फिर ग्रामोफोन के रिकार्ड की भाँति बिना कुछ तात्पर्य समझे 'Twinkle-Twinkle little stars' शीर्षक कविता एक ही साँस में पढ़ गई।

तभी सङ्गीत-विद्या का परिचय देने का अवसर निकट आया जानकर, ललिता कमरे से बाहर निकल आई।

बाहर की छत पर उस समय खूब वाद-विवाद चल रहा था। हारान बाबू क्रुद्ध होकर, तर्क को छोड़, गाली

उनकी इस असहिष्णुता से लज्जित तथा क्षुब्ध होकर, सुचरिता ने गोर का पक्ष ले लिया था, यह वात हारान वावू के लिए और अधि अशान्तिदायक सिद्ध हुई।

सन्ध्या के अन्धकार तथा सावन के वादलों ने आकाश को ढ दिया। वेला-चमेली की मालाओं से सड़क को सुवासित करता हुअ फेरीवाला भी चला गया। सामने वाली सड़क पर मौलश्री के पत्तों प जुगनू चमक रहे थे। वगीचे वाले तालाव पर भी गहरा अंधेरा गया था।

सन्ध्याकालीन ब्राह्मोपासना के पश्चात् परेश वावू फिर छत प आ पहुँचे। उन्हें देखकर गोरा तथा हारान वावू दोनों ही लज्जित हं चुप हो गए। गोरा उठ खड़ा हुआ वोला—'रात्रि हो गई—अब जाता हूं।'

विनय भी कमरे से निकल कर छत पर आ गया था। परेशवा ने गोरा से कहा—'तुम्हारा जव जी चाहे, यहां आ जाया करो। कृष्ण दयाल मेरे भाई के समान हैं। उनसे मेरा मत नहीं मिलता, साक्षात्का भी नहीं होता, पत्र-व्यवहार भी वन्द है परन्तु वाल्याकाल की मित्र रक्त में वस जाती है, वह कभी टूट नहीं सकती। उनके नाते तुमसे भ मेरा अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है।'

परेश वावू के इन शान्ति एवम् स्नेहपूर्ण शब्दों को सुनकर इतन देर के तर्क से सन्तप्त गोरा का हृदय जैसे शीतल हो गया। आते सम उसने परेश वावू को कुछ विशेप श्रद्धा से नमस्कार न कि था, परन्तु अव जाते समय उसने सच्ची भक्ति से उन्हें प्रणा किया। चलते समय गोरा ने सुचरिता से कुछ भी नहीं कहा सुचरिता ने इसे अशिष्टता ही समझा। विनय ने भी परेश वा को प्रणाम किया, फिर उसने सुचारिता की ओर देखते हुए नमस्का किया और कुछ लजाता-सा शीघ्रतापूर्वक गोरा के पीछे-पीछे च दिया।

हारान बाबू इस समय वहाँ उपस्थित थे । वे कुछ देर पहले ही हटकर कमरे के भीतर चले गये थे और वहाँ टेबिल के ऊपर रक्खी हुई ब्राह्म-संगीत की एक पुस्तक लेकर, उसके पन्ने पलट रहे थे।

विनय और गोरा के चले जाने पर वे फिर छत पर आ पहुँचे और परेश बाबू से कहने लगे—'देखिये, हर व्यक्ति के साथ बहू बेटियों की बातें करने देना मैं उचित नहीं समझता।'

सुचरिता उन पर पहिले से ही जली-भुनी-बैठी थी। इस समय वह अपने को और अधिक न रोक सकी। बोली—'यदि बाबूजी इस नियम को मानते तो आपके साथ भी कोई हम लोगों की कोई बातचीत हो पाती।'

हारान बाबू ने कुछ झेंपते हुए कहा—'अपने समाज के भीतर बातचीत अथवा मेल-मुलाकात होना अनुचित नहीं है।'

तभी परेशबाबू हँसते हुए बोले—'आप परिवार के अन्तःपुर को कुछ और बड़ा करके सामाजिक अन्तःपुर बनाने की बात कहते हैं, परन्तु मैं यह उचित समझता हूँ कि विभिन्न मतावलम्बियों के सम्पर्क में आने से लड़कियों की बुद्धि का विकास होगा और वे संसार की बहुत-सी अच्छी बातों को जान सकेंगी। इसमें भय अथवा लज्जा का कोई कारण दिखाई नहीं देता।'

हारान—'मैं यह नहीं कहता कि विभिन्नमत के लोगों से बहू-बेटियाँ न मिलें, परन्तु इनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इस शिष्टता को वे लोग जानते तक नहीं है।'

परेश बाबू—'अरे यह आप क्या कहने लगे ? आप जिसे अशिष्टता कहते हैं, वह केवल एक सङ्कोच है। पराई बहू-बेटियों से वार्तालाप करने में बहुत से लोग सकुचाते हैं। यह सङ्कोच स्त्रियों के साथ हेल-मेल किये बिना कभी न मिट सकेगा।'

११

उस दिन सुचरिता के सामने गोरा को बहस में हराकर, अपनी

विजय-पताका उड़ाने की हारानबाबू की प्रबल इच्छा थी। प्रारम्भ में सुचरिता भी उनसे यही आशा रखती थी। परन्तु दैवयोग से इसका बिलकुल उल्टा हुआ। यद्यपि धर्म तथा सामाजिक विश्वास में सुचरिता का मत गोरा से मेल नहीं खाता था, परन्तु स्वजाति एवं स्वदेश के दुःख का अनुभव होना, उसके लिए स्वाभाविक था। परन्तु उस दिन जब स्वजाति-निन्दा सुनकर गोरा एकाएक गरजने लगा तो उसके हृदय में भी उसके अनुकूल प्रतिध्वनि होने लगी। क्योंकि उसके सम्मुख दृढ़ विश्वास के साथ, स्वदेश के प्रति ऐसी बात आज तक किसी ने नहीं कही थी।

इसके उपरान्त जब हारान बाबू ने गोरा और विनय के चले जाने पर उनके सम्बन्ध में सामान्य ईर्षावश अभद्रता का दोषारोपण किया, तब भी उसे इस आशय के प्रतिकार स्वरूप गोरा तथा विनय का पक्ष ही लेना पड़ा।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि गोरा के प्रति सुचरिता के मन का विरोध शान्त हो चुका था। गोरा का गले पड़ जाने का उद्धत स्वभाव तो उसके हृदय पर अभी तक आघात पहुँचा रहा था। वह अभी तक यही समझ रही थी कि हिन्दूपन के भीतर प्रतिकूलता का कुछ भाव अवश्य है। वह अपने भक्ति-विश्वास में पर्याप्त नहीं है और विपक्षी पर आघात करने के लिये सदैव उग्र बना रहता है।

उस दिन सन्ध्या को सब बातों में, सब कामों में, भोजन करने के समय तथा लीला से वार्तालाप करते समय सुचरिता के हृदय में एक प्रकार की पीड़ा कष्ट पहुँचाने लगी। काँटा कहां गड़ा है, यह जानने पर ही उसे निकाला जा सकता है। अतः मन का काँटा निकाल देने के लिए उस दिन रात को वह छत पर अकेली बैठी रही।

उसने रात्रि के अन्धकार की निर्मल धारा में अपने हृदय के ताप को धो डालने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई सफलता न मिली। उसने अपने हृदय पर एक असह्य बोझ लिए रोने की चेष्टा की, परन्तु उसे रुलाई भी न आई।

एक अपरिचित युवक मस्तक पर तिलक लगाकर आया, कोई उसे तर्क में हरा कर, उसका घमण्ड चूर न कर सका, इसीलिए सुचरिता इतनी देर तक रज कर रही थी। फिर उसने सोचा कि इससे बढ़कर हास्यास्पद और क्या बात होगी। यह जान कर उसने इस कारण को अपने मन से निकाल फेंका। तब उसे वास्तविक कारण याद हो आया, उसका स्मरण आते ही वह लज्जित हो उठी। आज तीन-चार घण्टे वह उस युवक के सामने ही बैठी रही। बीच-बीच में उसका पक्ष लेकर बोलती भी रही। परन्तु उस युवक ने एक बार भी आँख उठा कर उसकी ओर नही देखा। जाते समय भी उसने उस पर दृष्टि नही डाली। इस कठोर उपेक्षा से उसके हृदय पर गहरी चोट लगी, इसमें सन्देह नही। पर स्त्रियों से मिलने का अभ्यास न होने के कारण हृदय में जो एक प्रकार का सकोच होता है, उसका आभास विनय के व्यवहार में था, परन्तु गोरा के आचरण में तो संकोच नाम मात्र को भी न था। उसकी उस कठोर उदासीनता को सहन कर लेना अथवा अवज्ञा करके उड़ा देना, सुचरिता के लिए आज असम्भव क्यों हो गया? इतनी कठिन उपेक्षा सहकर भी जो उसने तर्क में सहयोग दिया था, अपनी उस वाचालता के कारण, वह मानो मरी जा रही थी। हारान के अनुचित तर्क से जब सुचरिता एक बार अत्यन्त उत्तेजित हो उठी थी, तब गोरा ने उसकी ओर देखा था। उस दृष्टि में सकोच नाम मात्र को न था, परन्तु उस दृष्टि के भीतर क्या छिपा था, यह जानना ही कठिन है। तो क्या वह अपने मन में यह सोच रहा था कि यह स्त्री बड़ी निर्लज्ज है जो, पुरुषों के वाद-विवाद में इस प्रकार बिना बुलाये योग देने आ गई है? यदि उसने यही सोचा हो तो इससे भी क्या बनता-बिगड़ता है, परन्तु तो भी सुचरिता को अत्यन्त पीड़ा का अनुभव हुआ। वह सभी को भूल जाने, मिटा डालने की चेष्टा करने लगी, परन्तु उसमें किसी प्रकार सफल न हो सकी। उसे गोरा के ऊपर क्रोध हो आया। उसने गोरा को कुसस्कार-ग्रस्त उद्धत युवक समझ कर सब प्रकार से इसका निरादर करना चाहा, परन्तु उस विशालकाय वज्रकण्ठ पुरुष की

निस्संकोच दृष्टि की याद आते ही सुचरिता मन-ही-मन सकुच कर रह गई। बहुत कुछ विचार करके उसने अन्त में यही निश्चय किया कि उसकी इच्छा-विशेष रूप से गोरा को हरा देने की थी, इसलिए उसके हृदय पर यह अटल उदासीन भाव इतना अधिक आघात पहुँचा रहा है।

इस प्रकार मन के साथ खींचातानी करते हुए बहुत रात बीत गई। सब लोग दीपक बुझा कर घर में सोने चले गये। सदर दरवाजा बन्द होने का शब्द उसने सुना। उसे ज्ञात हुआ कि अब दरवान भी भोजन करके सोने जा रहा है। इसी समय ललिता अपने सोने के समय के कपड़े पहन कर छत पर आई। वह सुचरिता से बिना कुछ कहे, सुने छत के एक कोने में रेलिंग पकड़ कर जा खड़ी हुई। सुचरिता उसे देख मन-ही-मन कुछ हँसी। वह समझ गई कि ललिता उससे नाराज हो गई। आज ललिता के साथ उसके सोने की जो बात थी, उसे वह एकदम भूल ही गई थी। परन्तु ललिता के समक्ष भूल की बात कहने से अपराध क्षमा नहीं होता था। उसके सम्मुख भूल जाना ही सबसे बड़ा दोष था। वह समय पर प्रतिज्ञा का स्मरण कराने वाली लड़की नहीं थी। इतने समय तक वह पत्थर की भांति कठोर बिछौने पर पड़ी रही थी। जितना ही समय बीत रहा था, उतना ही उसका क्रोध बढ़ता जाता था। अन्त में जब क्रोध असह्य हो गया, तब वह इस समय चारपाई से चुपचाप उठकर यह बतलाने के लिए आई थी कि मैं अभी तक सोई नहीं हूं।

सुचरिता उसे देख, कुर्सी से उठकर उसके पास जा गले से लिपट गई और कहने लगी—'मेरी लक्ष्मी, मेरी ललिता बहिन, क्रोध न करो।'

ललिता ने उसका हाथ हटाते हुए कहा—'नहीं, क्रोध क्यों करूंगी? तुम बैठो न!'

सुचरिता उसका हाथ खींचते हुए बोली—'चलो बहिन, सो चलें।'

ललिता ने कुछ उत्तर न दिया। वह कुछ कहती नहीं। अन्त में सुचरिता ही उसे ज़बरदस्ती खींचकर [illegible] ले गयी।

ललिता कुछ देर बाद बोली—तुम्हें शायद [illegible] आना अच्छा नहीं लगा, [illegible] मैं बहुत देर से तुम्हारे [illegible] देख रही थी, न जाने [illegible] [illegible] । तुम [illegible] क्या सोचती होगी?

सुचरिता ने उसे छाती से लिपटाते हुए कहा—ललिता, आज तुम्हें अचानक यह क्या हो गया है?

इस प्रकार सुचरिता के अपराध स्वीकार कर लेने पर, ललिता का क्रोध शान्त हुआ। फिर वह हँसकर बोली—दीदी, तुम इतनी देर तक अकेली बैठी, किसके बारे में सोच रही थीं? हारानबाबू के बारे में तो नहीं?

सुचरिता—उसके मन पर [illegible] [illegible] बोली—हट!

हारानबाबू से ललिता की बड़ी चिढ़ थी। यहाँ तक कि अन्य बहिनों की भाँति हारानबाबू को [illegible] सुचरिता के साथ [illegible] करना भी उसे पसन्द नहीं था। हारानबाबू सुचरिता के साथ विवाह करना चाहते हैं, यह बात सोचकर ही उसे क्रोध आता था।

कुछ देर चुप रह कर ललिता ने [illegible] कहा—अच्छा दीदी, विनय बाबू तो भले आदमी हैं?

[illegible] सुचरिता के हृदय का भाव जानने के लिए ही उसने यह प्रश्न पूछा था।

सुचरिता ने कहा—हाँ विनय बाबू अच्छे ही तो, [illegible] अच्छे हैं!

ललिता ने जिस अभिप्राय से प्रश्न किया था, वह पूरा नहीं हुआ। तब वह फिर बोली—अच्छा दीदी, कहो जो गौरमोहन बाबू तुमको तो अच्छे न लगे। उनका चेहरा और रंग [illegible] [illegible], तुम्हें कैसे लगे थे?

सुचरिता—'उनके रोम-रोम में हिन्दुत्व भरा है।'

ललिता—'यह बात नहीं, हमारे मौसा महाशय भी तो बड़े हिन्दू हैं, परन्तु उनका ढङ्ग इस प्रकार का है? इसका क्या ढंग है, मैं नहीं जान सकी।'

सुचरिता हँसकर बोली—'कैसा भी क्यों न हो।'

इतना कहते ही, उसे गोरा के ऊँचे मस्तक पर लगे तिलक का स्मरण हो आया। उसका ध्यान आते ही सुचरिता का हृदय क्रोध से भर उठा। क्रोध आने का यही कारण था, जैसे उस तिलक के द्वारा गोरा ने अपने मस्तक पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिख रक्खा हो कि मैं तुम लोगों से भिन्न हूँ। काश, वह उसके इस प्रचण्ड अभिमान को मिट्टी में मिला सकती तो उसके शरीर की ज्वाला शान्त हो जाती।

कुछ देर बात दोनों सो गईं। रात के दो बजने पर सुचरिता ने जागकर देखा कि बाहर खूब पानी बरस रहा है तथा बीच-बीच में उसकी मसहरी के भीतर से बिजली की छटा दीख जाती है। घर के कोने में रक्खा हुआ दीपक बुझ गया था। उस रात्रि के सन्नाटे तथा घने अन्धकार में वर्षा के झरझर शब्द ने, सुचरिता के हृदय में एक प्रकार की पीड़ा भर दी। वह करवटों को बदलती हुई, सोने की चेष्टा करने लगी। समीप ही ललिता को गहरी नींद में पड़ी देखकर उसे ईर्ष्या भी हुई परन्तु उसे फिर किसी तरह नींद नहीं आई। अन्त में वह बिछौने से उठकर बाहर आगई और खुली खिड़की के पास खड़ी होकर, सामने छत की ओर देखने लगी। वायु के झोंकों के कारण, कभी-कभी उसके शरीर पर पानी की बूँदों के छींटे आ पड़ते थे। घूम-फिरकर फिर वही सन्ध्या समय की बातें उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगीं। सूर्यास्त के समय की लालिमा से रंजित गोरा का चमकता हुआ चेहरा, स्पष्ट चित्र की भांति उसकी स्मृति में जाग उठा। उसे गोरा का गम्भीर कण्ठ जैसे स्पष्ट सुनाई देने लगा—'आप जिन्हें अशिक्षित समझते हैं मैं उन्हीं के दल का हूँ। आप जिन्हें कुसंस्कार कहते हैं, मैं उन्हें संस्कार कहता हूँ। जब तक आप देश के लोगों के साथ आकर एक स्थान पर खड़े न होंगे, तब तक

मैं आपके मुँह से निन्दा का एक भी शब्द न सुन सकूँगा।' हारान बाबू ने इसके उत्तर में कहा था—'ऐसा करने से देश का सुधार कैसे होगा ?'

गोरा गरजते हुए बोला—'सुधार से बढ़ कर स्वदेश प्रेम है। जब हम लोगों का मत एक होगा, विचार एक होंगे—तब समाज-सुधार अपने आप हो जावेगा। आप अलग होकर देश को अनेक खण्डों में बांटना चाहते हैं, इससे सुधार होना असम्भव है। आप कहते हैं कि देश के लोग कुसंस्कारों से जकड़े हैं, अतः हम उनसे अलग रहेंगे, परन्तु मैं कहता हूँ कि मैं किसी की अपेक्षा श्रेष्ठ होकर, किसी से भी अलग नहीं रहूँगा। इस प्रकार एक हो जाने पर कौन संस्कार रहेगा और कौन सस्कार न रहेगा, इसे मेरा देश जाने अथवा देश के जो विधाता हैं वे जानें।' इस पर हारानबाबू ने कहा—देश में ऐसी कुप्रथा और कुसंस्कार छाए हुए हैं जो एक नहीं होने देंगे।'

गोरा ने उत्तर दिया—'यदि आप यह सोच लें कि पहले उन प्रथाओं अथवा कुसंस्कारों को दूर करने के बाद देश एक होगा तो आपकी यह समझ वैसी ही होगी, जैसे कोई समुद्र को लाँघकर पार करना चाहे। 'अपमान तथा अहङ्कार का विचार त्यागकर नम्रतापूर्वक सबको अपना समझना' इस सर्वप्रियता के समक्ष सैकड़ों त्रुटियां शक्तिहीन हो जायेंगी। सभी देशों तथा समाजों में अपूर्णतायें हैं, परन्तु जब तक देश के लोग स्वजाति-प्रेम के धागे से बंधे रहते हैं, तब तक वे त्रुटियां कोई विशेष हानि नहीं पहुँचा पातीं। सड़ने का कारण वायु में ही मौजूद है। जीवित रहते हम उनसे बचे रहते हैं। परन्तु मरते ही सड़ जाते हैं। यदि आपको अपने देश से प्रेम नहीं है तो आप देश की त्रुटियों का संशोधन नहीं कर सकते। इस प्रकार समाज के विपरीत चलकर यदि आप कोई संशोधन करना चाहेंगे तो हम लोग उसे सहन नहीं करेंगे, चाहे आप लोग हों अथवा पादरी हों।'

हारानबाबू बोले—'क्यों नहीं कीजियेगा ?'

गोरा ने कहा—'न करने

शिक्षा सहन की जा सकती है, परन्तु पहरेदार-नौकर की शिक्षा सहन करने की अपेक्षा अपमान सहना अच्छा है। उस शिक्षा को स्वीकार करने से मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है। आप लोग पहले आत्मीय बनें, फिर संशोधक बनें, अन्यथा आपकी कही हुई भली बात से भी हमारा अनिष्ट ही होगा।' इस प्रकार गोरा तथा हारानबाबू के बीच जो वार्तालाप हुआ था, वह एक-एक करके सुचरिता के हृदय में सुधि बनकर उठने लगा। इसके साथ ही उसके मन में एक अपरिचित कष्ट की पीड़ा का अनुभव होने लगा। वह थक कर बिछौने पर लेट गई तथा आंखों पर हथेली रखकर सभी चिन्ताओं को मन से हटाकर सोने की चेष्टा करने लगी, परन्तु उसके मुख और कानों में सनसनाहट मची हुई थी और सभी विचार फिर से उसके मन में उमड़े चले आ रहे थे।

१२

विनय और गोरा परेशबाबू के घर से निकलकर सड़क पर आ गये। गोरा को शीघ्रतापूर्वक चलता देखकर विनय ने कहा—'भाई कुछ धीरे-धीरे चलो। तुम्हारे पैर मेरे पैरों से बहुत बड़े हैं। यदि तुमने अपनी चाल धीमी न की तो मैं तुम्हारे साथ चलने में थक जाऊँगा।'

गोरा ने उसी प्रकार चलते हुए कहा—'मैं अकेला ही जाना चाहता हूं। मुझे आज बहुत कुछ सोच-विचार करना है।'

इतना कहकर वह अपनी स्वाभाविक चाल से भी अधिक तेजी के साथ चला गया।

विनय के हृदय को बहुत ठेस लगी। आज उसने गोरा के विरुद्ध विद्रोह करके नियम तोड़ा था। इस सम्बन्ध में यदि गोरा उसका तिरस्कार करता तो वह प्रसन्न होता। उसकी छाती का बोझ भी तब कुछ हल्का हो जाता।

विनय का साथ छोड़ कर गोरा जो नाराज होता हुआ चला गया था, उसे विनय ने अन्याय नहीं समझा। दोनों मित्रों के बहुत दिनों के सम्बन्धों में आज सचमुच विघ्न उपस्थित हो गया था।

बरसात की रात के सन्नाटेपूर्ण अन्धकार को कँपाता हुआ, बादल बीच-बीच मे गरज उठता था। विनय के मन पर एक बोझ लद गया। उसे जान पड़ा, जैसे अब तक वह जिस मार्ग पर चला आ रहा था, आज उसे छोड़कर उसने दूसरी नई राह पकड़ी है। इस अन्धकार के बीच गोरा कहाँ गया और कहाँ वह चला जा रहा है ?'

दूसरे दिन सबेरे उठने पर विनय हल्का हो चुका था। रात को उसने मन की वेदना को विविध कल्पनाओं द्वारा अनावश्यक रूप से बढ़ा दिया था। दूसरे दिन प्रातःकाल के समय उसे गोरा के साथ मित्रता तथा परेश बाबू के परिवार के साथ मेल-जोल, परस्पर विशेष विरोधी नहीं जान पड़े। 'क्या यह बात भी कोई चिन्ता करने की है ? कभी नही।' इतना कहकर वह कल रात की अपनी मानसिक पीड़ा का स्मरण कर, अपनी उस बेवकूफी पर स्वय ही हँस उठा।

फिर वह कंधे पर एक चद्दर डाल, तेजी के साथ गोरा के घर जा पहुँचा। गोरा उस समय नीचे की बैठक मे बैठा हुआ, अखबार पढ रहा था। जिस समय विनय मार्ग में था, तभी गोरा की दृष्टि उस पर पड चुकी थी। विनय ने आते ही बिना कहे सुने गोरा के हाथ से अखबार छीन लिया।

तभी गोरा ने कहा—'शायद तुम भूल रहे हो, मैं गौरमोहन हूँ—कुसंस्कारो से घिरा हुआ एक हिन्दू।'

विनय बोला—'भूल शायद तुम्ही से हुई है। मैं श्रीयुत विनय हूँ उस गौरमोहन के कुसंस्कारो मे घिरा एक मित्र।'

गोरा—'परन्तु गौरमोहन इतना निर्लज्ज है कि वह अपने कुसंस्कारों के लिए किसी के सम्मुख लज्जा का अनुभव नही करता।'

विनय—'विनय भी ठीक वैसा ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि वह अपने सस्कार लेकर प्रतिपक्षी पर हमला करने नही जाता।'

बात ही बात मे दोनों मित्रों मे वाक्‌युद्ध प्रारम्भ हो गया। यहाँ तक कि पडोसियो को भी इसका पता लग गया कि आज [illegible] गोरा से हुई है।

गोरा बोला—'अच्छा, तुम परेश बाबू के घर आते जाते हो, इस बात को उस दिन मेरे सामने अस्वीकार करने की क्या आवश्यकता थी !'

विनय—'मैंने किसी आवश्यकतावश स्वीकार नहीं किया था। मैं तब नहीं आता-जाता था। इसीलिए आना-जाना अस्वीकार किया। इतने दिन बाद कल सबसे पहली बार मैं उनके घर गया था।'

'मुझे सन्देह होता है कि तुम अभिमन्यु की भांति प्रविष्ट होना तो जानते हो, परन्तु निकलना नहीं जानते।'

'तुम्हारा यह विचार यथार्थ भी हो सकता है। मेरा तो सम्भवतः यह जन्मजात स्वभाव है कि जिसे श्रद्धा अथवा प्यार करता हूँ उससे फिर अलग नहीं हो सकता। मेरे इस स्वभाव से तुम भी परिचित होगे।'

'तो अब वहाँ आना-जाना निरन्तर चलता रहेगा ?'

'ऐसी तो कोई बात नहीं कि अकेला मैं ही आता-जाता रहूँ। तुम्हें भी चलने-फिरने की शक्ति मिली है। तुम कोई जड़ पदार्थ तो हो नहीं ?'

'मैं तो आऊँगा जाऊँगा ही, परन्तु तुम्हारे लक्षणों से ऐसा आभास होता है कि तुम जड़-मूल से ही चले जाओगे। कहो, गरम चाय कैसी लगी थी ?'

'कुछ कड़ी थी।'

'फिर ?'

'न पीना उससे भी कड़ा होता।'

'तो सामाजिक नियमों का पालन केवल शिष्टाचार तक ही सीमित है ?'

'हर समय यह बात नहीं चलती। देखो गोरा, जहाँ समाज के साथ हृदय की मुठभेड़ हो, वहाँ मेरे लिए···।'

गोरा का धैर्य समाप्त हो उठा। विनय पूरी बात कहे, इसके पूर्व ही वह गरजता हुआ बोला—'क्या कहा, हृदय ? तुम समाज को

छोटा अथवा तुच्छ समझते हो, तभी बात-बात में तुम्हारे हृदय की टक्कर समाज से होती है। परन्तु समाज को चोट पहुँचाने से उसका दर्द कितनी दूर तक जा पहुँचता है, यदि तुम्हें इसका कुछ अनुमान होता तो तुम्हें हृदय की बात उठाते हुए भी लज्जा आती। मालूम होता है, परेश बाबू की लड़कियों के हृदय को जरा-सी चोट लगने से तुम्हारा हृदय भी घायल हो जायेगा। परन्तु जब इतने ही के लिए तुम सारे देश को अनायास कष्ट पहुँचा सकते हो, तो यह भी स्मरण रक्खो कि मुझे उस समय कहीं तुम से भी अधिक कष्ट मालूम होता है।'

विनय—'भाई सब बात कहूँ? यदि एक प्याली चाय पीने से सम्पूर्ण देश को चोट पहुँचती है। तो मेरी समझ मे उस चोट से देश का उपकार ही होगा। इस आघात से भी यदि देश को बचाकर चलाया गया, तो देश निस्सन्देह अत्यन्त दुर्बल हो जायेगा।'

गोरा—'महोदय, मैं इन युक्तियों को खूब जानता हूँ। इतना ना समझ न समझ बैठना! परन्तु ये सब बातें इस समय की नहीं हैं। रोगी बालक जब औषधि नही पीना चाहता, तब स्वस्थ माँ उस औषधि को स्वय पीकर, उसे यह बताती है। कि मेरी और तेरी एक-सी हालत है। यह युक्ति की नही, बल्कि प्यार की बात है। यदि प्यार न हो, तो युक्ति चाहे कितनी भी क्यो न हो, माता का सम्बन्ध लड़के के साथ नष्ट हो जाता है। उस समय कार्य भी नष्ट हो जाता है। मैं उस चाय की प्याली के लिए विवाद नहीं करना चाहता। परन्तु देश के साथ सम्बन्ध-विच्छेद को मैं सहन नहीं कर सकता। [illegible] चाय पीना बहुत सरल है तथा परेश बाबू की लड़की के मन को कष्ट देना बहुत कठिन। सम्पूर्ण देश के साथ एकात्म होकर मिलना हमारी वर्तमान अवस्था का सबसे प्रधान कार्य है। जब [illegible] हो जायगा। तब, चाय पीओगे अथवा नही इस तर्क की [illegible]
जायेगी।'

विनय—'तब तो देखता हूँ कि तुम्हें [illegible]।
मैं बहुत देर लगेगी।'

गोरा—'नहीं, अधिक देर की क्या आवश्यकता है, परन्तु विनय, तुम मुझे क्यों घेरते हो ? हिंदू-समाज की अनेकों अप्रिय वस्तुओं के समान अब मुझे भी त्याग देने का समय आ पहुँचा है, अन्यथा परेश बाबू की लड़कियों के हृदय को बहुत चोट पहुँचेगी ।'

इसी समय अविनाश ने कमरे में प्रवेश किया । वह गोरा का शिष्य था । गोरा के मुँह से वह जो कुछ सुनता, उसे अपनी बुद्धि और भाषा के द्वारा संक्षिप्त तथा विकृत स्वरूप देकर चारों ओर कहता फिरता था जो लोग गोरा की बातों को नहीं समझ पाते थे, वे ही अविनाश की बातों को भली भाँति समझ कर उसकी प्रशंसा करते थे ।

अविनाश के हृदय में विनय के प्रति तीव्र ईर्ष्या का भाव था, अतः वह समय मिलते ही मूर्खों की भाँति उससे तर्क करने का प्रयत्न करता था । विनय जब उसकी मूर्खता पर अधीर हो उठता था, तब गोरा अविनाश का पक्ष लेकर स्वयं बहस करने लगता था । उस समय अविनाश भी यह समझता कि जैसे गोरा के मुख से, उसी की उक्तियां निकल रही हैं ।

अविनाश के आ जाने से गोरा के साथ विनय के वार्तालाप में विघ्न पड़ गया । तब विनय उठकर ऊपर चला गया । वहाँ भण्डार-घर के सामने बरामदे में बैठी हुई आनन्दमयी सब्जी काट रही थीं ।

आनन्दमयी ने उसे देखते ही कहा—'विनय तुम्हारी आवाज बहुत देर से सुन रही हूँ । आज इतनी जल्दी कैसे आ गए ? जलपान करके तो चले थे न ?'

और कोई दिन होता तो विनय कह भी देता कि कुछ नहीं खाया है, तथा आनन्दमयी के सामने बैठ कर उनसे मांग-मांग कर खूब भोजन करता, परन्तु आज उसने उत्तर दिया—'नहीं मां, मैं घर से जलपान करके चला हूँ ।'

आज विनय गोरा के निकट अपने अपराध बढ़ाना नहीं चाहता था । उसका परेश बाबू के साथ जो संसर्ग था, उसके लिए भी गोरा ने अभी तक उसे क्षमा नहीं किया था, यद्यपि यह सब अनुभव करके विनय

मन में एक क्लेश हो रहा था। वह जेब से चाकू निकाल कर आलू छीलने लगा।

पन्द्रह मिनट बाद विनय ने नीचे जाकर देखा कि गोरा अविनाश के साथ कहीं चला गया है। वह बहुत देर तक बैठक में चुपचाप बैठा रहा, फिर एक लम्बी सांस लेता हुआ बाहर निकल आया और घर को चल दिया। दोपहर का भोजन करने के पश्चात् उसका हृदय गोरा के पास पहुँचने को फिर चंचल हो उठा। गोरा के सामने स्वयं को झुकाने में विनय ने कभी सङ्कोच नहीं किया था, परन्तु अपना अभिमान न रहने पर भी मित्रता के अभिमान को रोकना कठिन होता है। परेश बाबू के निकट जाने के कारण, विनय अपने को गोरा के सम्मुख अपराधी मानकर इतने दिनों की निष्ठा को कुछ विचलित-सा तो अवश्य समझ रहा था, परन्तु अभी तक वह यही सोचे बैठा था कि इसके लिए गोरा केवल परिहास तथा भर्त्सना ही करेगा। उसे यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं आया था कि इतनी-सी बात के लिए गोरा उसे अपने से इतनी दूर ठेल-कर प्रथक रखने की चेष्टा करेगा। अतः वह अपने घर से कुछ दूर निकलकर फिर वापिस लौट आया। मित्रता का अपमान होने के भय से वह गोरा के घर नहीं जा सका।

१३

इस प्रकार बहुत दिन बीतने पर, एक दिन विनय जब दोपहर का भोजन करने के पश्चात् कागज कलम लेकर गोरा को चिट्ठी लिखने के विचार से बैठा, तभी किसी ने नीचे से 'विनय' कहकर आवाज दी। विनय कलम छोड़कर शीघ्रता से नीचे उतर पड़ा। वहां आगन्तुक को देखकर बोला—'आइये महिम दादा, ऊपर चलिये।'

ऊपर पहुँच कर महिम विनय के पलंग पर भली भाँति जम गये। घर के सामान को एक बार पैनी दृष्टि से देखने के बाद उन्होंने कहा—'आज रविवार के दिन अपनी नींद खराब करके जो मैं यहाँ आया हूँ, उसका एक विशेष कारण है। तुम्हें

होगा।'

विनय ने पूछा—'कौनसा उपकार ?'

महिम—'पहले वचन दो, तव कहूँगा।'

विनय—'यदि वह मेरे द्वारा सम्भव हो सके, तभी तो वचन दिया जा सकता है ?'

'वह तुम्हारे द्वारा ही होगा। अधिक कुछ नहीं करना है। एक बार तुम्हारे 'हाँ' कह देने से ही काम चल जायेगा।'

'फिर आप इस प्रकार क्यों कह रहे हैं ?' आप तो जानते ही हैं कि मैं भी आपके घर का एक व्यक्ति हूँ। आपके उपकार से मेरा मुँह मोड़ना तो असम्भव ही है।'

महिम ने जेव से एक पत्ते की पुड़िया निकाल कर, दो पान विनय को दिए तथा शेष चार पान अपने मुँह में रखकर कहना आरम्भ किया—शशिमुखी को तुम जानते ही हो। देखने-सुनने में बुरी नहीं है अर्थात् वह अपने बाप को नहीं गई। अब उसकी उम्र दस वर्ष की हो आई है। ब्याह कर देने का समय भी आ गया है। वह किसी अयोग्य अथवा वदमाश लड़के के हाथ न पड़ जाये, इस चिंता से मुझे रात भर नींद नहीं आई है।'

विनय ने कहा—'आप इतने चिन्तित क्यों होते हैं ? अभी तो अच्छा लड़का ढूँढ़ने को वहुत समय पड़ा है।'

'यदि तुम्हारे कोई लड़की होती तव तुम समझते कि मैं इतना क्यों घवरा रहा हूँ। हर वर्ष उम्र तो अपने आप बढ़ जाती है। पर वर अपने आप घर नहीं चला आता। अतः जितने दिन अधिक बीतते हैं उतना ही मन चिन्तित रहता है। यदि तुम आश्वासन दो तो कुछ दिन धैर्य धारण कर सकता हूँ।'

'मेरा तो अधिक लोगों से परिचय नहीं है। कलकत्ते में आपके घर के अतिरिक्त मैं अन्य किसी घर नहीं जानता, यह कहना भी गलत न होगा। फिर भी मैं कुछ प्रयत्न करूँगा।'

'शशिमुखी के स्वभाव और चरित्र को तो तुम जानते ही होगे ?'

'जानता क्यों नहीं ? बड़ी भोली लड़की है—उसे बचपन से ही ...त जो रहा हूँ।'

'तो फिर और कहीं तलाश करने की क्या आवश्यकता है, भाई ? ... उसे तुम्ही को भेंट करूँगा।'

विनय ने घबरा कर कहा—'आप यह कह रहे हैं ?'

'क्या अनुचित कहता हूँ ?'—महिम ने उत्तर दिया—'तुम हम ...ोगों से अवश्य बड़े हो परन्तु यदि इतने पढ़े-लिखे होकर भी तुम कुल ...ा ढोंग मानते रहो, तब तो बस सब कुछ हो चुका।'

'न, कुल की बात तो नहीं है, परन्तु उम्र·· ···'

'वाह ! शशि की उम्र कम है ! हिन्दू घर की कन्या है। मेम ...तो हो नहीं सकती। हमारे समाज में इसी उम्र में लड़की का विवाह कर दिया जाता है। फिर शास्त्र मे भी तो लिखा है—'कन्याया द्विगुणो वरा' *अर्थात् कन्या से वर की आयु दुगुनी होनी चाहिये।'*

महिम सहज में छोड़ने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने विनय को चञ्चल कर दिया। लाचार होकर वह बोला—'मुझे कुछ सोचने का समय तो दीजिए।'

महिम ने कहा—'मैं भी आज रात को ही विवाह करने के लिए नहीं कह रहा हूँ।''

'फिर भी घर के लोगों की······।'

'हा, हा, क्यों नहीं ? उनकी सम्मति तो लेनी ही पड़ेगी। तुम्हारे चाचा जीवित हैं। उनकी राय के बिना तो कोई काम हो ही नहीं सकता।'

इतना कहकर महिम ने जेब से पानों का दूसरा दोना निकाल कर खाया तथा ऐसा भाव जताता हुआ चल दिया, जैसे बात पक्की हो गई हो।

कुछ समय पूर्व एक बार आनन्दमयी ने शशि का विवाह विनय के साथ कर देने का प्रस्ताव स्पष्ट रूप ...

विनय ने उसे सुना ही नहीं था। आज

थी, फिर भी उसने हृदय में अपने लिए एक स्थान बना लिया। विनय ने सोचा—यह विवाह हो जाने पर गोरा किसी भी प्रकार उसे आत्मीयता के सम्बन्ध से अलग न कर सकेगा। अब तक वह विवाह-सम्बन्ध को हृदय के आवेग से सम्मिलित कर उसका उपहास ही करता आया था। यही कारण है कि शशिमुखी के साथ विवाह करना, आज उसे उतना असम्भव नहीं जान पड़ा। सत्य तो यह है कि उसने विवाह को उतना महत्व ही नहीं दिया। महिम के इस प्रस्ताव को लेकर, उसे गोरा के साथ वहाना करने का एक अवसर मिल गया। इन बातों को सोचकर विनय मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। विनय चाहता था कि इस सम्बन्ध के लिये, गोरा स्वयं उस पर दबाव डाले, इसीलिए वह महिम को सहज में स्वीकृति न देकर, गोरा से अपने लिये अनुरोध करना चाहता था।

इन सब विचारों के आते ही विनय निश्चिन्त हो गया। उसी समय वह तैयार होकर गोरा के घर को चल पड़ा। वह कुछ ही दूर गया था किसी ने उसे पुकारा—'विनय बाबू !'

विनय ने घूम कर देखा कि सतीश उसे पुकार रहा है।

सतीश को साथ लेकर विनय फिर घर लौट आया। वहां सतीश ने जेब से रूमाल की एक पोटली निकालते हुए कहा—'रंगून में मेरे एक मामा रहते हैं। उन्होंने वहां से ये फल माताजी के पास भेजे थे, माताजी ने सौगात के तौर पर पांच-छः फल आपके पास भेजे हैं।'

विनय ने फल ले लिये। तत्पश्चात अ-समान आयु के दोनों मित्रों में कुछ देर तक विभिन्न बातें होती रहीं। सतीश बोला—'विनय बाबू ! माताजी ने कहा है कि आपको अवकाश हो, तो हमारे घर अवश्य आइये। आज लीला की वर्ष-गांठ का दिन है।'

विनय ने कहा—'भाई ! आज तो मेरे पास समय नहीं है। एक आवश्यक कार्य से जा रहा हूं।'

'कहां जा रहे हैं ?'

'आपके मित्र के घर।'

'वही आपके मित्र न ?'

'हाँ वही।'

विनय अपने मित्र के घर जा सकता है, परन्तु उसके घर नहीं जा सकता, यह कारण सतीश की समझ में नहीं आया। जबकि विशेष-कर विनय का मित्र (गोरा) उसे अच्छा नहीं लगा था सतीश की दृष्टि में वह पाठशाला के प्रधानाध्यापक से भी कठोर व्यक्ति था। वह उसे आर्गन बाजा सुनाकर प्रशंसा प्राप्त कर सके, ऐसा व्यक्ति नहीं था। कुछ देर चुप रह कर सतीश बोला—'नहीं, विनय बाबू! आप हमारे ही घर चलिये।'

विनय कुछ ही देर में हार मान गया, उसके मन में कुछ देर तो द्विविधा रही, परन्तु अन्त में सतीश का हाथ पकड़ कर, वह अठहत्तर नम्बर वाले मकान के मार्ग पर चल दिया। बर्मा से आए हुए जिन फलों की सौगात उसे भेजी गई थी, उनकी उपेक्षा वह न कर सका।

परेश बाबू के घर पहुँच कर विनय ने देखा कि पानूबाबू तथा अन्य अनेक अपरिचित व्यक्ति उनके घर से निकल रहे हैं। शायद उन्हें लीला के जन्म दिवस के उपलक्ष में भोजन का निमन्त्रण दिया गया था। पानूबाबू इस प्रकार चले गये जैसे उन्होंने विनय को देखा ही नहीं था।

घर में घुसकर विनय ने बड़ी जोर की हँसी तथा दौड़-धूप का शब्द सुना।

कुछ देर बाद सुचरिता ने कमरे से निकल कर विनय से कहा—'माँ ने आपको बैठने के लिए कहा है, वे अभी आती हैं। बाबू जी भी अनाथबाबू के घर गये हैं, वे भी लौटने ही वाले है।' फिर विनय का सङ्कोच दूर करने के लिए सुचरिता ने गोरा की चर्चा छेड़ दी। वह हँसते हुए बोली—'मालूम होता है, अब वे फिर कभी हमारे घर नहीं आयेंगे।'

विनय ने कहा—'क्यों ?'

सुचरिता—'हम पुरुषों के सामने निकलती तथा

बंठनी हैं। यह देखकर उन्हें अवश्य ही आश्चर्य हुआ होगा। घर-गृहस्थी के काम के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर स्त्रियों को देखना शायद उन्हें पसन्द नहीं है ?'

विनय को इसका उत्तर देना कठिन जान पड़ा। वह इसका प्रतिवाद कर प्रसन्न हो सकता था, परन्तु वह झूठ कैसे बोले ? बोला, 'गोरा यही चाहता है कि स्त्रियों को घर के काम में ही अपना चित्त लगाना चाहिये।'

सुचरिता—'तब तो स्त्री-पुरुष भीतर बाहर को मिलकर बाँट लेते, तो अधिक अच्छा रहता। पुरुष को घर में घुसने दिया जाता है अतः बहुत सम्भव है कि ये बाहर का कर्तव्य-पालन भली भांति नहीं कर पाते। क्या आप भी अपने मित्र से सहमत हैं ?'

स्त्री-जाति के कर्तव्यों के सम्बन्ध में विनय अब तक गोरा के विचारों का ही प्रतिपादक रहा था। इस विषय पर उसने अखबारों में लेख भी लिखे थे। परन्तु इस समय वह यह नहीं कहना चाहता था कि उसके विचार भी यही हैं। बोला—'देखिए, इन सब बातों में हम अपने प्राचीन संस्कारों का पक्ष लेते हैं। इसीलिए स्त्रियों को घर से बाहर निकलना ठीक नहीं है। युक्ति तो यहाँ उपलक्ष्य मात्र है, वास्तविक वस्तु तो संस्कार है।'

सुचरिता ने गोरा की आलोचना को समाप्त न होने दिया। गोरा के पक्ष में विनय भी जो कहना चाहता था, उसे खूब स्पष्टता से कहता रहा। विनय की इस उत्तेजना से सुचरिता के हृदय में एक अपूर्व आनन्द जन्म लेने लगा।

विनय बोला—'शास्त्रों में कहा गया है—'आत्मान विद्धि', अर्थात् अपने को जानो। अन्यथा किसी प्रकार मुक्ति नहीं होगी। मैं कहता हूं कि मेरा मित्र गोरा भारतवर्ष के उसी आत्मबोध के प्रकाश स्वरूप से प्रकट हुआ है। मेरी दृष्टि में वह असाधारण व्यक्ति है। जब कि हमारा मन एक तुच्छ आकर्षण के लोभ में पड़ कर नवीनता के फेर में पड़ा हुआ है, तब वही एक आदमी ऐसा है जो उसके विरुद्ध सिंह के

भिमान गरजता हुआ, पुराने मन्त्र 'आत्मान विद्धि' का उच्चारण कर रहा है।'

परेश बाबू के घर से शीघ्र विदा लेकर, वहीं से गोरा के घर जाने का निश्चय करके विनय यहाँ आया था। गोरा की चर्चा चलने पर, उसके हृदय का उत्साह, उसके घर जाने की ओर अधिक बढ़ गया।

इसी समय घड़ी ने टन-टन करके चार बजाये। उसको सुनते ही विनय कुर्सी से उठ खड़ा हो गया।

सुचरिता बोली—'आप अभी से चल दिए? माँ तो आपके लिए भोजन बना रही हैं। कुछ देर और ठहरने में क्या कोई विशेष हानि हो जायेगी?'

विनय के लिये यह बात प्रश्न न होकर आज्ञा थी। वह जहाँ का तहाँ फिर बैठ गया। तभी रंगीन रेशमी वस्त्र पहिने, लावण्य कमरे में आई और कहने लगी—'चलिये भोजन तैयार है। माँ ने आपको छत पर बुलाया है।'

छत पर पहुँच कर विनय भोजन करने लगा। वरदासुन्दरी ने अपने बच्चों का जीवन-वृत्तांत सुनाना आरम्भ कर दिया। सुचरिता को ललिता घर के भीतर खींच ले गई। लावण्य एक कुर्सी पर बैठी गर्दन झुकाये, लोहे की सलाइयों से बुनने का काम करने लगी। उसके विषय में कभी किसी ने कहा था कि बुनाई का काम करते समय उसकी उँगलियों की क्रीड़ा अत्यन्त सुन्दर लगती है तभी से लावण्य को लोगों के सामने आवश्यकता न होते हुए भी, बुनाई करने का अभ्यास-सा पड़ गया था।

परेश बाबू भी आ पहुँचे थे। सन्ध्या हो चली थी। आज रविवार के दिन समाज-मन्दिर में उपासना के लिए जाने की बात पहले ही निश्चित हो चुकी थी। वरदासुन्दरी विनय से बोलीं—'यदि आपको आपत्ति न हो तो आज हमारे साथ समाज-मंदिर में चलिये।'

विनय इन्कार न कर सका। तब सभी लोग ...

उपासना के लिए चल दिये। लौटते समय, जब ये लोग गाडी पर सवार, हो रहे थे, उस समय सुचरिता जैसे अचानक चौंकती हुई सी कह उठी—'अरे, गौरमोहनबाबू तो वे चले जा रहे हैं।'

गोरा ने इन सभी लोगों को देख लिया था, इसमें किसी को सन्देह नहीं था। परन्तु जैसे उसने कुछ देखा ही नहीं, ऐसे भाव दिखाता हुआ, वह तेजी से चला गया। गोरा के इस उद्दण्ड स्वभाव को देखकर विनय ने परेशबाबू के परिवार के सम्मुख लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया परन्तु मन में वह समझ गया कि इस दल में मुझे भी उपस्थित देखकर ही गोरा इस प्रकार चला गया है। विनय के हृदय में जिस आनंद का प्रकाश अब तक जल रहा था, वह एकाएक जैसे बुझ गया सुचरिता विनय के मन के भाव को ताड़ गई। परन्तु विनय जैसे मि: तथा ब्राह्मसमाज के प्रति ऐसी अन्यायपूर्ण अश्रद्धा देखकर, गोरा के ऊप: क्रोध हो आया। उसने मन ही मन किसी प्रकार गोरा को परास्त कर: की इच्छा की।

दोपहर के समय गोरा जब भोजन करने के लिए बैठा तं आनन्दमयी ने उससे धीरे से कहा—'आज सुबह विनय आया था। क्य तुम्हारी उससे भेंट नहीं हुई ?'

गोरा ने प्याली की ओर से सिर उठाये बिना उत्तर दिया—'हु थी।'

कुछ देर आनन्दमयी चुप रहीं, फिर बोलीं—'मैंने उसे ठहरने क कहा था। परन्तु न जाने क्यों वह अनमना होकर चला गया।'

गोरा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

आनन्दमयी बोलीं—'गोर के मन में न जाने कौन-सा कष्ट है पहिले मैंने कभी उसे इतना उदास नहीं देखा था। अब उसका दृश्य दे कर मुझे दुःख होता है।'

गोरा चुपचाप खाता रहा। आनन्दमयी उसे अत्यन्त स्नेह कर: थीं, इसीलिए मन-ही-मन डरती भी थीं। वह उनके आगे कभी अप मन का भाव प्रकट नहीं करता था और वे भी उससे अधिक हठ न

ग्नों की और दिन होता तो वे वहीं चुप रह जातीं, परन्तु आज उनके मन में बहुत पीड़ा हो रही थी, अतः कुछ देर ठहर कर फिर कहने लगीं—'देखो गोरा मैं एक बात कहती हूँ। तुम नाराज न होना। विनय तुम्हें प्राणों से अधिक चाहता है, तभी वह तुम्हारी सब बातें सह लेता है। परन्तु तुम जो उसे अपने मार्ग पर चलाने के लिए जबर्दस्ती करते हो, वह उसके लिए सुख की बात न होगी।'

गोरा ने बात टालने के लिए कहा—'माँ, थोड़ा दूध और ले आओ।'

बात वहीं समाप्त हो गई। भोजन के बाद आनन्दमयी तख्त के ऊपर बैठकर चुपचाप सिलाई का काम करने लगीं। घर के किसी नौकर के दुर्व्यवहार की चर्चा करती हुई महरियाँ उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए फर्श के ऊपर लेट गईं।

चिट्ठी-पत्री लिखने में गोरा ने बहुत समय लगा दिया। विनय सुबह यह देखकर लौट गया था कि गोरा उससे नाराज है। परन्तु गोरा इस समय उसके आने की फिर भी प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि वह जानता था कि विनय उसकी नाराजी दूर करने के लिए, उसके पास फिर अवश्य आयेगा।

परन्तु समय निकल जाने पर भी विनय न आया। गोरा भी लिखना छोड़कर उठने ही वाला था कि तभी महिम उसके पास आ पहुँचे। वे आते ही कुर्सी पर बैठ गए, फिर बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे बोल उठे—'गोरा, शशिमुखी के विवाह के विषय में तुमने क्या सोचा है।'

गोरा ने अब तक इस विषय पर ध्यान ही नहीं दिया था, अतः अपराधी की भाँति चुप रह गया।

महिम को जब कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने गोरा का संकट दूर करने के लिए विनय की बात छेड़ दी।

गोरा ने इस सम्बन्ध में, विनय का प्रसंग आने की बात कभी सोची तक न थी। क्योंकि वह तथा विनय यह निश्चय किए बैठे थे कि देश की सेवा में अपना जीवन अर्पण करने के लिए वे कभी विवाह नहीं करेंगे। इसका ध्यान आते ही गोरा बोला—'विनय विवाह क्यों करने लगा ?'

महिम—'मालूम होता है यह तुम्हारा कट्टर हिन्दूपन ही ऐसा कहलवा रहा है। तुम लाख चोटी रक्खो और तिलक लगाओ, परन्तु तुम्हारी हड्डियों में साहबी ढङ्ग भरा हुआ है। तुम्हें क्या पता कि शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण के पुत्र का विवाह होना आवश्यक है।'

महिमबाबू आजकल के लड़कों की भाँति न तो आचार का उल्लंघन करते थे और न शास्त्र की ही परवाह करते थे। होटल में भोजन करके बहादुरी दिखाना भी उन्हें प्रिय लगता था। गोरा की भाँति श्रुति-स्मृति को लेकर झगड़ना भी उन्हें प्रिय न था। परन्तु 'यस्मिन देशे यदाचरः' अर्थात् 'जैसा देश हो, वैसा ही करना चाहिये' सिद्धान्त को वे मानते थे। इसी कारण आज गोरा के सम्मुख अपना कार्य सिद्ध करने के लिए उन्हें शास्त्र की दुहाई देनी पड़ती थी।

यदि यह प्रस्ताव दो दिन पूर्व आया होता तो सम्भवतः गोरा उस पर ध्यान भी नहीं देता, परन्तु आज उसे यह अनुभव हुआ कि यह बात सर्वथा उपेक्षा के योग्य नहीं है। कम-से-कम इसी प्रस्ताव को लेकर उसे विनय के घर जाने का एक बहाना मिल रहा था।

अंत में गोरा ने कहा—'पहले यह तो देख लूँ कि विनय क्या चाहता है ?'

महिम—'अब देखने-सुनने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी किसी बात को वह टालेगा नहीं। केवल तुम्हारे कहने भर की देर है, वैसे वह राजी हो गया है।'

उसी समय सन्ध्या को गोरा विनय के घर जा पहुँचा। आँधी की भाँति घर में प्रवेश करने पर गोरा ने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। नौकर से पूछने पर पता चला कि विनय बाबू अठहत्तर नम्बर के घर में

गए हुए हैं।

यह सुनकर परेश बाबू तथा ब्राह्म समाज के विरुद्ध गोरा का हृदय एकदम विष से भर गया। वह मन में विद्रोह लिए तुरन्त परेशबाबू के घर की ओर चल दिया। वह चाहता था कि वहाँ पहुँचकर वह ऐसी बातें करे जिससे वहां ब्राह्म-परिवार में आग-सी लग जाये तथा विनय बेचैन हो उठे।

परेश बाबू के घर जाकर उसे मालूम हुआ कि वहां भी कोई नहीं है, सब उपासना मंदिर गए हैं। क्षण भर के लिए उसके हृदय मे सशय हुआ कि शायद विनय भी वहीं गया हो।

गोरा से तब रहा नहीं गया, वह अपनी आंधी के समान स्वाभाविक चाल से मन्दिर की ओर चल पड़ा। वहाँ द्वार पर पहुंच कर उसने देखा कि विनय वरदासुन्दरी के पीछे गाड़ी पर चढ़ रहा है, तथा खुली सड़क पर पराये परिवार की स्त्रियों के साथ निर्लज्ज की भांति एक ही गाड़ी में बैठ रहा है। वह मन-ही-मन बोला—'मूर्ख! स्वयं को नागपाश में इसी प्रकार फंसाया जाता है? इतनी जल्दी, इतने सहज सब हुआ तो शायद मेरी मित्रता भी अब भद्र पुरुष के साथ नहीं रही। वह आंधी की भांति वहाँ से लौट पड़ा तथा विनय की गाड़ी के अंधेरे के भीतर सड़क की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा।

वरदासुन्दरी समझ रही थी कि विनय के हृदय पर आचार्य के उपदेश का प्रभाव पड़ रहा है। इसीलिए उन्होंने उससे कोई बात नहीं की।

१४

गोरा रात को लौटकर अंधेरे में ही छत पर टहलने लगा।

तभी महिम ने हांफते हुए छत पर आकर कहा—'विनय के घर गये थे क्या?'

गोरा ने स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा—'शशिमुखी का विवाह । के साथ न हो सकेगा।'

'क्यों, क्या विनय नहीं चाहता ?'

'नहीं, मैं नहीं चाहता !'

महिम ने हाथ उल्टा करके कहा—'ओह, यह कोई नया झंझट उठा। तुम्हारी राय क्यों नहीं है, कारण तो बताओ ?'

गोरा—मैंने खूब विचार कर लिया है कि हम विनय को अपने समाज में नहीं रख सकते। उसके साथ हमारे घर की लड़की का विवाह नहीं हो सकेगा।'

मैंने बहुत से कट्टर हिंदू देखे, परन्तु तुम्हारे जैसा कोई नहीं मिला। तुम तो भविष्य देखकर विधान की व्यवस्था करते हो।'

फिर बहकते हुए बोले—'तुम कुछ भी क्यों न कहो, मैं लड़की को किसी मूर्ख व्यक्ति के हाथों न सौंपूंगा। तुम मेरी लड़की को समुद्र में क्यों डालना चाहते हो ? तुम्हारे तो सभी विचार उल्टे हैं।'

फिर महिम ने नीचे आकर आनन्दमयी से कहा—'मां, तुम्हीं अब गोरा को समझाओ।'

आनन्दमयी घबराकर बोलीं–'क्यों, क्या हुआ ?'

महिम—'शशिमुखी का विवाह विनय के साथ करने को, मैं लगभग एक बात पक्की कर चुका था। गोरा को भी राजी कर लिया था। परन्तु अब गोरा से मालूम हुआ है कि विनय में हिन्दूपन यथेष्ट नहीं है। इसी से विवाह का विरोध कर उठा है। अब तुम प्रयत्न करो कि लड़की ठिकाने लग जाए। ऐसा वर ढूंढ़ने से भी न मिलेगा।'

इतना कहकर उसकी जो बातचीत गोरा से हुई थी, वह सब सुना दी। विनय और गोरा का मतभेद गम्भीर होता जा रहा है, यह अनुमान कर आनन्दमयी का हृदय बेचैन हो उठा।

आनन्दमयी ने ऊपर पहुंचकर देखा कि गोरा टहलना समाप्त करके, एक कुर्सी पर बैठा हुआ तथा दूसरी पर पैर रखे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहा है। आनन्दमयी एक कुर्सी पर, उसी के पास जा

बैठी। तब गोरा ने कुर्सी से पैर हटाकर, माँ के मुँह की ओर देखा।

आनन्दमयी बोली—'बेटा ! मेरी एक बात मानो। विनय के साथ झगड़ा अथवा मनमुटाव मत करो। मेरी दृष्टि में तुम दोनों भाई हो, तुम्हारा पारस्परिक वियोग मुझे सहन न होगा।'

गोरा ने कहा—'यदि मित्र स्नेह का बन्धन काटना चाहे तो मैं उसके पीछे भागने में अपना समय नष्ट नहीं करूँगा।'

आनन्दमयी—'बेटा, मुझे नहीं पता कि तुम दोनों में क्या झगड़ा है, परन्तु यदि तुम्हें यह विश्वास है कि विनय स्नेह बन्धन तोड़ रहा है तो तुम्हारी मित्रता की शक्ति कहाँ रही ?'

'मैं सीधे मार्ग पर चलना पसन्द करता हूँ जिनका स्वभाव दो नावों पर पैर रखने का है, उन्हें मेरी नाव से पैर अवश्य हटाना पड़ेगा, चाहे इसमें मुझे कष्ट हो अथवा उसे।'

परन्तु हुआ क्या, यह तो बताओ ? वह ब्राह्म-लोगों के घर आना-जाता है, इतना ही तो उसका अपराध है न ?'

'इसमें और बातें हैं माँ !'

'होंगी, परन्तु मैं यही कहती हूँ कि सभी बातों में तुम जो जिद पकड़ते हो उसे छोड़ते नहीं हो। फिर विनय से ही इतना क्यों चिढ़ते हो ? उसे इतना सहज क्यों छोड़ देना चाहते हो ? तुम्हारा अविनाश यदि तुम्हारा दल छोड़ना चाहे तो क्या तुम उसे भी इसी प्रकार सहज में छोड़ दोगे ? क्या तुम्हारा मित्र होने के कारण ही विनय तुम्हारी दृष्टि में सबसे छोटा अथवा निकम्मा हो गया ?'

गोरा चुप होकर विचार करने लगा। आनन्दमयी की इस बात ने बैठे उसकी आँखें खोलदी थीं। अब तक वह सोचता आ रहा था कि मैं कर्तव्य के लिये अपने मित्र को छोड़ रहा हूँ परन्तु अब उसे अनुभव हुआ कि बात वास्तव में इससे बिल्कुल विपरीत है। मित्र के इस अभिमान में धक्का लगते ही, उसे कष्ट होने लगा वह सोच रहा था कि विनय को बांध रखने के लिए मित्रता का बंधन ही पर्याप्त है.

कोई अन्य उपाय करना मित्रता का अपमान करना होगा।

आनन्दमयी ने जैसे ही देखा कि उनकी बात गोरा के हृदय पर कुछ प्रभावोत्पादक हुई है, तभी वे और कुछ न कहकर धीरे-धीरे चलने को तैयार हुईं। गोरा ने भी अधिक कुछ न कहा। उसने चादर उठाकर कंधे पर डाल ली।

आनन्दमयी ने यह देखकर पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?'

गोरा ने कहा—'विनय के घर जा रहा हूँ।'

आनंदमयी और कुछ न पूछकर नीचे को चल दीं। तभी सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट सुनकर एकाएक रुक कर बोल उठीं—'लो, विनय तो स्वयं ही आ गया !'

विनय आ पहुँचा था। उसे देख कर आनंदमयी की आँखों में आँसू भर आये। वे प्रेमपूर्वक उसके शरीर पर हाथ फेरती हुई बोलीं—'विनय, क्या खाना खाकर नहीं आये ?'

'नहीं माँ !' विनय ने उत्तर दिया।

'तो आज तुम यहीं खा लेना।' वे बोलीं।

विनय ने गोरा के मुख पर दृष्टि डाली तो गोरा बोल उठा—'तुम्हारी उम्र बड़ी है। मैं तुम्हारे ही घर जा रहा था।'

आनन्दमयी के हृदय का बोझ जैसे उतर चुका था। वे शीघ्रता-पूर्वक नीचे चली गईं।

फिर दोनों मित्र बैठक में आ बैठे। गोरा के मन में जो आया, वही कहकर उसने मौन तोड़ा।

दोनों जब खाने के लिए बैठे, तब उनके वार्तालाप को सुनकर आनन्दमयी ने अनुभव किया कि अभी तक उनके हृदय साफ नहीं हुए हैं। अभी तक रुकावट मौजूद है। वे बोलीं— विनय, रात बहुत हो गई है। तुम आज यहीं सो जाओ। मैं तुम्हारे घर खबर भेजे देती हूँ।'

विनय ने गोरा के मुँह पर दृष्टि डालते हुए कहा—भुक्त्वा राजपदाचरेत्'—अर्थात् खाना खाकर राजाओं की भाँति रहे। खा पीकर

समाज तथा भविष्यत्-जीवन के सम्बन्ध में भी कितने ही संकल्प किये गए थे, परन्तु ऐसी बात आज से पहले कभी नहीं हुई थी। मानव-हृदय के सत्य का ऐसा प्रकाश गोरा के समक्ष कभी उपस्थित न हुआ था। इन वस्तुओं को वह कवि का चमत्कार मानकर, अभी तक इनकी उपेक्षा करता आया था। परन्तु आज इन्हें प्रत्यक्ष देखकर किसी प्रकार उनकी उपेक्षा नहीं कर सका। इतना ही नहीं, उसका मन चंचल हो उठा। सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उसकी नस-नस में एक अज्ञात शक्ति बिजली की भाँति दौड़ गई। उसके यौवन के अज्ञात भाग का एक पर्दा कुछ देर के लिए हट गया—और तब, शरत्काल की चाँदनी ने उस स्थान पर प्रवेश करके एक अपूर्व माया को फैला दिया।

चाँद किस समय पश्चिम की ओर झुका तथा कब छतों से नीचे उतर गया, इसे दोनों में से किसी ने न जाना। देखते ही देखते पूर्व की ओर आकाश में सफेदी छाने लगी। उस समय विनय का हृदय कुछ हल्का हुआ तो उसे लज्जा-सी आने लगी। कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—तुम्हारे निकट मेरी ये सभी बातें बहुत तुच्छ हैं। तुम मन-ही-मन मेरी निन्दा कर रहे होंगे। परन्तु मैं क्या करूँ? तुमसे कोई बात मैंने छिपाई नहीं है, आज भी नहीं छिपा सका। अब तुम समझो अथवा मत समझो।'

गोरा बोला—'विनय, मैं इन बातों को ठीक-ठीक समझ सका या नहीं, यह नहीं कह सकता। दो दिन पूर्व तुम भी इन्हें नहीं समझते थे। आज तक के ये आवेग तथा आवेश, अब तक बहुत तुच्छ लगते थे, इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं भी नहीं कह सकता कि वास्तव में यह विषय तुच्छ है। मैं ने इसकी शक्ति तथा गम्भीरता को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा, इसलिए मुझे यह सब मिथ्या-सा प्रतीत होता था। परन्तु तुम्हारे इतने दीर्घ अनुभव को मैं कैसे कहूँ? सत्य बात तो यह है कि जो व्यक्ति जिस सीमा में रहकर काम करता है, उससे बाहर का पदार्थ यदि उसकी दृष्टि में तुच्छ न जान पड़े तो वह कोई काम नहीं कर

समाज तथा भविष्यत्-जीवन के सम्बन्ध में भी कितने ही संकल्प किये गए थे, परन्तु ऐसी बात आज से पहले कभी नहीं हुई थी। मानव-हृदय के सत्य का ऐसा प्रकाश गोरा के समक्ष कभी उपस्थित न हुआ था। इन वस्तुओं को वह कवि का चमत्कार मानकर, अभी तक इनकी उपेक्षा करता आया था। परन्तु आज इन्हें प्रत्यक्ष देखकर किसी प्रकार उनकी उपेक्षा नहीं कर सका। इतना ही नहीं, उसका मन चंचल हो उठा। सारे शरीर में रोमांच हो आया। उसकी नस-नस में एक अज्ञात शक्ति बिजली की भाँति दौड़ गई। उसके यौवन के अज्ञात भाग का एक पर्दा कुछ देर के लिए हट गया—और तब, शरत्काल की चाँदनी ने उस स्थान पर प्रवेश करके एक अपूर्व माया को फैला दिया।

चाँद किस समय पश्चिम की ओर झुका तथा कब छतों से नीचे उतर गया, इसे दोनों में से किसी ने न जाना। देखते ही देखते पूर्व की ओर आकाश में सफेदी छाने लगी। उस समय विनय का हृदय कुछ हल्का हुआ तो उसे लज्जा-सी आने लगी। कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—तुम्हारे निकट मेरी ये सभी बातें बहुत तुच्छ हैं। तुम मन-ही-मन मेरी निन्दा कर रहे होगे। परन्तु मैं क्या करूँ? तुमसे कोई बात मैंने छिपाई नहीं है, आज भी नहीं छिपा सका। अब तुम समझो अथवा मत समझो।'

गोरा बोला—'विनय, मैं इन बातों को ठीक-ठीक समझ सका या नहीं, यह नहीं कह सकता। दो दिन पूर्व तुम भी इन्हें नहीं समझते थे। आज तक के ये आवेग तथा आवेश, अब तक बहुत तुच्छ लगते थे, इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं भी नहीं कह सकता कि वास्तव में यह विषय तुच्छ है। मैं ने इसकी शक्ति तथा गम्भीरता को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा, इसलिए मुझे यह सब मिथ्या-सा प्रतीत होता था। परन्तु तुम्हारे इतने दीर्घ अनुभव को मैं कैसे कहूँ? सत्य बात तो यह है कि जो व्यक्ति जिस सीमा में रहकर काम करता है, उसमे बाहर का पदार्थ यदि उसकी दृष्टि में तुच्छ न जान पड़े तो वह कोई काम नहीं कर

विनय किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध, में यह बातें कर रहा है, ऐसा समझ में नहीं आता था, जैसे वह मुँह पर किसी का नाम न ला सकता हो। संकेत में भी किसी का नाम बताने में वह कुण्ठित हो रहा था। वह मन के जिस भाव की आलोचना कर रहा था, मानो उसके निकट वह अपने को अपराधी अनुभव कर रहा था। वह इसे एक प्रकार का अन्याय अथवा किसी के प्रति चोरी छिपे अपमान करना मानता था, परन्तु आज वह शान्त आकाश के नीचे इस रात के समय, अपने मित्र के सम्मुख इस अन्याय को छिपा न सका।

'आह! वह मुख कैसा है, जैसे पूर्णिमा का निष्कलंक चन्द्रमा हो। उसके निर्मल प्राणों की ज्योति उसके मस्तक की कोमलता में प्रकट एवं विकसित हो रही है। उसका मुस्कराता हुआ चेहरा कमल के समान खिल रहा है। उस मुख की उपमा चन्द्रमा अथवा कमल, किससे दी जाये? उसकी वह चिकुर राशि, दोनों कटीले नेत्र तथा सीधी चितवन चित्त को चुराये लेती है। वह मधुर मूर्ति मानो मेरे नेत्रों के सम्मुख खड़ी है और मुझसे वार्तालाप कर रही।' विनय अपने जीवन तथा यौवन को धन्य मान उठा। संसार के सहस्त्रों व्यक्ति जिसे बिना देखे ही अपना जीवन समाप्त कर बैठते हैं, उसी को अपनी आंखों के समक्ष इस प्रकार मूर्तिमान देखने से बढ़कर और क्या बात हो सकती थी?'

'परन्तु यह कैसा पागलपन, कैसा अन्याय है? कुछ भी क्यों न हो, परन्तु अब किसी प्रकार इसे मन में नहीं रोका जा सकता। यदि कोई इस प्रेम-प्रवाह का किनारा बतादे, तो अच्छा रहे अन्यथा यदि उसे किसी ने उसमें धकेल दिया अथवा वह स्वयं ही धँस गया, तो फिर बाहर निकलने का क्या उपाय होगा? कठिनाई तो यह है कि उससे बहार निकलने की फिर इच्छा ही न होगी। जीवन के समस्त संस्कार तथा मर्यादा को खो देना ही, जीवन का सार्थक परिणाम जान पड़ता है।'

गोरा चुपचाप सुन रहा था। इस छत पर ऐसी ही चांदनी रात के सन्नाटे में इन दोनों मित्रों में कितनी ही बार ऐसी बातें हुई हैं। साहित्य, काव्यालाप तथा लोक-चरित्र की कितनी ही आलोचनायें हुई हैं,

आज तथा भविष्यत्-जीवन के सम्बन्ध में भी कितने ही संकल्प किये हुए थे, परन्तु ऐसी बात आज से पहले कभी नहीं हुई थी। मानव-हृदय सत्य का ऐसा प्रकाश गोरा के समक्ष कभी उपस्थित न हुआ था। इन वस्तुओं को वह कवि का चमत्कार मानकर, अभी तक इनकी उपेक्षा करता आया था। परन्तु आज इन्हें प्रत्यक्ष देखकर किसी प्रकार उनकी उपेक्षा नहीं कर सका। इतना ही नहीं, उसका मन चंचल हो उठा। सारे शरीर में रोमांच हो आया। उसकी नस-नस में एक अज्ञात शक्ति बिजली की भाँति दौड़ गई। उसके यौवन के अज्ञात भाग का एक पर्दा कुछ देर के लिए हट गया—और तब, शरत्काल की चाँदनी ने उस स्थान पर प्रवेश करके एक अपूर्व माया को फैला दिया।

चाँद किस समय पश्चिम की ओर झुका तथा कब छतों से नीचे उतर गया, इसे दोनों में से किसी ने न जाना। देखते ही देखते पूर्व की ओर आकाश में सफेदी छाने लगी। उस समय विनय का हृदय कुछ हल्का हुआ तो उसे लज्जा-सी आने लगी। कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—तुम्हारे निकट मेरी ये सभी बातें बहुत तुच्छ हैं। तुम मन-ही-मन मेरी निन्दा कर रहे होगे। परन्तु मैं क्या करूँ? तुमसे कोई बात मैंने छिपाई नहीं है, आज भी नहीं छिपा सका। अब तुम समझो अथवा मत समझो।'

गोरा बोला—'विनय, मैं इन बातों को ठीक-ठीक समझ सका या नहीं, यह नहीं कह सकता। दो दिन पूर्व तुम भी इन्हें नहीं समझते थे। आज तक के वे आवेग तथा आवेश, अब तक बहुत तुच्छ लगते थे, इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं भी नहीं कह सकता कि वास्तव में यह विषय तुच्छ है। मैं ने इसकी शक्ति तथा गम्भीरता को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा, इसलिए मुझे यह सब मिथ्या-सा प्रतीत होता था। परन्तु तुम्हारे इतने दीर्घ अनुभव को मैं कैसे कहूँ? सत्य बात तो यह है कि जो व्यक्ति जिस सीमा में रहकर काम करता है, उसमे बाहर का पदार्थ यदि उसकी दृष्टि मे तुच्छ न जान पड़े तो वह कोई काम नहीं कर

सकता। यही कारण है कि ईश्वर ने मनुष्य की दृष्टि में दूर की वस्तु छोटी करदी है। वह सब वस्तुओं को वास्तविक सत्य के रूप में दिखा कर विपत्ति में नहीं डालना चाहता। हम लोगों को भी एक दिशा निश्चित कर, उसी ओर जाना होगा। सब ओर दौड़ने की आदत छोड़नी पड़ेगी। किसी एक मार्ग का अवलम्बन करना ही ठीक है, अन्यथा कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होगी। तुम जिस स्थान पर खड़े होकर सत्य की जिस मूर्ति को देख रहे हो, मैं उस मूर्ति का अभिवादन करने के लिये उसके पास तक न पहुंच सकूंगा। ऐसा करने से तो मैं अपने जीवन के सत्य को भी खोदूंगा, क्योंकि इस ओर सत्य और उस ओर असत्य है।'

विनय बोला—'सत्य तुम्हारी ओर तथा असत्य मेरी ओर रहे। मैं स्वयं को पूर्ण करना चाहता हूँ, परन्तु तुम अपना जीवन नष्ट करने को उद्यत हो।'

गोरा कुछ गरम होकर बोला—'विनय, तुम बात-बात में कविता मत छांटो, मैं तुम्हारी बातें सुनकर समझ गया हूँ कि तुम अपने जीवन में एक निश्चित सत्य के समक्ष मुँह किये खड़े हो। उसके साथ कपट भाव से काम नहीं चलेगा। सत्य की रक्षा करने के लिए उसके समीप आत्म-समर्पण करना पड़ेगा।'

'मैं जिस समाज की परिधि में हूं, उस समाज को, सत्य को मैं भी किसी दिन इसी प्रकार देखूं यही मेरी इच्छा है। तुम इतने दिन तक कविताओं में पढ़कर प्रेम के परिचय से तृप्त बने रहे। मैंने पुस्तकों में वर्णित स्वदेश-प्रेम को जाना है। आज जब तुम्हारे समक्ष प्रेम प्रकट हुआ, तब तुम समझ सके हो कि पुस्तकों में पढ़े प्रेम की अपेक्षा यह कितना सत्य है। इसी प्रकार जिस दिन मेरे समक्ष स्वदेश-प्रेम पूरी तरह से प्रकट होगा, उस दिन वह मेरे प्राण, मांस, शरीर आकाश तथा विकास सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेगा।'

'स्वदेश-प्रेम' की वह सत्यमूर्ति कितनी आश्चर्यजनक होगी! तुम्हारी बात सुनकर आज मैं भी मन-ही-मन कुछ अनुभव करने लगा

। तुम्हारे जीवन के इस अज्ञान ने मेरे हृदय को बड़ी ठेस पहुँचाई है। मने जो अनुभव किया, उसे मैं भी अनुभव कर सकूँगा या नहीं—इसे । नहीं कह सकता, परन्तु तुम्हारे अन्तःकरण द्वारा मैंने उसके स्वाद का हुत कुछ अनुभव कर लिया है।'

इतना कहकर गोरा चटाई से उठकर छत पर टहलने लगा। वँ दिशा की स्वच्छता उसके समीप एक प्राकृतिक वाक्य की भाँति प्रकट । उठी। मानो किसी तपोवन से एक वेदमन्त्र उसके समक्ष प्रत्यक्ष पस्थित हो गया हो। उसके प्राण चेतना, तथा सम्पूर्ण शक्ति, मानो भी उस परमानंद में निमग्न हो गये।

कुछ समय बाद जब वह प्रकृतिस्थ हुआ तो कहने लगा—वेनय तुम्हें इस प्रेम को भी लाँघकर मेरा साथ देना होगा। मुझे जो हाशक्ति अपनी ओर खींच रही है, वह कितनी प्रभावशालिनी है, यह मैं तुम्हें किसी दिन दिखाऊँगा। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि अब मैं तुम्हें किसी और के हाथों में न खेलने दूँगा—तुम्हें छोड़ूँगा नहीं।'

विनय भी चटाई छोड़कर उसके पास आ खड़ा हुआ। गोरा ने से दोनों हाथों से आलिङ्गनबद्ध करते हुए उत्साह के साथ कहा—'हम दोनों एक साथ जियेंगे, मरेंगे तथा एक होकर रहेंगे। हमें कोई एक-दूसरे से पृथक नहीं कर सकता।'

गोरा के इस गम्भीर उत्साह का वेग, विनय के हृदय में भी हिलोरें लेने लगा। उसने बिना कुछ कहे स्वयं को गोरा के आकर्षण में छोड़ दिया।

गोरा तथा विनय पास-पास घूमने लगे। पूर्व दिशा में अब लालिमा छा चुकी थी। गोरा बोला—'भाई, मैं अपनी देवी को जिस स्थान पर देख रहा हूँ, वहाँ कृत्रिम सौन्दर्य के लिए स्थान नहीं है। वहाँ दुर्भिक्ष, दरिद्रता, कष्ट तथा अपमान का निवास है। वहाँ गीत गाकर तथा फूल चढ़ा कर पूजा करने से कोई लाभ नहीं है, वहा प्राण देकर पूजा करनी पड़ेगी। देवी की आराधना के लिए बलिदान की आवश्यकता होती है। उस पूजा में मुझे जितना आनन्द मिलता है, उतना

अन्यत्र कहीं नहीं है। वहाँ शक्ति भर जाना पड़ेगा तथा सर्वस्व देना होगा। वहाँ माधुर्य नहीं, अपितु एक दुर्लभ साहस का आविर्भाव होता है।'

'उस वीणा के भीतर ऐसी कठिन झङ्कार है जिससे सातों स्वर एक साथ बोल उठते हैं तथा तार टूट कर गिर जाते हैं। उसके स्मरण मात्र से ही मेरा हृदय हर्ष से भर जाता है। मैं सोचता हूँ—यह आनन्द है, वास्तविक आनन्द है, यही जीवन का ताण्डव-नृत्य है। मैं अरुणिम आकाश में एक बन्धनहीन ज्योतिमय भविष्य को देख रहा हूँ। देखो, मे हृदय के भीतर यह कौन डमरू बजा रहा है?'

इतना कहकर गोरा ने विनय का हाथ अपनी छाती पर र लिया।

विनय बोला—'मैं तुम्हारे ही मार्ग पर चलूँगा। परन्तु इत कहे देता हूँ कि मुझे फिसलने मत देना। तुम जिधर जाओ, उसी ओ मुझे भी विधाता की भाँति निर्दय बनकर, अपने साथ खींच ले जाना हम दोनों का मार्ग एक होगा। परन्तु हम दोनों की शक्ति समा नहीं हैं।'

गोरा ने कहा—'हम दोनों की प्रकृति में अन्तर है, परन्तु उस महान आनन्द से अपनी प्रकृति को एक कर देंगे। हम अ सामान्य प्रेम की अपेक्षा महान् प्रेम में मिलकर एक हो जायेंगे। जब वह अखण्ड प्रेम सत्य रूप में परिणित न होगा, तब तक हम दोनों बीच अनेक आघात-प्रतिघात तथा विरोध चलते रहेंगे। तदुपरान्त सब कुछ भूलकर, आत्मत्याग की अटल शक्ति से मिलकर एक जायेंगे। वह निश्चल आनन्द ही हमारी मित्रता का अन्तिम परिण होगा।'

विनय गोरा का हाथ पकड़कर बोला—'सच?

गोरा ने कहा—'उस समय तक मैं तुम्हें अनेक कष्ट दूँगा। सभी अत्याचार तुम्हें सहन करने होंगे। क्या हम अपनी मित्रता जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक नहीं निभा सकेंगे? जो होगा, उसे ब

ए चलेंग, फिर भी यदि मित्रता न रहे तो उपाय ही क्या है ! परन्तु दि वह बची रही तो एक-न-एक-दिन सफल अवश्य होगी।'

इसी समय दोनों को पीछे से किसी के पैरों की आहट सुनाई ी। चौंककर देखा कि आनन्दमयी छत पर आ गई हैं। उन्होंने दोनों ो हाथ पकड़कर कमरे की ओर जाते हुए कहा—'चलो रे, रात भर ागते ही रहे हो, अब सो जाओ।'

दोनो बोले—'मां, अब नींद न आयेगी।'

'अवश्य आयेगी'—कहकर आनन्दमयी दोनों को कमरे के भीतर ा पहुँची। फिर दोनो को बिस्तर पर सुलाकर कमरे का दरवाजा बन्द र दिया तथा स्वयं सिरहाने बैठकर पखा झलने लगीं।

विनय बोला—'मां, तुम यहां पंखा झलोगी तो हम सो न कोंगे।'

आनन्दमयी ने कहा—'देखूं तो सही, क्यों न सो सकोगे ? मेरे चले जाने पर तुम फिर बातें करने लगोगे, पर मेरे रहते यह न हो केगा।'

थोड़ी देर में जब दोनो सो गए, तब आनन्दमयी धीरे-धीरे कमरे े बाहर निकल आईं। सीढ़ियों से उतरते समय उन्होंने देखा कि महिम रर आ रहे है। आनन्दमयी बोलीं—'अभी लौट चलो। कल सारी रात े लोग जगे हैं। मैं उन्हें अभी-अभी सुलाकर आ रही हूं।'

महिम ने कहा—'वाह, मित्रता वास्तव मे यही है। कुछ विवाह ी बात भी चली थी क्या ?'

आनन्दमयी—'मुझे नहीं मालूम।'

महिम—'मालूत होता है, मामला जम गया है। भला, कब उठेंगे ? विवाह शीघ्र न होने पर और भी अनेक विघ्न उठ सकते हैं।'

आनन्दमयी ने हँसते हुए कहा—'तुम दोनो को सोने दो। कोई विघ्न न पड़ेगा। वे आज दिन में ही सोकर उठ आये गे।'

१५

वरदासुन्दरी बोली—'आप सुचरिता का विवाह करेंगे अथः

परेशबाबू ने अपने स्वाभाविक गम्भीर भाव से पकी दाढ़ी पर कुछ देर हाथ फेरते हुए कोमल स्वर में कहा—'कहीं लड़का भी तो मिले ?'

वरदा०—'क्यों, पानूबाबू के साथ उसके विवाह का क्या हुआ। हम सभी इस बात को मानते हैं और सुचरिता भी जानती है।'

परेश०—'परन्तु मैं समझता हूँ कि सुचरिता पानूबाबू को नह चाहती।'

वरदा०—'मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। मैं सुचरि को अपनी पुत्रियों से भिन्न नहीं समझती। इसलिए मैं यह कहती हूँ कि पानबाबू कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं। उनके समान धार्मिक व्यक्ति य उसे चाहते हों, तो क्या यह कोई कम सौभाग्य की बात है इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। मेरी लाव यद्यपि देखने में उससे कहीं अच्छी है, परन्तु मैं आपको विश्व दिलाये देती हूँ कि हम लोग उसका विवाह जहाँ करना चाहें उसमें यह 'नाहीं' नहीं करेगी। अब यदि आप सुचरिता के दिम को आसमान पर चढ़ादें तो फिर उसके लिए वर मिलना कठिन हो जायेगा।'

परेश बाबू चुप रहे। वे वरदासुन्दरी से विवाद नहीं करते थे- खासकर सुचरिता के विष में।

सतीश को जन्म देकर जब सुचरिता की माँ का स्वर्गवास हुअ उस समय सुचरिता की आयु सात वर्ष की थी। उस समय उसके पि रामशरण हवलदार पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्राह्मसमाज में जा मि थे। तत्पश्चात् लोगों के अत्याचारों से परेशान होकर, वे ढाका च गये। जिस समय वे वहाँ के डाकघर में काम करते थे, उस समय उन परेशबाबू से गहरी मित्रता हो गई। सुचरिता भी तभी से परेशबाबू अपने पिता के समान मानने लगी थी।

फिर अचानक रामशरण की मृत्यु हो गई। वह अपने पुत्र व

पुत्री को परेशबाबू को सौंप गये थे, तभी से सतीश और सुचरिता परेश बाबू के घर रहने लगे थे।

पाठक यह जान ही चुके हैं कि हारानचन्द्र उर्फ पानबाबू बड़े उत्साही ब्राह्म थे। ब्राह्मसमाज में सभी काम उनके हाथ में थे। वे रात्रि-पाठशाला के शिक्षक, समाचार-पत्र के सम्पादक तथा विद्यालय के मन्त्री थे। वे कभी शिथिल नहीं होते थे। उनके प्रति सबके मन में यह विश्वास था कि वे किसी दिन ब्राह्म समाज में ऊँचा पद प्राप्त करेंगे। अँग्रेजी भाषा पर उनके अधिकार तथा दर्शनशास्त्र की पारदर्शिता के सम्बन्ध में उनका यश छात्रों द्वारा ब्राह्मसमाज के बाहर भी दूर-दूर तक फैल चुका था। इन्हीं सब गुणों के कारण, सुचरिता भी अन्य ब्राह्मों की भाँति हारानबाबू पर विशेष श्रद्धा रखती थी। ढाका से जब वह कलकत्ते आई तब हारानबाबू का परिचय प्राप्त करने के लिए उसके हृदय में एक विशेष उत्सुकता भी थी।

कुछ दिनों बाद, परिचय, परिचय तक ही सीमित न रहा। हारानबाबू सुचरिता के प्रति अपने हृदय का प्रेम निःसंकोच रूप से प्रकट करने लगे। उन्होंने सुचरिता की सम्पूर्ण कमियों को दूर करने में तथा उसके उत्साह को बढ़ाने में ऐसा ध्यान दिया कि सब लोग यह स्पष्टरूप से अनुभव करने लगे कि सुचरिता को अपनी जीवन-संगिनी बनाने की उनकी प्रबल इच्छा है।

सुचरिता को जब यह पता चला कि उसने हारानबाबू के हृदय पर विजय प्राप्त करली है, तब वह मन-ही-मन गर्व का अनुभव करने लगी।

कन्या-पक्ष की ओर से कोई प्रस्ताव न रक्खे जाने पर भी, जब सब लोगों ने यह निश्चय समझ लिया कि सुचरिता का विवाह हारान-बाबू के साथ ही होगा, तब सुचरिता ने भी मन-ही-मन उसमें योग दिया था। सुचरिता चाहती थी कि जिन हारानबाबू ने ब्राह्मसमाज के उत्कर्ष के लिये अपना जीवन उत्सर्ग किया है, वह उनके प्रत्येक कार्य में सहायता पहुँचाये। विवाह की कल्पना उसे भय, आवेग तथा कठि-

उत्तरदायित्व द्वारा निर्मित पत्थर के दुर्ग की भांति अमोघ प्रतीत होती थी। उस दुर्ग पर अधिकार करना कोई सरल बात न थी।

इस अवस्था में यदि विवाह हो जाता तो कन्या-पक्ष वाले उसे अपना सौभाग्य मानते, परन्तु हारानबाबू अपने महान जीवन की जिम्मेदारी को इतना ऊँचा समझते थे कि केवल प्रेम से आकृष्ट होकर ही विवाह कर लेना उन्हें उचित न लगता था। इस विवाह से ब्राह्म-समाज को कितना लाभ पहुँच सकेगा, इस दृष्टि से वे सुचरिता की परीक्षा लेने लगे।

इस प्रकार किसी की परीक्षा लेने में अपनी परीक्षा भी देनी पड़ती है। हारानबाबू परेशबाबू के घर में घुल-मिल गये। यहाँ तक कि 'पानूबाबू' के जिस नाम से उन्हें उनके घर वाले पुकारते थे, उनके प्रति उसी नाम का व्यवहार परेशबाबू के घर में भी होने लगा। अब उन्हें अंग्रेजी भाषा के भण्डार, तत्वज्ञान के आधार तथा ब्राह्मसमाज के निमित्त मंगल-अवतार के रूप में देखना असम्भव हो गया था। वे मनुष्य भी हैं, यह परिचय सब परिचयों से अधिक घनिष्ट हो उठा। तब वे केवल श्रद्धा से पात्र न रहकर, अच्छे-बुरे लगने वाले भाव के वशीभूत भी हो गये।

हारानबाबू के जिस भाव ने सुचरिता को पहले अपनी ओर आकर्पित किया था, वही भाव अधिक निकट आने पर सुचरिता के हृदय पर चोट पहुंचाने लगा। ब्राह्मसमाज के भीतर जो सत्य, शिव तथा सुन्दर था, उसकी संरक्षता का भार हारानबाबू ने ले रक्खा था इसीलिए, उन्हें अत्यन्त असंगत रूप में तुच्छ देखना पड़ा। सत्य के साथ मनुष्य का तथार्थ सम्बन्ध भक्तिमय होता है, वह स्वभाव का विनम्र बना देता है। परन्तु जहां मनुष्य विनम्र न बन कर उद्धत तथा अहंकारी बन जाता है, वहां वह अपनी तुच्छता को उस सत्य की तुलना में अधिक स्पष्ट कर बैठता है। हारानबाबू का यही भेद परेशबाबू के साथ सुचरिता ने देखा था तथा मन-ही-मन उसकी आलोचना भी की थी। परेशबाबू के शान्त

ात्य का महत्व दृष्टिगोचर होता था, परन्तु
नहीं थी। ब्राह्मसमाज के वस्त्रों में ढकी
ाद्ध करने की उग्र प्रवृत्ति उनका अशोभन

ाई पर दृष्टिपात करते हुए, जिस समय
ाद्ध करना चाहते थे, उस समय चोट खाई
र मसोस कर रह जाती थी। वह उनके
र पाती थी। उन दिनों शिक्षित बङ्गालियों
: पठन-पाठन का प्रचलन नहीं था, परन्तु
ा को गीता पढ़ाते थे। कालीसिंहबाबू द्वारा
बंगला-अनुवाद भी उन्होंने सुचरिता को

बातें अच्छी नहीं लगती थीं। वे ब्राह्म-
ग्रन्थों का बहिष्कार करने के पक्षपाती थे।
ी नहीं पढ़ा था। वे रामायण महाभारत
कुसंस्कारजनिक हिन्दुओं के ढोंग ग्रन्थ
: रखना चाहते थे। धर्मशास्त्रों में केवल
ा। शास्त्र-चर्चा तथा अनेक बातों में परेश-
ामा में बँधकर ही नहीं रहे थे। यह बात
लगती थी। परन्तु सुचरिता को यह कभी
: प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में परेशबाबू के इस
। जब कभी ऐसी स्पर्द्धा का असर आता
ारानबाबू गिर जाते थे। यहाँ तक कि
रिता के हृदय में अश्रद्धा उत्पन्न हो गई

हृदय हारानबाबू की इस सङ्कीर्णता के कारण
रहा था, फिर भी किसी के मन में यह
ववाह हारानबाबू से न होगा। परेशबाबू भी

उसी दिन चाय पीने की मेज पर, सुचरिता का व्यवहार देख कर परेशबाबू चकित रह गए। इधर बहुत दिनों से सुचरिता ने हारान बाबू का इतना सत्कार नहीं किया था। यहां तक कि जिस समय हारान बाबू जाने के लिए प्रस्तुत हुए, उस समय सुचरिता ने लावण्य की नई शिल्प-कथा का परिचय देने के लिए, उनसे कुछ देर ठहरने का अनुरोध किया।

परेशबाबू निश्चित हो गए। उनके मन में जो सन्देह उठा था, वह शान्त हो गया। उन्होंने सोचा—शायद वह मेरी भूल थी। इसके लिए वह मन ही मन हँसे भी उन्होंने समझा—इन दोनों में कोई कलह हो गई होगी जो अब शान्त हो गई है।

उसी समय हारानबाबू ने परेशबाबू से विवाह का प्रस्ताव भी किया। वे बोले—'मैं चाहता हूं कि अब इस सम्बन्ध में अधिक विलम्ब न किया जाये।'

परेशबाबू को कुछ अचरज हुआ। वे बोले—'आपकी राय में लड़कियों का विवाह अठारह वर्ष की आयु से पहले होना ही नहीं चाहिये। इस सम्बन्ध में आपने समाचार-पत्र में लेख भी तो लिखे थे?'

हारानबाबू ने कहा—'परन्तु यह नियम सुचरिता के लिए नहीं है। उसके मन की स्थिति इस आयु में भी ऐसी है, जो बड़ी उम्र की लड़कियों में भी नहीं पाई जाती।'

परेशबाबू दृढ़तापूर्वक बोले—'पानूबाबू, यह सत्य ही क्यों न हो, परन्तु मेरी दृष्टि में विवाह करने में कोई अहितकर कारण नहीं है। इसीलिए आपके मतानुसार विवाह योग्य अवस्था हो जाने तक ठहरना ही हमारा कर्तव्य है।'

हारानबाबू अपने मन की दुर्बलता प्रकट हो जाने के कारण लज्जित से होते हुए बोले—'कर्तव्य तो वास्तव में यही है। मेरी इच्छा केवल यही है कि एक दिन सब समाज को बुलाकर, ईश्वर का नाम ले, इस सम्बन्ध को पक्का कर दिया जाये।'

परेशबाबू ने उत्तर दिया—'हां, यह प्रस्ताव वास्तव में प्रशंसनीय है।'

१६

दो-तीन घण्टे सोने के बाद गोरा की नींद टूटी तो उसने देखा कि विनय उसके पास ही सो रहा है। स्वप्न में किसी प्रिय वस्तु के खो जाने पर, उसे जाग्रत अवस्था में ज्यों की त्यों देखने पर जो आनन्द आता है, वही गोरा को भी हुआ। विनय को छोड़ देने से उसका जीवन कितना सारहीन हो जाता, इसका अनुभव गोरा को सोकर उठने के बाद हुआ। वह आनन्द के आवेग में विनय को हाथ से हिलाकर जगाते हुए बोला—'चलो, आज कार्य करना है।'

गोरा का प्रतिदिन का कार्य था कि वह पड़ोस के सभी छोटे लोगों के घर जाता था। उनका उपकार करने अथवा उपदेश देने के लिए नहीं, अपितु केवल भेंट करने के लिए ही। शिक्षित समाज में वह इस प्रकार आता-जाता था। वे गरीब लोग गोरा को 'दादाजी' कहते और हाथ में हुक्का देकर आदर करते थे। उनका आतिथ्य ग्रहण करने के लिए ही गोरा ने तम्बाकू पीने की आदत डाल ली थी।

इस समाज में गोरा का सबसे बड़ा भक्त था—'नन्द'। वह एक बढ़ई का लड़का था। उम्र बाईस वर्ष थी। अपने पिता की दुकान में लकड़ी के सन्दूक बनाया करता था। नन्द की भांति बन्दूक का अचूक निशाना लगाने वाला कोई शिकारी भी न था। गोरा ने अपने खिलाड़ी समाज में प्रतिष्ठित परिवार के छात्रों के साथ-साथ इन बढ़ई तथा लुहारों के लड़कों को भी मिला लिया था। इस सम्मिलित दल में खेल तथा व्यायाम के करतबों में नन्द सबसे अधिक होशियार था। इस कारण कई कुलीन छात्र उससे द्वेष भी रखते थे, परन्तु गोरा के भय से सभी उसे अपना सरदार स्वीकार करते थे।

कई दिन हुए, रुखानी पर गिर पड़ने से नन्द के पैर में घाव हो गया था, इसलिए वह खेलने न आ सका। विनय के कार

हृदय कई दिनों से व्याकुल था, अतः वह [illegible] नहीं जा सका था। आज वह विनय को साथ ले बढ़ई टोले में जा पहुँचा।

एक दो-मंजिले मकान के द्वार पर पहुँचते ही, उसे स्त्रियों के रोने का शब्द सुनाई दिया। नन्द का पिता अथवा अन्य कोई भाई-बन्धु उस समय घर पर नहीं था। पास में एक तमाखू की दूकान थी। दूकानदार ने उसे बताया—'आज सवेरे ही नन्द की मृत्यु हो गई, सब लोग उसका दाह-संस्कार करने के लिए गये हैं।'

'ऐसा स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी युवक नन्द आज सवेरे मर गया' यह सुनते ही गोरा के शरीर में बिजली दौड़ गई। वह पत्थर की मूर्ति के समान अचल खड़ा रहा। यद्यपि नन्द एक साधारण बढ़ई का लड़का था, परन्तु उसके अभाव में गोरा को सारा संसार सूना दिखाई देने लगा। उसकी मृत्यु पर शोक करने वालों की संख्या कम थी, परन्तु गोरा के हृदय की दशा एकदम विचित्र हो गई। नन्द जैसा दृढ़-जीवन उसने आज तक नहीं देखा था।

यह पूछने पर कि उसकी मृत्यु कैसे हुई, उसे पता चला कि उसे पक्षाघात रोग हो गया। नन्द के पिता ने डाक्टर बुलाकर उसे दिखाना चाहा था परन्तु उसकी मां ने यह कह कर रोक दिया था कि उसके बेटे को भूत लगा है। भूत झाड़ने वाला ओझा रात भर बैठा हुआ झाड़-फूंक करता रहा परन्तु वह भूत ऐसा प्रबल था कि आखिर नन्द को पकड़ कर ले ही गया। बीमारी के दौरान नन्द ने गोरा को खबर भेजने के लिए घर वालों से कहा था, परन्तु उन्होंने यह सोचकर खबर नहीं दी कि वह जाते ही डाक्टरी इलाज कराने की जिद करने लगेगा।

वहाँ से लौटते समय विनय ने कहा—'मूर्खता है! क्या रोग था और क्या इलाज हुआ!'

गोरा बोला—'इस मूर्खता की बात को एक ओर रखकर तथा स्वयं को हमसे अलग समझकर, तुम शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा न करो।

यदि तुम इसे अच्छी तरह समझ पाते तो कभी इसे मामूली बात कहकर भुला देने की चेष्टा न करते।'

मन की उत्तेजना के समान गोरा के पैरों की गति भी बढ़ने लगी। विनय चुपचाप उसके साथ तेजी से चलने लगा।

कुछ देर तक चुपचाप चलने के बाद गोरा ने कहा—'नहीं, मैं इस विषय को सहसा नहीं सह सकूँगा। यह जो दुष्ट बाबू ओझा मेरे मन्द को मार गया है, उसकी सख्त चोट मेरे हृदय पर लगी है—सारे देश को लगी है। मैं इन बातों को साधारण समझ कर छोड़ दूँगा तो सारे देश का अनिष्ट होगा।'

इतने पर भी जब विनय ने कुछ न कहा, तब गोरा गरजता हुआ बोला—'विनय तुम अपने मन में जो सोच रहे हो मैं उसे अच्छी भाँति समझ रहा हूँ। तुम सोच रहे हो कि इसका प्रतिकार करने में अभी बहुत समय है, परन्तु मैं यह नहीं मानता। मेरे देश पर जो दुःख पड़ रहा है, उस सबका प्रतिकार अवश्य है, चाहे वह कठिन ही क्यों न हो। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वह प्रतिकार हमीं लोगों के पास है। इसलिए मैं सब ओर से दुःख दुर्गति तथा अपमान को सह रहा हूँ।'

विनय ने कहा—'इस देशव्यापी दुर्गति के समक्ष मैं अपना विश्वास स्थिर रखने में असमर्थ हूँ।'

गोरा—'दुर्गति अवश्य तुम सदा रहेगा, मैं इसे स्वीकार नहीं करता। तमाम संसार की रक्षण-शक्ति तथा ज्ञान-शक्ति उसे भीतर अथवा बाहर से केवल आघात ही पहुँचा रही है। विनय, मैं तुमसे कहता हूँ कि देश अवश्य मुक्त होगा। यह असम्भव नहीं है। यह दृढ़ विश्वास लेकर ही हमें सावधान रहना होगा। तुम तो यह सोचकर निश्चिन्त बैठे हो कि भारतवर्ष अपनी स्वाधीनता के लिए किसी दिन युद्ध करेगा, परन्तु मैं कहता हूँ कि युद्ध आरम्भ हो गया है। मुकाबला बराबर चल रहे हैं। इस समय यदि तुम हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे तो इससे बढ़ी कायरता और क्या होगी?'

ति हू ...

:य नये दृष्टिकोण से विचार करते हो। जिस प्रकार हम अपन ास-प्रश्वास को भूले हुए हैं, उसी प्रकार हम सबको भी भूल बैठे हैं। ा न कोई आशा करते हैं और न निराश ही हैं। न हमें सुख है, न ख है। समय बड़ी उदासी से बीत रहा है। चारों ओर के घेरे में ड़कर हम अपनी अथवा अपने देश की तो बात भी नहीं सोच सकते। ोरा का मुँह एकाएक लाल हो गया। उसके मस्तक की नसें तन ाईं। उसने तेजी से जाते हुए एक गाड़ी वाले को अपनी तेज आवाज द्वारा, सड़क के लोगों को चकित करते हुए कहा—'गाड़ी रोको! उस गाड़ी को रोको!' उस गाड़ी को एक मोटा बाबू हाथ में घड़ी बांधे हुए हांक रहा था। उसने एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा, फिर अपने पीछे एक आदमी को दौड़ कर आते देख दोनों तेज घोड़ों को चाबुक लगा, पल भर में गाड़ी को भगा ले गया।

एक बूढ़ा मुसलमान फल, अण्डे, तरकारी, रोटी तथा मक्खन से भरी एक डलिया को अपने सिर पर रखे चला जा रहा था। घड़ी व चश्माधारी बाबू ने उसे गाड़ी के सामने से हट जाने के लिए जोर से पुकारा, परन्तु उस बूढे ने आवाज नहीं सुनी। इससे पूर्व कि गाड़ी उसके ऊपर होती हुई निकल जाती, एक आदमी ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़, अपनी ओर खींच लिया। इस प्रकार उसके प्राण तो बच गये, परन्तु उसकी टोकरी सिर से लुढ़क कर पृथ्वी पर जा गिरी और सारा सामान इधर उधर फैल गया। गाड़ी वाले बाबू ने क्रुद्ध होकर उसे 'डैम-सुअर' की गाली दी तथा उसके मुँह पर तड़ाक से एक चाबुक मार कर, घोड़ों की रास ढीली करदी। चाबुक की चोट लगते ही बुड्ढे के सिर से खून बहने लगा। उसने 'अल्लाह' कहकर एक लम्बी सांस ली तथा धरती पर बिखरी हुई चीजों को उठा-उठा कर टोकरी में रखना आरम्भ कर दिया। गोरा भी आगे बढ़कर उसकी चीजों को

उठाने में मदद देने लगा। यह देखकर उसे बूढ़े मुसलमान बटोही ने अत्यन्त लज्जित होते हुए कहा—'बाबू, आप क्यों कष्ट कर रहे हैं ? ये चीजें तो खराब हो गईं। अब किसी काम न आयेंगी।'

गोरा जानता था कि उसकी सहायता करना अनावश्यक है। टोकरी भर जाने पर उससे कहा—'तुम्हारी जो चीजें खराब हो गईं, उनका दाम मालिक से न मिलेगा। इसलिए तुम मेरे घर चलो, मैं तुम्हें पूरा दाम देकर ये चीजें खरीद लूँगा। परन्तु एक बात मैं तुमसे कहता हूँ कि तुमने इस अपमान को जो चुपचाप सह लिया है, उसके लिए अल्लाह तुम्हें कभी क्षमा न करेगा।'

उसने कहा—'अल्लाह मुझे क्यों सजा देगा ? जो अपराधी है उसी को सजा मिलेगी।'

गोरा—'अन्याय सह लेने वाला भी अपराधी होता है। यदि वह न सहा जाये तो फिर कोई किसी से अन्यायपूर्ण व्यवहार कर ही नहीं सकेगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि सहिष्णुता कोई गुण नहीं है, उसे एक प्रकार का दोष ही समझना चाहिये। सहिष्णु लोगों से दुष्टों की संख्या बढ़ती है। तुम्हारे मुहम्मद साहब इसको जानते थे, इसीलिए वे धर्म-प्रचार में सहिष्णुता से काम नहीं लेते थे।'

गोरा का घर वहां से दूर था। अतः वह उस बूढ़े मुसलमान को विनय के घर ले गया। गोरा ने मेज की दराज के सामने खड़े होकर विनय से कहा—'रुपया निकालो।'

विनय बोला—'इतनी जल्दबाजी क्यों करते हो ? अभी दिये देता हूँ।' यह कह कर वह चाभी ढूँढने लगा, परन्तु वह न मिली। तब गोरा ने अधिक प्रतीक्षा न कर, बन्द दराज को जोर से खींच लिया। उससे ताला टूट गया और दराज बाहर निकल आया।

दराज खुलते ही गोरा की दृष्टि सबसे पहले उसमें रक्खे हुए, परेशबाबू के परिवार के चित्र पर पड़ी। उस चित्र को विनय ने अपने मित्र सतीश से प्राप्त किया था।

गोरा ने रुपया लेकर उस बूढ़े मुसलमान को दे दिया, परन्तु



चित्र के विषय में कुछ न कहा। गोरा की चुप्पी देखकर विनय ने कोई बात नहीं छेड़ी। परन्तु यदि चित्र के विषय में दो-चार बातें जातीं तो उसका मन हलका अवश्य हो जाता।

तभी गोरा ने एकाएक कहा—'अच्छा, अब मैं चलता हूँ।'

विनय बोला—'माँ ने मुझे भी तुम्हारे ही घर खाने को बुल है। अतः मैं भी साथ ही चलता हूँ।'

दोनों घर से बाहर निकले। मार्ग में गोरा कुछ न बोला। द के चित्र ने उसे यह अनुभव करा दिया था कि विनय के हृदय में ऐसी गुप्तधारा बह रही है, जिससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

घर के समीप पहुँचते ही दिखाई दिया कि महिम द्वार पर हुए मार्ग की ओर देख रहे हैं। दोनों को एक साथ आते देख, वे बोले 'क्या बात है ? कल रात भर तुम दोनों जागते रहे। मैं समझ रहा कि अब कहीं सड़क के किनारे जाकर सो गए होंगे। दिन भी बहुत आया। अच्छा, विनय बाबू ! अब तुम स्नान करलो।'

इस प्रकार विनय को स्नान के लिए भेजकर, महिम ने गोर कहा—'गोरा, जो बात मैंने कही थी, तुम उस पर कुछ विचार क तुम्हें विनय के सम्बन्ध में यह सन्देह है कि वह हिन्दू धर्म के आर विचार को नहीं मानता, परन्तु तुम्हीं सोचो कि ऐसा कट्टर हिन्दू- आजकल कहाँ मिल सकता है ? केवल कट्टर हिन्दू होने से ही काम चलेगा, लड़के का शिक्षित तथा सुशील होना भी आवश्यक है। तुम्हारे भी लड़की होती तो तुम्हारी राय भी अवश्य मेरी जैसी होती।'

गोरा बोला—'ठीक है। मैं समझता हूँ, विनय को भी इसमें ऐसा ऐतराज न होगा।'

महिम—'तो सुनो, विनय को आपत्ति की चिन्ता नहीं, 'ः तुम्हारी अस्वीकृति से डरता हूँ। तुम एक बार स्वयं विनय से ः लिये अनुरोध करो, मैं यही चाहता हूँ। यदि उससे काम न चल फिर मैं कुछ न कहूँगा।'

गोरा—'अच्छा।'

महिम ने मन ही मन कहा—'अब क्या है, काम हो गया। मिठाई के लिए हलवाई को तथा दूध दही के लिए अहीर को अभी बयाना दिए आता हूँ।'

अवसर पाकर गोरा ने विनय से कहा—'तुम्हारा विवाह शशिमुखी के साथ करने के लिए दादा बहुत जोर डाल रहे हैं। इस सम्बन्ध में तुम क्या कहते हो?'

विनय बोला—'पहले तुम बताओ कि तुम्हारी क्या राय है?'

गोरा—'मेरी राय में कोई बुराई नहीं है।'

विनय—'पहले तो तुम बुरा बताते थे और यह कहते थे कि हम दोनों कभी विवाह न करेंगे।'

गोरा—'परन्तु अब यह निश्चित रहा कि तुम विवाह करो, मैं नहीं करूँगा।'

विनय—'एक स्थान की यात्रा में दो रातें और दो फल किसलिए?'

गोरा—'दो रात्रियाँ तथा दो फल होने के भय से ही व्यवस्था करनी पड़ती है। परमात्मा किसी को सहसा ही भार-ग्रस्त तथा किसी को भार-हीन बनाते हैं। इन दोनों प्रकार के जीवों को यदि मिलकर चलना हो तो एक के ऊपर बाहरी बोझ डालकर दोनों का भार बराबर कर लेना चाहिए। तुम जब विवाह की जिम्मेदारी से दबोगे, तभी हम दोनों एक गति से चल सकेंगे।'

विनय हँसकर बोला—'यदि यही बात है तो इस ओर कुछ भी लद दो।'

गोरा—'इस वजन के सम्बन्ध में तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है?'

विनय—'जब वजन रखना आवश्यक ही हो तो जो मिल जाये, उसी से काम चलाया जा सकता है। वह कुछ भी क्यों न हो।'

विनय अच्छी तरह समझ रहा था कि गोरा ने इस विव

इसीलिये विशेष उत्साह दिखाया है कि कहीं वह परेशबाबू के परिवा में अपना विवाह न कर बैठे। यह ध्यान में आते ही विनय मन-ही-म हँस पड़ा। दोपहर को भोजनोपरान्त, सारा दिन नींद में बीता। ज संसार के ऊपर सन्ध्या के अन्धकार का पर्दा गिरा, उस समय छत प बैठे हुए विनय ने सीधे आकाश की ओर देखते हुए कहा—'गोरा, तुम से एक बात कहता हूँ। हम लोगों के स्वदेश-प्रेम में कोई बहुत ब कमी है। इसीलिए हम आधे भारतवर्ष को देख पाते हैं।'

'सो कैसे?' गोरा ने पूछा।

'हम लोग भारतवर्ष को केवल पुरुषों का ही देश समझते हैं स्त्रियों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।'

'सम्भवतः तुम अँग्रेजों की भाँति स्त्रियों को घर, बाहर, ज थल, शून्य, आहार आमोद-प्रमोद कार्य तथा अन्य सभी स्थानों प देखना चाहते होंगे। परन्तु इसका परिणाम यह होगा कि तुम पुरु की अपेक्षा नारियों को ही अधिक देखते रहोगे। इस प्रकार दृष्टि सामंजस्य नष्ट हो जायेगा।'

'न, मेरी बातों को इस प्रकार उड़ा देने से काम न चलेगा। स्त्रियों को अँग्रेजों की भाँति देखूँ अथवा नहीं इस बात को तुम क उठाते हो? मेरा अभिप्राय तो यह है कि हम लोग स्वदेश के भीत स्त्रियों वाले आधे अंश की यथेष्ट चिन्ता नहीं करते। तुम्हारी ही बा कहता हूँ, तुम स्त्रियों के सम्बन्ध में पल भर को भी नहीं सोचते। जै तुम्हारी दृष्टि में देश स्त्रियों से रहित है। परन्तु इस प्रकार समझन सत्य जानना नहीं है।

गोरा ने कहा—'मैंने जब अपनी माँ को देखा और जाना, त अपने देश की सभी स्त्रियों को भी जान लिया। मेरी तो य धारणा है।'

'यह तो तुम अपने को भुलावे में डालने के लिए एक बात ग कर कह रहे हो।' विनय ने उत्तर दिया—'घर के भीतर यदि स्त्रि को देखा जाय, तो वास्तव में उनको यथार्थ रूप में देखना नहीं है

यदि मैं अंग्रेजों के समाज से कोई तुलना करूँ तो तुम क्रुद्ध हो जाओगे, यह जानता हूँ। परन्तु मैं यह अवश्य जानना चाहता हूँ कि हमारी स्त्रियाँ समाज में किस प्रकार प्रकट हों, जिससे मर्यादा का उल्लंघन भी न हो सके ? फिर भी, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस प्रकार स्त्रियों को दबाये रखने में स्वदेश हमारे निकट अर्द्ध-सत्य ही बना हुआ है, वह हमारे हृदय में पूर्ण प्रेम तथा पूर्ण शक्ति नहीं दे पाता।'

गोरा बोला—'जिस प्रकार समय के दो भाग रात और दिन हैं, उसी प्रकार समाज के दो अंग पुरुष और स्त्री हैं। समाज की स्वाभाविक दशा में स्त्रियाँ रात्रि के समान रहेंगी। उनके कार्य गूढ़ एवं एकाकी होंगे। समाज की अस्वाभाविक अवस्था में जहाँ रात को गैस की बत्ती जलाकर दिन बनाया जाता है, उस रोशनी में नाच-गाना किया जाता है, वहाँ स्वाभाविक सन्नाटे का एकान्त भंग हो जाता है, क्षति की पूर्ति नहीं होने पाती मनुष्य उन्मत्त बना रहता है। इसी प्रकार यदि हम स्त्रियों को कर्म-क्षेत्र में खींच लायेंगे तो उनके निगूढ़ कर्म की व्यवस्था नष्ट हो जायेगी, समाज का स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा तथा शान्ति में विघ्न आ पड़ेगा। इसीलिये मैं कहता हूँ कि यदि हम पुरुष यज्ञ के क्षेत्र में रहें तथा स्त्रियाँ घर के भण्डार की देख-रेख रखें तभी यह सम्पन्न हो सकेगा। जो लोग सम्पूर्ण शक्तियों को एक ही ओर, एक ही स्थान पर एक ही प्रकार से व्यय करना चाहते हैं, वे उन्मत्त हैं। उनकी उन्मत्तता विनाश की ओर ले जाने वाली है।'

विनय—'गोरा तुम जो कहते हो, मैं उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहता, परन्तु मैंने जो कुछ कहा था, उसका प्रतिवाद तुमने भी नहीं किया है। वस्तव में बात……।'

गोरा ने बीच में बात काटते हुए कहा—'देखो विनय, इस विषय को लेकर यदि अधिक बातचीत की जायेगी तो वह बिल्कुल बहस का रूप धारण कर लेगी। मैं समझता हूँ कि स्त्रियों के विषय में आज-कल जितने तुम सतर्क एवं सचेत हो उठे हो, उतना मैं कभी नहीं रहा।

परन्तु तुम जो अनुभव करते हो, उसे मुझसे भी कराने की असफल चेष्ट मत करो। इस सम्बन्ध में हम दोनों में मतभेद रहना ही क्यों स्वीकार कर लिया जाये ? यही ठीक भी रहेगा।'

गोरा ने बात उड़ा दी। परन्तु बीज को हवा में उड़ा देने से भ वह मिट्टी में गिरता तथा अवसर पाकर अंकुरित हो जाता है। गोरा अपने जीवन-क्षेत्र से स्त्री-जाति को एकदम अलग रक्खा था। उसे कभ स्वप्न में भी यह अनुभव नहीं हुआ था कि यह एक अभाव है। आ विनय की बदली हुई हालत को देख, संसार में स्त्री जाति का विशे प्रभाव उनके समक्ष प्रत्यक्ष हो उठा। परन्तु उसका स्थान और प्रयोज क्या है, इस प्रश्न का वह कोई ठीक उत्तर न दे सका। कारण उस विनय से बहस नहीं की। जिन विषयों को वह समझता नहीं, उन प आलोचना करना उसे स्वीकार नहीं था।

रात्रि के समय जब विन अपने घर लौटने को हुआ, त आनन्दमयी उसे अपने पास बुला कर कर बोली—'भैया, शशिमुखी साथ तेरा विवाह पक्का हो गया ?'

विनय ने सलज्ज मुस्कान लिये कहा—'हां मां, इस शुभ का का संयोजक गोरा है।'

आनन्दमयी बोलीं—'शशिमुखी बहुत अच्छी लड़की है, पर भैया, अभी तू यह लड़कपन मत कर। मैं देखती हूं कि आजक तेरा चित्त स्थर नहीं है इसीलिये तू इस काम को झटपट कर डाल चाहता है। अभी सोचने-समझने का समय है। तू सयाना हो चुका है इतने बड़े कार्य को तुच्छ समझ कर मत कर डालना।'

इतना कह कर आनन्दमयी उसके शरीर पर हाथ फेरने लगीं विनय बिना कुछ कहे धीरे-धीरे चला गया।

१७

आनन्दमयी की इन बातों को सोचता हुआ, विनय अपने चला गया। उसने आज तक आनन्दमयी की किसी बात की उपेक्षा

की थी। उस रात उसके हृदय पर जैसे एक बोझ रक्खा रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठने पर विनय को अपनी तबियत कुछ हल्की-सी लगी। उसे लगा, जैसे उसे किसी भारी बोझ से मुक्ति मिल गई। विनय को अनुभव हुआ—जैसे वह गोरा की मित्रता को भारी मूल्य देकर चुका रहा है। उसने शशिमुखी से विवाह करने की स्वीकृति देकर, जीवन भर के लिए बन्धन मोल ले लिया है। गोरा ने उसके ऊपर जो यह मिथ्या सन्देह किया था कि वह किसी ब्रह्म-समाजी की लड़की से विवाह करना चाहता है, सो उसने इस सदेह से स्वयं को शशिमुखी के साथ विवाह की स्वीकृति जमानत के रूप में रखकर छुड़ा लिया है। इस घटना के पश्चात् विनय परेशबाबू के घर बिना किसी संकोच के और अधिक आने जाने लगा।

विनय जिसे स्वीकार करे, उसके समीप उसके परिवार का सा आदमी बन जाना, उसके लिये कोई कठिन बात नहीं है। कुछ ही दिनों में वह परेशबाबू के परिवार मे अत्यन्त आत्मीय हो उठा। उसका व्यवहार ही ऐसा सुन्दर था।

ललिता के मन मे जब तक यह सन्देह रहा कि सुचरिता का मन विनय की ओर आकर्षित हो गया है, तभी तक वह मन ही मन उसके कुछ विरुद्ध रही, परन्तु जब उसे यह प्रतीत हो गया कि उसकी यह धारणा भ्रम थी, तब उसे भी शान्ति प्राप्त हो गई। फिर उसने भी बिना बाधा के विनय को असाधारण व्यक्ति स्वीकार कर लिया।

हारानबाबू विनय से कभी विरक्त नही हुए। उन्होंने सबकी अपेक्षा विशेष रूप से यह अनुभव किया था कि विनय एक भला आदमी है और उसे शिष्ट व्यवहार का पूर्ण ज्ञान है। परन्तु उनके मन में यह बात अवश्य बनी रही कि गोरा इस ज्ञान से सर्वथा शून्य है।

हारानबाबू के समक्ष विनय कभी बहस की कोई बात नही उठाता था। इसीलिये विनय के द्वारा चाय की मेज पर कभी शान्ति भग होने का अवसर नहीं आया। परन्तु हारानबाबू की अनुपस्थिति मे सुचरिता स्वयं ही विनय को समाज सम्बन्धी मत की चर्चा एव आलोच

सम्मिलित कर लिया करती थी। वह यह भी अनुभव करती थी कि गोरा तथा विनय जैसे शिक्षित, युवक जिस प्रकार प्राचीन संस्कारों का समर्थन करते हैं उन्हें वह किसी प्रकार दमन नहीं कर सकती है। यदि वह गोरा और विनय को न जानती होती तो उनके मतों का समर्थ किसी दूसरे व्यक्ति से सुनकर, उसे अवज्ञा के योग्य अवश्य ठहरा देती परन्तु जब से उसने गोरा को देखा, तब से वह उसे अश्रद्धापूर्वक अप हृदय से निकाल नहीं पाई थी। यही कारण था कि वह अवसर मिल पर विनय के समक्ष, गोरा के मत और जीवन की आलोचना कर आरम्भ कर देती थी। बीच-बीच में यह विनय की बातों का प्रतिवा करके, अन्त में उससे पेट की बात भी निकलवा लिया करती थी परेशबाबू यह समझते थे कि सब मतों की बातें सुनना सुचरिता क सर्वतोमुखी शिक्षा के लिये सरल उपाय है। यही कारण था कि वे क भी ऐसे तर्क-वितर्कों से सशंकित नहीं हुए और न उसमें कोई बाधा पहुँचाई।

एक दिन सुचरिता ने पूछा—'गौरमोहनबाबू क्या वास्तव जाति-भेद के समर्थक हैं? अथवा वे केवल स्वदेश प्रेम दिखाने के लि ऐसा करते हैं?'

विनय ने उत्तर दिया—'क्या आप सीढ़ी के स्तरों को मान हैं? ये सब भी उसी के विभाग हैं। कोई ऊपर है तो कोई नीचे है

सुचरिता—'नीचे से ऊपर चढ़ने के लिए तो मानना ही पड़ेगा न मानने का कोई कारण नहीं है। परन्तु समतल भूमि में सीढ़ी मानने के सिद्धान्त से भी काम चल सकता है।'

विनय—'आप ठीक कहती हैं। हमारा समाज एक सीढ़ी समान है। जाति-भेद और वर्णाश्रम का एक ही उद्देश्य है—मानव जी को नीचे से उठाकर एक परिणाम पर ले जाना। यदि हमारी धार यह होती कि समाज का परिणाम यह सञ्चार ही है तो किसी विभागीय व्यवस्था की आवश्यकता नहीं थी। उस स यूरोपीयन समाज की भांति हममें से कोई भी एक-दूसरे को अपे

अधिकतर अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए छीना-झपटी और मारकाट न करता।'

सुचरिता—'क्षमा करें आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। आप जिस उद्देश्य से समाज मे वर्णभेद का प्रचलन बताते हैं, क्या उस उद्देश्य को आप सफल हुआ मानते हैं ?'

विनय—'पृथ्वी पर सफलता का स्वरूप देख पाना कठिन है। भारत ने जाति-भेद नाम से जिस सामाजिक समस्या का उत्तर दिया था, वह अभी जीवित है। यूरोप मे सामाजिक समस्या का कोई उचित उत्तर आज तक नहीं दे सका। वहा केवल हाथापाई ही हो रही है। परन्तु भारतवर्ष का यह उत्तर मानव-समाज को अभी तक सफलता की प्रतीक्षा करा रहा है।'

सुचरिता ने सङ्कोचपूर्ण भाव से पूछा—'आप नाराज न हों कृपया सच बात कहियेगा। इन बातों को आप गोरमोहनबाबू की प्रतिध्वनि की भांति कह रहे हैं अथवा इन पर आपको स्वयं भी विश्वास है ?'

विनय—हँसकर बोला—'मैं आप से कह रहा हूँ। गोरा की भाँति मेरा विश्वास शक्तिशाली नहीं है। जाति-भेद की गन्दगी तथा समाज के किनारों को जब मैं देखता हूं तो मन मे भाँति-भाँति के सन्देह करता हूँ। परन्तु गोरमोहनबाबू कहते हैं, 'बड़ी वस्तु को जब छोटे रूप मे देखा जाता है। तभी सन्देह उत्पन्न होता है। वृक्ष की टूटी हुई शाखा तथा सूखी हुई पत्तियों को देखकर, उसे वृक्ष की चरम सीमा मान लेना ही बुद्धि का विकार है। मैं टूटी हुई शाखा की बात तो नहीं कहता, परन्तु मेरा मत है कि सम्पूर्ण वनस्पति को देखकर ही उसका तात्पर्य समझने की चेष्टा करनी चाहिये।'

सुचरिता बोली—'वृक्ष के सूखे पत्तों पर चाहे ध्यान न दिया जाये, परन्तु उसके फल को तो देखना ही होगा। हमारे देश के लिए जाति-भेद रूपी फल कैसा है ?'

विनय—'आप जिसे जाति-भेद का फल बता रही हैं, व

में अवस्था का फल है। हिलते हुए दाँतों से किसी वस्तु को चबाने में पीड़ा होती है, उसमें सब दाँतों का कोई अपराध नहीं है। उसके लिए तो केवल हिलता हुआ दाँत ही अपराधी है। हम लोगों के भीतर अनेक कारणों से विकार एवं दुर्बलताओं का प्रवेश हो गया है। इसीलिए हम भारतवर्ष के उद्देश्यों को सफल न बनाकर, विकृत ही कर रहे हैं। गोर-बाबू इसीलिए तो कहते हैं—'स्वस्थ तथा सबल बनो।'

सुचरिता—'अच्छा, तो क्या आप वास्तव में ब्राह्मण-जाति को देवता मानते हैं और यह विश्वास रखते हैं कि ब्राह्मणों की चरण-रज से मनुष्य पवित्र हो जाता है?'

विनय—'इस संसार में अनेकों प्रकार के सम्मान करना ही हमारी सृष्टि का रहस्य है। ब्राह्मण को यदि हम वास्तव में ब्राह्मण बना सकें, तो क्या वह कम लाभदायक होगा? हम नर-देव चाहते हैं। यदि हम वास्तविक में ही नर-देव को चाहें तो उसे अवश्य पा सकेंगे। अन्यथा जो पापी अनेकों प्रकार के दुष्कर्म करते हैं तथा जिनका पेशा ही हमारे मस्तक पर अनेकों पैरों की धूलि लगाना है, वे तो पृथ्वी पर केवल बोझ ही बढ़ाते रहेंगे।'

सुचरिता—'ठीक, क्या आपके वास्तविक नर-देव आज-कल कहीं मिल सकते हैं?'

विनय—'जिस प्रकार बीज के भीतर वृक्ष रहता है, उसी प्रकार वे भी भारतवर्ष के आन्तरिक अभिप्राय: एव प्रयोजन के भीतर मौजूद हैं। अन्य देश वेलिंगटन के समान सेनापति, न्यूटन के समान वैज्ञानिक तथा रथचाईल के समान धनाढ्य व्यक्ति चाहते हैं, परन्तु हमारा देश वास्तविक ब्राह्मण को चाहता है। ब्राह्मण वास्तव में वह है जिसे भय नहीं है, जो लोभ से घृणा करता है, जो कष्टों पर सहनशीलता से विजय प्राप्त करता है, जो अभावों पर दृष्टि नहीं डालता, जिसने विशुद्ध हृदय को परब्रह्म में लीन कर रक्खा है, जो अटल है, शान्त है तथा युक्त है उसी ब्राह्मण को भारतवर्ष चाहता है। उसी ब्रह्मण को जब व यथार्थ भाव से प्राप्त करेगा, तभी स्वाधीन होगा। हम भारतवासी राज

के आगे अपना मस्तक झुकाते हैं। अत्याचारी का बन्धन स्वयं ही अपने गले में डाल लेते हैं, हमारा सिर अपने भय के सम्मुख झुका हुआ है। हम अपने ही लोभ-जाल में जकड़े हुए हैं, हम अपनी ही मूर्खता के दासानुदास हैं। ब्राह्मण तपस्या करें, उस भय, लोभ तथा मूर्खता से हमें मुक्त करें, हम उनके समीप युद्ध नहीं चाहते, वाणिज्य नहीं चाहते और न उनसे हमारा कोई अन्य प्रयोजन ही है।'

परेश बाबू अब तक चुपचाप सुन रहे थे। उन्होंने धीरे से कहा-'मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं भारतवर्ष को जानता हूँ और न यही जानता हूँ कि भारत ने क्या चाहा था और उसे कभी मिला भी या नहीं, परन्तु प्रश्न यह है कि जो समय बीत गया, क्या वह फिर कभी लौटकर आ सकता है? हमारी साधना का विषय यही है, जो वर्तमान में सम्भव है, अतीत की ओर हाथ बढ़ाकर समय नष्ट करने से भला क्या काम हो सकता है ?'

विनय बोला—'आप जो कह रहे हैं, मैंने भी उस पर कई बार सोचा है, परन्तु गोरबाबू का कहना है। कि हम अतीत को भूल बैठे हैं, क्या इसीलिये वह अतीत हो गया ? कोई भी सत्य कभी अतीत होता ही नहीं।'

सुचरिता बोली—'आप जिस प्रकार बातें कर रहे हैं, उस प्रकार साधारण आदमी अपनी नहीं कहते—इसलिए आपके मत को सम्पूर्ण देश की वस्तु मान लेने में सन्देह होता है।'

विनय—'हमारे देश में जो साधारण लोग अपने हिन्दूपन का अभिमान करते हैं, उस कोटि में आप गोरमोहनबाबू को मत समझिए। वे तो हिन्दू-धर्म को भीतर से तथा बहुत बड़े रूप में देखते हैं। वे कभी ऐसा नहीं सोचते कि हिंदू-धर्म का प्राण इतना कोमल है कि वह थोड़ी-सी छुआछूत से ही सूख जाता है अथवा साधारण से आघात से ही उसकी मृत्यु हो जाती है।'

सुचरिता—'परन्तु देखा तो यही जाता है कि वे छुआछूत के विषय में बड़ी सावधानी से काम लेते हैं।'

विनय—'उनकी यह सतर्कता एक अद्भुत चीज है। यदि उनसे प्रश्न किया जाये तो वे तुरन्त उत्तर देंगे—'हाँ मैं यह जानता हूं कि छू लेने से जाति का चला जाना अथवा खा लेने से पाप का लगना भ्रामक-सत्य है'—'परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूं कि ये सब उनकी जोर-जबर-दस्ती की बातें हैं। ये बातें जितनी असङ्गत हैं, उतना ही वे इन पर अधिक जोर देते हैं। मूर्ख लोग वर्तमान आचार की साधारण बात को अस्वीकार कर, कहीं बड़ी बातों को भी कुसंस्कार कहकर अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगें, इसलिए गौरमोहनबाबू बिना विचार किये सभी बातों पर चलना चाहते हैं। यहां तक कि मेरे सामने भी अपनी इन बातों के सम्बन्ध में कुछ भी शिथिलता नहीं दिखाते।'

परेशबाबू—'ब्राह्म लोगों में भी इस प्रकार के बहुत से लोग हैं। वे इस शङ्का से कि कहीं कोई अपनी भूल से भी यह न समझ बैठे कि वे हिंदू-धर्म की कुप्रथाओं को स्वीकर करते हैं, हिंदू आचार से सभी प्रकार का सम्पर्क, बिना कोई विचार किये ही समाप्त कर देना चाहते हैं। वे या तो ढोंग रचते हैं अथवा हर काम को आवश्यकता से अधिक करते हैं। वे यह समझते हैं कि सत्य दुर्बल है, इसीलिए कला-कौशल अथवा शक्ति द्वारा ही वे उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। 'सत्य मेरे ऊपर निर्भर है, मैं सत्य के ऊप
जिन लोगों की ऐसी धारणा होती है, वे ही कट्टर कहे ज
ईश्वर से यही प्रार्थना है कि चाहे ब्राह्मण-समाज हो अथ
मैं बिना विद्रोह किये ही सत्य को सदैव मस्तक झुकाकर
करूँ—ऐसा मुझे बल दे। कोई बाधा मुझे उससे रोक न

परेशबाबू इतना कहकर चुप हो गये, जैसे उन्हें
का समाधान कर लिया था। उन्होंने इन शब्दों द्वारा स
के ऊपर, जैसे कोई एक बड़ा 'स्वर' गूँजा दिया, वह स्वर
साधारण स्वर नहीं, अपितु परेशबाबू की प्रशान्त गम्भीर
स्वर था। सुचरिता और ललिता के मुख पर आनन्द मि
एक आभा खिल उठी। विनय चुप रहा। वह मन-ही-म

कर रहा था कि गोरा के भीतर एक प्रचण्ड जबर्दस्ती है। सत्य का प्रचार करने वालों के वाक्य, मन तथा कर्म में जो एक स्वाभाविक सरल शान्ति होनी चाहिए, वह उसमें नहीं है। परेशबाबू की बातों ने उसके हृदय के भावों पर जैसे एक और आघात किया।

रात को सुचरिता अपने बिस्तर पर जा लेटी। ललिता भी उसके पलंग के किनारे आ बैठी। सुचरिता ने अनुभव किया कि ललिता मन की किसी बात को कहने के लिए व्याकुल है। यह भी उसने अनुमान कर लिया कि यह बात विनय के सम्बन्ध में ही हो सकती है। यह विचार कर उसने स्वयं ही बात आरम्भ की, बोली—'मुझे विनय-बाबू बड़े भले लगते हैं।'

ललिता ने कहा—'वे गोरबाबू की बातों को ही घुमा-फिराकर कहते हैं, इसलिए शायद तुम्हें पसन्द है।'

सुचरिता इन शब्दों के भीतर छिपे हुए संकेत को समझकर भी टाल गई। उसने सरलतापूर्वक कहा—'है तो यह सत्य परन्तु उनके मुँह से गोरबाबू की बातें सुनने में मुझे बड़ा आनन्द आता है, जैसे मैं गोराबाबू को प्रत्यक्ष देख रही होऊँ।'

ललिता—'परन्तु मुझे अच्छा नहीं लगता, यों कहो कि क्रोध भी आ जाता है।'

सुचरिता ने आश्चर्य में भर कर पूछा—'क्यों ?'

ललिता—'गोरा, गोरा, गोरा, रात-दिन केवल गोरा की धुन ही लगी रहती है। माना कि उनके मित्र गोरा बहुत बड़े और अच्छे आदमी हैं, परन्तु हैं तो मनुष्य ही।'

सुचरिता ने हँसते हुए कहा—'हैं तो, परन्तु उनके मनुष्यत्व में कमी क्या आ गई ?'

ललिता—'उनके मित्र ने उन्हें इस प्रकार ढक रखा है कि वे स्वयं को प्रगट भी नहीं कर पाते। जैसे किसी के सिर पर भूत सवार हो गया हो। ऐसी अवस्था वाले मनुष्य पर मुझे क्रोध आता है और उस भूत से भी अश्रद्धा हो जाती है।'

ललिता की झल्लाहट देख, सुचरिता चुपचाप हँस पड़ी।

ललिता ने कहा—'दीदी! तुम हँस रही हो, परन्तु मैं, तुमसे कहती हूँ कि यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार मुझे ढँकने का प्रयत्न करता है तो मैं उसे एक दिन भी सहन नहीं करती। मान लो तुम्हीं हो, तुमने मुझे अपने प्रभाव से ढक नहीं रक्खा है–इसीलिये मैं तुम्हें इतना चाहती और मानती हूँ। वास्तविक बात यह है कि तुम्हें यह शिक्षा बाबू जी से मिली है, क्योंकि वे प्रत्येक के लिये उसका स्थान छोड़ देते हैं।'

सुचरिता और ललिता दोनों ही इस परिवार में परेशबा की अनन्य भक्त थीं। 'बाबूजी' कहते ही उनकी छाती जैसे फ उठती थी।

सुचरिता बोली—'बाबूजी से भी भला किसकी तुलना की सकती है? परन्तु बहिन, कुछ भी क्यों न हो, विनयबाबू में बोलने शक्ति बड़ी विलक्षण है।'

ललिता—'ये विचार उनके अपने हृदय के नहीं हैं, इसी उन्हें अलंकारित ढंग से बोल सकते हैं। यदि वे अपने विचारों को तो उनकी बातचीत अधिक सरल और स्वाभाविक होती। मुझे त अद्भुत ढंग से बोलने की अपेक्षा, स्वाभाविक ढङ्ग से बोलना प्रिय है।'

सुचरिता—'तुम नाराज होती हो बहिन? गोरमोह बातें ही विनयबाबू की अपनी बातें बन गई हैं। दोनों अ मित्र जो हैं।'

ललिता—'यदि यह बात है तो और भी बुरी है। ईश्वर बुद्धि इसलिये नहीं दी कि हम दूसरे के विचारों की व्याख्या और करें। मुझे ऐसी अद्भुत बातें नहीं चाहिये।'

सुचरित—'परन्तु तू यह नहीं समझती कि विनयब गोरबाबू का हृदय मिलकर एक हो गया है। दोनं

ललिता को अब असह्य हो उठा। बोली—'नहीं यह बात नहीं है। दोनों हृदयों से पूर्ण मेल नहीं हुआ। वास्तव में यह बात है कि गौरमोहनबाबू को बड़ा मानकर, उनके पीछे चलना, विनयबाबू के स्वभाव में भर गया है। यह उनकी दासता है, स्नेह नहीं है। वे जबर्दस्ती यह समझना चाहते हैं कि गौरमोहनबाबू से उनका मत पूर्णतः मिल जाता है। प्रीति जहां होती है, वहां प्रीति पात्र के साथ मतभेद होने पर भी उसके कोई आंच नहीं पहुँचती। मनुष्य अन्धभक्त हुए बिना भी आत्म-त्याग कर सकता है तथा दूसरे को मानकर चल सकता है विनयबाबू में यह बात नहीं है। वे गौरबाबू की बातों को प्रेम के कारण ही मानते हैं, हृदय से स्वीकार नहीं कर पाते। यह उनकी बातों से ही प्रतीत होता है। दीदी! सच कहना, क्या तुम यह नहीं समझीं?'

ललिता की बात यहां तक पहुँचेगी, यह सुचरिता ने सोचा ही नहीं था। उसका कौतूहल गोरा को सम्पूर्ण रूप से जानने के लिए ही था, वह विनय को गोरा से अलग नहीं करना चाहती थी। अतः ललिता के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न देते हुए वह बोली-'अच्छा, तेरी बात स्वीकार किए लेती हूँ। बता, अब क्या करना होगा?'

मेरा हृदय चाहता है कि मैं विनयबाबू को उनके मित्र के बन्धन से छुड़ाकर मुक्ति दिलवादूँ।'

सुचरिता—'बहिन! बात तो अच्छी है, प्रयत्न कर देखो।

ललिता—'यह कार्य केवल मेरे किये से न होगा। तुम भी यदि ध्यान दो तो हो सकता है।'

सुचरिता यद्यपि यह समझ चुकी थी कि विनय उस पर आसक्त है, तो भी इस समय उसने ललिता की बात हंसकर टाल देना चाहा।

ललिता बोली—'वे जब गौरबाबू के शासन-बन्धन को ढीला करके तुम्हारे पास आते हैं तथा तुमसे आश्रय प्राप्ति की इच्छा करते हैं, आत्म-समर्पण का भाव प्रकट करते हैं तभी वे मुझे अच्छे लगते हैं। अवस्था में कोई अन्य व्यक्ति होगा तो, यह निश्चय ही प्राह

महिलाओं को बुरा भला कहकर एक नाटक लिख डालता, परन्तु उनका हृदय अब भी उदार है इसका यही प्रमाण है कि वे बाबूजी पर भक्ति रखते हैं तथा तुम्हें चाहते हैं। दीदी विनयबाबू को अपने पैरों पर खड़ा करना होगा। उन्हें परावलम्बी से स्वावलम्बी एवं स्वाभिमानी बनाना होगा। वे जो केवल गौरमोहनबाबू के मत का प्रचार करते रहते हैं, यही मेरे लिए असह्य है।'

इसी समय वहां 'दीदी, दीदी' कहता हुआ सतीश आ पहुंचा। आज विनय उसको किले के मैदान में सर्कस दिखाने के लिए ले गया था। यद्यपि रात बहुत बीत चुकी थी परन्तु यह बालक अपने सर्वप्रथम सर्कस देखने के उत्साह, आनन्द एवं आश्चर्य को संभाल नहीं पाता था। उसने सर्कस का वर्णन करते हुए कहा—'मैं आज विनयबाबू को अपने ही पलङ्ग पर सोने के लिए पकड़े ला रहा था। वे दरवाजे के भीतर आये भी परन्तु वैसे ही वापिस लौट गए। बोले 'कल आऊंगा।' दीदी मैंने उनसे कहा कि एक दिन तुम्हें भी सर्कस दिखा लायें।'

ललिता ने प्रश्न किया—'इस पर वे क्या बोले ?'

वे बोले—'स्त्रियां बाघ देखकर डर जायेंगी, परन्तु दीदी मैं तो जरा भी न डरा।' कह कर सतीश ने पौरुष के अभिमान में अपनी छाती को फुला दिया।

ललिता बोली—'सो तो ठीक है। तुम्हारे मित्र हारानबाबू कितने साहसी हैं, यह मेरी समझ में खूब आ गया है। पर भाई, तुम्हें हम लोगों को सर्कस दिखाने के लिए साथ ले ही चलना होगा।'

सतीश—'कल तो सर्कस दिन में होगा।'

ललिता—'यह और भी अच्छा रहा। हम दिन में ही सर्कस देखन चलेंगे।'

दूसरे दिन विनय के आने पर ललिता ने कहा—'लो, विनयबाबू ठीक समय पर आ गये, चलिए।'

विनय ने पूछा—'कहां चलना है ?'

ललिता—'सर्कस।'

'सर्कस ?' विनय हतबुद्धि-सा रह गया। उसने सोचा, 'दिन
: समय हजारों पुरुषों के सामने वह औरतों को लेकर सर्कस कैसे
जायेगा ?'

ललिता बोली—'हमे साथ ले जाने से शायद गोरबाबू नाराज
होंगे। क्यों विनयबाबू यही बात है न ?'

ललिता का यह प्रश्न सुनकर विनय चौंक पड़ा।

वह फिर बोली—'औरतों को सर्कस ले जाने के सम्बन्ध में भी
क्या गौरबाबू की कोई राय निश्चित है।'

विनय ने कहा—'निश्चित है।'

ललिता—'वह क्या है ? आप तनिक उसकी व्याख्या कर दीजिए।
मैं दीदी को बुलाये लाती हूँ, वह भी सुन लेंगी।'

विनय ठठाकर हँस पड़ा।

ललिता ने पूछा, 'विनय बाबू, आप हँसते क्यो हैं ? कल आपने
सतीश को बताया था कि स्त्रिया बाघ से डरती हैं। क्या आप भी किसी
से डरते हैं ?'

इसके पश्चात् उस दिन विनय उन महिलाओं को लेकर सर्कस
गया। ललिता तथा उस घर की अन्य स्त्रियों को यह बात उसके व
गोरा के सम्बन्ध में न जाने कैसी लगी होगी, यह विचार उसके हृदय
मे हल-चल मचाने लगा।

उसके पश्चात् जब विनय की भेंट ललिता से हुई तो उसने
आश्चर्य का सा भाव दिखाते हुए पूछा—'उस दिन सर्कस जाने का जिक्र
आपने गौरमोहन बाबू से किया तो था नही ?'

प्रश्न की चोट विनय के हृदय की गहराई तक जा पहुँची। तब
उसे कहना पड़ा—'न अभी तक तो नही किया है।' इस उत्तर को देते
समय उसका चेहरा लज्जा के मारे कानों के सिरे तक तमतमा उठा।

इसी बीच लावण्य आ गई। वह बोली—'आइये, विनयबाबू
चलिये।'

ललिता ने पूछा—'कहां, सर्कस मे ?'

लावण्य बोली—'वह, आज सर्कस कहां है ? मैं विनयबाबू

इसलिए कहती हूँ कि वे चलकर मेरे रूमाल के चारों ओर पेंसिल से एक किनारे की बेल खींच दें—'मैं उसे काढ़ लूँगी। ड्राइङ्ग में विनयबाबू बड़े होशियार हैं।'

इतना कहकर, लावण्य उसे पकड़ कर ले गई।

१८

प्रातःकाल गोरा कोई लेख लिख रहा था। तभी विनय अचानक उसके पास जाकर घबराया हुआ सा बोला—'उस दिन मैं परेशबाबू की लड़कियों को सर्कस दिखाने के लिए गया था।'

गोरा ने लिखते-लिखते कहा,—'हाँ, मैंने सुना था।'

विनय ने चकित होकर पूछा—'किससे सुना तुमने ?'

गोरा बोला—'अविनाश से। उस दिन वह भी सर्कस देखने गया था।'

और अधिक कुछ न कह, वह फिर लिखने लग गया। गोरा ने अविनाश के मुँह से पहिले ही सुन लिया था, अतः अब उस बात में टीका-टिप्पणी की कोई गुंजायश न रही थी। पुरातन संस्कारवश, विनय को इससे बहुत लज्जा अनुभव हुई। उसके सर्कस में जाने की बात यदि समाज में प्रकाश में न आती तो उसे प्रसन्नता होती।

इसी समय उसे ध्यान आया कि कल रात देर तक जागते रह कर वह मन ही मन ललिता से झगड़ता रहा है। ललिता यह समझती है कि विनय गोरा को उसी प्रकार मानकर चलता है, जैसे विद्यार्थी अध्यापक को। इस तरह का अन्याय करके भी मनुष्य एक दूसरे को नहीं समझ सकता है। गोरा तथा विनय की आत्मा एक हो गई हैं। वे दोनों घनिष्ट मित्र हैं। गोरा में कई असाधारण गुणों के कारण विनय उस पर भक्ति रखता है, परन्तु केवल इसीलिए ललिता ने जो समझ रक्खा है, वह विनय तथा गोरा दोनों के साथ अन्याय है। विनय न तो स्वयं अल्प-वयस्क है और न गोरा उसका अभिभावक ही है।

गोरा ने लिखने में चित्त लगाया। विनय ललिता के दो-तीन प्रश्नों का उत्तर मन-ही-मन सोचने लगा। परन्तु उन प्रश्नों को वह हृदय से न हटा सका।

विचार करते करते विनय के हृदय में विद्रोह उत्पन्न हो उठा। वह सर्कस देखने गया तो क्या हुआ? अविनाश कौन है, जो प्रत्येक बात में गोरा से उसकी आलोचना करता है? या गोरा ही उसकी गति-विधि के सम्बन्ध से उसके प्रति अकार्य जन से वार्तालाप क्यों करता है? मैं कोई गोरा का नौकर अथवा कैदी तो हूं नहीं, जो उसकी आज्ञानुसार आचरण करूँ। मैं किससे मिलूं, किसके साथ वार्तालाप करूँ अथवा कहीं जाऊँ तो इसका विवरण गोरा को क्यों दूँ? मित्रता में यह कैसा भारी उपद्रव है!

विनय यदि अपनी दुर्बलता को अपने हृदय में इस प्रकार स्पष्ट रूप से न देख पाता तो उसे गोरा तथा अविनाश के ऊपर इतना क्रोध कभी न आता। वह कोई भी बात गोरा के सम्मुख छिपा नहीं पाता था, इसीलिए वह आज मन ही मन स्वयं को ही गोरा के समीप अपराधी पा रहा था। परन्तु मित्रता मे यह विवशता क्यों? सर्कस जाने की बात को लेकर यदि गोरा उसे एकाध उल्टी-सीधी बात सुनाता, तो उसके हृदय को सान्त्वना तो भी मिलती। परन्तु गोरा ने मौन धारण करके जो उसका अपमान किया है, इसलिए ललिता की बात उसके हृदय में काँटे की भाँति चुभने लगी।

इसी समय महिम ने हुक्का लिए हुए घर के भीतर प्रवेश किया। पानों की डिबिया में से एक पान का बीड़ा विनय के हाथ में देते हुए वे बोले—'विनय, यहां तो सब ठीक है। अब तुम्हारे चाचा की स्वीकृति आने भर की देर है। उसके मिलते ही मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। तुमने उन्हें पत्र तो लिख ही दिया होगा?'

इस समय विवाह की चर्चा विनय को बहुत अप्रिय लगी, परन्तु वह जानता था कि इसमें महिम का कोई दोष नहीं है, उसने उनको वचन दे दिया था, परन्तु इस वचन को देने में भी उसे

हीनता का ही अनुभव हुआ। आनन्दमयी ने भी उसे टोका ही था। स्वयं को भी इस विवाह के प्रति कोई विशेष आकर्षण नहीं था। फिर, क्यों इस प्रकार सब बातें कर तुरन्त पक्की कर डाली गई ? गोरा ने शीघ्रता की, यह भी नहीं कहा जा सकता। विनय स्वयं ही यदि अस्वीकृति का भाव दिखाता तो गोरा कभी हठ न करता। पर तभी ललिता की व्यंगोक्ति उसके मन को दुखाने लगी। मानो वह भीतर ही भीतर नस्तर का काम कर रही हो। वह अत्यन्त प्रेम के कारण ही गोरा के प्रभुत्व को सहने का अभ्यस्त हो गया था। इसीलिए यह प्रभुत्व का सम्बन्ध ही अब मित्रता के सिर चढ़ गया है। विनय ने अब तक इसका अनुभव नहीं किया था, परन्तु अब अनुभव करने से हो भी क्या सकता था ? अब वह विवाह को अस्वीकार तो नहीं कर सकता। तो क्या उसे शशिमुखी के साथ विवाह करना ही होगा ?

उसने उत्तर दिया—'जी नहीं, चाचाजी के पास अभी तक पत्र नहीं भेजा है।'

महिम ने कहा—'वास्तव में भूल मेरी ही है। यह चिट्ठी मुझे ही लिखनी चाहिए थी। उनका नाम और पूरा पता तो बताओ।'

विनय—'आप घबरायें नहीं। आश्विन अथवा कार्तिक में तो विवाह हो नहीं सकेगा। रहा अगहन, सो उसमें भी एक विघ्न है। पता नहीं कब, मेरे वंश में एक दुर्घटना हो गई थी। तभी से हमारे वंश में अगहन में कोई शुभ कार्य नहीं होता।'

हाथ का हुक्का कोने में रखते हुए महिम ने कहा—'विनय, तुम पढ़े-लिखे होकर भी इन बातों को मानते हो ? इस मनहूस देश में एक तो वैसे ही मुहूर्त ढूंढने से भी नहीं मिलते, फिर घर बैठे पत्रा खोल देने से तो संसार का काम कैसे चल सकेगा ?'

विनय—'तो फिर आप भादों अथवा क्वार को ही निषिद्ध क्यों मानते हैं ?'

महिम— मैं कब मानता हूँ ? इस देश में भगवान को न

मानने से तो कोई नुकसान नही होता, परन्तु भादों, मंगार, शनि, वृहस्पति, तिथि तथा नक्षत्रों को न मानने से तो कोई घर में भी नहीं रहने देगा। कोई काम करते समय यदि मुहूर्त ठीक न हो तो चित्त अप्रसन्न हो जाता है। जिस प्रकार बिगडी हुई हवा लगने से मलेरिया होता जाता है, उसी प्रकार यह डर भी है, इसे मैं किसी प्रकार नही हटा सकता।'

विनय—'तो फिर मेरे वंश में भी अगहन का कोई डर नहीं मिटा सकता, अन्य लोग चाहे मान भी जायें परन्तु मेरी चाची तो किसी भी प्रकार तैयार न होंगी।'

इस प्रकार उस दिन विनय ने विवाह की बात को टाल दिया।

विनय की बातचीत से गोरा को यह समझते देर न लगी कि उसके भावों में परिवर्तन उपस्थित हो गया है। उसे यह भी पता चल गया था कि अब परेशबाबू के घर वह पहले से अधिक आ-जा उठा है। अतः विवाह के प्रस्ताव मे से,इस प्रकार उसे निकलते देखकर गोरा के हृदय मे सन्देह उत्पन्न होने लगा।

गोरा ने लिखना छोड़कर सिर उठाते हुए कहा—'विनय, जब तुम भाई साहब को एक बार वचन दे चुके हो तो फिर इन्हें दुविधा में डालकर कष्ट क्यों पहुँचाना चाहते हो? विनय ने असहिष्णु होते हुए कहा—मैंने वचन दिया है अथवा वह मुझसे जबर्दस्ती लिया गया है?'

विनय के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर गोरा को आश्चर्य हुआ। वह खडा होकर बोला—'तुमसे यह जबर्दस्ती किसने लिया?'

विनय ने कहा—'तुमने।'

गोरा—'इस सम्बन्ध मे तो मेरी तुमसे कोई अधिक बातें भी नहीं हुईं, क्या इसी को तुम वचन-लेना कह रहे हो?'

विनय के पास कोई विशेष प्रमाण न था। गोरा सत्य ही कह रहा था। उसकी गोरा से जो बातचीत इस सम्बन्ध में हुई थी

ग्रह अथवा जबर्दस्ती का कोई भाव नहीं था। फिर भी यह सत्य था कि विनय की सम्मति को गोरा ने जैसे मजबूरन ले लिया था। इसीलिए विनय ने लड़खड़ाते हुए कहा—'किसी बात को जबर्दस्ती कहलवाने के लिए बहुत बातों की आवश्यकता नहीं होती।'

गोरा कुर्सी से उठते हुए बोला—'तो तुमने अपनी बात फेर ली ? यह कोई ऐसी बेशकीमती वस्तु नहीं, जिसे मैं तुमसे जबर्दस्ती लेता।'

महिम पास के कमरे में ही थे। गोरा ने उन्हें जोर से आवाज दी—'भाई साहब !'

महिम हड़बड़ा कर भागे आये। गोरा बोला—'मैं पहले कहता था कि शशिमुखी का विवाह विनय के साथ नहीं हो सकता धारणा मिथ्या नहीं होती।'

महिम ने कहा—'हां, कहा तो था। तुम्हारे अतिरिक्त व्यक्ति ऐसी बात कह भी नहीं सकता था और लोग तो अपनी के विवाह में पहले से ही उत्साह दिखलाते हैं।'

गोरा—'परन्तु आपने मेरे द्वारा विनय से आग्रह क्यों कराया।'

महिम—'मैं समझता था कि तुम्हारे कहने से काम हो जायगा।'

गोरा लाल आंखें करते हुए बोला—'मैं इन बातों को नहीं चाहता। मेरा काम विवाह की बिचवाली करना नहीं है—मेरा, काम तो दूसरा ही है।'

इतना कह कर गोरा घर से बाहर चल दिया। हतबुद्धि के समान महिम वहीं खड़े रहे। उनके कुछ कहने के पूर्व ही विनय चल दिया। महिम हुक्का उठाकर चुपचाप पीने लगे।

इससे पूर्व भी विनय के साथ गोरा के झगड़े हुए थे, पर उनका स्वरूप इतना उग्र कभी नहीं रहा। विनय पहले तो अ करतूत पर दुःखी हुआ, फिर घर पहुँच कर तो वह उसके हृदय में की तरह खटकने लगी। उसे यह स्मरण कर बहुत कष्ट हुआ कि

भर के भीतर ही उसने गोरा को कितनी गहरी चोट दी है। इस घटना मे उसने जो गोरा को दोष दिया था, वह उसे अत्यन्त अनुचित तथा असंगत प्रतीत हुआ। वह अपने को बार-बार धिक्कारता हुआ कहने लगा—'अन्याय ! घोर अन्याय !!'

दो बजे के समय, जब आनन्दमी सबको खिला-पिलाकर तथा स्वयं भी भोजन से निवृत होकर सिलाई करने के लिए बैठी, तभी विनय अचानक उनके पास जा बैठा। आनन्दमयी ने महिम द्वारा आज सुबह ही अनेकों बातें सुनी थी। भोजन के समय जब उन्होने गोरा के गम्भीर मुख को देखा था, तब भी वे ताड गई थी कि आज कोई खटपट अवश्य हुई है।

विनय आते ही बोला—'माँ, मैंने अन्याय किया है। शशिमुखी के विवाह के सम्बन्ध में आज मैंने गोरा से जो बातें कही हैं, वे सब निरर्थक हैं।'

आनन्दमयी ने उत्तर दिया-'एक साथ रहने पर, परस्पर में कभी खटपट हो जाती है। मन मे किसी व्यथा का बोझ होता है, तो वह इसी प्रकार निकला करता है। मन का मैल निकल जाना ही अच्छा है। दो दिन बाद तुम भी इस झगड़े की बात भूल जाओगे और गोरा भी भूल जायेगा।'

विनय-'माँ, मैं तुमसे यही कहने आया हूँ कि शशिमुखी के साथ विवाह करने में मुझे कोई ऐतराज नही है।'

आनन्द०—'जब तक यह झगडा समाप्त नहीं होता, तब तक दूसरे झंझट में पड़ने की आवश्यकता नही। विवाह कोई गुडिया का खेल तो है नहीं। हाँ यह झगड़ा अवश्य दो-तीन दिन का ही है।'

विनय को यह बात नही जँची। वह इस प्रस्ताव को लेकर गोरा के पास तो नहीं जा सका, महिम के पास पहुँच कर बोला—'विवाह के सम्बन्ध को कोई विघ्न नही है। माघ के महीने में वह कार्य सम्पन्न हो जायेगा। चाचाजी को भी कोई ऐतराज न होगा। यह जिम्मा मैं अपने ऊपर लेता हूँ।'

महिम बोले—'तो फलदान हो जाना चाहिए ?'

विनय—'इस कार्य को आप गोरा की सम्मति लेकर करें।'

महिम—'तुमने फिर गोरा से सम्मति लेने को कहा ?'

विनय—'बिना उसकी सलाह लिए तो कोई काम हो ही नहीं सकता।'

महिम—'काम न चलेगा, तब तो सलाह लेनी ही पड़ेगी, परन्तु......'

इतना कहकर उन्होंने डिब्बे में से पान निकालकर अपने मुँह में रख लिया।

१६

उस दिन महिम ने गोरा से कुछ न कहा। दूसरे दिन जब वे उसके कमरे में गए तो उन्होंने समझा था कि गोरा को फिर से राजी करने में उन्हें बहुत कुछ कहना-सुनना होगा, परन्तु उन्होंने जैसे ही कल शाम की विनय की बात उसे सुनाई और उसकी राय माँगी, वैसे ही उसने अपनी सम्मति देते हुए कहा—'ठीक है, फलदान हो जाना चाहिये।'

महिम ने आश्चर्यान्वित होते हुए कहा—'अभी तो 'हाँ' कह रहे हो, परन्तु फिर कहीं झगड़ा न कर बैठना ?'

गोरा बोला—'मैंने रोकने के अभिप्राय से कभी झगड़ा नहीं किया, मेरा झगड़ा तो केवल आग्रह करने से है।'

महिम—'इसीलिए मैं तुम से हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि न तो तुम इसमें विघ्न डालो और न अनुरोध ही करो। हमें न तो कुरुपक्ष के लिए नारायणी सेना की आवश्यकता है और न पाण्डव-पक्ष के लिए श्री कृष्ण की ही। मैं जो अकेला करूँ, वह ठीक है। मैंने तुमसे अनुरोध करने के लिए कहा, यह मेरी भूल थी। मुझे यह पता न था कि तुम्हारी सहायता विपरीत भी पड़ सकती है। अब यह कार्य हो रहा है, परन्तु इसमें तुम्हारी स्वीकृति तो है न ?'

गोरा—'जी हाँ, है।'

महिम—'बस, यही चाहिये भी। अब तुम इस सम्बन्ध में और कुछ न करना।'

गोरा ने अनुभव किया कि विनय को दूर से खींचे रहना कठिन है। स्थान आशङ्का का है वहीं पहरा देना चाहिये। उसने हृदय में विचार किया—'यदि मैं परेशबाबू के घर आता-जाता रहूँ तो विनय को सीमा से बाहर न जाने दूँगा। उसी दिन तीसरे पहर गोरा विनय के घर जा पहुँचा। विनय को गोरा के आने की आशंका न थी, अतः उसे आनन्द के साथ आश्चर्य भी हुआ।

सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह थी कि आज गोरा ने आते ही आते, परेशबाबू की लड़कियों की चर्चा छेड़ दी। इसमें भी बड़ा आश्चर्य यह था कि उन पर आक्षेप की कोई बात तक नहीं थी। विनय को उत्तेजित करने के लिए यह आलोचना काफी थी, परन्तु किसी विशेष चेष्टा की आवश्यकता न पड़ी।

उस दिन रात को दोनों मित्र घूमते-फिरते, परेशबाबू की लड़कियों की बातचीत करते रहे।

घर को अकेले लौटते समय, गोरा ने इन बातों पर मन ही मन बहुत विचार किया। बिछौने पर सोते समय, तक, वह परेशबाबू की लड़कियों का ध्यान अपने हृदय से न हटा सका। गोरा के जीवन में आज यह सर्वथा नई घटना थी। इससे पूर्व उसके हृदय मे कभी स्त्रियों की किसी बात ने स्थान नहीं पाया था। संसार के अनेक व्यवहारों में यह विषय भी चिन्ता करने का है इसे इस बार विनय ने सिद्ध कर दिया था। इस बात को अब किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता था अब, या तो इसकी रक्षा करनी थी अथवा इसके विरुद्ध युद्ध करना था।

दूसरे दिन विनय ने गोरा से कहा—'परेशबाबू के घर तुम बहुत दिनों से नहीं गये। वे बराबर तुम्हारी बात पूछा करते हैं। एक बार चलो न।' यह सुनते ही गोरा बिना कोई ऐतराज किये चलने को तैयार हो गया। पहिले वह सुचरिता तथा परेशबाबू की क[illegible] के

सम्बन्ध में पूर्णत: उदासीन रहता था, परन्तु अब उसके हृदय में एक नवीन कौतूहल का भाव उत्पन्न हो रहा था। वे विनय के हृदय को अपनी ओर किस प्रकार से आकर्षित कर रही हैं—यह जानने के लिए उसका हृदय उत्सुक हो उठा।

ये दोनों जिस समय परेशबाबू के घर पहुँचे, तब तक सन्ध्या हो चुकी थी। हारानबाबू छत के ऊपर वाले कमरे में दिया जला कर, परेशबाबू को अंग्रेजी का लेख सुना रहे थे। परेशबाबू तो केवल साधन मात्र थे, वास्तव में वे वह लेख सुचरिता को सुना रहे थे। सुचरिता आँखों पर रोशनी न पड़ने देने के लिए, मुँह के सामने ताड़ के पंखे को तिरछा किये, मेज से कुछ दूर एक ओर चुपचाप बैठी हुई थी। वह सहज भाव से निबन्ध सुनने की विशेष चेष्टा कर रही थी, परन्तु उसका हृदय बरबस किसी दूसरी ओर खिंचा जा रहा था।

इसी समय नौकर ने विनय तथा गोरा के आगमन की सूचना दी। उसे सुन सुचरिता एकाएक चौंक कर उठ खड़ी हुई। उसे कुर्सी उठते देख, परेशबाबू ने कहा— कहाँ जा रही हो, सुचरिता ? बैठो, कोई और नहीं हमारे विनय तथा गौरमोहन बाबू आ रहे हैं।'

सुचरिता लजाकर फिर बैठ गई। हारानबाबू के अंग्रेजी के लम्बे लेख का पाठ रुक जाने से उसका हृदय कुछ हल्का हुआ। गोरा के आने से उसे प्रसन्नता नहीं हुई ऐसी बात न थी, परन्तु हारानबाबू के सामने उसके आने से मन में एक प्रकार की बेचैनी तथा लज्जा-सी प्रतीत होने लगी। पता नहीं, कहीं दोनों का झगड़ा न हो जाए—इस कारण से अथवा किसी अन्य कारण से यह बात पैदा हुई थी।

गोरा का नाम सुनते ही हारानबाबू उदास हो गये। वे गोरा के नमस्कार का किसी प्रकार उत्तर देकर, चुपचाप बैठे रहे। परन्तु उन्हें देखते ही गोरा का हृदय उनसे वाद-विवाह करने के लिए मचल उठा। अपनी तीनों पुत्रियों को लेकर वरदासुन्दरी किसी निमन्त्रण में गई हुई थीं। परेशबाबू को उन्हें सायंकाल लिवाने के लिए जाना पहले ही निश्चित हो चुका था। इस समय उनके जाने का वक्त हो चुका था

गोरा-विनय के आजाने मे उनके जाने मे विघ्न पडा। परन्तु विलम्ब करना उचित न जानकर वे सुचरिता तथा हारानबाबू के कान में चुपचाप यह कहते हुए उठ गये कि तुम इनके साथ कुछ देर बैठना। मैं शीघ्र ही लौट कर आ जाऊँगा।

कुछ ही देर में गोरा तथा हारानबाबू मे भारी शास्त्रार्थ छिड गया। जिस विषय पर यह विवाद आरम्भ हुआ, वह यह था कि ढाका में कलकत्ते से किसी समीपवर्ती जिले के मजिस्ट्रेट ब्रॅडला साहब से परेश बाबू की भेंट हुई थी। परेशबाबू की पत्नी और लड़कियाँ पर्दे का लिहाज न करके बाहर निकला करती थीं, इसलिए साहब तथा मॅम उनका बहुत स्वागत करते थे। अपने जन्मदिवस पर साहब प्रतिवर्ष कृषि-प्रदर्शनी का मेला करवाते थे। इस बार वरदासुन्दरी ने साहब की मॅम से भेंट करके उसके समक्ष अंग्रेजी काव्य के सम्बन्ध मे अपनी पुत्रियो की विशेष योग्यता का वर्णन किया था। उसे सुनकर मॅम ने कहा था कि इस बार मेले में लाट साहब (गवर्नर) अपनी मॅम के साथ आयेंगे। उनके सम्मुख आपकी लडकियाँ यदि कोई अंग्रेजी नाटक खेल सकें तो बहुत अच्छा रहेगा। वरदासुन्दरी इस प्रस्ताव को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई थीं। अतः आज वे अपनी पुत्रियों के अभ्यास का परीक्षण कराने के लिए किसी मित्र के घर गई हुई थी। इस मेले मे गोरा सम्मिलित होगा या नहीं ?'–इस प्रश्न के पूछे जाने पर गोरा ने किंचित अनावश्यक उत्तेजना के साथ कहा था 'नही !' बस इसी प्रसङ्ग को लेकर इस देश के अंग्रेजों तथा बंगालियो के बीच कैसे सम्बन्ध हैं–इस विषय पर दोनों में भारी तर्क-वितर्क आरम्भ हो गये थे।

हारानबाबू बोले–'इसमे दोष बगालियो का ही है। हमारे भीतर इतने कुसंस्कार तथा कुप्रथायें हैं कि हम अंग्रेजो से सम्पर्क स्थापित करने योग्य भी नहीं रहे।'

गोरा ने कहा—'यदि यह सत्य है तो उस अयोग्य [illegible] लिए, अंग्रेजों के साथ मिलने के हेतु, लार टपकाना भी हमारे [illegible]

लज्जा का विषय है।'

हारानबाबू—'परन्तु इन जैसे योग्य व्यक्ति अंग्रेजों से पूर्ण सम्मान प्राप्त कर रहे हैं।'

गोरा—'जहां एक व्यक्ति का आदर तथा अन्यों का अनादर हो वहां हम उस आदर को भी भारी अनादर मानते हैं।'

इस उत्तर से हारानबाबू बहुत क्रुद्ध हो उठे। उधर गोरा अपने वाक्य-बाणों से रह-रहकर उनका हृदय वेधने लगा।

इन दोनों में जब इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था, उस समय सुचरिता मेज के पास बैठी हुई, पंखे की आड़ करके, गोरा को टकटकी लगाये देख रही थी। वह बातों को सुन अवश्य रही थी, परन्तु उसका मन उनमें नहीं लग रहा था। इस समय वह गोरा को देखने में अपने को भूल सी गई थी। गोरा मेज के ऊपर अपनी बलिष्ठ बांहों को रक्खे हुए झुका बैठा हुआ था। दीपक के प्रकाश में उसका उन्नत ललाट दमक रहा था। उसके मुख पर कभी घृणा, तो कभी व्यंग, हंसी अथवा उत्साह के चिन्ह दिखाई पड़ते थे। वह जो कुछ कह रहा था, वह केवल वितर्क अथवा आक्षेप की बात ही नहीं थी, उसकी प्रत्येक बात भली-भांति विचार की हुई प्रतीत होती थी। उसके कण्ठ से निकली हुई, प्रत्येक बात दृढ़ता से भरी हुई थी। सुचरिता ने मानो अपने जीवन में सर्वप्रथम एक पुरुष को एक विशेष व्यक्ति के रूप में भी देखा था। उस समय उसकी दृष्टि में अन्य कोई पुरुष उसके समक्ष नहीं ठहर सकता था। इस तर्क में खड़े होने के कारण, सुचरिता की दृष्टि में हारानबाबू बहुत तुच्छ प्रतीत हुए। विनय द्वारा इतने दिनों तक गोरा के सम्बन्ध में निरन्तर आलोचना सुनने के पश्चात्, उसने गोरा को एक विशेष मत वाला असाधारण व्यक्ति स्वीकार कर लिया था। उसने मन में यह कल्पना भी कर ली थी कि किसी समय उसके द्वारा देश का कोई कल्याण-साधन भी हो सकता है। आज वह गोरा को समस्त दल, मत तथा उद्देश्य से पृथक केवल गौरमोहन अनुभव करने

लगी। जिस प्रकार समुद्र चन्द्रमा को देखकर आनन्द से भर उठता है, उसी प्रकार वह आज गोरा को देखकर हर्ष से फूल उठी। मनुष्य के प्रति मनुष्य की आत्मा का क्या सम्बन्ध है, इस ओर उसका ध्यान पहिली बार आकृष्ट हुआ। इस अपूर्व अनुभव में वह अपने अस्तित्व को भी भूल बैठी।

हारानबाबू सुचरिता के मन के भाव को समझ चुके थे। यही कारण था कि तर्क में उनकी युक्तियाँ शक्तिशाली सिद्ध नहीं हो रही थीं। मन के अधीर हो जाने से, बुद्धि भी मन्द हो उठती है। अन्त में वे अत्यन्त अधीर होकर अपने स्थान से उठ खड़े हुए तथा सुचरिता को अत्यन्त आत्मीय की तरह पुकारते हुए बोले 'सुचरिता तुम तनिक इस कमरे में तो आओ मुझे तुमसे एक बात कहनी है।'

सुचरिता यह सुनते ही चौंक पड़ी। वे इस प्रकार किसी दूसरे समय उसे पुकारते तो उसे कोई ध्यान नहीं होता, परन्तु इस समय गोरा एवं विनय के समक्ष उनका इस प्रकार पुकारना सुचरिता को अपना अपमान प्रतीत हुआ। विशेषकर उस समय उसने गोरा के मुँह पर जो भाव देखे, उनसे वह हारानबाबू को ऐसी अशिष्टता के लिये क्षमा न कर सकी। वह उनकी बात को अनसुनी करके चुप बैठी रही। तभी हारानबाबू ने अपने स्वर में कुछ क्रोध भरकर कहा—'सुचरिता क्या सुनती नहीं हो? मुझे तुमसे कुछ कहना है। क्या इस कमरे के भीतर एक बार नहीं आओगी?'

तब सुचरिता ने उसकी ओर देखे बिना उत्तर दिया—'बाबूजी के आने पर सुन लूँगी अभी ठहरिये।'

उसी समय विनय ने खड़े होकर कहा—'अच्छा तो हम लोग अब जाते हैं।'

सुचरिता ने शीघ्रतापूर्वक कहा—'नहीं विनयबाबू, अभी आप मत जाइये। बाबूजी आप लोगों को ठहरने के लिये कह गये हैं, वे आ ही रहे होंगे।'

'तब मैं अब यहाँ क्षण भर भी नहीं ठहर सकूंगा' यह कहते हुए हारानबाबू वहां से उठ कर चल दिये। परन्तु जब वे क्रोध के आवेश में बाहर निकल आये तो उन्हें स्वयं पर पश्चाताप हुआ। फिर भी उन्हें लौटने का कोई बहाना बहुत ढूंढ़ने पर भी नहीं मिल सका।

हारानबाबू के चले जाने पर सुचरिता एक अपूर्व लज्जा से सिकुड़, सिर झुकाये बैठी रही। वह मन में सोच रही थी—'क्या करूँ, क्या कहूँ?' परन्तु कोई निश्चय ही नहीं कर पा रही थी। उस बीच में गोरा ने उसके मुँह को भली प्रकार देख लिया। उसने शिक्षित स्त्रियों में जिस उद्धत स्वभाव तथा निर्लज्जता की कल्पना कर रखी थी, सुचरिता के मुँह पर उसका कहीं आभास तक न था। उसका चेहरा बुद्धिमता के कारण प्रकाशित हो रहा था। तथा आज लज्जा और नम्रता के सामंजस्य के कारण वह और भी अधिक सुन्दर तथा कोमल प्रतीत होने लगा था। उसके मुख पर लावण्य तथा कोमलता छाई हुई थी, धनुपाकार भौंहें अपनी निराली शोभा लिये हुई थीं। इससे पूर्व गोरा ने किसी नव युवती के वेषविन्यास तथा वस्त्राभूषण को कभी भली-भांति नहीं देखा था। यों कहिये उसे न देखने की बीमारी थी। वह उससे स्वाभाविक घृणा करता था।

सुचरिता के शरीर पर साड़ी पहनने का नवीन ढंग उसे अत्यन्त सुन्दर लगा। शायद, आज उसकी दृष्टि में कुछ विशेषता आ गई थी, जिसके कारण वह जो कुछ देख रहा था, सब अपूर्व लग रहा था। घर की कड़ी छत तथा दीवार तक उसे नवीन सी लगीं। सुचरिता के सिर से पैर तक सभी अंगों की शोभा को देखकर वह चकित हो उठा।

कुछ देर तक सभी चुप रहे। फिर विनय ने सुचरिता की ओर देखते हुए बात छेड़ दी—'उस दिन आप क्या कह रही थीं?' फिर बोला—'मैं आपको बता चुका हूँ कि मेरे भी मन में पहले ऐसी ही धारणा थी। मुझे विश्वास था कि हमारे देश तथा समाज के लिये कोई आशापूर्ण बात नहीं है। हम लोगों को अभी बहुत दिनों तक, अंग्रेजी के संरक्षण में नाबालिग की भाँति रहना पड़ेगा। इसीलिए मैंने यह चाहा

था कि मैं गोरा के पिताजी से कह कर, अपने लिये किसी सरकारी नौकरी का प्रबन्ध कर लूँ । परन्तु उसी समय गोरा ने मुझसे यह कहा था, नहीं तुम सरकारी नौकरी नहो कर सकोगे ।'

यह सुनकर सुचरिता के मुख पर जो आश्चर्य का भाव आया, उसे देखकर गोरा बोला—'आप यह न समझियेगा कि सरकार के ऊपर क्रोध करके मैंने ऐसी बात कही थी । जो लोग सरकारी कर्मचारी होते हैं वे सरकार की शक्ति को अपनी शक्ति समझकर, स्वयं को देश के अन्य लोगों से भिन्न अनुभव करने लगते हैं । जितने दिन बीतते जाते हैं, उनका यह भाव उतना ही अधिक बढ़ता जाता है । पुराने [illegible] एक आत्मीय डिप्टी थे । अब वे उस काम को छोड़ बैठे हैं । एक बार जिला मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा था—'बाबू आपकी अदालत से इतने अधिक लोग रिहा क्यों कर दिये जाते हैं ?' इस पर उन्होंने उत्तर दिया था—'साहब, उसका एक ही कारण है कि [illegible] लोगों को जेल भेजते हैं, उन्हें कुत्ते-बिल्ली से अधिक नहीं [illegible] परन्तु मैं जिन्हें जेल भेजता हूँ, उन्हें अपना भाई समझता हूँ । [illegible] वाला डिप्टी उस समय भी था और [illegible] का भी आभाव नहीं था परन्तु अब [illegible] जा रहा है, यहां के लोग नौकरी को [illegible] परिणाम स्वरूप आज के भारतीय डिप्टी के [illegible] निवासी कुत्ता-बिल्ली बनता जा रहा है. [illegible] तो हो सकती है । परन्तु देश की [illegible] नहीं आता । जो लोग दूसरे के [illegible] अनुभव करेंगे अथवा दूसरे को तुच्छ [illegible] उनके देश का कोई कल्याण नहीं [illegible] मेज पर इस प्रकार हाथ पटका कि [illegible] यदि कुछ और जोर से उसने [illegible] जाता ।

विनय बोला—'[illegible]

भी परेशबाबू का है।'

यह सुनते ही गोरा ठठाकर हँस पड़ा और उसकी प्रबल हँसी से सारा मकान गूँज उठा। सुचरिता को देखकर आश्चर्य हुआ और साथ ही आह्लाद भी। 'जो बड़ी बातें कहते हैं, वे जी भर कर हँस भी सकते हैं,—यह बात उसे जैसे मालूम ही नहीं थी।

उस दिन गोरा ने बहुत बातें कीं। सुचरिता यद्यपि चुप रही परन्तु उसके मनोभावों को देखकर गोरा को ऐसी तृप्ति प्राप्त हुई कि उसका हृदय आनन्द से भर गया। अन्त में वह जैसे सुचरिता को लक्ष्य करता हुआ बोला—'एक बात स्मरण रखने की है। जिस प्रकार अंग्रेज लोग प्रबल हैं, उसी प्रकार यदि हम भी प्रबल न बन सके, तो सफलता न मिलेगी —'यह सोचना भी भारी भूल है। उनका अनुकरण करने से तो हमारा और भी अधिक पतन हो जायेगा। उस समय न हम हिन्दू रहेंगे और न मुसलमान ही। तब प्रबलता क्या प्राप्त होगी?' मेरा अनुरोध है कि आप भारतवर्ष के भीतर आयें। इसके भले-बुरे व्यवहारों के बीच खड़े होकर, यदि कोई त्रुटि देखें, तो उसका भीतर से संशोधन करें। सब के साथ मिलकर एक हो जायें। इस मत के विरुद्ध खड़े होकर तथा अपनी नस-नस में ईसाईयत भर लेने से आप हिंदू-धर्म के तत्व को न समझ सकेंगी। तब आपके द्वारा देश का कोई उपकार भी हो सकेगा।'

गोरा ने कहा तो था कि 'यह मेरा अनुरोध है'—परन्तु वह बात वास्तव में अनुरोध न होकर एक प्रकार की आज्ञा थी। वह बात इतनी प्रबल थी कि उस पर कोई अन्य टिप्पणी की ही नहीं जा सकती थी। सुचरिता नीचे सिर किए, सब चुपचाप सुनती रही। गोरा ने एक प्रबल आग्रह के साथ, विशेषकर उसी को सम्बोधित करके जो ये बातें कही थीं, उनसे उसके हृदय में एक आन्दोलन-सा मच उठा। उसने अपने संकोच को त्याग कर नम्रतापूर्वक कहा—'मैंने इस महत्व के भाव को लेकर देश के विषय पर कभी नहीं सोचा था, परन्तु मैं आपसे यह अवश्य पूछना चाहती हूँ कि धर्म और देश का परस्पर क्या सम्बन्ध है? क्या

धर्म देश से भिन्न वस्तु नहीं है ?'

सुचरिता के कोमल कण्ठ का यह प्रश्न गोरा के कानों को अत्यन्त मधुर लगा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के बीच यह प्रश्न और भी मीठा जान पड़ा। वह बोला— जिस धर्म को आप भिन्न मानती हैं, वह देश की अपेक्षा कितना महत्वपूर्ण है, इस बात को आप देश के भीतर प्रविष्ट होकर ही जान सकेंगी। लोगों का कहना है—'सत्य एक है।' वे एक ही धर्म एवं उसके रूप को सत्य मानते हैं। परन्तु जो सत्य अनन्त रूपों में परिणित है, वे उसे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, उन्हें नहीं पता कि सत्य धर्म अनेकों रूपों में बँटा हुआ है। फिर वह किसी भी रूप में क्यों न हो, रहेगा सत्य ही। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि भारतवर्ष की खुली खिड़की के मार्ग से आप सूर्य को भली-भाँति देख सकती हैं, उसके लिए समुद्र पार किसी ईसाई गिरजाघर की खिड़की में बैठने की आवश्यकता नहीं है।'

सुचरिता बोली—'तो आप यह कहना चाहते हैं कि भारतवर्ष का धर्म एक विशेष मार्ग से ईश्वर की ओर ले जाता है ? यह विशेषता कौन-सी है ?'

गोरा—'यही कि जो निर्विशेष ब्रह्म है, वह विशेष के भीतर ही व्यक्त होता है। जो निराकार है, उसके आकार का अन्त नहीं है। ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल तथा सूक्ष्म का अनन्त प्रवाह वही है। छोटों में भी छोटा तथा बड़ों में भी बड़ा है। जो अनन्त विशेष है, उसी को निर्विशेष कहना चाहिये। जो अनन्त रूप है वही अरूप भी है। वह ब्रह्म व्यापकरूप से सर्वत्र विद्यमान है। अन्य देशों में ईश्वर को कम अधिक परिणाम में एक सीमा बद्ध करने की चेष्टा की गई है, भारतवर्ष में भी ईश्वर को विशेष के मध्य देखने की चर्चा चलती है, परन्तु यह देश उस विशेष को भी एक मात्र तथा सर्वोपरि नहीं मानता। वह इतना ही मानता है कि अनेक विशेषों में यह भी एक विशेष है। इस विशेष को भी अनन्त गुण से अतिक्रम करने वाले ईश्वर को, भारतवर्ष का कोई भक्त कभी अस्वीकार नहीं करता।'

सुचरिता बोला—'ज्ञानी चाहे अस्वीकार न करें, परन्तु अज्ञानी.........?'

गोरा—'यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि सभी देशों में अज्ञानी जन सभी सत्य को विकृत ही मानेंगे।'

सुचरिता—'वह विकार हमारे देश में क्या बहुत दूर तक नहीं पहुँच सका है ?'

गोरा—'सम्भव है, परन्तु उसका कारण है—धर्म का स्थूल तथा सूक्ष्म, भीतर तथा बाहर एवं शरीर और आत्मा इन्हीं दोनों अंगों को भारतवर्ष सम्पूर्ण भाव से स्वीकार करना चाहता है। अतः जो सूक्ष्म को ग्रहण नहीं कर सकते, वे स्थूल को पकड़ते हैं तथा अपने अज्ञान द्वारा उस स्थूम में अनेक अद्भुत विकारों की कल्पना कर बैठते हैं, परन्तु जो रूप-अरूप स्थूल सूक्ष्म, ध्यान तथा प्रत्यक्ष में भी सत्य है, उसे भारतवर्ष मन, वचन, कर्म सब प्रकार से प्राप्त करने की अद्भुत तथा गहन चेष्टा करता है। हम लोग उसे मूर्खों की भाँति अश्रद्धा योग्य समझ कर यूरोप की अठारहवीं शताब्दी के नास्तिकता-आस्तिकता युक्त संकीर्ण, शुष्क तथा अंगहीन धर्म को ही एक मात्र धर्म करके ग्रहण करें, यह कभी सम्भव नहीं है।'

सुचरिता को बहुत देर तक चुप बैठे देखकर गोरा बोला—'आप मुझे प्रचारक न समझिये। कपटाचारी लोग, विशेषकर वे—जो नये-नये धर्मध्वजाधारी हो उठे हैं, जिस भाव से बातें करते हैं, उस भाव से आप मेरी बातें ग्रहण न करें। भारतवर्ष के विविध प्रकाश तथा विचित्र व्यापार के बीच, मैंने एक गम्भीर तथा महान् एकता अनुभव की है। मैं उस ऐक्यभाव के आनन्द में पागल-सा हो गया हूँ। उस ऐक्य-भाव के कारण ही, भारत के दस निपट मूर्ख लोगों के बीच पृथ्वी पर बैठने में भी मुझे संकोच नहीं होता। जिनकी दृष्टि दूरगामी नहीं है, वे भले ही संकोच करें। परन्तु मैं अपने भारत के सभी लोगों के साथ एकसा हूँ, सभी मेरे आत्मीय हैं। हम सभी इस एक ही भारतवर्ष की सन्तान हैं, इसमें संदेह नहीं है।'

गोरा के गम्भीर कण्ठ से निकले हुए शब्द बहुत देर तक घर के भीतर गूँजते रहे।

सुचरिता इन सब बातों को भली-भाँति न समझ सकी, परन्तु अनुभव की प्रथम अस्पष्ट गति का संचार अत्यन्त प्रबल होता है। मनुष्यका जीवन किसी सीमा मे बँधा नही है, यह ज्ञान मानो उसके मन को दबाने लगा।

इसी समय सीढ़ियो पर आती हुई, महिलाओं की खिलखिलाहट सुनाई दी। परेशबाबू वरदासुन्दरी तथा लड़कियों को लेकर लौट आये थे। सीढ़ी पर ऊपर चढ़ते समय सुधीर उनका मार्ग रोक कर बीच में ही खड़ा हो गया था, इसी पर सबको उसकी नादानी पर हँसी आगई थी।

कमरे के भीतर गोरा को देखते ही लावण्य, ललिता तथा सतीश ठिठक कर खड़े हो गये थे। लावण्य उल्टे पैरों वापिस लौट आई। सतीश विनय की कुर्सी के पास खड़ा होकर, उसके कान के पास अपना मुँह ले जाकर कुछ कहने लगा।

ललिता कुर्सी खींचकर सुचरिता के पीछे, आड किए हुए बैठ गई।

परेशबाबू आते ही बोले—'मुझे लौटने में बहुत देर हो गई। मालूम होता है, हारानबाबू चले गये।'

सुचरिता चुप रही। विनय ने कहा—'हाँ, वे ठहर नही सके।'

गोरा खड़े होकर बोला—'अब हम भी जा रहे हैं।' और उसने परेशबाबू को नमस्कार किया।

परेशबाबू ने कहा—'आज तो तुमसे बातचीत करने का समय ही नहीं मिला, अब फिर कभी तुम्हें अवकाश मिले तो अवश्य आना।'

गोरा ने कहा—'जो आज्ञा।'

वरदासुन्दरी बोली—'विनयबाबू, अभी आप न जा सकेंगे। आप खाना खाकर जाइयेगा। आपसे आवश्यक बातें करनी हैं।'

सतीश ने बढकर विनय का हाथ पकड लिया। फिर बोल

'हाँ, माँ, विनयवावू को मत जाने दो । ये आज रात को मेरे साथ ही रहेंगे ।'

विनय को कुछ उत्तर न दे पाने के कारण घवराया-सा देखकर, वरदासुन्दरी गोरा से कहने लगीं—'क्या आप विनयवावू को अपने साथ ही ले जाना चाहते हैं ? आपको इनसे कोई कार्य है क्या ?'

गोरा ने उत्तर दिया—'जी कुछ भी नहीं ।' फिर विनय बोला—'विनय तुम यहीं ठहरो, मैं जा रहा हूँ।' इतना कहकर गो चला गया। विनय के वैठने पर ललिता वोली—'विनयवावू, आज च जाना ही शुभ था ।'

विनय ने पूछा—'क्यों ?'

ललिता वोली—'माँ, आज आपको एक नई मुसीवत में फँसाना चाहती हैं। मजिस्ट्रेट के जल्से में जो अभिनय होने वाला है, उसमें एक आदमी की कमी पड़ गई है। उसके लिए माँ ने आपको ही चुना है।'

विनय घवराकर वोला—'अरे, यह उन्होंने क्या किया ? मैं तो इस काम को न कर सकूँगा ।'

ललिता हँसकर कह उठी—'मैंने माँ से पहिले ही कहा था आपके मित्र आपको इस नाटक में कभी सम्मिलित न होने देंगे।'

विनय को जैसे चोट लगी । बोला—'मित्र की वात न कह मैंने कभी अभिनय नहीं किया है। मुझे चुना ही क्यों ?'

इसी समय वरदासुन्दरी कमरे में आ पहुँचीं । ललिता वोली 'माँ, तुमने अभिनय के लिये विनयवावू को व्यर्थ ही चुना, पहिले मित्र से तो पूछ लिया होता......'

विनय कातर-स्वर में वोला—'मित्र से पूछने की वात नह मैंने आज तक कभी अभिनय नहीं किया है और न मुझमें इसकी य ही है।'

वरदासुन्दरी ने कहा—'आप उसकी चिन्ता न करें। मैं सिखाकर सब ठीक कर दूँगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ अभि

सकेंगी, तब आप क्यों न कर सकेंगे ?'

अब कोई उपाय विनय के उद्धार का नहीं रह गया था।

२०

गोरा अपनी स्वाभाविक तेज चाल को छोड़कर, धीरे-धीरे घर को चल दिया। फिर वह घर जाने वाले सीधे मार्ग को छोड़कर, गंगातट की ओर मुड़ गया।

बहुत रात बीतने पर जब वह घर पहुँचा, तो आनन्दमयी ने उससे पूछा—'बेटा, इतनी रात कैसे कर दी ? देखो, खाना रक्खे-रक्खे ठण्डा हो गया है।'

गोरा बोला—'माँ, न जाने आज क्या ध्यान आ गया कि मैं बहुत देर तक गंगा किनारे बैठा रहा।'

आनन्दमयी ने कहा—'मालूम होता है, विनय भी साथ था ?'

गोरा—'नहीं, मैं अकेला ही था।'

आनन्दमयी को मन-ही-मन कुछ आश्चर्य हुआ। गोरा इतनी रात गये तक गंगा तट पर बैठा हुआ अकेला कुछ सोचता रहे, ऐसी घटना पहिले कभी नहीं घटी थी। चुप बैठने को तो गोरा का स्वभाव ही नहीं था। जब गोरा अनमना होकर भोजन कर रहा था, उस समय आनन्दमयी ने उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा तो पता चला कि जैसे उस पर कोई चंचल भाव प्रदीप्त हो रहा है।

कुछ देर पश्चात् आनन्दमयी ने धीरे से पूछा—'शायद आज तुम विनय के घर गये थे ?'

गोरा—'नहीं, आज हम दोनों परेशबाबू के घर गये थे।'

आनन्दमयी कुछ देर चुप रही फिर बोली—'क्या उनके घर के लोगों से तुम्हारा मेल-जोल हो गया ?'

गोरा—'हाँ, हो तो गया है।'

आनन्दमयी—'उनके यहा की औरतें तो सबके सामने निकलती हैं ?'

गोरा—'हाँ, उनके यहाँ इसका कोई विचार नहीं है।'

कोई और समय होता तो प्रत्येक उत्तर के साथ गोरा की उ॰ जना के भाव प्रकट होते, परन्तु आज वैसा कोई लक्षण दिखाई न दिय आनन्दमयी यह देखकर, फिर चुप होकर सोचने लगीं।

दूसरे दिन सुबह गोरा अन्य दिनों की भाँति हाथ-मुँह धो॰ अपना काम करने को तैयार हो गया। अपने सोने के कमरे के पूर्व दरवाजा खोलकर, वह बड़ी देर तक चुप खड़ा रहा। घर की गली की ओर एक बड़ी सड़क में जा मिली थी। उस सड़क पर पूर्व की ॰ एक विद्यालय था। स्कूल के पास ही जो एक जामुन का वृक्ष था, पर कुहरे की एक उज्ज्वल चादर पड़ी हुई थी और उसी के ठीक सूर्योदय कीलालिमा धुँधली-सी दिखाई दे रही थी। देखते-ही-दे कलकत्ते की सड़कें आदमियों के शोर-गुल से भर गईं।

इसी समय गली के मोड़ पर अन्य छात्रों के साथ अविनाश अपने घर की ओर आते देखकर गोरा बोला–'न, यह सब कुछ न ऐसा कब तक चलेगा?'

इतना कह कर शीघ्रतापूर्वक कमरे से बाहर निकला। गोरा घर में उसका सारा दल आया हो और वह पहले से ही तैयार न हु हो, यह बात आज बिलकुल नई थी। इस त्रुटि ने गोरा के मन॰ बार-बार धिक्कारा। उसने निश्चय किया कि अब वह फिर कभी परे॰ बाबू के घर नहीं जायेगा। तब इस आलोचना को बन्द करने के लि कुछ दिन विनय से भी भेंट न करने का प्रयत्न करे

उस दिन नीचे आकर यह नि
दो-तीन व्यक्तियों के साथ पैदल-भ्रमर
लेगा। मार्ग में किसी भद्र-पुरुष के घ
पास रुपया पैसा कुछ न रहेगा।

इस सङ्कल्प से गोरा का मन
की सब तैयारियों को पूर्ण कर, अपने
उसी समय कृष्णदयालबाबू रामना॰

तथा मन-ही-मन कुछ पाठ करते हुए घर आ रहे थे। मार्ग में गोरा से अचानक ही भेंट हो गई। गोरा ने लज्जित हो, उन्हें पैर छूकर प्रणाम किया। वे अचकचाकर 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए, घर की ओर बढ़ चले। पूजा पर बैठने से पूर्व उनका किसी से स्पर्श हो जाने के कारण, गंगा स्नान का फल समाप्त हो गया। गोरा को यह पता न था कि 'कृष्णदयालबाबू उसका संसर्ग बचाये रहते हैं।' वह समझता था कि छुआछूत मानने वाले होने के कारण सब-से-सब प्रकार का सम्बन्ध बचा कर चलना ही उनकी सावधानी का कारण है। आनन्दमयी को तो 'म्लेच्छ' बताकर वे उससे दूर रहते ही थे। महिम को बहुत काम लगे रहते थे, अतः उसे उससे भेंट करने का अवकाश ही कहाँ था? घर के सब लोगों में केवल शशिमुखी को ही अपने पास बैठाते, उसे संस्कृति के स्तोत्रों का पाठ कराते तथा उससे पूजा की टहल करा लेते थे।

जिस समय कृष्णदयालबाबू गोरा से पैर छू जाने पर घबरा कर भागे, उस समय गोरा को उनके संसर्ग-जन्य संकोच के सम्बन्ध में ज्ञान हुआ तब वह मन-ही-मन हँस उठा। इस प्रकार धीरे-धीरे गोरा का सम्बन्ध अपने पिता से टूट गया था माता के अनाचार की निंदा करते हुए भी, वह उनका निरंतर भक्त बना रहा।

भोजन के पश्चात् गोरा कपड़ों की एक छोटी-सी पोटली को अंग्रेजी मुसाफिरों की भांति पीठ पर बांधकर मां के पास जा पहुँचा तथा बोला—'मां, मैं कुछ दिन के लिये बाहर घूमने जा रहा हूँ।'

आनन्दमयी ने पूछा—'कहाँ जाओगे?'

गोरा—'यह तो मैं भी ठीक-ठीक नहीं कह सकता।'

आनन्दमयी—'क्यों, कोई काम है?'

गोरा—'काम तो कुछ खास नहीं है, केवल घूमना ही समझो।'

आनन्दमयी को मन मारे चुप देखकर गोरा बोला—'मां, मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जाने से रोको मत। मैं सन्यासी नहीं हो जाऊँगा और न तुम से अधिक दिनों तक अलग रह सकूँगा।'

मां के सम्मुख गोरा ने अपना प्रेम इस प्रकार कभी प्रकट नहीं

आनन्दमयी ने उसकी बात से प्रसन्न होकर पूछा—'क्या विनय जायेगा ?'

गोरा बोला—'नहीं माँ वह नहीं जायेगा। यह तो तुम्हारे मातृ-य की आशंका है कि विनय के साथ न जाने पर मार्ग में मेरी रक्षा करेगा, परंतु यदि विनय को मेरा रक्षक समझती हो तो यह तुम्हारी भूल है। इस बार मेरे सुरक्षित लौट आने पर तुम्हारा यह भ्रम भी हो जायेगा।'

आनन्दमयी—'पर बीच-बीच में तुम्हारा समाचार तो मिलता ा न ?'

गोरा—'तुम यही समझ लो कि कोई समाचार न मिलेगा। ऐसा चय कर लेने के बाद, जब तुम्हें मेरी कोई खबर मिलेगी तो तुम्हें ष आनंद प्राप्त होगा। परंतु भय की कोई बात नहीं है, तुम्हारे ा को कोई छीन न सकेगा। माँ, तुम मुझे जितना चाहती हो, उतना कोई नहीं चाहता। इस गठरी के लिए यदि किसी के मन में लालच ा, तो मैं उसे यह देखकर तथा प्राण बचाकर भी तुम्हारे पास लौट ऊँगा।'

गोरा ने आनन्दमयी के चरणस्पर्श कर प्रणाम किया। उन्होंने मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। आनन्दमयी अपने कष्ट की सोचकर भी, किसी अनिष्ट की आशंका से कभी किसी को नहीं ती थीं। उनके मन में कोई भय न था और न गोरा के विपत्ति-ग्रस्त ाने की कोई आशंका ही थी, परंतु गोरा के हृदय में जो एक नया वर्तन हो रहा था, यही चिंता उनके मन में भर रही थी आज गोरा रण ही भ्रमण के लिए जा रहा है। यह सुनकर उनकी चिंता और बढ़ गई। पीठ पर पोटली बांधे हुए गोरा ने जैसे ही सड़क पर पाँव ा, वैसे ही विनय गुलाब का फूल हाथ में लिये उसके सामने आ स्थित हुआ। गोरा ने कहा—'तुम्हारे दर्शन से यात्रा शुभ होगी ा अशुभ ?'

विनय ने पूछा—'कहीं जा रहे हो क्या ?'

गोरा ने कहा- 'हाँ !'

विनय—'कहाँ ?'

गोरा—'देखो ! प्रतिध्वनि ने जो उत्तर दिया 'वहाँ।'

विनय—'क्या प्रतिध्वनि की अपेक्षा कोई अन्य ठीक उत्तर नहीं है ?'

गोरा—'तुम माँ के पास जाओ। उनसे सब मालूम हो जायेगा। मैं जाता हूँ।' इतना कहकर गोरा तेजी से चल दिया।

विनय ने घर मे भीतर पहुँच कर, आनन्दमयी के चरणों पर गुलाब के फूल रख दिये।

आनन्दमयी ने फूल उठाते हुए पूछा—'ये कहां से मिले ?'

विनय ने ठीक उत्तर न देते हुए कहा—'कोई श्रेष्ठ वस्तु मिलते ही इच्छा होती है कि उससे पहिले माँ की पूजा करूँ ?'

फिर वह आनन्दमयी की चौकी पर बैठते हुए बोला—'माँ, क्या आजकल तुम्हारा चित्त चंचल है।'

आनन्दमयी—'यह तुम्हें कैसे प्रतीत हुआ ?'

विनय—'इसलिए कि आज तुम मुझे पान देना भूल गई हो।'

आनन्दमयी ने लज्जित हो विनय को पान लाकर दिया।

इसके पश्चात् दोपहर तक दोनों में बातचीत होती रही। 'गोरा इस प्रकार निरुद्देश्य क्यों घूम रहा है'—इस सम्बन्ध मे विनय कोई ठीक बात न बता सका।

कुछ इधर-उधर की बातों के बाद आनन्दमयी बोलीं—'तुम कल गोरा को साथ लेकर परेशबाबू के घर गये थे ?'

विनय ने रात की सारी घटना विस्तारपूर्वक सुना दी। आनंदमयी ने प्रत्येक बात को बड़े ध्यान से सुना।

जाते समय विनय बोला—'माँ, पूजा तो ठीक हुई। अब तुम्हारे चरणों का प्रसाद स्वरूप फूल मस्तक पर रखने को मिल सकेगा क्या ?'

आनन्दमयी ने मुस्करा कर, विनय के हाथ में गुला[illegible] फूल

किया था, अतः आज इस बात को कहकर वह स्वयं ही लज्जित हो उठा।

आनन्दमयी ने उसकी बात से प्रसन्न होकर पूछा—'क्या विनय भी जायेगा ?'

गोरा बोला—'नहीं माँ वह नहीं जायेगा। यह तो तुम्हारे मातृ-हृदय की आशंका है कि विनय के साथ न जाने पर मार्ग में मेरी रक्षा कौन करेगा, परंतु यदि विनय को मेरा रक्षक समझती हो तो यह तुम्हारी बड़ी भूल है। इस बार मेरे सुरक्षित लौट आने पर तुम्हारा यह भ्रम भी दूर हो जायेगा।'

आनन्दमयी—'पर बीच-बीच में तुम्हारा समाचार तो मिलता रहेगा न ?'

गोरा—'तुम यही समझ लो कि कोई समाचार न मिलेगा। ऐसा निश्चय कर लेने के बाद, जब तुम्हें मेरी कोई खबर मिलेगी तो तुम्हें विशेष आनंद प्राप्त होगा। परंतु भय की कोई बात नहीं है, तुम्हारे गोरा को कोई छीन न सकेगा। माँ, तुम मुझे जितना चाहती हो, उतना और कोई नहीं चाहता। इस गठरी के लिए यदि किसी के मन में लालच आया, तो मैं उसे यह देखकर तथा प्राण बचाकर भी तुम्हारे पास लौट आऊँगा।'

गोरा ने आनन्दमयी के चरणस्पर्श कर प्रणाम किया। उन्होंने भी मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। आनन्दमयी अपने कष्ट की बात सोचकर भी, किसी अनिष्ट की आशंका से कभी किसी को नहीं रोकती थीं। उनके मन में कोई भय न था और न गोरा के विपत्ति-ग्रस्त हो जाने की कोई आशंका ही थी, परंतु गोरा के हृदय में जो एक नया परिवर्तन हो रहा था, यही चिंता उनके मन में भर रही थी आज गोरा अकारण ही भ्रमण के लिए जा रहा है। यह सुनकर उनकी चिंता और भी बढ़ गई। पीठ पर पोटली बांधे हुए गोरा ने जैसे ही सड़क पर पांव रखा, वैसे ही विनय गुलाब का फूल हाथ में लिये उसके सामने आ उपस्थित हुआ। गोरा ने कहा—'तुम्हारे दर्शन से यात्रा शुभ होगी अथवा अशुभ ?'

विनय ने पूछा—'कहीं जा रहे हो क्या ?'

गोरा ने कहा-'हाँ !'

विनय—'कहाँ ?'

गोरा—'देखो ! प्रतिध्वनि ने जो उत्तर दिया 'वहाँ ।'

विनय—'क्या प्रतिध्वनि की अपेक्षा कोई अन्य ठीक उत्तर नहीं है ?'

गोरा—'तुम माँ के पास जाओ । उनसे सब मालूम हो जायेगा मैं जाता हूँ ।' इतना कहकर गोरा तेजी से चल दिया ।

विनय ने घर में भीतर पहुँच कर, आनन्दमयी के चरणों पर गुलाब के फूल रख दिये ।

आनन्दमयी ने फूल उठाते हुए पूछा—'ये कहां से मिले ?'

विनय ने ठीक उत्तर न देते हुए कहा—'कोई श्रेष्ठ वस्तु मिलते ही इच्छा होती है कि उससे पहिले माँ की पूजा करूँ ?'

फिर वह आनन्दमयी की चौकी पर बैठते हुए बोला—'माँ, क्या आजकल तुम्हारा चित्त चंचल है ।'

आनन्दमयी—'यह तुम्हें कैसे प्रतीत हुआ ?'

विनय—'इसलिए कि आज तुम मुझे पान देना भूल गई हो ।'

आनन्दमयी ने लज्जित हो विनय को पान लाकर दिया ।

इसके पश्चात् दोपहर तक दोनों में बातचीत होती रही । 'गोरा इस प्रकार निरुद्देश्य क्यों घूम रहा है'—इस सम्बन्ध में विनय कोई ठीक बात न बता सका ।

कुछ इधर-उधर की बातों के बाद आनन्दमयी बोलीं—'तुम कल गोरा को साथ लेकर परेशबाबू के घर गये थे ?'

विनय ने रात की सारी घटना विस्तारपूर्वक सुना दी । आनन्दमयी ने प्रत्येक बात को बड़े ध्यान से सुना ।

जाते समय विनय बोला—'माँ, पूजा तो ठीक हुई । अब तुम्हारे चरणों का प्रसाद स्वरूप फूल मस्तक पर रखने को मिल सकेगा क्या ?'

आनन्दमयी ने मुस्करा कर, विनय के हाथ में गुलाब का फूल

देते हुए सोचा—'ये दोनों फूल केवल सौन्दर्य के कारण ही मान प्राप्त करते हों, ऐसा नहीं है। इसके भीतर अवश्य ही कोई गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है।'

दिन के पिछले पहर जब विनय चला गया, तो आनन्दमयी जाने कहाँ-कहाँ की बातें सोचने लगीं। वे बार-बार भगवान से यही प्रार्थ करने लगीं कि गोरा को किसी प्रकार का कष्ट न हो तथा विनय उसके प्रथक होने का कोई कारण न बने।

२१

गुलाब के फूलों की भी एक कहानी है। कल रात को परेशबा के घर से गोरा तो चला आया था, परन्तु मजिस्ट्रेट के यहाँ अभिनय सहयोग करने के प्रस्ताव को पाकर विनय बड़े संकट में पड़ गया था।

यद्यपि ललिता का इस अभिनय में कोई उत्साह नहीं था, परन वह विनय को उसमें सम्मिलित करने की जैसी जिद पकड़ बैठी थी। ज काम गोरा के मत के विपरीत थे, उन्हें विनय द्वारा करना ही उसक अभीष्ट था। ललिता को यह बात असह्य थी कि विनय गोरा का अनु गामी रहे यद्यपि इसके कारण को वह स्वयं भी नहीं जानती थी। व केवल यही चाहती थी कि किसी प्रकार वह विनय को गोरा के हाथ मुक्ति दिलवा दे।

अपनी चोटी हिलाते हुए ललिता ने विनय से पूछा था—'क्यो अभिनय करने में दोष ही क्या है?'

विनय बोला—'अभिनय करने में दोष चाहे न हो। परं मजिस्ट्रेट के घर जाकर अभिनय करना मुझे भला प्रतीत नहीं होता।'

ललिता—'यह आप अपने मन की बात कहते हैं अथवा किस दूसरे के मन की?'

विनय—'मैं दूसरे के मन की बात का ठेका नहीं लेता। आ चाहे विश्वास न करें, परंतु मैं सदा अपने मन की बात ही कहता हू कभी अपने मुँह से और कभी किसी अन्य के मुँह से।'

ललिता इसका कोई उत्तर न देकर, मुँह फेरा कर हँसने लगी। कुछ देर बाद बोली—'आपके मित्र गौरमोहनबाबू मजिस्ट्रेट का निमन्त्रण अस्वीकार करने में कोई बड़ी बहादुरी समझते हैं मानो वे इस प्रकार अँग्रेजों से लड़ाई करके अपने हृदय के फफोले फोड़ लेते हैं।'

विनय उत्तेजित होकर बोला—'मित्र नित तो ऐसा नहीं समझते परन्तु मैं यह अनुभव करता हूँ कि जो लोग हमें अपना नहीं समझते जिनके इशारे पर हम बन्दर की तरह नाचते हैं उनकी यदि उपेक्षा की जाय, तो फिर अपने सम्मान की रक्षा कैसे हो सकेगी?'

ललिता भी स्वाभिमानी थी, अतः विनय के मुँह से आत्म-सम्मान की बात सुनकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई परन्तु इससे अपने पक्ष को दुर्बल होता जानकर, वह अकारण ही व्यङ्ग वचन कह-कह कर विनय को चिढ़ाने लगी।

अन्त में विनय ने कहा—'आप इतनी बहस क्यों करती हैं? साफ क्यों नहीं कहतीं कि आपकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए अभिनय में भाग लूँ? इस दृष्टि से, मैं अपनी मनोभावना को त्याग कर आपको खुश करने के लिए यह अनुरोध स्वीकार कर लूँगा।'

ललिता बोली—'यह मैं क्यों कहूँ? आप जिस मत को मानते हैं, उसे मेरे अनुरोध से क्यों छोड़ दें? परन्तु वह मत सत्य होना चाहिये।'

विनय—'यही सही। न तो मैं अपने मत को सत्य कर सकता हूँ और न उस सम्बन्ध में आपके अनुरोध की ही आवश्यकता है। फिर भी मैं आपके अनुरोध का पालन करने के लिए, अभिनय में योग दूँगा।'

इसी समय वहाँ वरदासुन्दरी को आते देख, विनय उठकर बोला—'कहिये, अभिनय में सम्मिलित होने के लिए मुझे क्या करना पड़ेगा?'

वरदासुन्दरी गर्व से बोलीं—'उसके लिए आप चिन्ता न करें मैं आपको तैयार कर लूँगी। आपको केवल अभ्यास के लिए, प्रति

निश्चित समय पर आना पड़ेगा।'

'तो मैं जाता हूँ।'

'यह क्या कह रहे हो ? कुछ खाकर जाना।'

'नहीं आज नहीं।'

'ऐसा न हो सकेगा।'

विनय को भोजन करना ही पड़ा, परन्तु उस दिन उसके चेहरे पर स्वाभाविक प्रसन्नता न थी। सुचरिता भी चिन्तित-सी एक ओर चुप बैठी हुई थी। विनय जब ललिता से बहस कर रहा था, तब वह बरामदे में टहल रही थी। आज रात में बातें भी न जम सकीं।

विनय ने लौटते समय ललिता के उदास मुख को देखते हुए कहा 'मैं हार मानकर भी आपको प्रसन्न न कर सका।'

ललिता बिना उत्तर दिए ही चली गई। वह रोना नहीं जानती थी, परन्तु आज आंखों से आँसू वह निकलना चाहते थे। वह सोच रही थी, निरपराध विनयबाबू को बार-बार चुटीली बातें कहकर वह स्वयं भी ष्ट क्यों पाती है ?

जब तक विनय अभिनय में सम्मिलित होने को तैयार न होता था तब तक ललिता की जिद भी जोर पकड़ रही थी, परन्तु जब वह तैयार हो गया, तो उसका सारा उत्साह धूल में मिल गया। उसका मन व्यथित होकर कहने लगा—'केवल मेरा अनुरोध रखने के लिए विनय-बाबू का यों तैयार होना ठीक नहीं है। वे मेरा अनुरोध रखकर भद्रता कर रहे हैं, परन्तु उनकी भद्रता प्राप्त करके, मेरे मस्तिष्क में तो पीड़ा हो उठी है।'

निस्सन्देह विनय को अभिनय में सम्मिलित होने के लिए व इतने दिनों से आग्रह कर रही थी। आज जब उसने उसके इतने व अनुरोध को मान लिया, तब उसके ऊपर क्रोध करना भी अनुचित है। इस घटना से ललिता को स्वयं पर बड़ी घृणा तथा लज्जा हु अन्य दिनो में वह मन खिन्न होने पर, सुचरिता के पास चली जाती थ परन्तु आज वह न जा सकी। उसकी आँखों से आंसू बरसने लगे, प

उनका ठीक-ठीक कारण वह स्वयं भी न समझ सकी।

दूसरे दिन सुधीर ने लावण्य को एक गुलदस्ता लाकर दिया। उसमें की एक डाली में दो अधखिले गुलाब के फूल थे। ललिता ने उन्हें खोलकर रख लिया। लावण्य ने पूछा—'यह क्या किया ?' तो उसने उत्तर दिया—'अनेक फूल पत्तियों के बीच एक अच्छे फूल को बँधा देख कर मुझे दुख होता है। इस प्रकार सब भली-बुरी वस्तुओं को एक ही रस्सी से बांधना मूर्खता ही है।'

यह कह कर ललिता ने सब फूलों को खोलकर यथायोग्य स्थल पर रख दिया, केवल उन गुलाब के दोनों फूलों को लेकर वह चली गई।

सतीश ने उसके हाथ में फूल देखकर पूछा—'बहिन, ये फूल कहाँ से आये ?'

ललिता ने उसका उत्तर न देते हुए प्रश्न किया—'आज तू अपने मित्र के घर जायेगा न ?'

मित्र का नाम सुनते ही सतीश उछल कर बोला—'जाऊँगा क्यों नहीं ?'

ललिता उसका हाथ पकड़ कर बोली—तू वहाँ जाकर करता क्या है ?'

सतीश ने उत्तर दिया—'गपशप।'

ललिता ने कहा—'उन्होंने तुझे इतनी तस्वीरें दी हैं, पर तू उन्हें कुछ क्यों नहीं देता ?'

सतीश के लिए विनय अंग्रेजी पत्रों के विज्ञापनों में से अनेकों तस्वीरें काट कर दिया करता था। सतीश उन्हें एक फाइल में चिपका कर रख लेता था। अपनी फाइल भरने के लिए वह इतना उतावला हुआ कि अच्छी किताबों में चित्र देखकर, उन्हें भी काट लेने के लिए उसका मन छटपटाया करता था। इस अपराध पर उसे अपनी बहिनों द्वारा दण्ड भी सहना पड़ता था।

संसार में, बदले में कुछ देना भी आवश्यक होता है, यह जान कर सतीश को आज बहुत चिन्ता हुई। टीन के टूटे बक्स में

निजी सम्पत्ति है, उसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जिसे वह किसी को सहसा दे सकता। उसके घबराये हुए चेहरे को देखकर ललिता ने मुस्करा कर उसका गाल दबाते हुए कहा—'ले, ये दोनों गुलाब के फूल उन्हें दे देना।'

इस प्रकार कठिन समस्या का समाधान होते देख, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह दोनों फूल लेकर, मित्र का ऋण चुकाने चल दिया।

विनय से उसकी भेंट मार्ग में ही हो गई। वह उसे दूर से ही 'विनयबाबू, विनयबाबू, पुकारता हुआ दौड़कर पास जा पहुँचा तथा फूलों को अपने कुरते की जेब में छिपाता हुआ बोला—'कहिए, मैं आपके लिए क्या लाया हूँ?'

विनय जब न बता सका, उसने दोनों फूल दिखा दिए। विनय ने कहा—'वाह! क्या ही सुन्दर हैं। परन्तु सतीशबाबू, तुम्हारी चीज तो है नहीं। इसे देकर कहीं मुझे पुलिस के हवाले तो नहीं करना चाहते?'

ये फूल सतीश के अपने थे या नहीं, इस ख्याल से सतीश के हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। कुछ रुक कर वह बोला—'वाह! ये फूल ललिता बहन ने मुझे दिए हैं—आपके लिए।'

इतनी बात होने पर फैसला हो गया कि शाम को विनय उनके घर जाएगा। आश्वस्त हो, सतीश चल दिया।

कल रात को ललिता ने जो ताना कसा था, उससे विनय को बड़ी वेदना हुई। विनय का किसी से विरोध नहीं होता इसलिए वह किसी से ऐसी चोट की आशा भी नहीं करता। इससे पूर्व विनय ने ललिता को सदैव सुचरिता की अनुगामिनी ही समझा था। किन्तु जैसे अंकुश से घायल हाथी अपने महावत को नहीं भूल पाता, वही हालत विनय की ललिता के विषय में थी। ललिता को प्रसन्न करने की उसे बड़ी चिन्ता थी। शाम को अपने घर आने पर ललिता की चुभती हुई व्यंग की बातें उसकी नींद हराम कर देती थीं। वह सोचता कि ललिता

का यह कहना कि मैं गोरा की परछाईं की तरह हूँ, कितना गलत है। ललिता अपनी बात के पक्ष में तरह-तरह की युक्तियां देती थी, परन्तु उनका जवाब अपने मन में होने पर भी कुछ न कह पाने के कारण, उसका मन और भी उद्विग्न हो उठा।

कल की रात स्वयं हार मानकर भी, जब वह ललिता के मुख पर प्रसन्नता न देख सका तो घर आकर बहुत घबरा उठा था और सोच रहा था कि क्या वास्तव में उसकी ऐसी अवस्था होनी चाहिए।

इसी कारण जब उसने सतीश के मुख से यह सुना कि ललिता ने उसके लिए फूल भेजे हैं तो वह प्रसन्नता से भर उठा था। उसने समझा, अभिनय में सम्मिलित होने की स्वीकृति देने के कारण ही ललिता ने प्रसन्न होकर ये फूल भेजे हैं। पहले तो उसने विचार किया कि इन फूलों को घर में रख आना चाहिए, परंतु बाद में निश्चय हुआ कि इन शांति-सूचक फूलों को माँ के चरणों में चढ़ा कर पवित्र कर लेना चाहिए।

उस दिन सायंकाल जब वह परेशबाबू के घर पहुँचा, तब सतीश ललिता के पास बैठा हुआ स्कूल का पाठ याद कर रहा था। विनय ललिता की ओर देखकर बोला—'लाल रङ्ग युद्ध का सूचक है, अतः सन्धि का फूल होना चाहिए।'

ललिता इसका अर्थ न समझकर, उसके मुँह की ओर देखने लगी, तभी विनय ने अपनी चादर के छोर से सफेद कनेर के फूलों का गुच्छा खोलकर, उसके सामने रखते हुए कहा—'आपके दोनों फूल कितने भी सुंदर क्यों न हों, परंतु वे क्रोध के सूचक हैं मेरे ये फूल सौंदर्य में उनकी समानता नहीं कर सकते, फिर भी ये शांति एवं नम्रता के प्रतीक स्वरूप आपके समक्ष उपस्थित हैं।'

ललिता के कपोल गुलाबी हो गये। बोली—'मेरे फूल किन्हें कह रहे हैं!'

विनय ने ठिठकते हुए कहा—'मेरी भूल से मुझे धोखा हुआ। सतीश बाबू! तुम्हें फूल किसने दिये थे।'

सतीश जोर से बोला—'ललिता बहिन ने ही तो देने को कहा था।'

विनय—'किसे ?'

सतीश—'आपको।'

ललिता खिसियाकर सतीश की पीठ में एक थप्पड़ मारती हुई बोली—'तुझ-सा-मूर्ख मैंने नहीं देखा। तू ही तो विनयबाबू के दिये चित्रों के बदले उन्हें फूल देना चाहता था न ?'

सतीश ने हतबुद्धि होते हुए कहा—'हाँ, उन्हीं के बदले तो देने गया था, लेकिन कहा तो तुम्हीं ने था न ?'

अब ललिता और पकड़ी गई। विनय समझ गया कि ललिता ने ही फूल भेजे थे, परंतु वह गुप्त रखना चाहती थी। विनय बोला—'मैं आपके फूलों के दावे को छोड़ देता हूँ, परंतु इस सम्बंध में मेरी को भूल न समझें। इस झगड़े का निबटारा करने के लिए, मैं आपको फूल......।'

ललिता बीच में ही बोल पड़ी—'कैसा झगड़ा और कैसा निबटारा ?'

विनय—'यह खूब इन्द्रजाल रहा। विवाह भी झूठा, फूल भी झूठा और निबटारा भी झूठा। सीप में चांदी का ही भ्रम नहीं बल्कि सीप भी भ्रमात्मक ? अच्छा, अब बताइये कि मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ अभिनय की बात भी क्या......?'

ललिता बोली—'वह भ्रम नहीं, सत्य है। परंतु उसके लिए विवाद कैसा ? कहीं आप यह न समझ बैठें कि उसके लिए ही मैंने आप से कलह करके स्वीकृति ली है और मैं उससे कृतार्थ हो गई हूँ। यदि आपको अभिनय अनुचित जान पड़े तो आप उसे स्वीकार ही क्यों करेंगे ?'

ललिता इतना कहकर चली गई। विनय क्या सोचकर आ था और क्या हो गया ! ललिता दृढ़ थी कि मैं विनय के सम्मुख स्वीकार नहीं करूंगी तथा इसी पर बल दूंगी कि वह अभिनय क

अस्वीकार कर दे। अब यह नई बात उठ जाने से परिणाम उल्टा हो गया। विनय ने समझा—'मैंने अभिनय के लिए पहले जो असहमति प्रकट की थी, शायद उसी के कारण ललिता यह समझ रही है कि मेरी बाद की स्वीकृति ऊपरी मन की है। इसीलिए शायद उसका क्षोभ वह अभी तक दूर नहीं कर सका है। उसने निश्चय किया है कि अब मैं इस कार्य को विशेष निपुणता से सम्पन्न करूँगा।'

सुचरिता आज प्रातःकाल से ही अपने कमरे में बैठी, ईसाई धर्म की एक पुस्तक को पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। परन्तु आज उसका मन न तो पुस्तक पढ़ने में लग रहा था और न किसी अन्य काम को करने में।

एक बार उसे दूर से आवाज सुनाई दी कि 'विनयबाबू आए हैं।' तभी वह चौंक कर पुस्तक बन्द कर बैठी, परन्तु फिर अपने कान बन्द करके उसे पढ़ने लगी।

कई बार ऐसा हो चुका था कि विनय पहले आ गया था और पीछे-पीछे गोरा भी आ पहुँचा था। 'आज भी यह हो सकता है, यह बिचार कर, बार-बार चकित हो उठी थी। उसे यही भय लग रहा था कि गोरा कहीं पीछे से न आ जाये। साथ ही उसके न आने की आशङ्का भी कष्ट पहुँचा रही थी।

ऊपरी मन से विनय से कुछ बातें करने के उपरान्त सुचरिता सतीश के चित्रों की फाइल को उलटने तथा उसकी आलोचना में लग गई। इधर मेज पर पड़े कनेर के फूलों को देखकर, विनय मन-ही-मन यह विचार कर रहा था कि ललिता को शिष्टता के नाते भी मेरे इन फूलों को स्वीकार कर लेना चाहिये था।

तभी किसी के पैरों की आहट सुनकर, सुचरिता चौंक कर बोल उठी—'हारानबाबू आ रहे हैं।'

हारानबाबू ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—'कहिये विनयबाबू! आपके गौरमोहनबाबू नहीं आए?'

विनय ने कुछ रुष्ट होते हुए उत्तर दिया—'उनसे कोई काम है

क्या ? आजकल कलकत्ते में नहीं हैं।'

हारानबाबू—'तो कहीं धर्म-प्रचार के लिए गए हैं क्या !'

विनय का क्रोध और बढ़ा, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सुचरिता भी चुपचाप वहां से उठ गई।

हारानबाबू भी उसके पीछे-पीछे चले, परन्तु वह तेजी से आगे बढ़ गई। तब हारानबाबू ने उसे पुकार कर कहा—'सुचरिता ठहरो, तुमसे एक बात कहनी है।'

'आज मेरी तबियत ठीक नहीं है।' यह कहते हुए सुचरिता अपने शयनागार में जा पहुँची तथा भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

तभी ललिता उसके कमरे में जा पहुंची। उसके मुँह की ओर देखते हुए सुचरिता ने पूछा—'क्यों क्या बात है आज ?'

'कुछ भी तो नहीं।' उसने उत्तर दिया।

'तू कहां थी ?'

'विनयबाबू आए हैं, वे तुम से कुछ कहना चाहते हैं शायद।'

'क्या विनय के साथ कोई और भी आया है ?' इस प्रश्न को सुचरिता आज न पूछ सकी। फिर वह घर आये अतिथि का सत्कार करने के अभिप्राय से कमरे से बाहर निकलती हुई, ललिता से बोली—'क्या तू नहीं चलेगी ?'

'मैं पीछे आ जाऊँगी तुम जाओ।'

बाहर जाकर सुचरिता ने देखा—विनय सतीश के साथ गपशप कर रहा है। बोली—'बाबूजी घूमने चले गए हैं, आते ही होंगे। आप लोगों के अभिनय की कविता कण्ठस्थ करने के लिए माँ भी लावण्य तथा लीला के साथ मास्टर साहब के यहाँ गई हैं। ललिता जाने को राजी न हुई। वे कह गई हैं कि आपको आने पर बैठा लिया जाये आज आपकी परीक्षा होगी।'

'क्या आप इसमें नहीं हैं ?' विनय ने पूछा।

'सभी लोग अभिनय करने लगे तो फिर दर्शक कौन रहेगा !' सुचरिता ने उत्तर दिया।

वरदासुन्दरी इन सब कामों से सुचरिता को बचाकर चलती थीं, अतः इस बार भी उन्होंने छोड़ दिया।

अन्य दिनों सुचरिता और विनय जब एक स्थान पर बैठते थे, तो बहुत बातें होती थीं, परन्तु आज वैसा नहीं हुआ। सुचरिता निश्चय करके आई थी कि वह गोरा की चर्चा नहीं छेड़ेगी। इधर ललिता की बात से चिढ़कर विनय भी चुप था। वह सोच रहा था कि इस घर के सभी लोग उसे गोरा का अनुयायी समझते हैं, अतः वह उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं करेगा।

इसी समय वरदासुन्दरी आ गईं। वे विनय को अभिनय की तालीम देने के लिये कमरे में ले गईं। तभी मेज पर रखे हुए फूल अदृश्य हो गये। उस रात वरदासुन्दरी के अभिनय-अखाड़े में ललिता दिखाई नहीं दी तथा सुचरिता भी चिराग को घर के कोने में छिपाकर बड़ी रात तक गाल पर हाथ रखे कुछ सोचती रही। उसे कोई अपरिचित अपूर्व स्थान मृगतृष्णा की भांति दिखाई दिया था। उसके मन में आ रहा था—'यह जीवन तुच्छ है, जिसे अब तक सत्य माना, वह शंकाकीर्ण है तथा जिसे नित्य व्यवहार में लाया जाता है, वह अर्थहीन है। अब यहाँ पहुँचकर शायद मैं जीवन को ज्ञानपूर्ण, उच्च तथा सार्थक बना सकूँगी। परन्तु मेरा हृदय कांप क्यों रहा है पांव उस ओर आगे बढ़कर, फिर स्तब्ध-से क्यों हो रहे हैं?'

२२

इधर कुछ दिनों से सुचरिता उपासना में विशेष मन लगा रही थी। परेशबाबू से भी वह पहिले से अधिक आश्रय लेती। एक दिन परेशबाबू बैठक में बैठे हुए कुछ पढ़ रहे थे, तभी सुचरिता चुपचाप उनके पास जा बैठी। परेशबाबू ने पुस्तक को मेज के ऊपर रखते हुए कहा—'क्यों राधा?'

'कुछ नहीं!' कहकर सुचरिता मेज के ऊपर ठीक से रखी हुई पुस्तकों तथा पत्रों को बिना बात सजाने में लग गई।

—

फिर कुछ देर ठहर कर बोली—'बाबूजी, आप मुझे जिस प्रकार पहिले पढ़ाते थे, अब उसी प्रकार क्यों नहीं पढ़ाते हैं ?'

परेशबाबू ने हँसकर कहा—'मेरी छात्रा ने मेरे विद्यालय की पढ़ाई समाप्त करली है, अब वह स्वयं ही आगे पढ़ सकती है।'

सुचरिता बोली—'परन्तु बाबूजी, मैं स्वयं कुछ नहीं समझ पाती। मैं तो पहिले की भांति आपसे ही पढ़ूँगी।'

परेशबाबू—'तो तुम्हें कल से पढ़ाऊँगा।'

सुचरिता कुछ देर तक रुक कर बोली—'बाबूजी विनयबाबू ने उस दिन जाति-भेद के सम्बन्ध में कुछ बातें कही थीं, उस सम्बन्ध में आप मुझे कुछ क्यों नहीं बताते ?'

परेशबाबू—'तुम जानती ही हो कि मैंने तुम लोगों के साथ सदैव ऐसा व्यवहार रक्खा है कि तुम लोग प्रत्येक विषय को स्वयं समझने का प्रयत्न करो। मेरी अथवा अन्य किसी की कही हुई बात को रट लेना ही ठीक नहीं है। यदि तुम मुझसे पूछोगी ही तो मैं उसका अपने मत के अनुसार उत्तर अवश्य दे दूँगा।'

सुचरिता—'मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि हम लोग जाति-भेद की निन्दा क्यों करते है ?'

परेशबाबू—'यदि एक बिल्ली हमारे साथ थाली में बैठ कर खा ले तो उसे कुछ दोष नहीं दिया जाता, परन्तु यदि एक आदमी हमारे चौके में चला जाये तो उस अन्न को खराब हुआ कहकर फेंक दिया जाता है। मनुष्य द्वारा मनुष्य का यह अपमान अधर्म नहीं तो और क्या है ? जो लोग इस प्रकार मनुष्य की अवज्ञा करते हैं, वे संसार में कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते।'

सुचरिता ने गोरा के मुख से सुनी बातों का अनुसरण करते हुए कहा—'समाज में जो विकार घुस गया है, क्या केवल उसी के कारण वास्तविकता को भी दोष दिया जाना चाहिये ?'

परेशबाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में उत्तर दिया—'वास्तविकता क्या है, मैं यदि इसे जानता तो कुछ कह सकता था। परन्तु

जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उसके समक्ष किसी काल्पनिक बात को सोच कर मन को किस प्रकार सन्तोष दिया जा सकता है ?'

सुचरिता—'परन्तु सब को समदृष्टि से देखना तो हमारे देश का ही परम सिद्धान्त था न ?'

परेशबाबू—'समदृष्टि से देखना ज्ञान की बात है—हृदय की नहीं। समदृष्टि के भीतर केवल प्रेम ही नहीं, बल्कि घृणा भी विद्यमान नहीं है। समदृष्टि राग एवं द्वेष से परे की वस्तु है। मनुष्य का हृदय ऐसी स्थिति में स्थिर नहीं रह सकता। यही कारण है कि समदृष्टि के सिद्धान्त के रहते हुए भी, नीच जातियों को देव-मन्दिर में प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता। यदि देव-स्थानों पर भी समदृष्टि का सिद्धान्त लागू न हो, तब दर्शन-शास्त्र के भीतर उस तत्व के रहते हुए भी, न तो कोई लाभ होगा और न हानि ही।'

सुचरिता परेशबाबू की बातों को समझने की कुछ देर तक चेष्टा करती रही। फिर बोली—'तो बाबूजी, आप इन बातों को विनयबाबू आदि को क्यों नहीं समझाते ?'

परेशबाबू कुछ हँस कर बोले—'कम बुद्धि होने के कारण विनय बाबू आदि इन बातों को नहीं समझ पाते—यह वास्तविकता नहीं है, अपितु अधिक बुद्धिमान होने के कारण ही वे इन बातों को समझना नहीं चाहते हैं वे केवल औरों को समझाना ही जानते हैं। जब हृदय से इस बात को समझना चाहेंगे, तब तुम्हारे बाबूजी को उन्हें समझाने की कोई आवश्यकता न रह जायेगी। वे लोग इस समय किसी दूसरे पहलू की ओर ही देख रहे हैं, अतः उन्हें मेरा समझाना भी कोई काम न करेगा।'

गोरा आदि की बातों को श्रद्धापूर्वक सुनने के बावजूद भी, यह संस्कार अथवा धारणा सुचरिता के हृदय को पीड़ित किए रहती थी। आज परेशबाबू की बातें सुनकर, उसे उस पीड़ा से क्षण भर को जैसे छुटकारा मिल गया। सुचरिता यह बात जानने के लिए कभी तैयार न थी कि गोरा अथवा विनय आदि कोई भी इस सम्बन्ध में परेशबाबू

अधिक जानकारी रखता है। जो व्यक्ति परेशबाबू से विरुद्ध मत का होता, उसके ऊपर सुचरिता को क्रोध आये बिना नहीं रहता था। परन्तु हाल ही में उसकी गोरा से जो बातें हुई थीं, उन्हें वह क्रोध, अवज्ञा अथवा उपेक्षा के रूप में उड़ा देने में, अपने को असमर्थ अनुभव कर रही थी। यही कारण था जो उसे एक प्रकार का मानसिक कष्ट हो रहा था और इसीलिए आज उसने बचपन की भाँति परेशबाबू का अवलम्बन लेने का निर्णय किया था। चौकी से उठकर, दरवाजे तक जाने के बाद सुचरिता फिर लौट आई तथा परेशबाबू की कुर्सी के पीछे खड़ी होकर उस पर दोनों हाथ जमाते हुए बोली— बाबूजी, आज उपासना के समय मुझे भी साथ ले चलियेगा।'

'बहुत अच्छा!' कहकर परेशबाबू चुप हो गए। तदुपरान्त सुचरिता अपने सोने के कमरे में जाकर, दरवाजा बन्द करके बैठ गई। आज उसने गोरा की बातों को अग्राह्य कर लेने का प्रयत्न किया, परन्तु बुद्धि एवं विश्वास से चमकता हुआ गोरा का मुख उसकी आंखों के सम्मुख निरन्तर छाया रहा। उसे अनुभव हुआ—गोरा की बातें केवल बातें ही नहीं हैं। वे तो मानो स्वयं गोरा ही हैं। उनमें आकार है, गति है और प्राण है। वह गोरा, विश्वास तथा स्वदेश प्रेम की वेदना से परिपूर्ण है। वह कोई मत नहीं है, जिसे प्रतिवाद करके समाप्त कर दिया जाये। वह तो सम्पूर्ण मनुष्य है और मनुष्य भी कोई सामान्य नहीं। उसे अपने सामने से हटा देने के लिए हाथ नहीं उठ सकता।

इस द्वन्द्व में पड़कर सुचरिता को रुलाई आने लगी। उसका हृदय यह सोचकर विदीर्ण होने लगा कि कोई व्यक्ति उसे द्विविधा में डालकर, स्वयं उससे निर्लिप्त उदासीन की भांति अनायास ही दूर चला जा रहा है। तब अपने इस कष्ट को देखकर वह स्वयं को धिक्कारने भी लगी।

२३

यह निश्चित किया गया कि अंग्रेज-कवि ड्राइडन की सङ्गीत

विषयक एक कविता को, विनय रंगमंच पर भावाभिव्यक्ति के साथ पढ़ेगा तथा लड़कियाँ उसके उपयुक्त साज-सज्जा में सज्जित हो मूक अभिनय करेंगी। इसके अतिरिक्त लड़कियाँ अँग्रेजी की अन्य कवितायें पढ़ेंगी तथा गाना गायेंगी।

वरदासुंदरी ने विनय को यह विश्वास दिला दिया था कि वे उसे किसी प्रकार तैयार कर लेंगी। यद्यपि वरदासुंदरी स्वयं मामूली अँग्रेजी पढ़ी थीं, परंतु उन्हें अपने दो-एक अँग्रेजी के विद्वान साथियों पर पूरा भरोसा था। परंतु जब पहले दिन रिहर्सल हुआ तो विनय ने अपनी कविता-पाठ की निपुणता से वरदासुंदरी को चकित करते हुए, यह सिद्ध कर दिया कि उसे किसी अन्य अनाड़ी व्यक्ति द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग विनय को पहले साधारण सा व्यक्ति समझते थे, वे भी उसके कविता-पाठ की निपुणता को देखकर उसके प्रति श्रद्धालु हो गये। यहाँ तक कि स्वयं हारानबाबू भी, विनय से अपने अँग्रेजी के अखबार में कुछ लिखने के लिए अनुरोध करने से बाज न आए। सुधीर ने भी अपने छात्रों की सभा में अँग्रेजी में व्याख्यान देने के लिए, विनय से आग्रह करना आरम्भ कर दिया।

उधर ललिता की दशा विचित्र थी। एक ओर बिना किसी सहायता के विनय को इस प्रकार तैयार देखकर वह प्रसन्न हो रही थी, तो दूसरी ओर उसकी इस दक्षता पर वह मन ही मन ईर्ष्यालु भी हो उठी थी। उसे सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का हुआ कि उसकी तुलना में विनय किसी प्रकार कम न होकर, अधिक श्रेष्ठ ही है। वह स्वयं नहीं समझ रही थी कि विनय के सम्बन्ध में आखिर वह चाहती क्या है और ऐसा करने से उसके हृदय को शान्ति प्राप्त हो सकेगी। उसका यह रोष कभी-कभी किसी छोटी-मोटी बात पर प्रकट भी हो जाता था, परंतु फिर उसे जानकर वह स्वयं ही कष्ट भी पाती थी जिस कार्य में सम्मिलित होने के लिए उसने विनय को बराबर उत्तेजित किया, उसी से वह विनय को पृथक कर देने के लिए अपने हृदय में बेचैनी-सी अनुभव कर रही थी। परंतु अब उसे न तो इतना समय और न कोई ऐसा कारण

मिल रहा था, जिससे वह विनय को कुछ कह सकती।

अन्त में एक दिन ललिता ने अपनी माँ से कहा—'इस अभि‌
में मैं सम्मिलित नहीं होऊँगी।'

वरदासुंदरी उसके स्वभाव को भली-भाँति पहिचानती थीं, अ
सशंकित होकर बोलीं—'क्यों?'

ललिता ने कहा—'मुझसे यह कार्य हो नहीं सकेगा।'

बात असल में यह थी कि जब से विनय को अनाड़ी समझने
कोई कारण नहीं रहा, तब से ललिता का मन उसके सम्मुख अभिनय
रिहर्सल करने को नहीं होता था, बस, यही कहती कि मैं अपना रि
र्सल अलग ही करूँगी। अन्त में भी जब वह किसी प्रकार तैयार न
हुई, तो रिहर्सल का काम उसके बिना ही चलाना पड़ा, परंतु कुछ अं
दिन बाद ललिता ने अपने को अभिनय से बिलकुल अलग कर देने
घोषणा की तो वरदासुंदरी के ऊपर तो जैसे वज्र ही गिर पड़ा। ज
उन्होंने देखा कि उसके समझाने से काम नहीं चलेगा तो वे परेशबाबू
शरण में जा पहुँचीं।

परेशबाबू साधारणतः लड़कियों की इच्छा-अनिच्छा में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे, परन्तु जब उन्होंने देखा कि मजिस्ट्रेट से वायदा किया जा चुका है और सब तैयारियां भी पूरी हो गई हैं तथा ऐन वक्त पर इस तरह का व्यवहार उचित नहीं है, तब उन्होंने ललिता को अपने पास बुलाया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—'अब तुम्हारा इस प्रकार अलग होना उचित नहीं है।'

ललिता ने रुँधे हुए कन्ठ से कहा—'बाबूजी, मैं अभिनय में अच्छी तरह काम नहीं कर पाऊँगी। वह मुझसे न हो सकेगा।'

परेशबाबू बोले—'पर मैं कहता हूं कि तुम उसे ठीक से कर सकोगी। हां, न करने से उन लोगों के प्रति तुम्हारा बहुत अन्याय होगा।'

ललिता सिर झुकाये खड़ी रही। परेशबाबू बोले—'बेटी जब तुमने इस कार्य का भार अपने ऊपर लिया है तो इसे पूरा भी करना

ही चाहिये। इसे करने से अहङ्कार को चोट पहुँचेगी—यह विचार करने का समय नहीं है। उसे चोट पहुँचने दो, उसे ग्रहण करना तुम्हारा कर्तव्य ही होगा। क्या तुम इसे स्वीकार नहीं कर सकोगी?

'कर सकूँगी!' ललिता ने मुँह की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

उसी दिन सायंकाल ललिता विनय के सामने ही सब संकोच को दूर कर, मानो प्रतिस्पर्द्धा लिये नवीन बल लेकर अभिनय में प्रवृत्त हो गई। विनय ने अभी तक उसका कविता-पाठ नहीं सुना था, परन्तु आज उसके ऐसे सतेज, सुस्पष्ट तथा अबोध उच्चारण को सुनकर वह आश्चर्य चकित रह गया। विनय के कानों में उसका कण्ठ-स्वर बड़ी देर तक गूँजता रहा।

अच्छी प्रकार से कविता पढ़ना, श्रोता के हृदय में एक विशेष प्रकार के स्नेह को जन्म देता है, उसी प्रकार विनय की दृष्टि में ललिता भी उस कविता-पाठ के कारण विशेष स्थान प्राप्त कर गई।

पिछले दिनों ललिता के असन्तोष के रहस्य को समझने के लिये विनय को बहुत कुछ मानसिक परिश्रम करना पड़ा था, परन्तु अब ललिता के कविता-पाठ के माधुर्य को देखकर, उसे उसके लिए प्रशंसा के शब्द ढूँढना कठिन हो रहा था। परन्तु ललिता से कुछ भी कहने का उसे साहस नहीं हुआ। एक दिन उसने वरदासुन्दरी के पास जाकर ललिता की प्रशंसा की जिसका परिणाम यह हुआ कि विनय की विद्या एवं बुद्धि के प्रति ललिता की श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई।

एक घटना और भी हुई, ललिता ने जब देखा कि उसका कविता-पाठ तथा अभिनय श्रेष्ठ है तो विनय के प्रति उसके हृदय में जो तीव्रता उत्पन्न हुई थी, वह भी स्वतः ही दूर हो गई। इस कार्य में उसका उत्साह अब और अधिक बढ़ गया। फलस्वरूप विनय के साथ उसकी घनिष्ठता भी बढ़ने लगी—यहाँ तक कि कविता के सम्बन्ध में कभी-कभी विनय की राय लेने में भी उसे अब कोई आपत्ति न होती थी।

मिल रहा था, जिससे वह विनय को कुछ कह सकती।

अन्त में एक दिन ललिता ने अपनी माँ से कहा—'इस अभि॰ में मैं सम्मिलित नहीं होऊँगी।'

वरदासुंदरी उसके स्वभाव को भली-भाँति पहिचानती थीं, अ॰ सशंकित होकर बोलीं—'क्यों?'

ललिता ने कहा—'मुझसे यह कार्य हो नहीं सकेगा।'

बात असल में यह थी कि जब से विनय को अनाड़ी समझने॰ कोई कारण नहीं रहा, तब से ललिता का मन उसके सम्मुख अभिनय रिहर्सल करने को नहीं होता था, बस, यही कहती कि मैं अपना रिह-र्सल अलग ही करूँगी। अन्त में भी जब वह किसी प्रकार तैयार नहीं हुई, तो रिहर्सल का काम उसके बिना ही चलाना पड़ा, परंतु कुछ और दिन बाद ललिता ने अपने को अभिनय से बिलकुल अलग कर देने की घोषणा की तो वरदासुंदरी के ऊपर तो जैसे वज्र ही गिर पड़ा। जब उन्होंने देखा कि उसके समझाने से काम नहीं चलेगा तो वे परेशबाबू की शरण में जा पहुँचीं।

परेशबाबू साधारणतः लड़कियों की इच्छा-अनिच्छा में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे, परन्तु जब उन्होंने देखा कि मजिस्ट्रेट से वायदा किया जा चुका है और सब तैयारियाँ भी पूरी हो गई हैं तथा ऐन वक्त पर इस तरह का व्यवहार उचित नहीं है, तब उन्होंने ललिता को अपने पास बुलाया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—'अब तुम्हारा इस प्रकार अलग होना उचित नहीं है।'

ललिता ने रुँधे हुए कन्ठ से कहा—'बाबूजी, मैं अभिनय में अच्छी तरह काम नहीं कर पाऊँगी। वह मुझसे न हो सकेगा।'

परेशबाबू बोले—'पर मैं कहता हूँ कि तुम उसे ठीक से कर सकोगी। हाँ, न करने से उन लोगों के प्रति तुम्हारा बहुत अन्याय होगा।'

ललिता सिर झुकाये खड़ी रही। परेशबाबू बोले—'बेटी जब तुमने इस कार्य का भार अपने ऊपर लिया है तो इसे पूरा भी करना

ही चाहिये। इसे करने से अहङ्कार को चोट पहुँचेगी—यह विचार करने का समय नहीं है। उसे चोट पहुँचने दो, उसे ग्रहण करना तुम्हारा कर्तव्य ही होगा। क्या तुम इसे स्वीकार नहीं कर सकोगी?

'कर सकूँगी!' ललिता ने मुँह की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

उसी दिन सायंकाल ललिता विनय के सामने ही सब संकोच को दूर कर, मानो प्रतिस्पर्द्धा लिये नवीन बल लेकर अभिनय में प्रवृत्त हो गई। विनय ने अभी तक उसका कविता-पाठ नहीं सुना था, परन्तु आज उसके ऐसे सतेज, सुस्पष्ट तथा अबोध उच्चारण को सुनकर वह आश्चर्य चकित रह गया। विनय के कानों में उसका कण्ठ-स्वर बड़ी देर तक गूँजता रहा।

अच्छी प्रकार से कविता पढ़ना, श्रोता के हृदय में एक विशेष प्रकार के स्नेह को जन्म देता है, उसी प्रकार विनय की दृष्टि में ललिता भी उस कविता-पाठ के कारण विशेष स्थान प्राप्त कर गई।

पिछले दिनों ललिता के असन्तोष के रहस्य को समझने के लिये विनय को बहुत कुछ मानसिक परिश्रम करना पड़ा था, परन्तु अब ललिता के कविता-पाठ के माधुर्य को देखकर, उसे उसके लिए प्रशंसा के शब्द ढूँढना कठिन हो रहा था। परन्तु ललिता से कुछ भी कहने का उसे साहस नहीं हुआ। एक दिन उसने वरदासुन्दरी के पास जाकर ललिता की प्रशंसा की जिसका परिणाम यह हुआ कि विनय की विद्या एवं बुद्धि के प्रति ललिता की श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई।

एक घटना और भी हुई, ललिता ने जब देखा कि उसका कविता-पाठ तथा अभिनय श्रेष्ठ है तो विनय के प्रति उसके हृदय में जो तीव्रता उत्पन्न हुई थी, वह भी स्वतः ही दूर हो गई। इस कार्य में उसका उत्साह अब और अधिक बढ़ गया। फलस्वरूप विनय के साथ उसकी घनिष्ठता भी बढ़ने लगी—यहाँ तक कि कविता के सम्बन्ध में कभी-कभी विनय की राय लेने में भी उसे अब कोई आपत्ति न होती थी।

इस परिवर्तन से विनय के हृदय से, जैसे एक बोझ उतर गया। इससे वह इतना आनन्दित हुआ कि वह कभी-कभी आनन्दमयी के पास जाकर लड़कपन जैसी बातें करने लगा। उसका मन सुचरिता के पास बैठकर बहुत-सी बातें करने को भी होने लगा था, परन्तु इस समय उसके दर्शन तो जैसे दुर्लभ ही हो गये थे। अवसर पाकर वह कभी-कभी ललिता से बातें करने बैठ जाता, परन्तु उससे बातें करते समय ललिता विशेष सावधानी से काम लेती। विनय यह अनुभव करता था कि ललिता उसकी बातों को किसी विशेष गहराई से सुनती और ध्यान देती है, तभी वह कभी-कभी स्वाभाविक ढंग से बोल नहीं पाता था। उस समय ललिता भी उससे अनायास यह कह बैठती थी—आप तो जैसे किसी पुस्तक में से रटने के बाद ये बातें कर रहे हैं?'

विनय उत्तर देता—'हाँ, इतनी आयु तक मैंने पुस्तकें ही रटी हैं, इसीलिए मेरा मन छपी हुई किताब जैसा हो गया है।'

कभी ललिता कहती—'आप बात बनाकर बोलने का प्रयत्न न किया करें। जो मन से कहना हो, कहें। आपकी बातें सुनकर मुझे संदेह होता है कि कहीं आप किसी अन्य की बातों को सोच-समझकर तो नहीं कहते हैं।'

ललिता का हृदय जैसे एक व्यर्थ का मेघ हट जाने पर निर्मल तथा उज्वल हो गया था। उसके परिवर्तन को देखकर वरदासुन्दरी भी चकित थीं। अब वह सब कार्यों में सोत्साह भाग लेती तथा अभिनय के सम्बन्ध में नई-नई कल्पनायें किया करती थी। उन नई कल्पनाओं के कारण, उसने सब की नाक में दम कर रक्खा था। वरदासुन्दरी इस उत्साह के बीच में खर्च का ध्यान रखती थीं। परन्तु ललिता की उत्तेजित कल्पनावृत्तियों को चोट पहुँचाने का साहस उन्हें नहीं होता था।

इसी बीच में ललिता अनेक बार सुचरिता से भेंट करने गई थी। सुचरिता उसके साथ हँसी भी और बोली भी, परन्तु ललिता ने हर बार उसके हृदय में किसी ऐसी बाधा का अनुभव किया था, जिसके कारण वह उत्तेजित होकर लौट आई थी।

एक दिन उसने परेशबाबू के पास जाकर कहा—'बाबूजी, सुचरिता दीदी बैठी-बैठी किताब पढ़ें और हम लोग अभिनय करने जांय यह नही चलेगा। उन्हें भी हमारा साथ देना पड़ेगा।'

परेशबाबू भी कुछ दिनों से अनुभव कर रहे थे कि सुचरिता अपने साथियो से दूर होती जा रही है। यह अवस्था उसके लिये स्वास्थ्यकर नहीं, ऐसा विचार कर, वे भी उसके प्रति चिन्तित रहते थे। ललिता की बात सुनकर उन्होने सोचा-सम्भवतः आमोद-प्रमोद में पड़ने पर उसकी दशा मे कुछ सुधार हो जाये, यह विचार कर उन्होंने उत्तर दिया—'अपनी माँ से कहो न ?'

ललिता बोली—'माँ से तो कहूँगी, परन्तु दीदी को तैयार करने का भार आपको लेना होगा।'

परेशबाबू के कहने पर सुचरिता ने कोई विरोध नही किया, अब वह अभ्यास मे सम्मलित होने लगी।

सुचरिता के आने पर विनय ने उससे पहिले की भाँति वार्तालाप करने का प्रयत्न किया, परन्तु इतने दिनो में न जाने क्या परिवर्तन हो गया था कि वह उससे कभी भली-भांति आंख भी न मिला सका। सुचरिता भी केवल उतने ही समय के लिए आती जितनी, देर का उसका काम होता था। इस प्रकार देखते ही देखते, व विनय से बहुत दूर जा पहुँची।

पिछले कई दिनो से, गोरा के उपस्थित न होने के कारण विनय परेशबाबू के परिवार के साथ भली-भाँति घुल-मिल गया था। विनय के इस भाव को देखकर परेशबाबू के घर सब लोग भी एक विशेष तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। परन्तु अब, जब कि विनय परेशबाबू के परिवारिक सदस्यो को अपने अधिक से अधिक निकट लाने का उपक्रम कर रहा था, तभी सुचरिता उससे अधिक दूर पहुँच गई। अन्य किसी समय ऐसा होता तो यह विनय को असह्य हो उठता परन्तु इस समय उसे कोई वैसा अनुभव नही हुआ। ललिता भी सुचरिता के इस भावान्तर को लक्ष्य कर रही थी, फिर भी उसने उसके प्रति

कोई अभिमान प्रकट नहीं किया।

सुचरिता को अभिनय में सम्मिलित होते देखकर, सबसे अधिक उत्साहित हारानबाबू थे। एक दिन उन्होंने स्वयं यह प्रस्ताव रखा कि 'पैराडाइज लास्ट' का एक अंश वे स्वयं पढ़ेंगे तथा ड्राइडन के काव्य का जो अभिनय होगा, उसकी भूमिका के रूप में 'संगीत की मोहिनी शक्ति' विषय पर एक छोटा-सा भाषण भी देंगे उनके इस प्रस्ताव को सुनकर वरदासुन्दरी मन ही मन खीझ उठीं, ललिता भी असन्तुष्ट रही, परन्तु हारानबाबू मजिस्टेट से स्वयं मुलाकात करके इस प्रस्ताव को पहिले ही पक्का कर आये थे, अतः कोई चारा नहीं था। क्योंकि ललिता ने इस सम्बन्ध में जब यह आपत्ति उठाई थी कि इन मामलों को इतना बढ़ाना मजिस्ट्रेट साहब को उचित नहीं लगेगा, उस समय हारानबाबू ने इस सम्बंध में मजिस्ट्रेट का कृतज्ञता-पत्र निकालकर ललिता के हाथ में रख, निरुत्तर कर दिया था।

गोरा बिना किसी काम के ही पर्यटन करने निकल पड़ा था। उसके लौटने की कोई निश्चित तिथि न थी, परंतु न जाने क्यों सुचरिता के हृदय में प्रतिदिन ही यह आशा बंधती थी कि आज गोरा लौटकर वहां आयेगा। इस आशा को वह किसी भी प्रकार अपने मन से नहीं निकाल पाती थी। ऐसी ही स्थिति में एक दिन हारानबाबू ने ईश्वर का नाम लेकर, परेशबाबू के समक्ष सुचरिता का विवाह अपने साथ कर देने के सम्बंध में निश्चित कर देने का प्रस्ताव फिर रख दिया। परेशबाबू ने उत्तर दिया—'अभी विवाह में बहुत विलम्ब है। इतना शीघ्र सम्बंध बंधन होना उचित नहीं रहेगा।'

हारानबाबू ने कहा—'विवाह के पूर्व का कुछ समय इस बंधन की अवस्था में बिताने को, मैं वर-कन्या दोनों ही के लिए विशेष उपकारी सिद्ध होगा।'

परेशबाबू—'मैं सुचरिता से पूछकर उत्तर दूंगा।'

हारान०—'परन्तु उन्होंने तो पहिले ही स्वीकृति दे दी थी?'

हारानबाबू के प्रति सुचरिता के मनोभावों में परेशबाबू का अभी

तक सन्देह विद्यमान था। इसीलिए उन्होंने सुचरिता को वहीं बुलाकर, उसके सामने हारानबाबू का प्रस्ताव फिर से रक्खा। सुचरिता चाहती थी अपने द्विविधायुक्त जीवन को किसी भी एक स्थान पर समर्पित करने से, उसकी जान बचे तो ठीक है। यही विचार कर उसने तुरंत अपनी स्वीकृति दे दी। यह देखकर परेशबाबू का सन्देह भी दूर हो गया। फिर भी उन्होंने सुचरिता से कहा कि ऐसे सम्बंध में इतनी शीघ्रता से कोई निर्णय करने की अपेक्षा, उस पर भली-भाँति विचार कर लेना ही उचित है। परंतु तब भी सुचरिता ने इस सम्बंध में कोई आपत्ति तक नहीं की।

अन्त में, यह निश्चय हुआ कि ब्राउनलो साहब के निमंत्रण से निश्चिंत होकर, एक दिन सब लोगों की उपस्थिति में इस सम्बंध को पक्का कर दिया जायेगा।

सुचरिता को लगा, जैसे उसका मन राहु के ग्रास से छूट गया है। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि हारानबाबू विवाह से होने के पश्चात्, वह अत्यन्त लगन से ब्राह्मसमाज के काम को करेगी तथा उन्हीं से धर्मतत्व सम्बंधी अँग्रेजी की पुस्तकें पढ़कर, उनकी आज्ञानुसार चलेगी। इस प्रकार उसके लिए जो दुरूह तथा अप्रिय था, उसे भी स्वीकार करके उसे एक प्रकार की नवीन स्फूर्ति का अनुभव होने लगा।

हारानबाबू जिस अँगरेजी पत्र का सम्पादन करते थे, सुचरिता ने उसे नहीं पढ़ा था। आज डाक से वह पत्र सुचरिता को मिला। प्रतीत होता था जैसे हारानबाबू ने उस अङ्क को विशेष रूप से सुचरिता के पास भिजवाया था। सुचरिता अपने कमरे में जाकर, अपने परम कर्त्तव्य की भाँति उस पत्र को श्रद्धापूर्वक पढ़ने लगी।

उस अङ्क में 'पुराने विचारों के पागल' शीर्षक एक लेख था। उसमें उन लोगों के ऊपर आक्रमण किया था, जो वर्तमान समय में भी पुराने जमाने की ओर ही अपना मुँह किए हुए हैं। उस लेख की युक्तियाँ असंगत नहीं थीं—बल्कि यों कहिये कि सुचरिता ऐसी ही युक्तियों की

खोज में थीं—परंतु उस लेख को पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जाता था कि उस आक्रमण का लक्ष्य एकमात्र गोरा ही है। यद्यपि उस लेख में न तो कहीं गोरा का नाम था और न उसके किसी लेख का उद्धरण ही था, फिर भी जिस प्रकार सैनिक अपनी बंदूक की गोली से एक-एक मनुष्य की हत्या करके प्रसन्न होता है, उसी प्रकार उस लेख से भी हिंसा जैसा आनन्द टपक रहा था।

सुचरिता को यह लेख असह्य हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि वह उसकी प्रत्येक युक्ति को अपनी तीव्र युक्तियों के प्रतिवाद द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दे। उसने मन ही मन कहा—'गोरमोहनबाबू चाहें तो इस लेख को मिट्टी में मिला सकते हैं।' तभी गोरा का उज्ज्वल प्रदीप मुख-मण्डल सुचरिता की आंखों के सम्मुख प्रकाशित हो जगमगा उठा तथा उसकी गम्भीर कण्ठ-ध्वनि उसके हृदय-देश में ध्वनिता हो उठी। उस मुख एवं स्वर की असाधारणता के सम्मुख, इस लेख के लेखक की क्षुद्रता ऐसी तुच्छ प्रतीत होने लगी कि सुचरिता ने उस पत्र को उठाकर धरती पर फेंक दिया।

आज बहुत दिनों के बाद सुचरिता स्वयं ही विनय के पास जा पहुँची तथा उससे कहने लगी—'जिन पत्रों में आप लोगों के लेख प्रकाशित हुए हैं, उन्हें देने के लिये आपने वायदा किया परन्तु वे आपने अभी तक लाकर नहीं दिये।'

विनय ने उत्तर दिया—'अब मैं उन सब पत्रों का संग्रह कर चुका हूं। कल ही आपको ला दूंगा।'

दूसरे दिन विनय ने पत्र-पत्रिकाओं की एक गठरी लाकर सुचरिता को दे दी। सुचरिता ने उन्हें पढ़ने के बजाय सन्दूक में बन्द करके रख दिया। पढ़ने की बहुत इच्छा होने के कारण ही उसने उन्हें नहीं पढ़ा, क्योंकि उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपने हृदय को किसी प्रकार बहकने न देगी।

अपने विद्रोही हृदय को एक बार फिर हारानबाबू के शासन के अन्तर्गत समर्पित करके, उसने जैसे फिर एक बार सान्त्वना का-सा अनु-

भव प्राप्त किया।

२४

रविवार को प्रातःकाल आनन्दमयी पान लगा रही थीं तब शशिमुखी पास बैठी हुई उन्हें सुपारी काट-काटकर दे रही थी, उसी समय विनय वहाँ जा पहुँचा। उसे देखते ही शशिमुखी अपने आँचल में कटी हुई सुपारियाँ फेंक कर झटपट भाग गई। आनन्दमयी यह देखकर कुछ मुस्करा गईं।

विनय का सबसे मेल जोल था। शशिमुखी के साथ भी अब तक खूब मेल था। शशिमुखी ने विनय से कहानी कहलवाने का यह उपाय ढूँढ निकाला था कि वह उसके जूते छिपाकर रख देती थी। विनय ने शशिमुखी के जीवन की कुछेक साधारण घटनाओं को लेकर ऐसी कहानियाँ गढ रक्खी थीं कि उन्हें सुनाने पर वह खूब चिढ़ती थी। पहले तो वह उस पर झूठ बोलने का अभियोग लगाती, परन्तु फिर भी जब विनय उसे कहने से बाज नहीं आता, तब वह हारकर उस स्थान से भाग जाती थी। उसने विनय के जीवन की घटनाओं पर वैसी ही कहानी गढ़ने की कोशिश भी की थी, परन्तु कल्पना-शक्ति की कमी के कारण उसे कभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि विनय जब भी गोरा के घर आता, तभी शशिमुखी सब कार्यों को छोड़ कर उनके साथ ऊधम तथा छेड़खानी करने के लिए तैयार हो जाती थी। कभी-कभी आनन्दमयी इसलिए उसे डांट भी देती थी, परन्तु इसमें उनका कोई दोष नहीं होता था। विनय जब बहुत उत्तेजित कर देता था तो उसे भी अपने को सँभालना असम्भव हो जाता था।

वही शशिमुखी आज विनय को देखते ही भाग खड़ी हुई। [illegible] लिए आनन्दमयी को हँसी आ गई थी। परन्तु उस हँसी में कोई [illegible] नहीं था।

इस छोटी-सी घटना ने विनय के मन पर भी [illegible] कि वह कुछ देर तक चुप बैठा रहा। विनय ने [illegible]

की जब स्वीकृति दी थी, तब उसने केवल गोरा की मित्रता को ही ध्यान में रक्खा था, अन्य बातों का उसने कोई अनुभव नहीं किया था। वह विवाह को व्यक्तिगत मामला न मानकर, पारिवारिक मानता था और इसी गौरव-रक्षा के उद्देश्य के निमित्त उसने पत्रों में कई लेख भी लिखे थे। आज शशिमुखी को अपने सामने से भागते देखकर, उसे शशिमुखी के साथ अपने भावी सम्बंध का स्वरूप दिखलाई पड़ा। तब यह सोचकर कि गोरा उसे उसकी प्रकृति के विरुद्ध कहाँ घसीटे लिये जा रहा है, उसे गोरा के ऊपर बहुत क्रोध आया। उसे यह विचार आने पर भी अत्यन्त ग्लानि हुई कि पहले आनंदमयी ने भी तो इस विवाह को नापसंद किया था।

विनय के मन का भाव आनंदमयी समझ गईं। उन्होंने उसका मन दूसरी ओर फेरने के विचार से कहा—'विनय, कल गोरा का पत्र आया है।'

विनय अन्यमनस्क-सा बोला—'क्या लिखा है ?'

आनंदमयी—'कोई खास बात तो नहीं है। देश के छोटे लोगों की दुर्दशा देख कर, विशेषकर उन्हीं का हाल लिखा है। घोलपाड़ा नामक, गाँव में मजिस्ट्रेट ने कैसे-कैसे अत्याचार किये हैं, उनका भी कुछ वर्णन है।'

तभी गोरा के प्रति असहिष्णु होते हुए विनय ने कहा—'गोरा को दूसरों का ही ध्यान रहता है। हम लोग जो समाज की छाती पर बैठकर स्वयं अत्याचार करते रहते हैं, उन्हें चाहे भले ही क्षमा करते हुए सत्कर्म बताते रहें ?'

गोरा के ऊपर इस प्रकार दोषारोपण करके विनय गोरा के विरुद्ध खड़ा हो रहा है, यह देखकर आनंदमयी को हँसी आगई।

विनय बोला—'माँ, तुम हँस रही हो। मुझे जो क्रोध आया, उसका कारण सुनो। उस दिन सुधीर मुझे नैहाटी स्टेशन पर, अपने एक मित्र के बाग में ले गया। सियालदह स्टेशन से ही पानी बरसना आरम्भ हो गया। जब गाड़ी शोदपुर स्टेशन पर रुकी, तब मेरे सामने एक

सज्जाली महाशय साहिबी पोशाक पहिने हुए उतरे, उन्होंने अपनी पत्नी को भी उतारा। वे छाता लगाये हुए थे। उनकी पत्नी की गोद में एक बच्चा था। वह स्वयं मोटी चादर ओढ़े थी तथा उसी में बच्चे को छिपाये हुए थी। वह शीत तथा लज्जा से संकुचित हो पानी में खड़ी भीग रही थी तथा उसका बेहया पति छाता लगाये हुए, कुलियों का प्रबंध कर रहा था। जब मैंने यह देखा, तभी से प्रतिज्ञा की है कि मैं लक्ष्मी या देवी कहकर स्त्री की मिथ्या पूजा करने वाली काव्य-कल्पना को कभी स्वीकार नहीं करूँगा।'

कुछ देर ठहरकर, अपने आवेश से स्वयं ही लज्जित होकर विनय ने फिर कहना आरम्भ किया—'मां, तुम सोचती होगी, विनय कभी-कभी ऐसी बातें कहकर व्याख्यान क्यों देने लगता है तथा आज भी व्याख्यान की सनक क्यों सवार हो रही है, तो उस सम्बंध में मैं यही कहूंगा कि यह मेरे अभ्यास के कारण ही ऐसा जान पड़ता है। देश की स्त्रियां कितनी शक्तिशालिनी हैं इस विषय पर मैंने कभी ध्यान ही नहीं दिया, परंतु इस स्थिति को मैं अब अधिक सहन न करूँगा।'

इतना कहकर विनय तुरंत वहां से चल दिया। उस समय उसका हृदय किसी अपूर्व उत्साह से भर रहा था।

तभी आनंदमयी ने महिम को बुलाकर कहा—'भैया, हमारी शशिमुखी का विवाह विनय के साथ न हो सकेगा।'

महिम ने पूछा—'क्यों, क्या तुम्हारी सम्मति नहीं है !'

आनंदमयी—'यह सम्बंध अन्त तक नहीं टिक सकेगा, इसीलिए मेरी राय नहीं है।'

महिम—'गोरा तैयार हो गया है और विनय भी तैयार है, फिर क्यों नहीं टिकेगा ? परन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि यदि तुमने सम्मति न दी तो विनय कभी विवाह न करेगा।'

आनंद०—'मैं विनय को तुम्हारी अपेक्षा कहीं अच्छी तरह जानती हूँ।'

महिम—'गोरा से अधिक ?'

आनन्द०—'हां, जितना मैं विनय को जानती हूं, उतना गोरा भी नहीं जानता। इन्हीं सब बातों पर विचार करके ही मैं इस विवाह की सम्मति नहीं दे सकती।'

महिम—'ठीक है, देखा जायगा, गोरा को तो लौट आने दो।'

आनन्द०—'तुम मेरी बात सुनो। इस विवाह के लिए यदि 'तुमने अधिक हठ किया तो फिर अन्त में बहुत गड़बड़ी मचेगी। मेरी राय नहीं है कि इस सम्बन्ध में गोरा विनय से कुछ कहे!'

'देखा जायगा' कहकर महिम मुंह में पान का बीड़ा रख बिगड़ता हुआ वहां से चला गया।

२५

गोरा जब भ्रमण के लिए निकला था, उस समय उसके साथ अविनाश, मोतीलाल, वसन्त तथा रमापति थे। परन्तु वे सभी गोरा का पूरा साथ न दे सके। अविनाश तथा वसन्त तो अस्वस्थ होने का बहाना करके चार-पांच दिन बाद ही कलकत्ता लौट आये, परन्तु मोतीलाल और रमापति, जो उसके ऊपर अगाध श्रद्धा रखते थे, उसे अकेला छोड़ कर न लौट सके। परन्तु थे वे बहुत परेशान। कारण स्पष्ट था कि गोरा बहुत चलने पर भी थकता नहीं था। ये लोग कभी-कभी दो चार दिन के लिए किसी गांव में किसी के घर जा ठहरते। वहां के सब लोग गोरा की बातें सुनकर दिन-रात घेरे बैठे रहते थे। वे उसे छोड़ना ही नहीं चाहते थे।

कलकत्ते से बाहर, कुलीन-समाज तथा शिक्षित-समाज से बाहर हमारा देश कैसा है, यह गोरा ने पहले पहल देखा ? भारत के असंख्य गांवों में संकीर्ण भेद-भाव, अज्ञानता, उदासीनता, क्षेत्र-भेद आदि किस प्रकार व्याप्त है, यह सब उसे दिखाई पड़ा। सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट होने के लिए किन-किन बाधाओं का सामना करना पड़ता है यह भी उसे भली-भांति ज्ञात हो गया। ग्रामवासियों के बीच निवास किये बिना, वह इन सब बातों को कभी जान ही नहीं सकता था।

एक समय की बात है। गोरा एक गांव में ठहरा हुआ था, तभी दैवयोग से एक मुहल्ले में आग लग गई। उस भीषण विपत्ति के समय में भी लोगों को मिलाकर बचाव का आश्रय लेते न देखकर, गोरा को बहुत आश्चर्य हुआ। विपत्ति में यदि एक-दूसरे की सहायता न की जाये तो फिर एक स्थान पर घर बनाकर रहने का उद्देश्य ही क्या है? उसने देखा—गांव के सब लोग इधर-उधर दौड़ रहे हैं। कोई चीख रहा है, कोई रो रहा है, कोई हाय-हाय कर रहा है, तो कोई चुपचाप खड़ा हुआ तमाशा ही देख रहा है, परन्तु आग बुझाने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया और देखते ही देखते समूचा घर जलकर भस्म हो गया।

उस गांव के पास कोई तालाब अथवा कुँआ नहीं था। स्त्रियों को बहुत दूर से पानी लाकर घर का काम-काज चलाना पड़ता था, परन्तु गांव के पास ही थोड़े खर्च में कुँआ खोद लेने की ओर, वहाँ के किसी धनी व्यक्ति ने ध्यान ही नहीं दिया था।

इस बस्ती में कई बार पहले भी आग लग चुकी थी। सब लोग उसे ब्रह्माग्नि तथा दैवदुर्विपाक कहकर आत्म-सन्तोष कर लिया करते थे। पास ही पानी का प्रबन्ध करने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था।

गोरा को सबसे अधिक आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि उसके साथी मोतीलाल तथा रमापति भी इन सब दुःखों को देखकर बिल्कुल नहीं घबराये। यही नहीं, गोरा की चिन्ता को भी उन्होंने व्यर्थ ही समझा। वे यही सोच रहे थे कि छोटे लोगों में तो ऐसा होता ही आया है। उसके लिए चिन्ता करने की बात ही क्या है? गोरा को उन दोनों की इस प्रवृत्ति से बहुत दुःख हुआ।

'दूसरे दिन मेरे घर से बीमारी का पत्र आया है'—कह कर मोतीलाल भी गोरा का साथ छोड़कर चला गया। अब उसके साथ केवल रमापति रह गया।

इसके उपरान्त, वे लोग नदी के पास की रेतीली भूमि पर बसे

एक मुसलमानी वस्ती में जा पहुँचे। ठहरने के लिए ढूँढ़ने पर, सारी वस्ती में उन्हें केवल एक हिंदू नाई का घर मिला। जब ये उसके घर गए तो उन्होंने देखा कि नाई की स्त्री एक मुसमलान के बालक को अपने घर में पाले हुए है। रमापति तथा गोरा को यह देखकर बहुत सदमा पहुँचा। गोरा ने इस अनाचार के लिए जब नाई को धिक्कारा, तो उसने सीधा-सा उत्तर दे दिया—'पण्डितजी हम लोग जिसे 'हरि' कहते हैं, उसी को ये लोग 'अल्ला' कहते हैं। फिर भेद ही क्या रहा ?'

धूप कड़ी होगई थी। नदी वहाँ से दूर थी। चारों ओर बालू ही बालू दिखाई पड़ रही थी। रमापति ने प्यास से व्याकुल होकर पूछा—'यहाँ जल कहाँ मिल सकेगा ?'

नाई के घर के पास एक कुँआ था, परंतु वह उस कुँए का पानी न पीकर मुँह बिगाड़े बैठा रहा।

गोरा ने नाई से पूछा—'क्या इस लड़के के माता-पिता नहीं ?'

नाई बोला—'हैं तो सही, परंतु वे न होने के बराबर ही हैं।'

'सो कैसे ?'

तब नाई ने जो कथा सुनाई उसका सारांश यह था—

'वे लोग जिस जमींदारी में रहते हैं, वह नील के साहब की ठेके की है। यहाँ की सम्पूर्ण रेतीली भूमि पर नील की खेती करने के लिए, कोठी ने अपना कब्जा कर लिया है। अन्य गाँवों के किसानों ने भी इसे स्वीकार कर लिया है, परन्तु अल्लापुर नामक गाँव, जिसमें रहने वाले मुसलमान लोग हैं, को कोठी का साहब अपने वश में नहीं कर सका है। इन मुसलमानों का सरदार फेरू मियाँ बड़ा निडर व्यक्ति है। वह कई बार इस सम्बंध में तहकीकात के लिए आई पुलिस के साथ मारपीट करने के जुर्म में जेल काट आया है। उसकी हालत यह है कि यदा-कदा सयोग से ही उसके घर चूल्हा जलता है। फिर भी वह किसी से नहीं डरता। इस बार गाँव के लोगों ने नदी की रेतीली भूमि को जोत कर कुछ धान बोया था, परन्तु लगभग एक महीना हुआ, तब कोठी के मैनेजर साहब ने लठैतों को अपने साथ लाकर प्रजा का वह सारा धान

लूट लिया। इस अत्याचार को देखकर फेरू सरदार ने मैनेजर के हाथ में एक ऐसी लाठी मारी, जिससे उसका हाथ टूट गया। डाक्टरों ने इलाज करते समय उस हाथ को काट दिया, तब से लोग उसे हथकट्टा साहब कहते हैं। अब जैसा अन्धेरा गाँव में कभी नहीं हुआ था। इस घटना के ओर से पुलिस का क्रोध गाँव के ऊपर आग की तरह बरस रहा है। किसी के घर में कुछ नहीं बचा। स्त्रियों का सतीत्व भी लूटा गया। फेरू सरदार तथा अन्य कितने ही व्यक्तियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। उनके घर के लोग भूखों मर रहे हैं। लोगों के शरीर के कपड़े तक उतार लिये गये, जिससे वे लज्जा के मारे बाहर भी नहीं निकलते हैं। फेरू का एकमात्र लड़का 'तमीजे' गाँव के रिश्ते से मेरी पत्नी को मौसी कहा करता था। उसे कई दिन से भूखा देखकर ही, वह उसे अपने घर ले आई है। नील की कोठी यहाँ से डेढ़ कोस की दूरी पर है। पुलिस का दरोगा अब भी अपना दल-बल लिये वहाँ ठहरा हुआ है। सवेरे नाजिम के घर पुलिस आई थी। नाजिम का युवक साला दूसरे गाँव से अपनी बहिन को देखने के लिए यहाँ आया था। दरोगा ने उसे देखते ही कहा—'साला देखने मे कैसा तन्दुरुस्त है और इसकी छाती कैसी चौड़ी है?' इतना कहकर लाठी का सिरा उसके मुँह पर दे मारा जिससे उसके दाँत टूट गए तथा मुँह से खून निकलने लगा। अपने भाई पर यह अत्याचार होते देखकर जब बहिन चिल्लाती हुई बाहर आई, तो उसे सिपाहियो ने धक्का मारकर दूर धकेल दिया। गाँव के युवक पुलिस के भय से फरार हो गए हैं और पुलिस उनका पता लगाने के नाम पर यहाँ डटी हुई हमारे ऊपर जुल्म कर रही है। पता नही इससे कब उद्धार होगा?'

गोरा उठना नही चाहता था, परंतु रमापति का प्यास के मारे दम निकला जा रहा था। नाई की बात समाप्त होते ही उसने पूछा 'यहाँ से हिन्दुओं का गाँव कितनी दूर है?'

नाई ने कहा—'यहाँ से कोई तीन मील पर, जहाँ नील कोठी है, वहीं एक मंगलाप्रसाद नामक हिन्दू कायस्थ

रहता है।'

गोरा ने पूछा—'उसका स्वभाव कैसा है ?'

नाई—'उसे साक्षात यमदूत ही कहना चाहिये। इतना निर्दय तथा चालाक व्यक्ति मैंने कोई नहीं देखा, वह दरोगा को अपने घर कई दिनों से ठहराये हुए है। हालांकि उस सब खर्च को वह हम लोगों से ही वसूल कर लेगा और कुछ मुनाफा भी बना लेगा।'

रमापति ने गोरा से कहा—'अब यहाँ से चलिये मैं भूख-प्यास के कारण मरा जा रहा हूं।'

उसी समय नाइन कुँए से पानी भर-भर कर उस मुसलमान लड़के को नहलाने लगी। रमापति यह देखकर बहुत क्षुब्ध हो उठा।

चलते समय गोरा ने नाई से कहा—'तुम लोग जो अभी तक इस गांव में ठहरे हुए हो, सो क्या कहीं और स्थान पर तुम्हारे कटुम्बी नहीं हैं, जहाँ चले जाओ ?'

नाई बोला—'मैं यहाँ बहुत दिनों से रह रहा हूं, अतः इन लोगों के साथ मुझे ममता हो गई है। मेरे पास खेती को जमीन नहीं है, अतः कोठी का कोई व्यक्ति मुझसे कुछ नहीं कहता। आजकल इस गाँव में कोई पुरुष नहीं है। यदि मैं भी यहां से चला जाऊँ तो यहाँ की स्त्रियां डरके मारे मर जायेंगी, क्योंकि मैं ही सब की [illegible] करता रहता हूं।'

गोरा—'अच्छा, मैं खा-पीकर फिर यहाँ आ

भूख-प्यास से व्याकुल रमापति ने अपना
यह दोषारोपण करते हुए उतारा कि वे लोग मूर्ख
कोठीवालों तथा शासन के विरुद्ध अपना सिर उठा

दोपहर की कड़ी धूप में गरम बालू के उ
ने रमापति की किसी बात का उत्तर नहीं दिया।
पहुँच कर जब कचहरी वाला मकान दिखाई देने ल
पति से कहा—'तुम वहाँ जाकर खाओ-पिओ, मैं
रहा हूं।'

रमापति आश्चर्यचकित होकर बोला—'क्या आप भोजन नहीं करेंगे।'

'मैं अभी अपना काम करूँगा। हो सकता है, मुझे अलापुर में कुछ दिनों रुकना भी पड़े। हाँ, तुम्हें यहाँ ठहरना बर्दाश्त न होगा।'

गोरा के समान धार्मिक हिन्दू के मुँह से यह शब्द सुनकर, रमापति के रोंगटे खड़े हो गये। वह सोचने लगा—'क्या गोरा उपवास ही करेगा?' गोरा का साथ छोड़कर कलकत्ता लौट जाने के लिए, अब उसे कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता भी न रह गई थी। तभी उसने देखा, गोरा उसे छोड़कर कड़कड़ाती धूप में उष्ण बालुकामय मार्ग पर अकेला ही लौटा जा रहा है।

गोरा यद्यपि भूख-प्यास से व्याकुल हो रहा था, परन्तु अत्याचारी मंगलाप्रसाद के यहाँ भोजन करके जाति बचाना उसे असह्य हो उठा। उसने मन ही मन सोचा—'इस भारतवर्ष में पवित्रता का ढोंग करके वास्तव में हम भारी अधर्म कर रहे हैं। क्या मुसलमानों को सताने वाले के यहाँ भोजन करने से मेरी जाति बचेगी और जिसने अनेकों कष्ट सह कर भी एक मुसलमान बालक की प्राणरक्षा की है, उसके यहाँ भोजन करने से धर्म नष्ट हो जायेगा? अवश्य ही यह अविचार है। मैं उस पापी मंगलाप्रसाद का अन्न कभी ग्रहण नहीं करूँगा।'

गोरा को अकेला लौटते देख नाई आश्चर्य चकित रह गया। गोरा ने आते ही नाई के लोटे को बालू से खूब मांजकर, उसी कुएँ से पानी भर कर पिया, तदुपरान्त बोला-'तुम्हारे घर में कुछ दाल-चावल हों तो हमें दो, हम बनाकर खा लेंगे।'

नाई ने प्रसन्न होकर सारा सामान ला दिया। भोजन करने के उपरान्त गोरा बोला—'मैं तुम्हारे घर-दो चार दिन ठहरूँगा।'

नाई ने हाथ जोड़कर डरते हुए कहा—'महाराज! आप मुझ नीच के घर रहें, इससे अधिक मेरा सौभाग्य और क्या हो सकता है? परन्तु हम लोगों के ऊपर पुलिस की कड़ी निगाह है, अतः आ[illegible] रहने से कोई नया बखेड़ा न उठ खड़ा हो।'

रहता है।'

गोरा ने पूछा—'उसका स्वभाव कैसा है ?'

नाई—'उसे साक्षात यमदूत ही कहना चाहिये । इतना निर्दय तथा चालाक व्यक्ति मैंने कोई नहीं देखा, वह दरोगा को अपने घर कई दिनों से ठहराये हुए है। हालांकि उस सब खर्च को वह हम लोगों से वसूल कर लेगा और कुछ मुनाफा भी बना लेगा।'

रमापति ने गोरा से कहा—'अब यहां से चलिये मैं भूख-प्यास के कारण मरा जा रहा हूं।'

उसी समय नाइन कुंए से पानी भर-भर कर उस मुसलमान लड़के को नहलाने लगी। रमापति यह देखकर बहुत क्षुब्ध हो उठा।

चलते समय गोरा ने नाई से कहा—'तुम लोग जो अभी तक इस गांव में ठहरे हुए हो, सो क्या कहीं और स्थान पर तुम्हारे कटुम्बी नहीं हैं, जहाँ चले जाओ ?'

नाई बोला—'मैं यहाँ बहुत दिनों से रह रहा हूं, अतः इ लोगों के साथ मुझे ममता हो गई है। मेरे पास खेती को जमीन नहीं अतः कोठी का कोई व्यक्ति मुझसे कुछ नहीं कहता । आजकल इस ग में कोई पुरुष नहीं है। यदि मैं भी यहां से चला जाऊं तो यहाँ स्त्रियां डरके मारे मर जायेंगी, क्योंकि मैं ही सब की देख-रेख क रहता हूं।'

गोरा—'अच्छा, मैं खा-पीकर फिर यहाँ आऊंगा।'

भूख-प्यास से व्याकुल रमापति ने अपना क्रोध गांव वा यह दोषारोपण करते हुए उतारा कि वे लोग मूर्ख हैं जो श कोठीवालों तथा शासन के विरुद्ध अपना सिर उठा रहे हैं।

दोपहर की कड़ी धूप में गरम बालू के ऊपर चलते ने रमापति की किसी बात का उत्तर नहीं दिया। गन्तव्य पहुँच कर जब कचहरी वाला मकान दिखाई देने लगा, तब पति से कहा—'तुम वहां जाकर खाओ-पिओ, मैं उसी नाई रहा हूं।'

रमापति आश्चर्यचकित होकर बोला—'क्या आप भोजन नहीं करेंगे ?'

'मैं अभी अपना काम करूँगा। हो सकता है, मुझे अल्लापुर में कुछ दिनों रुकना भी पड़े। हाँ, तुम्हें यहाँ ठहरना बर्दाश्त न होगा।'

गोरा के समान धार्मिक हिन्दू के मुँह से यह शब्द सुनकर, रमापति के रोंगटे खड़े हो गये। वह सोचने लगा—'क्या गोरा उपवास ही करेगा ?' गोरा का साथ छोड़कर कलकत्ता लौट जाने के लिए, अब उसे कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता भी न रह गई थी। तभी उसने देखा, गोरा उसे छोड़कर कड़कड़ाती धूप में उष्ण बालुकामय मार्ग पर अकेला ही लौटा जा रहा है।

गोरा यद्यपि भूख-प्यास से व्याकुल हो रहा था, परन्तु [illegible] मंगलाप्रसाद के यहाँ भोजन करके जाति बचाना उसे असह्य हो [illegible]। उसने मन ही मन सोचा—'इस भारतवर्ष में पवित्रता का [illegible] वास्तव में हम भारी अधर्म कर रहे हैं। क्या मुसलमानों को [illegible] के यहाँ भोजन करने से मेरी जाति बचेगी और जिसने [illegible] कर भी एक मुसलमान बालक की प्राणरक्षा की है, [illegible] करने से धर्म नष्ट हो जायेगा ? अवश्य ही यह [illegible] है। [illegible] पापी मंगलाप्रसाद का अन्न कभी ग्रहण नहीं करूँगा।'

गोरा को अकेला लौटते देख नाई [illegible] गोरा ने आते ही नाई के लोटे को बालू से [illegible] पानी भर कर लिया, तदुपरान्त बोला-[illegible] हों तो हमें दो, हम बनाकर खा लेंगे।'

नाई ने प्रसन्न होकर [illegible] उपरान्त गोरा बोला—'मैं तुम्हारे [illegible]

नाई ने हाथ जोड़कर [illegible] नीच के घर रहें, इससे [illegible] परन्तु हम लोगों के ऊपर [illegible] रहने से कोई [illegible]

गोरा बोला—'मेरे यहां रहने से पुलिस कोई उत्पात नहीं करेगी और यदि करेगी तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

'दुहाई बाबूजी की'—नाई ने कहा—'यदि आप हम लोगों की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे, तब तो हम लोग और भी अधिक सङ्कट में फंस जायेंगे। पुलिस वाले समझेंगे कि मैंने आपको पुलिस के विरुद्ध गवाह बना कर अपने यहाँ ठहरा लिया है। उस स्थिति में तो वे फिर मुझे यहाँ रहने भी नहीं देंगे। यदि मैं यहाँ से चला गया, तो फिर यह बस्ती बरबाद हुए बिना न रहेगी।'

गोरा अब तक शहर में पल कर ही बड़ा हुआ था। नाई इतना क्यों डर रहा है, यह उसकी समझ में नहीं आया। विपत्तिग्रस्त गाँव को अकेला छोड़ जाना भी उसे स्वीकार नहीं था। तभी नाई ने उसके पैरों पर गिरते हुए कहा—'देखिए, आप ब्राह्मण हैं। किसी पूर्व जन्म के पुण्य के कारण ही आप मेरे अतिथि हैं। परन्तु स्मरण रखिये कि यदि आप यहाँ रहकर पुलिस के अत्याचारों में कोई हस्तक्षेप करेंगे, तो हमें अधिक विपत्ति में डाल देंगे।'

नाई की इस कायरता से कुछ रुष्ट होकर, गोरा दिन के तीसरे पहर ही उसके घर से वापिस लौट पड़ा। उस म्लेच्छाचारी के घर खाने-पीने से उसे कुछ अश्रद्धा भी हुई। शाम होते-होते वह नील की कोठी वाली कचहरी में जा पहुँचा। रमापति पहले ही भोजन करके कलकत्ते चला गया था, अतः उससे भेंट न हो सकी। गोरा के तेजपूर्ण मुख को देखकर मङ्गलाप्रसाद उसका आतिथ्य-सत्कार करने को ज्योंही उद्यत हुआ त्योंही गोरा ने उस पर बिगड़ते हुए कहा—'तुम्हारे यहां का पानी भी नहीं पीऊँगा।'

मङ्गलाप्रसाद ने चकित होकर जब इसका कारण पूछा, तब गोरा ने उसके प्रति अन्यायी, अत्याचारी आदि कटु-वाक्यों का प्रयोग किया तथा आसन पर बैठकर वहीं जमा रहा।

उस समय पुलिस का दरोगा मसनद के सहारे लेटा हुआ तम्बाकू पी रहा था। उसने बैठते हुए तनिक रूखे स्वर में गोरा से पूछा—'तुम

कौन हो, कहाँ के रहने वाले हो?'

गोरा उसके प्रश्न का उत्तर न देते हुए बोला—'प्रतीत होता है, दरोगा तुम्हीं हो। अल्लापुर में तुमने जो उपद्रव किए हैं, मैं उन्हीं का समाचार लेकर आ रहा हूँ। यदि अब भी सम्भलकर न चले तो...... ...।'

दरोगा बीच ही में बोल पड़ा—'तो क्या तुम फाँसी लगा दोगे? मैं तो तुम्हें भिखमंगा समझ रहा था पर अब देखता हूँ कि तुम्हारी त्यौरियाँ चढ़ गई हैं और आँखें रङ्ग बदल रही हैं। शायद तुम्हारी भेंट कभी दरोगा से नहीं हुई?'

तभी मङ्गला दरोगा का हाथ पकड़ते हुए बोला—'जाने भी दीजिए, अपने घर आये सज्जन का अपमान नहीं करना चाहिये।'

दरोगा ने बिगड़ते हुए कहा—'यह सज्जन? इसने आपको जो जी में आया कहा, क्या यह आपका अपमान नहीं था?'

'आपका कहना भी ठीक है'—मंगला बोला—'परन्तु व्यर्थ क्रोध करने से कोई लाभ नहीं। मैं नील-कोठी के साहब की तहसीलदारी करके खाता हूँ। उसके अतिरिक्त अन्य किसी काम से कोई सम्बन्ध नहीं है। आप ठहरे पुलिस के दरोगा—साक्षात् यमदूत ही कहिए। लोग कहते हैं—'बाघ आदमी को मार कर खाता है। वह खाता हो, चाहे नहीं परन्तु बदनाम अवश्य है।' अतः आप इसके लिए क्या करेंगे?

मंगलाप्रसाद किसी पर बिना प्रयोजन नाराज नहीं होता था। वह किसी का अहित अथवा अपमान खूब सोचने-विचारने के बाद ही करता था। उसे किसी पर सहसा क्रोध तो कभी आता ही नहीं था।

तब दरोगा ने गोरा से कहा—'बाबू तुम निरे देहाती लगते हो। हम यहाँ सरकारी काम से आये हैं। यदि तुमने उसमें कोई रोड़ा अटकाया तो मुसीबत में पड़ जाओगे।'

गोरा कोई उत्तर न देकर चुपचाप बाहर निकल आया। मंगला भी उसके पीछे-पीछे बाहर चला आया और पास पहुँचकर बोला—

'महाराज, आपका कहना ठीक है। हम लोगों का काम कसाई जैसा ही है। यद्यपि इस वेईमान दरोगा को अपने विछौने पर वैठाने में भी पाप है और इसके पंजे में पड़कर मैंने जितने पाप किये हैं उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। परंतु अव यह पापवृत्ति अधिक दिनों तक नहीं चलेगी। मुझे लड़की का व्याह करना है। दो-तीन वर्ष में जब उसके लिए धन एकत्रित कर लूंगा तब मैं स्वयं इस जगह को छोड़ कर अपनी पत्नी सहित काशीवास करूंगा। अस्तु, आप रात में यहीं ठहरिये और भोजन कीजिये। मैं आपके खाने-पीने का अलग प्रबन्ध कर दूंगा तथा उस पापी दरोगा की छाया तक आपके ऊपर न पड़ने दूंगा।'

गोरा का शरीर क्रोध से जल रहा था, अतः वह यह कहकर कि मुझे एक आवश्यक कार्य है, वहां से चलने लगा।

मंगला ने यह देखकर कहा—'अच्छा, कुछ देर ठहरिये। मैं आपके साथ एक लालटेन वाला किये देता हूं।'

परन्तु गोरा वहां से तीर की भांति निकल पड़ा। मंगलाप्रसाद ने दरोगा के पास लौट कर कहा—'मालूम होता है, वह आदमी सदर गया है, अतः आप एक आदमी को मजिस्ट्रेट के पास भेज दीजिये।'

दरोगा—क्यों, किसलिए?'

मंगला—'इसलिए कि वह डिवीजनल अफसर को यह वता आये कि यहां पर एक आदमी कहीं से आकर गवाहों को विगाड़ने के प्रयत्न में घूम रहा है।'

२६

सन्ध्या के समय मजिस्ट्रेट ब्रंडला साहव नदी किनारे वाली सडक पर पैदल घूम रहे थे, साथ में हारानवावू भी थे। उनसे कुछ दूरी पर परेशवावू की लड़कियों के साथ वग्घी में वैठी हुई उनकी मेमसाहिबा भी हवा खाने निकल पड़ी थीं।

कभी-कभी ब्रंडला साहव अच्छे वंगालियों को अपने यहां गार्डन पार्टी में न्यौता देकर वुलवा लिया करते थे। वे किसी स्कूल में पुरस्कार

बाँटने के लिए सभापति का आसन ग्रहण करते अथवा किसी रईस द्वारा अपने पुत्र-पुत्री की शादी में निमन्त्रित किए जाने पर, उसमें सम्मिलित होते थे। गत दशहरे के यात्रा-उत्सव में सरकारी वकील के यहाँ जो पार्ट अदा किया था, ब्रँडला साहब को वह इतना पसंद आया कि उन के अनुरोध पर उस अभिनय का कुछ अंश दुबारा दिखाया गया था।

साहब की पत्नी एक पादरी की लड़की थी, अतः पादरियों की लड़कियाँ उनके यहाँ प्रायः चाय पीने आया करती थी। उसने शहर के भीतर एक कन्या पाठशाला की स्थापना की थी और उसमें आने के लिए लड़कियों को प्रोत्साहित किया करती थी। परेशबाबू की लड़कियों में विद्या के प्रति प्रेम देखकर वह उन्हें उत्साहित करती, पत्र आदि भेजती तथा बड़े दिनों की खुशी में धर्म-ग्रन्थ भेंट किया करती थी।

प्रदर्शनी के दिन मेले का सब प्रबन्ध ठीक कर दिया गया था। दूर-दूर से सौदागर आये थे। उसी उपलक्ष में हारानबाबू सुधीर, विनय वरदासुन्दरी तथा उनकी लड़कियाँ यहाँ आकर एक बँगले में ठहरे हुए थे। परेशबाबू इनके साथ न आकर, कलकत्ते में ही रह गये थे। सुचरिता भी उन्ही के पास रह जाना चाहती थी, परन्तु परेशबाबू ने उसे कर्तव्य-पालन के निमित्त यहाँ भेज दिया था। परसों संध्या के समय कमिश्नर तथा गवर्नर के मध्य परेशबाबू की लड़कियों के अभिनय की बात निश्चित हुई थी उसे देखने के लिए चुने हुए अनेकों हिन्दू वकील बैरिस्टर, जमींदार आदि को आमन्त्रित किया गया था। यह भी सुना जाता था कि उनके जलपान आदि के लिए बाग मे एक तम्बू के भीतर ब्राह्मण रसोइये की व्यवस्था की गई है।

हारानबाबू ने अपनी सार-गर्भित बातचीत से मजिस्ट्रेट को विशेषरूप से प्रसन्न कर लिया था। वे ईसामसीह की धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में हारानबाबू के पाण्डित्य को देखकर आश्चर्य में डूब गये थे। उन्होंने हारानबाबू से यह भी पूछा था कि उन्होंने ईसाई धर्म को ग्रहण करने में अब तक विलम्ब क्यों लगा रक्खा है।

आज शाम को नदी किनारे जब हारानबाबू मजिस्ट्रेट के साथ

ब्राह्मसमाज की कार्य-पद्धति तथा हिन्दू-समाज के कुसंस्कारों के सम्बन्ध में गम्भीर आलोचना कर रहे थे, तभी 'गुड ईवनिंग' करता हुआ गोरा उनके सामने आ उपस्थित हुआ।

कल जब वह मजिस्ट्रेट साहब से मिलने उनकी कोठी पर गया था, तब वहाँ से वह यह देखकर लौट आया था कि साहब से भेंट करने के लिए भी चपरासियों को कुछ दक्षिणा देनी पड़ती है। गोरा उसे अपना अपमान समझकर उनसे यहाँ भेंट करने चला आया था। उस समय हारानबाबू ने उसे देखकर ऐसा भाव प्रकट किया, जैसे वे उसे जानते ही नहीं हैं।

गोरा को देखकर मजिस्ट्रेट चकित-सा रह गया। ऐसा लम्बा हृष्ट-पुष्ट शरीरवाला युवक बंगाल में उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। उस समय वह खाकी रंग का एक कुरता पहने हुए था। उसकी धोती मोटी तथा कुछ मैली थी और सिर पर चादर की पगड़ी बँधी थी तथा हाथ में बांस का एक लट्ठ लिये हुए था।

गोरा ने कहा—'मैं घोषपुर से आ रहा हूँ।'

मजिस्ट्रेट ने उसे विस्मय से देखा। घोषपुर की वर्तमान कार्य-वाही में बाहर का कोई आदमी हस्तक्षेप कर रहा है, यह समाचार उन्हें कल ही मिल चुका था। वे गोरा को सिर से पैर तक देखकर सोचने लगे 'यह वही आदमी तो नहीं है।' फिर पूछा—'तुम्हारी क्या जाति है ?'

'मैं बंगाली ब्राह्मण हूँ'—गोरा ने उत्तर दिया।

'क्या किसी समाचार-पत्र के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध है ?'

'नहीं !'

'तब तुम घोषपुर क्यों गये थे ?'

'मैं यों ही घूमते-फिरते वहाँ जा पहुँचा। वहाँ पुलिस के अत्या-चार तथा गांव की दुर्दशा का चित्र देखकर, उसके प्रतिकार के लिये आपके पास आया हूँ।'

'क्या तुम नहीं जानते कि घोषपुर के लोग बहुत बदमाश हैं ?'

'बदमा तो नहीं, हां निडर एवं स्वतन्त्र स्वभाव के अवश्य हैं,

वे अन्याय और अत्याचार को चुपचाप नही सह सकते।'

मजिस्ट्रेट को क्रोध आया। उन्होंने समझा—'नये बंगाली इतिहास की किताबें पढ कर नई बोली बोलने लगे हैं।' गोरा को घुड़की देते हुए उन्होंने कहा—'तुम्हे वहाँ की स्थिति का पता नही है।'

'वहाँ की स्थिति मेरी अपेक्षा आप कही कम जानते हैं!' गोरा ने कडक कर उत्तर दिया।

'परन्तु मैं तुम्हें चेतावनी दिये देता हूँ कि यदि तुम वहाँ के मामले मे कुछ हस्तक्षेप करोगे, तो तुम्हें विद्रोही करार दिया जायेगा और उसका दण्ड भी भोगना पड़ेगा।'

'यदि आपका यही निश्चय है कि आप वहाँ अत्याचार जारी रक्खेंगे तब मैं क्या कहूँ? परन्तु ऐसी स्थिति मे मैं उस गाँव के लोगो को पुलिस के विरुद्ध खड़ा होने के लिए अवश्य उत्साहित करूँगा।'

मजिस्ट्रेट साहब ने गोरा को डाँटते हुए कहा—'इतनी धृष्टता!'

गोरा ने कोई उत्तर नही दिया। वह धीरे-धीरे वहाँ से चला गया। तब मजिस्ट्रेट साहब हारानवाबू से बोला—'आपके देशवासियों मे यह कैसे लक्षण प्रकट हो रहे हैं?'

हारानबाबू ने कहा—'हुजूर! आध्यात्मिक, नैतिक तथा चरित्र मे सुधार सम्बन्धी शिक्षा की कमी के कारण ही ऐसी घटनायें हो रही हैं। वे लोग अँग्रेजी विद्या के श्रेष्ठ अंश को ग्रहण नही कर पाते। ईश्वर की कृपा से भारत मे जो अँग्रेजी-शासन कायम हुआ है, ये अकृतज्ञ लोग अभी तक उसे स्वीकार नही करना चाहते। ये तोते की भाँति धर्म का पाठ तो कण्ठस्थ किए हुए हैं, परन्तु इन्हे वास्तविक ज्ञान बिल्कुल नहीं है।'

'जब तक ये लोग ईसाई मत स्वीकार नहीं करते, तब तक भारतवर्ष मे धर्म का ज्ञान कभी प्रस्फुटित न हो सकेगा'—मजिस्ट्रेट महोदय ने कहा।

हारानवाबू बोले—'आपका कहना एक प्रकार से सत्य ही है।'

यह कह कर हारानबाबू ने ईसाई मत के सम्बन्ध में अपनी सम्मति

एवं मतभेद की सूक्ष्म भाव से चर्चा करनी आरम्भ कर दी। मजिस्ट्रेट का ध्यान उसमें ऐसा लगा कि जब मेम-साहिबा परेशबाबू की लड़कियों को डाक बंगले में पहुँचा कर, लौटते समय उनके पास आकर बोलीं—'चलिए !' तभी वे चौंके। घड़ी पर दृष्टि डालते हुए वे बोले—'अरे; आठ बजकर बीस मिनट हो गए ?' फिर उन्होंने गाड़ी पर चढ़ते समय हारानबाबू से हाथ मिलाते हुए कहा—'आपके साथ मेरी आज की संध्या बड़े आनन्द से कटी।'

डाक बंगले पर पहुँचकर हारानबाबू ने सब लोगों को वे सब बातें सुनाईं, जो मजिस्ट्रेट के साथ हुई थीं, परन्तु गोरा के आगमन का उन्होंने उल्लेख तक नहीं किया।

२७

गांव का दमन करने के लिए किसी अपराध का विचार किए बिना सैंतालीस आदमियों को गिरफ्तार कर, हवालात में बन्द कर दिया गया था।

मजिस्ट्रेट से मिलने के बाद गोरा वकील की खोज में निकला। उसे समाचार मिला कि सातकौड़ी हालदार अच्छे वकीलों में हैं। जब वह सातकौड़ी के घर पहुँचा, तो उसने देखते ही कहा—'अरे गोरा ! तुम यहाँ कहाँ ?'

गोरा का अनुमान सत्य निकला। सातकौड़ी उसके सहपाठियों में से थे। वह बोला—'घोषपुर के आसामियों को जमानत पर छुड़ा कर तुम्हें उनके मुकद्दमे की पैरवी करनी पड़ेगी।'

'जमानत कौन करेगा ?' उसने पूछा।

'मैं !'

'तुम अकेले सैंतालीस आदमियों की जमानत कैसे कर सकोगे ? तुम्हारे पास इतनी जायदाद भी तो नहीं है !'

'यदि मुख्तार लोग मिलकर जमानत करें, तो उनकी फीस मैं दे दूँगा।'

'परन्तु फीस में थोड़े रुपये नहीं लगेंगे।'

दूसरे दिन आसामियों को जमानत पर छोड़ने की दरख्वास्त दी गई। मजिस्ट्रेट ने कल रात वाले मलिन वस्त्रधारी गोरा की वीर-मूर्ति की ओर दृष्टिपात कर, दरख्वास्त को अस्वीकृत कर दिया। चौदह वर्ष के बालक से लेकर अस्सी वर्ष के बूढ़े तक सभी हवालात में सड़ने लगे।

गोरा ने सातकौड़ी से इनका मुकद्दमा लड़ने को कहा। उसने उत्तर दिया—'गवाह नहीं मिलेंगे। जो लोग गवाह हो सकते थे, वे सब आसामी बना लिए गए हैं। इधर मजिस्ट्रेट की यह पक्की धारणा बन गई है कि इस मामले के भीतर भले आदमियों का षड्यन्त्र है। हो सकता है, वह मुझ पर भी सन्देह करे। अंग्रेजी अखबार बराबर यही लिख रहे हैं कि देशी आदमियों के हौसले यदि इसी प्रकार बढ़े तो अंग्रेजों का जीवन ही दूभर हो जाएगा। इन सब बातों को देखते हुए कोई उपाय नहीं दीखता है।'

गोरा ने गरजते हुए कहा—'है क्यों नहीं ?'

सातकौड़ी ने हँसकर उत्तर दिया—'तुम जैसे स्कूल में थे, वैसे ही अभी तक बने हुए हो पराई मुसीबत अपने सिर पर लेकर मरने वाले तुम्हारे जैसे व्यक्ति संसार में अधिक नहीं हैं।'

'तो तुम इन लोगों के लिए कुछ नहीं करोगे ? यदि हाईकोर्ट अपील की जाये तो······'

'उससे भी कुछ न होगा।' सातकौड़ी ने अधीर होकर कहा—'छोटे-से-छोटे अंग्रेज को मारना भी राजद्रोह माना जाता है। मैं व्यर्थ ही मजिस्ट्रेट की क्रोधाग्नि में नहीं पड़ना चाहता।'

दूसरे दिन सुबह साढ़े दस बजे की ट्रेन से गोरा ने यह सोचकर कलकत्ते की यात्रा करनी चाही कि शायद वहां के किसी वकील द्वारा काम बने, परन्तु उसमें भी बाधा पड़ गई।

यहाँ मेले के उपलक्ष में कलकत्ते के छात्रों की एक टीम का स्थानीय छात्रों की टीम के साथ क्रिकेट का मैच होने वाला था।

अभ्यास के लिए कलकत्ते के छात्र परस्पर क्रिकेट खेल रहे थे, तभी क्रिकेट की गेंद से एक लड़के के पैर में चोट आ गई। अन्य लड़के उसे लेकर पास के एक तालाब पर गये और चादर फाड़कर, पानी में भिगोकर उसके पैर में पट्टी बांधने लगे। उसी समय एक सिपाही ने वहां आकर एक लड़के की गर्दन पकड़ कर, उसे गन्दी गालियां देते हुए कहा—'मूर्ख, यह तालाब का पानी पीने के लिये है, गन्दा करने के लिए नहीं।'

कलकत्ते के छात्रों को यह बात मालूम न थी। एक सिपाही द्वारा इस प्रकार अपमान सहना भी उन्हें स्वीकार न था, अतः उन्होंने उस सिपाही को पीटना आरम्भ कर दिया। यह देखकर चार-पांच सिपाही और दौड़े आये। गोरा ठीक इसी समय उधर से जा रहा था उसने जब देखा कि कई सिपाही लड़कों को मारते-पीटते ले जा रहे हैं तो उससे सहन न हुआ। वह उन लड़कों के साथ कई बार क्रिकेट खेला था। अतः आगे बढ़कर उसने सिपाहियों से कहा—'खबरदार, आगे मत बढ़ना।' सिपाहियों ने यह सुनते ही, जैसे ही गोरा को गाली दी, वैसे ही गोरा उन पर टूट पड़ा और लात घूसों द्वारा उन्हें मारने लगा। इस झगड़े को देखकर भीड़ इकट्ठी हो गई। और भी छात्र आ गये। गोरा की आज्ञा से वे भी पुलिसवालों पर टूट पड़े। पुलिस वाले यह देख कर भाग खड़े हुए। देखने वालों को मजा आया। परन्तु यह घटना गोरा के लिए केवल तमाशा बनकर ही नहीं रही।

तीन-चार बजे के लगभग, दो छात्रों ने डाक बंगले में पहुँचकर रिहर्सल में लगे हुए विनय, हारानबाबू तथा परेशबाबू की लड़कियों को यह सूचना दी कि गोरा तथा अन्य कई छात्रों को पुलिस गिरफ्तार करके ले गई है। कल प्रातःकाल मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उन पर विचार होगा।

गोरा के गिरफ्तार होने की सूचना पाकर हारानबाबू के अतिरिक्त अन्य सब लोग चौंक पड़े। विनय उसी क्षण सातकौड़ी हवलदार के पास गया तथा उसे सब समाचार सुनाकर, साथ ले हवालात पर जा

पहुँचा।

सातकौड़ी ने गोरा को जमानत पर छुड़ाने का प्रस्ताव रक्खा तो उसने उत्तर दिया—'मैं वकील नहीं करूँगा, मुझे जमानत पर छुड़ाने का प्रयत्न भी नहीं होना चाहिये।'

सातकौड़ी ने विनय से कहा—'देखो, इतना बड़ा हो जाने पर भी गोरा की अक्ल अभी स्कूल जैसी बनी हुई है।'

गोरा बोला—'मैं जानता हूँ कि अपने इष्ट-मित्रों एवं रुपयों के बल पर मैं हवालात तथा हथकड़ी से छुटकारा पा सकता हूँ, परन्तु इस राज्य में वकील की फीस का प्रबन्ध न होने के कारण, जब सारी प्रजा हवालात में पड़ी सड़ती है, तब मैं ऐसे अन्यायी राज्य में रुपये खर्च कर स्वयं को मुक्त कराने का प्रयत्न कभी नहीं करूँगा।'

सातकौड़ी बोला—'काजियों के राज्य में घूस देने में सिर तक बिक जाता था।'

गोरा ने कहा—'जो काजी बुरा होता था, वही घूस लेता था। इस राज्य में भी वह बात है। मेरे पास वकील को फीस देने के लिए यदि रुपये न होते, उस समय मेरी जो स्थिति होती, उसी का ध्यान कर मैं इस समय भी किसी वकील का आश्रय नहीं लेना चाहता हूँ। यदि वकील का होना आवश्यक ही है तो मेरी ओर भी गवर्नमेंट को ही अपना वकील खड़ा करना चाहिए।'

विनय तथा सातकौड़ी ने गोरा को बहुत समझाया, परन्तु वह किसी भी प्रकार अपने हठ से नहीं डिगा। तदुपरान्त गोरा ने विनय से पूछा—'तुम यहाँ कैसे आए?'

और कोई समय होता तो विनय कुछ विद्रोही बातें करता, परंतु आज उसने केवल इतना ही कहा—'मेरी बात फिर पूछना, इस समय तुम्हारी ही बात होनी चाहिए।'

गोरा बोला—'मैं तो राजा का अतिथि हूँ। उसी को मेरे लिए चिंता करनी चाहिए। तुम्हें कुछ न सोचना होगा।'

विनय जानता था कि गोरा अपने निश्चय से [illegible] नहीं

है, अतः बोला—'कहो तो तुम्हारे खाने के लिए बाहर से कुछ प्रबन्ध कर दूं ?'

गोरा ने अधीर होकर कहा—'विनय, हवालात में जो सबको मिलता है, मैं उससे अधिक कुछ नहीं चाहता। तुम बाहर से कुछ खाने की फिक्र मत करो।'

विनय दुःखी होकर डाक बंगले को लौट गया। सुचरिता उस समय कमरे की खिड़की खोले, किताब हाथ में लिए, उदास हो, विनय के लौटने की राह देख रही थी। जब उसने देखा कि विनय उदास एवं चिन्तित मुख डाक बंगले की ओर आ रहा है तो उसका हृदय सशंकित हो उठा। वह किताब हाथ में लिए हुए, सबके पास आकर बैठ गई। ललिता उस समय कोने में चुपचाप बैठी हुई, कुछ सीं रही थी लावण्य सुधीर के साथ कोई खेल खेल रही थी तथा लीला सबको देख रही थी। उधर हारानबाबू वरदासुन्दरी के साथ दूसरे दिन के उत्सव की चर्चा एवं आलोचना कर रहे थे।

विनय ने आकर गोरा के झगड़े का सब हाल ब्योरेवार कह सुनाया। सुचरिता उसे सुनकर स्तब्ध रह गई। ललिता के हाथ से भी सुई गिर गई तथा चेहरा लाल हो उठा।

वरदासुन्दरी बोलीं—'विनयबाबू, आप चिन्ता न करें। मैं आज शाम को मजिस्ट्रेट की मेमसाहिबा से गोरा के लिए अनुरोध करूंगी।'

विनय बोला—'न, आप यह कभी न कीजिएगा। गोरा यदि कभी इसे सुन पाएगा तो जीवनभर मुझे कभी नहीं क्षमा करेगा।'

सुधीर बोला—'उनके बचाने के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध तो करना ही होगा ?'

तब विनय ने वह सब चर्चा कह सुनाई, जो गोरा ने जमानत देने तथा वकील करने के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया था।

हारानबाबू सब बातों को सुनकर असहिष्णु होते हुए बोले—'यह सब ज्यादती है।'

ललिता के मन में हारानबाबू के प्रति अब तक चाहे जो अदब का भाव रहा हो, परन्तु आज उनके ये शब्द सुनकर वह चुप न रह सकी, बोली–'ज्यादती कुछ भी नहीं है। गोराबाबू का कहना बिल्कुल ठीक है। मजिस्ट्रेट हम पर अत्याचार करें और हम स्वयं अपनी रक्षा करें ? उसको लम्बी तनख्वाह देने के लिए स्वयं [illegible] दमन से बच पाने के लिए स्वयं ही वकील को [illegible] की अपेक्षा तो जेल जाना ही उचित है।'

हारानबाबू ने कभी यह कल्पना [illegible] उनके सामने इस प्रकार से बोल सकेगी। [illegible] अवाक् रह गये। फिर भर्त्सना के स्वर [illegible] बातों के सम्बन्ध में क्या समझो ? [illegible] निकले हैं, जिनका कोई धर्म और [illegible] दायित्वपूर्ण उन्मत्त प्रलाप सुनकर [illegible] कैसे फिर जाता है !'

यह कहते हुए हारानबाबू [illegible] की मुलाकात तथा अपनी डायरी [illegible]। [illegible] का हाल विनय को नहीं मालूम [illegible]। उसे निश्चय हो गया कि मजिस्ट्रेट [illegible]।

हारान ने जिस [illegible] अब तक उन्होंने गोरा के [illegible] दृढ़ता का जो परिचय [illegible] उठा। इस बात से हारानबाबू [illegible] टपकती थी, उसने [illegible] उत्पन्न कर दिया। [illegible] पुस्तक के पन्ने [illegible] 'हारानबाबू का [illegible] के मामले में [illegible] है !'

आज छोटे लाट के आगमन के कारण, मजिस्ट्रेट साहब ठीक साढ़े दस वजे इजलास में आकर, कचहरी का काम शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर डालने का प्रयत्न करने लगे।

सातकौड़ीवावू ने स्कूल के छात्रों का पक्ष लेकर, उसी बहाने अपने मित्र गोरा को वचाने का प्रयत्न किया। उन्होंने रंग-ढंग देखकर अनुभव कर लिया कि इस स्थान पर अपराध स्वीकार कर लेना ही उचित होगा। अतः 'लड़के तो उपद्रवी हुआ ही करते हैं, वे असभ्य और नासमझ हैं' आदि कहकर वे उनके लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे। मजिस्ट्रेट ने लड़कों को जेल भेजकर, उन्हें अवस्थानुसार पांच से पच्चीस वेंत तक लगाने के वाद छोड़ देने का हुक्म दे दिया। गोरा का कोई वकील न था। उसने स्वयं वहस की तथा पुलिस के अत्याचार के बारे में भी कुछ कहना चाहा, परंतु मजिस्ट्रेट ने वीच में ही तिरस्कार करके उसे वोलने से रोक दिया तथा पुलिस के कार्य में वाधा डालने के अपराध में उसे एक महीने की सख्त कैद की सजा सुनादी। वे इस दण्ड को विशेष दयापूर्ण हल्की सजा कहने में भी नहीं चूके।

सुधीर तथा विनय भी अदालत में उपस्थित थे। विनय गोरा के मुंह की ओर न देख सका, वह अदालत के कमरे से वाहर निकल आया। सुधर ने उससे डाक बंगले चलकर नहाने-खाने का अनुरोध किया, परंतु उसने उस पर कोई ध्यान न दिया। मैदानी मार्ग से चलकर, वह एक पेड़ के नीचे जा वैठा और सुधीर से वोला—'तुम डाक बंगले चले जाओ। मैं कुछ देर वाद आऊंगा।'

सुधीर चला गया। विनय को वहां वैठे हुए शाम हो गई। तभी एक गाड़ी ठीक उसके सामने आकर रुकी। विनय ने मुंह उठाकर देखा, सुधीर तथा सुचरिता गाड़ी से उतर कर उसकी ओर चले आ रहे थे। विनय तुरंत उठ खड़ा हुआ। सुचरिता ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—'आइये विनयवावू !'

विनय को जैसे होश आया। वह गाड़ी पर सवार हो गया। मार्ग में किसी के मुँह से बात नहीं निकली।

डाक बँगले पहुँच कर विनय ने देखा कि यहाँ कोहराम मचा हुआ है। ललिता कह रही थी कि वह मजिस्ट्रेट के उत्सव में किसी प्रकार सम्मिलित न होगी। वरदासुन्दरी यह देखकर बड़े संकट में पड़ गई थीं। हारानबाबू क्रोध से अस्थिर होकर बार-बार कह रहे थे। 'आजकल के लड़के-लड़की अदब-कायदा तो जानते ही नहीं। चाहे जिस ऐरे-गैरे व्यक्ति के विषय में आलोचना करने का यही फल निकलता है।'

विनय के आते ही ललिता बोली—'विनयबाबू! आप मुझे क्षमा कीजियेगा। आप उस समय जो कुछ कहते थे, मैं तब उसे समझती ही न थी। हमें बाहर की बातों का कुछ पता न था, तभी ऐसी भूल हो गई। हारानबाबू कहते हैं कि भारत में मजिस्ट्रेट का शासन-विधान विधाता का विधान है। परन्तु मैं कहती हूँ कि यदि यह बात सच है तो इस शासन को मन वाणी तथा काया से अभिशाप देने की इच्छा होना भी उसी विधाता का ही विधान है।'

हारानबाबू ने क्रोधित होकर कहा—'ललिता! तुम····'

ललिता हारानबाबू की ओर घूमकर खड़ी हो गई। बोली—'जनाब, चुप रहिए, मैं आपसे कुछ नहीं कह रही हूँ।' फिर विनय से कहने लगी—'विनयबाबू! आप किसी के अनुरोध का ख्याल न करें। आज अभिनय किसी प्रकार न हो सकेगा।'

तभी वरदासुन्दरी ने ललिता की बात काटते हुए कहा—'तू अच्छी लड़की ठहरी! क्या विनयबाबू को आज नहाने-खाने भी नहीं देगी? देख तो, उनका चेहरा कैसा सूख रहा है।'

विनय बोला—'यहाँ हम उसी मजिस्ट्रेट के मेहमान हैं, अतः अब इस घर में मैं स्नान-भोजन न कर सकूँगा।'

वरदासुन्दरी ने विनय को समझाने का बहुत प्रयत्न किया। सब लड़कियों को चुप बैठे देखकर बोली—'तुम सबको हो क्या गया

सुचरिता तुम्हीं विनयवावू को समझा दो न, हम आज के लिए जवान दे चुके हैं, सव लोगों को निमन्त्रण भी दिया जा चुका है। मैं उन लोगों के सामने किस प्रकार मुँह दिखा सकूँगी ?'

सुचरिता मुँह नीचा किये चुप बैठी रही।

विनय पास ही नदी पर, स्टीमर में चला गया। दो-तीन घण्टे वाद ही वह स्टीमर यात्रियों को लेकर कलकत्ता रवाना होने वाला था। कल आठ वजे के लगभग वह कलकत्ता जा पहुँचेगा।

हारानवावू क्रुद्ध होकर गोरा तथा विनय की निन्दा करने लगे। सुचरिता उठ कर पास के कमरे में चली गई। कुछ देर वाद ललिता भी उसके पास जा पहुँची। उसने देखा, सुचरिता दोनों हाथों से मुँह ढांके हुए विस्तर पर पड़ी है।

ललिता ने अन्दर से दरवाजा वन्द कर दिया। तत्पश्चा सुचरिता के पास वैठकर उसके वालों में उँगलियाँ फिराने लगी। कु देर वाद जव सुचरिता व्यवस्थित हुई, तव धीरे से उसके का वोली—'दीदी चलो, हम लोग कलकत्ते लौट चलें। आज मजिस्ट्रे यहां तो जा नहीं सकेंगे ?'

सुचरिता ने वड़ी देर तक कोई उत्तर न दिया। फिर वो 'वहन ! जिस काम के लिए हम लोग आये हैं, उसे किये विना व. सकेंगे ?'

ललिता ने कहा—'वावूजी को इन वातों का पता नहीं है। उन्हें पता होता तो वे हमें यहां कभी नहीं ठहरने देते।'

'यह मैं कैसे कहूँ, वहन ?'

'दीदी ! तो क्या तुम स्टेज पर जा सकोगी ? वहां खड़े कविता-पाठ करना क्या तुम्हारे लिए सम्भव हो सकेगा ? मेरी तो कटकर खून गिरने लगे तो भी एक शब्द मुँह से नहीं सकता।'

'वहन ! यह मैं जानती हूँ। परन्तु समय पड़ने पर न यातना भी सहनी पड़ती है। अव कोई उपाय भी तो नहीं है

दिन जीवन में कभी भूल न सकूँगी।'

ललिता सुचरिता की बात से नाराज हो, वहां से उठकर माँ के पास जा पहुँची और कहने लगी—'माँ, तुम लोग तो जाओगे न!'

वरदासुन्दरी ने कहा—'तू पागल हो गई है क्या ? वहाँ तो रात को नौ बजे बाद चलना है।'

'मैं कलकत्ता जाने की बात कह रही हूँ।'

'इस लड़की की बात तो सुनो!'

'सुधीर दादा! क्या तुम भी यहाँ रहोगे?'

सुधीर का हृदय गोरा की सजा से यद्यपि तिलमिला रहा था परन्तु बड़े-बड़े साहबों के सामने अपनी विद्या का प्रदर्शन करने के लोभ को त्यागने की शक्ति उसमें न थी।

तभी वरदासुन्दरी बोलीं—'इस झंझट में बहुत देर हो गई। अब सब लोग विश्राम करो, अन्यथा रात को नींद सतायेगी।'

इतना कहकर वे सब लोगों को जबर्दस्ती सोने की कोठरी में ले जाकर सुला आईं। सब सो गये, परन्तु सुचरिता को नींद नहीं आई। दूसरी कोठरी में ललिता भी अपने बिस्तर पर चुप बैठी हुई थी।

उधर स्टीमर का भोंपू बार-बार बोल रहा था।

जिस समय स्टीमर छूटने वाला था तथा जहाज के खलासी सीढ़ी को ऊपर उठाने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय विनय ने डेक के ऊपर से देखा कि एक भले घर की स्त्री तेजी से जहाज की ओर चली आ रही है। पहिनावे से वह ललिता जान पड़ी। जब वह बिल्कुल पास आ गई तो विनय को कोई सन्देह न रहा, उसने सोचा—'शायद उसे लौटाने आई है।' परन्तु तभी ध्यान आया—'उसी ने तो मजिस्ट्रेट के यहाँ न जाने के लिए सबसे पहले कहा था।' ललिता के स्टीमर पर चढ़ते ही खलासी ने सीढ़ी ऊपर उठा ली। विनय सशंकित हो डेक से नीचे उतर कर, ललिता के सामने आ खड़ा हुआ।

ललिता बोली—'मुझे ऊपर ले चलिए।'

विनय ने चकित होकर कहा—'जहाज छूटने ही वाला

बिना ही, सामने वाली सीढ़ी से जहाज के ऊपरी खण्ड पर चढ़

सीटी देकर स्टीमर भी चल दिया।

ललिता को फर्स्ट क्लास डेक में कुर्सी पर बैठाकर, विनय चाप उसके मुँह की ओर देखने लगा।

ललिता बोली—'मुझसे वहां ठहरा नहीं गया। अब क चल रही हूं।'

'और वे लोग ?'

'उन्हें, किसी को पता नहीं है। मैं चिट्ठी लिखकर रख आ पढ़कर जान जायेंगे।'

ललिता के इस दुस्साहस पर विनय स्तम्भित रह गया, बो 'परन्तु……'

ललिता ने बीच में ही टोक दिया—'जहाज छूट चुका परन्तु-वरन्तु से कोई लाभ न होगा मैं स्त्री हूं तो क्या ? न्याय-अ सम्भव-असम्भव सभी समझते हैं। आज के निमन्त्रण में अभिनय की अपेक्षा आत्म-हत्या कर लेना मेरे लिये सरल होता।'

'जो होना था, सो हो गया' सोच कर विनय भी चुप रह

कुछ देर ठहर कर ललिता बोली—'आपके मित्र गोराव प्रति मेरा विचार अच्छा न था। न जाने क्यों, उनकी बातें सुनक मन उनसे विद्रोह करने लगा था। वे जोर देकर बात करते थे, इ मुझे उन पर क्रोध आता था। परन्तु उनका जोर और पर ही न वे स्वयं पर भी जोर देते हैं यह आज मालूम पड़ा। यह जोर है। ऐसा व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा।'

इसी प्रकार ललिता बहुत कुछ कहती रही। असल में धुन में आकर जो काम कर डाला था, उसका संकोच ही मन से बार-बार सिर उठाने का प्रयत्न कर रहा था। विनय के स में बैठे रहना लज्जा का विषय भी हो सकता है—इस पहिले ध्यान ही नहीं दिया था। परन्तु इस समय वह ल

-का प्रयत्न कर रही थी।

विनय को बोलना भारी हो रहा था। गोरा के कष्ट, अपमान तथा मजिस्ट्रेट के निमन्त्रण में सम्मिलित न होने की लज्जा ने उसे गूंगा बना दिया था उस पर भी ललिता का यह दुस्साहस, उसे घोर संकट की अवस्था मे डाले हुए था।

और कोई समय होता तो ललिता का यह दुस्साहस विनय के हृदय मे तिरस्कार को जन्म देता, परन्तु इस समय उसे ललिता के प्रति विस्मय के साथ-साथ श्रद्धा भी हो रही थी। उसे आनन्द था कि गोरा के अपमान का प्रतिकार करने की चेष्टा केवल उसने तथा ललिता ने ही की है। वह सोचने लगा—उसे तो इससे कोई विशेष कष्ट न होगा, परन्तु ललिता को इस दुस्साहस के लिए बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। वह जितना ही अधिक सोचता, ललिता के प्रति उसके हृदय में उतनी ही अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती थी। वह अपनी भक्ति को क्या कहकर प्रकट करे, इसका उसे कोई उपाय ही न सूझ पड़ा। उसने पहले कई बार ललिता की जो मन ही मन निन्दा की थी, उस पर उसे लज्जा आने लगी। वह स्थिर न कर सका कि किस प्रकार वह ललिता से उसके लिए क्षमा मांगे। अपने आन्तरिक तेज से जगमगाती हुई ललिता की कमनीय नारी-मूर्ति विनय की आंखो को एक अपूर्व महिमा से जगमगाती हुई प्रतीत होने लगी। नारी के इस अपूर्व परिचय को पाकर, वह धन्य हो उठा।

२९

ललिता को साथ ले विनय परेशबाबू के घर जा पहुँचा।

स्टीमर पर चढने से पूर्व विनय को निश्चित रूप से यह पता न था, कि ललिता के सम्बन्ध में, उसके मन का क्या भाव है। इस दुर्जय लडकी से किस प्रकार संधि की जा सकती है, विनय को सदैव यही चिन्ता रहती थी। नारी-जीवन की निर्मल दीप्ति को लेकर सुचरिता ही उसके जीवन मे पहले पहल सन्ध्या-तारा की भांति दिखाई दी थी। परतु

'मैं जानती हूँ'—कहकर वह विनय के उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही, सामने वाली सीढ़ी से जहाज के ऊपरी खण्ड पर चढ़ गई।

सीटी देकर स्टीमर भी चल दिया।

ललिता को फर्स्ट क्लास डेक में कुर्सी पर बैठाकर, विनय चुपचाप उसके मुँह की ओर देखने लगा।

ललिता बोली—'मुझसे वहां ठहरा नहीं गया। अब कलकत्ते चल रही हूँ।'

'और वे लोग ?'

'उन्हें, किसी को पता नहीं है। मैं चिट्ठी लिखकर रख आई हूँ। पढ़कर जान जायेंगे।'

ललिता के इस दुस्साहस पर विनय स्तम्भित रह गया, बोला—'परन्तु······'

ललिता ने बीच में ही टोक दिया—'जहाज छूट चुका है अब परन्तु-वरन्तु से कोई लाभ न होगा मैं स्त्री हूँ तो क्या ? न्याय-अन्याय, सम्भव-असम्भव सभी समझते हैं। आज के निमन्त्रण में अभिनय करने की अपेक्षा आत्म-हत्या कर लेना मेरे लिये सरल होता।'

'जो होना था, सो हो गया' सोच कर विनय भी चुप रह गया।

कुछ देर ठहर कर ललिता बोली—'आपके मित्र गोराबाबू के प्रति मेरा विचार अच्छा न था। न जाने क्यों, उनकी बातें सुनकर मेरा मन उनसे विद्रोह करने लगा था। वे जोर देकर बात करते थे, इसीलिये मुझे उन पर क्रोध आता था। परन्तु उनका जोर और पर ही नहीं है, वे स्वयं पर भी जोर देते हैं यह आज मालूम पड़ा। यह जोर सच्चा है। ऐसा व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा।'

इसी प्रकार ललिता बहुत कुछ कहती रही। असल में उसने एक धुन में आकर जो काम कर डाला था, उसका संकोच ही मन के भीतर से बार-बार सिर उठाने का प्रयत्न कर रहा था। विनय के साथ स्टीमर में बैठे रहना लज्जा का विषय भी हो सकता है—इस ओर उसने पहिले ध्यान ही नहीं दिया था। परन्तु इस समय वह लज्जा को दबाने

का प्रयत्न कर रही थी।

विनय को बोलना भारी हो रहा था। गोरा के कष्ट, अपमान तथा मजिस्ट्रेट के निमन्त्रण में सम्मिलित न होने की लज्जा ने उसे गूँगा बना दिया था उस पर भी ललिता का यह दुस्साहस, उसे घोर संकट की अवस्था में डाले हुए था।

और कोई समय होता तो ललिता का यह दुस्साहस विनय के हृदय में तिरस्कार को जन्म देता, परन्तु इस समय उसे ललिता के प्रति विस्मय के साथ-साथ श्रद्धा भी हो रही थी। उसे आनन्द था कि गोरा के अपमान का प्रतिकार करने की चेष्टा केवल उसने तथा ललिता ने ही की है। वह सोचने लगा—उसे तो इससे कोई विशेष कष्ट न होगा, परन्तु ललिता को इस दुस्साहस के लिए बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। वह जितना ही अधिक सोचता, ललिता के प्रति उसके हृदय में उतनी ही अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती थी। वह अपनी भक्ति को क्या कहकर प्रकट करे, इसका उसे कोई उपाय ही न सूझ पड़ा। उसने पहले कई बार ललिता को जो मन ही मन निन्दा की थी, उस पर उसे लज्जा आने लगी। वह स्थिर न कर सका कि किस प्रकार वह ललिता से उसके लिए क्षमा मांगे। अपने आन्तरिक तेज से जगमगाती हुई ललिता की कमनीय नारी-मूर्ति विनय की आंखों को एक अपूर्व महिमा से जगमगाती हुई प्रतीत होने लगी। नारी के इस अपूर्व परिचय को पाकर, वह धन्य हो उठा।

२६

ललिता को साथ ले विनय परेशबाबू के घर जा पहुँचा।

स्टीमर पर चढ़ने से पूर्व विनय को निश्चित रूप से यह पता न था, कि ललिता के सम्बन्ध में, उसके मन का क्या भाव है। इस दुर्जय लड़की से किस प्रकार संधि की जा सकती है, विनय को सदैव यही चिन्ता रहती थी। नारी-जीवन की निर्मल दीप्ति को लेकर सुचरिता ही उसके जीवन में पहले पहल सन्ध्या-तारा की भाँति दिखाई दी थी। परतु

इसी बीच में एक और भी तारा उदय हो गया है, तथा पहला तार धीरे-धीरे क्षितिज की ओर उतरता चला जा रहा है—इसका स्पष्ट आभास विनय को नहीं मिल सका था।

विद्रोहिणी ललिता जब स्टीमर पर चढ़ आई, उस समय विनय को लगा, जैसे वह तथा ललिता एक पक्ष में होकर समस्त संसार के विरुद्ध खड़े हो गए हैं। चाहे जिस कारण भी क्यों न हो, आज उसके तथा ललिता के बीच में अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। वही उसके सबसे अधिक निकट है। इस निकटता का पुलक पूर्ण स्पन्दन उसके हृदय में एक प्रकाश-सा भरने लगा।

फर्स्ट क्लास के केबिन में जब ललिता सोने गई, तब विनय ने अपनी जगह जाकर सोया नहीं गया। वह जूते उतार कर उसी केबिन के बाहर डेक पर चुपचाप टहलने लगा। स्टीमर पर, ललिता के सम्बन्ध में कोई उत्पात होने की सम्भावना नहीं थी, फिर भी विनय को आज उसकी सुरक्षा का जो एकमात्र अधिकार मिला था, उसका उपयोग किये बिना उससे रहा नहीं गया।

रात घनी अँधेरी थी। आकाश में तारे जगमगा रहे थे, नीचे नदी की चौड़ी धारा चुपचाप बह रही थी। महा मूल्यवान रत्न के समान इस निद्रा की सुरक्षा का भार ही आज विनय ने लिया था। माता, पिता, भाई, बहिन, सबसे दूर, ललिता आज एक अपरिचित शय्या के ऊपर अपने सुन्दर शरीर को डाले हुए, निश्चिन्त सो रही थी। कारीगरी के साथ बाँधी गई, उसकी वेणी का एक भी केश अपने स्थान से पृथक् न हुआ था। दोनों सुकुमार चरण उत्सवावसान सङ्गीत की भाँति स्तब्ध बिछौने पर फैले हुए थे। सीप में मोती के समान, तारा-मण्डित एवं अन्धकार-वेष्टित निःशब्द आकाश के मध्यस्थल में ललिता का यह, विश्राम, विनय को संसार के एकमात्र ऐश्वर्य के रूप में दिखाई देने लगा।

इस कृष्णपक्ष की रात्रि में, एक और विचार विनय के हृदय को रह-रहकर व्यथित किये दे रहा था—'गोरा आज रात को जेलखाने में

पड़ा हुआ है।' आज तक विनय गोरा के सभी सुख-दुःख के समय बराबर का हिस्सेदार बना आया था, परन्तु आज वह उससे सर्वथा दूर है। यद्यपि विनय यह जानता था कि गोरा के लिए जेल का शासन कुछ भी नहीं है, परन्तु इस घटना में आदि से अन्त तक गोरा के साथ विनय का कोई संसर्ग नहीं था, दोनों मित्रों की जीवन-धारायें इस स्थान पर आकर विच्छिन्न हो गई थीं, यही विचार था, जो उसे व्याकुल कर रहा था। वह एक ही रात में अपनी ओर शून्यता तथा दूसरी ओर की पूर्णता का एक साथ अनुभव कर सजन प्रलय के सन्धिकाल में निश्चल, निस्तब्ध भाव से बैठा हुआ, अन्धकार की ओर देखता रहा।

किराये की गाड़ी जब परेशबाबू के घर के समीप आकर रुकी तो उतरते हुए ललिता के पाँव काँप उठे। ललिता ने धुन में आकर जो काम कर डाला था, उसका अपराध कितना गुरुतर है और उसका वजन कितना अधिक होगा—इसका अनुभव स्वयं भी नहीं कर पा रही थी। ललिता को यद्यपि विश्वास था कि परेशबाबू उसके प्रति भर्त्सना जैसी कोई बात नहीं कहेंगे, परन्तु वह उनके चुप रहने को सबसे अधिक भय मानती थी।

ललिता के इस संकोच-भाव को विनय [illegible] की भाँति लक्ष्य करता हुआ स्थिर न रह सका। उसके साथ रहने से ललिता के लिए संकोच का कारण अधिक होगा या नहीं, वह इसके लिए उसे ठीक [illegible] ललिता से कहा—'[illegible] जाऊँ।'

ललिता [illegible] बोली—'नहीं, बाबूजी के पास भी चलिए!'

ललिता के [illegible] से विनय को [illegible] आनन्द हुआ। [illegible] यह [illegible] बँध गई। [illegible] जान पड़ा, [illegible]

है। उसका हृदय जैसे जोश से भर गया। उसने निश्चय किया—घर पहुँचने पर, यदि परेशबाबू ललिता को डांटेंगे, उसके हठ पर क्रोध करेंगे, तो वह सब जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर ललिता को उन आघातों से बचाने का यत्न करेगा। परन्तु ललिता के मन की यथार्थ भावना को विनय न समझ सका।

वस्तुस्थिति यह थी कि ललिता कुछ भी छिपाना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि उसने जो कुछ किया है, उसे परेशबाबू अपनी आंखों से देखें, तदुपरान्त जो निर्णय दें, उसका फल ललिता स्वयं स्वीकार करे।

जब तक ललिता स्टीमर में रही, उसके मन का भाग कुछ और प्रकार का था। बचपन से ही वह अपनी हठ में कुछ-न-कुछ अशोभनीय कांड करती आई है, परन्तु आज की घटना कुछ गम्भीर थी। इस निषिद्ध कार्य में विनय को अपना साथी पाकर, उसे एक निगूढ़ हर्ष का अनुभव हो रहा था। आज उसने एक बाहरी व्यक्ति का इस प्रकार आश्रय लिया था कि उन दोनों के बीच आत्मीय-जनों की कोई आड़ नहीं रह गई थी, परन्तु विनय की स्वाभाविक नम्रता ने एक ऐसे वातावरण की सृष्टि कर रखी थी जिसकी सुकुमार शीतलता का परिचय ललिता को एक अभूतपूर्व आनन्द दे रहा था। जो विनय उसके घर आकर सदैव कौतुक किया करता था, जिसका वार्तालाप कभी बन्द ही न होता था, वह विनय मानो आज था, ही नहीं। सतर्कता की दुहाई दे कर, जहां वह अनायास ही ललिता के अधिक-से-अधिक निकट आ सकता था, वहां आज उसने और अधिक दूर रहने की चेष्टा की थी, यही कारण ललिता के हृदय में उसे अपने अधिकतम निकट लाने में सहायक सिद्ध हो रहा था।

रात को स्टीमर के केबिन में अनेक चिन्ताओं के कारण ललिता को भलीभांति नींद नहीं आई थी। एक बार उसे जान पड़ा, जैसे रात बीत गई और सवेरा होने को है। धीरे-धीरे केबिन का दरवाजा खोलकर वह बाहर आई। देखा तो रात्रि का शेष ठण्डा अन्धकार, उस समय भी

नदी के ऊपर मुक्त आकाश तथा किनारे के जंगल से लिपटा हुआ था। उसने यह भी देखा कि केबिन से थोड़ी ही दूर पर विनय एक गरम कपड़ा ओढ़े, बेत की कुर्सी पर बैठा हुआ सो रहा है। उसे देखते ही ललिता का कलेजा धक से रह गया। 'विनय रातभर इसी स्थान पर बैठा हुआ उसका पहरा देता रहा, वह इतना पास होते हुए भी उससे इतना दूर है।' ललिता काँपते पैरों से डेक से हट कर केबिन में आगई। उसे अनुभव हुआ, जैसे सामने की दिशाप्रान्त के तारागण विनय की निन्द्रा को घेरे हुए हैं। तब एक अनिर्वचनीय गांभीर्य एवं माधुर्य से उसका हृदय लबालब भर गया। उसके दोनों नेत्रों में जल भर आया। इसका कारण वह स्वयं भी नहीं जान सकी। उसने अपने पिता से जिस देवता की उपासना करना सीखा था, उसी ने जैसे आज अपने दाहिने हाथ का स्पर्श किया हो। नदी के ऊपर रात्रि के अन्धकार के साथ, जिस नवीन प्रकाश का निगूढ़ सम्मिलित हो रहा था, उस पवित्र सुधिकाल में जैसे नक्षत्र-सभा के बीच एक मूक संगीत आनन्द की दुस्सह वेदना की भाँति बज उठा।

उसी समय नींद के झोंके में विनय का हाथ हिला। ललिता इसे देख झटपट केबिन का दरवाजा बन्द कर बिछौने पर आ लेटी। उसके हाथ-पाँव के तलवे ठण्डे पड़ गये थे। बड़ी देर तक अपनी छाती की तेज धड़कन को वह बन्द न कर सकी।

अन्धकार दूर हो गया। स्टीमर चल रहा था।

ललिता मुँह-हाथ धोकर बाहर आई और रेलिंग पकड़ कर खड़ी हो गई। विनय जहाज के भोंपू की आवाज से जागकर, प्रभात का प्रथम अभ्युदय देखने के लिए लालायित बैठा था। ललिता के बाहर निकलते ही, वह अपने स्थान से उठ जाने की चेष्टा करने लगा। तभी ललिता ने आकर कहा—'विनयबाबू!'

और निकट जाकर वह बोली-'जान पड़ता है, रात को आप भली भाँति सो नहीं पाये?'

'सोया तो खूब हूँ।' विनय ने उत्तर दिया।

इसके बाद फिर कोई बात नहीं हुई। दूसरे सिरे पर सूर्योदय की सुनहरी आभा प्रस्फुटित हो उठी। ऐसा सुन्दर प्रभात दोनों ने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। दोनों के हृदय में चेतना इस भांति जाग्रत हो उठी, जैसे सम्पूर्ण जगत के अन्तर्निहित चैतन्य के साथ उनका प्रत्यक्ष मिल गया हो।

स्टीमर के कलकत्ता आने पर, विनय ने एक किराये की गाड़ी करके ललिता को भीतर बैठाया और आप गाड़ीवान के पास कोचबक्स पर बैठ गया। उस समय कलकत्ते की सड़क पर गाड़ी चलने के समय ललिता के हृदय में कौन-सी वायु वह रही थी, इसे कौन जान सकता है! जो विनय संकट के समय स्टीमर पर था, वही अब उसे अभिभावक की भांति गाड़ी पर बैठा कर लिये जा रहा है, यह सब उसे पीड़ित करने लगा। रात्रि का वह संगीत दिन के कर्म-क्षेत्र में सामने आकर ऐसे स्वर के क्यों थम गया, कौन बताये?

इसीलिये जब द्वार पर आकर विनय ने संकोचपूर्वक कहा—'तो मैं जाऊं?' तब ललिता और अधिक खीज उठी। उसने सोचा-विनय बाबू समझते होंगे कि मुझे उन्हें साथ लेकर पिता के सामने जाते हुए लज्जा लगेगी 'वह इस सम्बन्ध में कोई संकोच नहीं रखती' यही बताने तथा पिता के समक्ष सम्पूर्ण घटना को सहज भाव से देखने के लिए उसने विनय को अपराधी की भांति द्वार से ही विदा कर देना नहीं चाहा।

वह विनय के साथ अपने सम्बन्ध को पूर्व की भांति ही स्पष्ट रखना चाहती है। वह किसी कुण्ठा अथवा मोह की जड़ता के कारण विनय के समक्ष अपने को छोटा अथवा हीन नहीं दिखाना चाहती थी।

३०

विनय और ललिता को देखते ही, सतीश न जाने कहां से दौड़ कर उनके पास आ गया। वह दोनों के बीच खड़ा हो, दोनों के हाथ पकड़ कर बोला—'बड़ी बहिन कहां हैं? क्या वह नहीं आईं?'

विनय ने जेब में हाथ डालते हुए, चारों ओर अचरज भरी दृष्टि फैंकने के बाद कहा...'बड़ी बहिन ! आई तो साथ ही थीं, पर न जाने कहां चली गईं ?'

सतीश उसे धक्का देते हुए बोला—'नहीं, यह बात नहीं है। ललिता बहिन, तुम बताओ।'

बड़ी बहिन कल आवेगी—'कहती हुई ललिता परेशबाबू के मरे की ओर चल दी।

सतीश ने ललिता तथा विनय का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—'चलो देखो हमारे घर कौन आया है ?'

तिमंजिले की छत पर, कोने में जो एक छोटी-सी कोठरी है, सके दक्षिण की ओर टीन पड़ी हुई थी। दोनों ने सतीश के पीछे-पीछे आकर देखा कि उसी के नीचे एक सैंतालीस वर्षीया अधेड़ स्त्री, आसन बिछाये बैठी है और चश्मा लगाये हुए रामायण पढ़ रही है। उसके सिर के सामने के कुछ बाल उड़ गये थे तथा कुछ श्वेत हो चले थे, परन्तु पके फल की भांति गोरा चेहरा अभी ज्यों का त्यों दिखाई दे रहा था। दोनों भौंहों के बीच एक काला दाग था। हाथों तथा शरीर पर कोई गहना न था। विधवा स्त्री जान पड़ती थी। ललिता पर दृष्टि पड़ते ही वह चश्मा खोल, पुस्तक को एक ओर रख उत्सुकतापूर्वक उसके मुँह की ओर देखने लगी। वह पीछे विनय को देखकर उठ खड़ी हुई तथा घूंघट निकाल कर भीतर जाने का उपक्रम करने लगी। उसी समय सतीश दौड़कर उससे लिपट गया और बोला—'मौसी, तुम भागती क्यों हो ? ये मेरी बहिन ललिता है और ये विनयबाबू हैं। बड़ी बहिन कल आयेगी।' विनयबाबू का इतना परिचय ही बहुत था। इसमें सन्देह नहीं कि उसके विषय में पहिले ही पूरी आलोचना हो चुकी थी।

सतीश किसे मौसी कह रहा है, यह जानने के लिए [illegible] खड़ी रही। विनय ने उसे पैर छूकर प्रणाम [illegible] अनुसरण किया।

वह स्त्री भीतर से एक चटाई ले आई और उसे विछाकर— वोली 'वैठो वेटा, वेटी, तुम भी वैठो।'

विनय और ललिता के वैठ जाने पर, वह अपने आसन पर, वैठ गई। सतीश उससे सटकर वैठ गया। तव वह सतीश को दाहिने हाथ से अपनी गोद में खींचती हुई वोलीं—'आप मुझे नहीं जानते। मैं सतीश की मौसी हूं। सतीश की मा मेरी सगी वहिन थी।'

उस सामान्य परिचय में कोई विशेष वात तो न थी, परन्तु कण्ठ-स्वर में ऐसा भाव था, जिससे उसके जीवन का गम्भीर शोक भरा पवित्र भाव प्रकट होता था। 'मैं सतीश की मौसी हूं' कहकर जव उसने सतीश को अपने हृदय से लगाया, तो विनय का हृदय करुणा से भर गया। उसने स्नेह-भरे स्वर में कहा—'अकेले सतीश की मौसी बने रहने से काम कैसे चलेगा? यदि आपने मुझे भी सतीश के वरावर न समझा, तो मैं सतीश से लड़ूंगा। एक तो वह मुझे 'भाई' कहने की अपेक्षा 'विनयवावू' कहकर पुकारता है, उस पर भी यदि आपसे मौसी का नाता न जोड़ने देगा, तव कैसे काम चलेगा?'

किसी के मन को वश में कर लेने में विनय को देर नहीं लगती। अतः इस प्रिय भाषी युवक की वात सुनकर, उस स्त्री के हृदय में भी उसके प्रति स्नेह उत्पन्न हो आया।

वह बोली—'वेटा, तुम्हारी मा कहां हैं।'

विनय ने कहा—'अपनी मां को खोये तो मुझे वहुत दिन हो गये, परन्तु 'मेरी मा नहीं है' ऐसा मैं नहीं कह सकता।'

इतना कहते-कहते आनन्दमयी का स्मरण कर उसकी आंखें सजल हो उठीं।

वहुत देर तक इसी प्रकार वातें चलती रहीं। उसे देखकर यह प्रतीत नहीं होता था कि यह वातचीत का प्रथम अवसर है। सतीश वीच-वीच में वोलकर अपने लड़कपन को प्रकट करता रहा। ललिता चुपचाप वातें सुनती रही।

परेशवावू को वाहर गये वहुत देर हो गई। वे अभी लौटे या,

वहाँ पहुँच कर वह अपनी करनी पर स्वयं ही कुढ़ती हुई, चुपचाप रोने लगी।

३१

विनय आनन्दमयी के घर को चल दिया।

आनन्दमयी उस समय स्नान कर, दालान के फर्श पर आसन बिछाये, स्थिर भाव से बैठी हुई थीं। विनय ने पहुँचकर उनके पांवों पर लोटते हुए कहा—'माँ!'

आनन्दमयी उसके मस्तक पर दोनों हाथ फेरती हुई बोलीं—'विनय!'

माँ के उस स्निग्ध स्वर को सुनकर विनय के हृदय में करुण स्पर्श का अनुभव हुआ। उसने बलपूर्वक आंसुओं को रोकते हुए कहा—'मां, मुझे आने में देर हुई।'

'मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ विनय!' आनन्दमयी बोलीं।'

विनय ने चौंककर कहा—'सब कुछ सुन चुकीं?'

गोरा ने अपने मित्र वकील के द्वारा हवालात से जो पत्र लिखकर उन्हें भेजा था, उससे उन्हें निश्चित अनुमान हो गया था कि वह जेल जाये बिना न मानेगा।

पत्र के अन्त में उसने लिखा था—'कारावास तुम्हारे गोरा की तिल भर भी हानि न कर सकेगा, परन्तु यदि तुम कष्ट पाओगी तो यही मेरे लिए दण्ड होगा। मजिस्ट्रेट में मुझे दण्ड देने की शक्ति नहीं है। माँ, तुम केवल अपने पुत्र की बात ही मत सोचना, क्योंकि अनेकों माताओं के बेटे अकारण ही जेल में पड़े हुए हैं। मेरी इच्छा एक दफे उनके साथ रहने की हुई है। यदि इस बार मेरी इच्छा पूर्ण हो तो तुम कुछ भी दुःख न करना।

'तुम्हें याद होगा मां, कि उस बार अकाल के वर्ष में सड़क के किनारे वाली अपनी बैठक में, मेज पर रुपयों की थैली रखकर पांच मिनट के लिए बाहर चला आया था। लौटकर पहुंचा, तब तक उसे कोई

रा ले गया था। उस थैली में मेरी 'स्कॉलरशिप' के ८५) रुपये रक्खे थे। मेरा विचार था कि मैं कुछ रुपये और इकट्ठा कर, उनसे तुम्हारे पैर धोने के लिए जल भरने को एक चाँदी का लोटा बनवा दूँगा। परन्तु रुपये चोरी जाने से मुझे चोर के ऊपर बड़ा क्रोध आया। तभी ईश्वर ने एक ज्ञान दिया। मैंने मन में कहा—'जो व्यक्ति मेरे रुपये चुरा ले गया है, उसे मैंने उन रुपयों को इस दुर्भिक्ष के समय में दान कर दिया।' इतना कहते ही मेरा सारा शोक दूर हो गया। आज भी स्वेच्छा से जेल जा रहा हूँ। न मुझे कोई कष्ट है और न किसी के ऊपर क्रोध। अब की बार की यात्रा में मैं कई घरों में अतिथि रहा था। इसी प्रकार जेल में भी मैं अतिथि बनकर जा रहा हूँ। मेरी इच्छा के बिना वहां मुझे कोई बलात् नहीं रोकेगा यह तुम निश्चय समझना।'

'जब हम अपने घर में बैठकर आहार-विहार करते थे, तब हमें यह ज्ञान ही नहीं था कि इस पृथ्वी पर, घर के बाहर, बिना किसी बाधा घूमने-फिरने का अधिकार कितना बड़ा होता है। उस समय पृथ्वी के हृदय में मनुष्य अपराध अथवा बिना अपराध के भी कारागार की यन्त्रणा भोग रहे थे। उस समय मैंने उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा। परन्तु अब मैं उन सब के साथ ही कलङ्कित होकर कारागृह से बाहर निकलना चाहता हूँ। पृथ्वी पर जो लोग बनावटी शरीफ बने बैठे हैं मैं उनके दल में रहकर सम्मान प्राप्त करना नहीं चाहता।

'माँ! इस पृथ्वी के साथ परिचय होने पर मुझे बहुत शिक्षा मिली है। जिन्होंने पृथ्वी पर विचार का भार अपने ऊपर ले रक्खा है उनमें अधिकांश दया के पात्र ही हैं। जो दण्ड स्वयं ग्रहण न करके दूसरों को देते हैं, उन्हीं के पास की सजा ये बन्दी-जन भोग रहे हैं। अपराध तो अनेक लोग मिलकर खड़ा करते हैं। परन्तु प्रायश्चित्त इन्हीं बेचारों को करना पड़ता है। जो लोग जेल से बाहर आराम तथा सम्मान से रहते हैं, पता नहीं, उनके पापों का नाश किस प्रकार हो सकेगा। आराम तथा सम्मान को लात मारकर तथा मनुष्य के कलंक

हृदय में धारण करके ही जेल से बाहर निकलूँगा। माँ, मुझे आशीर्वाद दो। तुम मेरे लिए आंसू मत बहाना।x x'

आनन्दमयी ने गोरा का यह पत्र पाकर, महिम को उसके पास भेजना चाहा था, परन्तु महिम आफिस से छुट्टी न मिलने तथा अने कार्यों में व्यस्त रहने का बहाना करके उसके पास नहीं गया था। इत ही नहीं, उसने गोरा को अविवेकी, उद्दण्ड आदि बताकर काफी भला- भी कहा था। उसने यह भी कहा था कि किसी दिन गोरा के का उसकी नौकरी भी चली जायेगी।

कृष्णदयालबाबू से इस सम्बन्ध में कोई बात कहना आन ने व्यर्थ समझा था। गोरा के प्रति पति की उदासीनता उन्हें खटकती थी। उन्होंने गोरा को कभी भी पुत्र के रूप में अपने स्थान नहीं दिया। आनन्दमयी और उसके बीच गोरा एक वि की भाँति खडा हुआ था। एक ओर शुद्धाचार को ग्रहण क दयाल अकेले थे. दूसरी ओर अपने 'म्लेच्छ' गोरा के लि ... गोरा के जीवन-इतिहास को पृथ्वी पर यही ... बीच आने-जा

समाचार-पत्र पढ़ रहा था तथा नौकर उसके शरीर में तेल की मालिश कर रहा था।

आनन्दमयी बोली—'महिम, तुम मेरे साथ एक आदमी कर दो, ताकि मैं गोरा से मिल आऊँ। वह तो जेल जाने का निश्चय किए बैठा है। वह जेल जाए, इसके पूर्व क्या मैं उसे एक बार देख भी न सकूँगी?'

महिम का ऊपरी व्यवहार कैसा भी क्यों न हो, परन्तु गोरा के प्रति उसके हृदय में भ्रातृ-प्रेम का एक अंश अवश्य था। मुँह से तो उसने यही कहा—'अभागा चला जावे जेल तो ठीक है। अभी तक नहीं गया, यही आश्चर्य है, परन्तु इसके बाद ही उसने अपने मामी हारान घोष को बुलाकर, उसे वकील की फीस के लिए कुछ रुपये देकर उसी समय गोरा के पास भेज दिया तथा स्वयं भी मन में यह निश्चय कर लिया कि आज वह साहब से छुट्टी माँगेगा और यदि साहब ने छुट्टी दे दी तथा पत्नी ने भी स्वीकृति दे दी तो वह उससे मिलने अवश्य जायेगा।

आनन्दमयी जानती थी कि महिम गोरा के लिए कुछ न कुछ अवश्य करेगा। अतः महिम के इस प्रबन्ध को देखकर, वे चुपचाप अपने कमरे में लौट आई। जब लछमियां हाय-हाय करके रोने लगी तो उसे भी उन्होंने डाँट कर दूसरे कमरे में भेज दिया। वे दुःख और सुख को सामान्य शान्त भाव से ग्रहण करती थीं। उनके मन की स्थिति को तो केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

विनय निश्चय न कर सका कि वह आनन्दमयी से क्या कहे। उन्हें सांत्वना देने की आवश्यकता नहीं थी। तब तक वे विनय को और कोई बात कहने का अवसर न देकर बोल उठीं—'विनय दीखता है, अभी तुम नहाये भी नहीं हो। चलो स्नान कर लो, बहुत देर हो गई है।'

विनय स्नान करके जब भोजन के लिये बैठा तो उसके समीप गोरा का स्थान शून्य देखकर, आनन्दमयी का हृदय हाहाकार कर उठा।

वे सोचने लगीं—'गोरा आज जेल का अन्न खा रहा होगा।' फिर यह स्मरण करके कि वह अन्न अन्यायी शासन का होने से कटु होगा, माता के स्नेह से मिश्रित मधुर नहीं, वे दुःखी हो, कोई बहाना करके वहां से उठ गईं।

३२

घर आकर ललिता को देखते ही परेशबाबू समझ गए कि यह उद्दण्ड लड़की अवश्य ही कोई विशेष बात कर वहां से चली आई है। उनकी जिज्ञासा-भरी दृष्टि देखते ही ललिता बोल उठी—'बाबूजी ! मैं वहां से चली आई, किसी प्रकार ठहर न सकी।'

'क्यों, क्या हुआ ?' परेशबाबू ने पूछा।

'मजिस्ट्रेट ने गोरा को कारावास का दण्ड दे दिया।'

इस बीच गोरा कहां से आ टपका, मजिस्ट्रेट ने उसे कारावास का दण्ड क्यों दिया ? इन बातों को परेशबाबू समझ ही न सके। फिर ललिता के मुंह से सब समाचार सुनकर, कुछ देर को व्याकुल हो उठे। गोरा की बात सोचकर उन्हें और अधिक दुख हुआ। वे सोचने लगे—'जो दण्ड चोर को देना चाहिए, वही दण्ड गोरा को देकर मजिस्ट्रेट ने वास्तव में धर्म-विरुद्ध कार्य किया है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का यह अनिष्ट व्यवहार समस्त हिंसाओं की अपेक्षा कितना अधिक है। उनकी आंखों के सामने गोरा के कारावास का दृश्य प्रत्यक्ष नाच उठा।

परेशबाबू को मौन देखकर ललिता का उत्साह बढ़ गया, बोली—'बाबूजी, अब आप ही बताइये, यह घोर अन्याय नहीं तो और क्या है ?'

परेशबाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में कहा—'गोरा ने किस समय क्या, किया, यह मुझे ठीक पता नहीं। यह सम्भव है कि गोरा अपनी कर्तव्य-बुद्धि के आवेश में अधिकार की सीमा का अतिक्रमण कर गया हो। परन्तु, अंग्रेजी भाषा में जिसे 'क्राइम' (जुर्म) कहते

हैं, वह गोरा के द्वारा नहीं हो सकता। परन्तु अब हम कर भी क्या सकते हैं ? वह समय अब नहीं रहा। आजकल चाहे जानबूझ कर किया जाये अथवा भूल से, दोनों का दण्ड एक ही है।' तभी परेशबाबू बीच ही में इस प्रसङ्ग को रोककर पूछ बैठे—'तुम किसके साथ आई हो ?'

'विनयबाबू के साथ !' ललिता ने साहस करके कहा, यदि उसके भीतर दुर्बलता भरी हुई थी। लाख चेष्टा करने पर भी उसका स्वर स्वाभाविक न रहा उसमें विकार आ गया।

अन्य लड़कियों की अपेक्षा परेशबाबू अपनी इस उद्धत स्वभाव की लड़की को अधिक प्यार करते थे। उसके आचरण में जो सत्यनिष्ठा थी, उसे वे अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। परेशबाबू उसके दोषों की ओर ध्यान न देकर, आज तक उसके गुणों को ही अपने हृदय में स्थान देते आये हैं। उनकी दोनों पुत्रियों की अपेक्षा ललिता का रंग यद्यपि कुछ साँवला था, इसीलिए वरदासुन्दरी उसके योग्य उपयुक्त वर ढूँढने को उनसे बराबर हठ करती थीं, परन्तु परेशबाबू उसके शारीरिक सौन्दर्य की ओर ध्यान न देकर, उसके अन्तःकरण की गम्भीर शोभा पर ही सदैव दृष्टिपात करते थे। संसार में अन्य व्यक्ति ललिता के स्वभाव को पसन्द नहीं करेंगे, यह विचार कर ही वे उसे दया की पात्री समझते थे।

परेशबाबू ने जब सुना कि ललिता विनय के साथ अकेली चली आई है तभी उन्होंने अनुमान कर लिया कि इस अपराध के कारण उसे बहुत दिनों तक दुःख उठाना पड़ेगा। वे मन-ही-मन यह बात सोचते हुए चुप रहे। तभी ललिता ने कहा—'मैंने जो अपराध किया है, उसे मैं भली-भाँति जानती हूँ, परन्तु क्या मजिस्ट्रेट के ऐसे अनुग्रह को सहकर भी मेरे लिए वहाँ ठहरना उचित होता ?'

परेशबाबू ने कोई उत्तर न दिया। केवल मुस्कराते हुए बोले—'तू पागल है, ललिता !'

सन्ध्या समय परेशबाबू इस घटना पर मन ही मन चिन्त

हुए बाग में घूम रहे थे, उसी समय विनय ने आकर उन्हें प्रणाम किया। परेशबाबू ने गोरा के कारावास के सम्बन्ध में उससे बहुत देर तक बातें कीं, परन्तु ललिता के साथ स्टीमर पर आने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। अँधेरा हो जाने पर वे बोले—'विनय, चलो भीतर चलें।'

'मुझे अभी अपने घर जाना है!' विनय ने उत्तर दिया।

परेशबाबू ने फिर उससे ठहरने का आग्रह न किया। विनय एक बार संकुचित दृष्टि से दूसरी मंजिल की ओर देखकर चुपचाप चल दिया। दुमंजिले पर ललिता बैठी थी, उसने विनय को देख लिया था। वह समझ रही थी, कुछ देर बाद विनय भी घर जायेगा। परन्तु जब वह न आया, तो ललिता किताबों को उलट-पुलट कर कमरे से चली, उसी समय परेशबाबू ने उसे पुकारा। उसके उदास मुँह को स्नेह-भरी दृष्टि से देखते हुए वे बोले—'बेटी! मुझे एक ब्राह्म-संगीत सुनाओ।' इतना कह कर उन्होंने बत्ती की रोशनी में एक कागज की आड़ कर दी

३३

दूसरे दिन वरदासुन्दरी सब लोगों को साथ ले, कलकत्ते आ पहुँचीं। हारानबाबू ललिता के सम्बन्ध में अपना क्रोध न रोक पा रहे थे, अतः वे सीधे अपने घर न जा, परेशबाबू के पास जा पहुँचे। वरदासुन्दरी ने क्रोध के मारे ललिता की ओर न तो देखा और न कोई बात ही की। वे सीधी अपने कमरे में जा पहुँचीं। लावण्य और लीला भी ललिता से नाराज थीं, क्योंकि विनय और ललिता के बिना उनका अभिनय पंग हो गया था। सुचरिता किसी को कुछ योग न देकर चुप... थी। लज्जा और पश्चाताप के कारण सुधीर परेशबाबू के घर के द्वार से ही चुपचाप अपने घर लौट गया था। लावण्य के बार-बार अनु... रोध करने पर भी, जब वह न रुका तो लावण्य ने बिगड़कर उससे कह... 'आज से मैं तुमसे कभी कुछ न कहूँगी।'

परेशबाबू के घर में प्रवेश करते ही हारानबाबू कह उठे—'...

बड़ा अन्याय हुआ है ।'

ललिता पास ही के कमरे में थी । बस आवाज को सुनते ही वह अपने पिता की कुर्सी के पीछे आ खड़ी हुई तथा उस पर दोनों हाथ टिका कर हारानबाबू के मुँह की ओर देखने लगी ।

परेशबाबू बोले—'ललिता के मुँह से मैंने सब बातें सुन ली हैं । जो बीत गया, उसकी आलोचना करने से कोई लाभ नहीं है।'

हारानबाबू शान्त-स्वभावी परेशबाबू को दुर्बल हृदय वाला व्यक्ति समझते थे । इन शब्दों को सुनकर वे अनादरपूर्वक बोले—'घटना भले ही घट जाये, परन्तु उसका कलंक कभी नहीं मिटता । यदि ललिता आपसे उत्साह न पाती, तो आज जैसा कार्य वह कभी न करती । उसे आपने ही इतना उद्दण्ड बनाकर उसका अनिष्ट किया है । आज का हाल सुनकर आप इस बात को भली-भाँति समझ जायेंगे ।'

परेशबाबू पीछे खड़ी ललिता को हाथ पकड़ कर अपने सामने खींचते हुए, हारानबाबू से हँसकर बोले—'हारानबाबू, समय आने पर ही आप जान सकेंगे कि सन्तान को सुशिक्षित बनाने के लिए स्नेह की भी आवश्यकता होती है ।'

ललिता कुछ झुक कर पिता के कान के पास मुँह ले जाते हुए बोली—'बाबूजी ! आपके नहाने का पानी ठण्डा हो रहा है ।'

हारानबाबू की ओर देखते हुए परेशबाबू कोमल स्वर में बोले—'हाँ, अभी आता हूँ । कोई विशेष देर नहीं हुई है ।'

ललिता स्नेह-सिक्त स्वर में बोली—'आप स्नान कर आइये, हम हारानबाबू के पास बैठे हैं ।'

परेशबाबू के चले जाने पर ललिता एक कुर्सी पर जा जमी । उसने हारानबाबू के मुँह की ओर देखते हुए कहा—'आप जानते ही होंगे कि सबको अपनी बात कहने का अधिकार होता है ।'

सुचरिता ललिता को अच्छी तरह जानती थी । और दिन होता तो वह ललिता के ऐसे भाव देखकर [illegible]
पर सिर झुकाये खिड़की के सहारे चु

ललिता बोली—'हमारे पिताजी को क्या करना उचित है, वे आपकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हैं। आप समस्त ब्राह्म समाज के आचार्य हैं न, अतः आपको यह बात भली-भाँति जान ले चाहिये।'

ललिता की इन 'उद्दण्डतापूर्ण बातों को सुनकर हारानब पहले हतबुद्धि से हो गए। फिर ज्योंही कुछ कड़ा उत्तर देने को हु तभी ललिता ने बीच ही में टोकते हुए कहा—'हम लोग अभी त आपकी श्रेष्ठता का लिहाज करते आ रहे हैं, परन्तु यदि आपने अप को हमारे पिताजी की अपेक्षा अधिक सम्मान्य समझा तो इस घर आपका कोई भी आदर न करेगा। हमारे नौकर तक आपकी बात न पूछेंगे।'

हारानबाबू के नेत्र लाल हो उठे, बोले—'ललिता, तुम बहु बढ़-बढ़ कर बातें.........'

ललिता बीच ही में बात काटती हुई गरज पड़ी—'शान्त रहिये। हमने आपकी बातें बहुत सुनी हैं, आज आप मेरी बात सुनिये, विश्वास न हो तो सुचरिता बहिन से पूछ लीजिये। आप अपने को जितना बड़ा समझते हैं, हमारे पिताजी उससे कहीं अधिक बड़े हैं। आपको जो उपदेश देना हो दीजिये।'

हारानबाबू का मुँह उतर गया। वे कुर्सी से उठते हुए बोले—'सुचरिता!'

सुचरिता ने किताब से दृष्टि हटाकर उनकी ओर देखा। वे बोले—'ललिता मेरे साथ अभद्रता का व्यवहार कर रही है। क्या तुम्हें मेरा इस प्रकार का अपमान करना चाहिये?'

सुचरिता गम्भीर स्वर में बोली—'वह आपका अपमान नहीं करना चाहती। वह चाहती है कि आप पिताजी को सम्मान की दृष्टि से देखें। उनसे अधिक सम्मान योग्य हमारे लिए और कोई नहीं है।'

हारानबाबू के भावों से लगा कि वे कुर्सी छोड़कर जाने ही वाले हैं, परन्तु वे गये नहीं। मुँह लटकाये वहीं बैठे रहे। वे अनुभव कर रहे

थे कि इस घर में उनकी प्रतिष्ठा निरन्तर गिर रही है, तो भी वे अपने आसन को वहां और दृढ़ जमा कर बैठना चाहते थे।

हारानबाबू का लटका हुआ मुँह देखकर, ललिता उठकर सुचरिता के पास जा बैठी। इसी समय सतीश ने कमरे में प्रवेश करते हुए, सुचरिता का हाथ पकड़ कर कहा—'बड़ी बहिन यहां आओ।'

कहां चलना है?' सुचरिता ने पूछा।

'चलो, तुम्हें एक चीज दिखाऊँ। ललिता बहिन! तुमने बता तो नहीं दिया?'

ललिता बोली—'नहीं।'

यह पहले ही निश्चित हो चुका था कि मौसी के आने की बात ललिता सुचरिता से न कहेगी। इसलिए ललिता ने इस सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं कहा था।

परेशबाबू को स्नान करके लौटते देखकर, सतीश दोनों बहिनों को अपने साथ खींच ले गया।

हारानबाबू परेशबाबू से बोले—'सुचरिता के विवाह-सम्बन्ध में जो निश्चय हुआ था, उस विषय में अब ढील डालना उचित नहीं। मैं चाहता हूँ कि यह कार्य अगले रविवार को ही हो जाए।'

'मुझे कोई एतराज नहीं है'—परेशबाबू बोले, 'वह सुचरिता की इच्छा पर निर्भर करता है।'

'उसकी इच्छा तो पहले ही ज्ञात की जा चुकी है।'

'तो आपकी बात ही रही।'

३४

ललिता के पास से लौटकर, उस दिन विनय को अपने सूने घर में बैठना कठिन हो उठा। दूसरे दिन सवेरे ही वह आनन्दमयी के पास जा पहुँचा और बोला—'मैं कुछ दिन तुम्हारे ही पास रहूँगा।'

विनय चाहता था कि गोरा के वियोग से जो शोक आनन्दमयी को हुआ है, उसे वह उनके पास रहकर कुछ दूर कर सके। यह जा

आनन्दमयी का हृदय स्नेह से भर गया। वे प्रेमपूर्वक विनय की पीठ पर हाथ फेरने लगीं।

विनय ने वहां रहकर अपने खाने-पीने का झमेला खड़ाकर दिया। वह इधर-उधर की बातों में लगाए रहकर आनन्दमयी के मन की चिन्ताओं को दूर करना चाहता था। कभी वह आनन्दमयी से उनके लड़कपन तथा माता-पिता की कहानी कहलवाता, तो कभी कुछ आनन्दमयी बतातीं कि जब वे अपने अध्यापक दादा की पाठशाला में पढ़ती थीं तब सब लड़के उन्हें पितृ-हीना समझकर उनका पक्ष लेते और आदर-स्नेह करते थे। इन घटनाओं से उनकी माता के चित्त को बहुत उद्वेग होता था, आदि।

विनय कहता—'मां, मुझे कभी-कभी यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि तुम मेरी मां नहीं थीं। मैं तो समझता हूं कि मुहल्ले के सभी लड़के तुम्हें मेरी मां ही समझते हैं।'

एक दिन शाम को विनय और आनन्दमयी चटाई पर बैठे थे। विनय ने उनके पैरों पर सिर रखते हुए कहा—'मां, जी चाहता है कि मैं सब मिथ्या बुद्धि को भुलाकर, छोटा-सा बालक बन तुम्हारी गोद में ही बैठा रहूं। इस संसार में तुम्हें छोड़कर मैं और कुछ नहीं चाहता।'

कुछ देर चुप रह कर आनन्दमयी ने विनय से पूछा—'बेटा, परेशबाबू के घर का क्या हाल है?'

इस प्रश्न से विनय लज्जित हो उठा। उसने सोचा—मां सब कुछ जानती हैं, इससे कुछ छिपा रखना उचित नहीं है। फिर कुछ ठिठक कर बोला—'वहां सब लोग सकुशल हैं।'

आनन्दमयी ने कहा—मेरी बड़ी इच्छा है कि परेशबाबू की लड़कियों से भेंट करूं। पहले तो गोरा का भाव उनके प्रति अच्छा न था, परन्तु अब जब उन लोगों ने उसे अपने वश में कर लिया है, तब से जान पड़ता है, वे साधारण लोगों में से नहीं हैं।'

विनय उत्साहित होकर बोला—'मेरी कई बार यह इच्छा हुई कि मैं उनसे तुम्हारी भेंट करा दूं, परन्तु गोरा की नाराजगी के भय से

मैंने तुमसे कभी यह जिक्र नही किया।'

'बडी लडकी का क्या नाम है ?' आनन्दमयी ने पूछा।

'सुचरिता !' उत्तर दिया विनय ने।

इसी प्रकार बातचीत मे जब ललिता का प्रसङ्ग आया तो विनय ने उसे संक्षेप में ही समाप्त कर देना चाहा, परन्तु आनन्दमयी बराबर उसी के विषय मे पूछती रही। बोलीं—'सुना है, उसकी बुद्धि बहुत तीव्र है।'

'तुमने किससे सुना, माँ ?'

'तुम्हीं से तो।'

पहिले ललिता के सम्बन्ध मे जब विनय को कोई संकोच न था तब विनय ने उसकी तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशंसा आनन्दमयी से कई बार की थी, इस समय उसे यह याद नहीं रहा था।

आनन्दमयी ने चतुरतापूर्वक ललिता के सम्बन्ध में इस प्रकार बातें कीं कि विनय कुछ छिपा न सका। उसके स्टीमर पर साथ आने की बात भी वह कह बैठा। इस प्रकार जिस दुःख के बोझ से वह दबा जा रहा था, वह दूर हो गया। उत्साहपूर्वक उसके सम्बन्ध में, न जाने वह क्या-क्या कहता रहा।

रात्रि को जब भोजन के लिए बुलाहट हुई, तब उसे अनुभव हुआ, जैसे वह ललिता के सम्बन्ध मे सब बातें कह चुका है। आज आनन्दमयी से इन बातो को कह कर, उसका हृदय एक विशेष प्रकार के उत्साह से भर गया। आज से पहले उसने कोई छोटी से छोटी बात भी आनन्दमयी से नहीं छिपाई थी। अकेली यही एक बात थी जो उसके हृदय में निरन्तर खटकती रहती थी, उससे भी वह हल्का हो गया।

रात्रि के समय अकेली बैठी हुई आनन्दमयी इन बातो पर बहुत देर तक सोचती रहीं, उन्होंने सोचा—'गोरा के ज
निरन्तर जटिल होती जा रही है। उसकी मीमांसा प
ही हो सकती है'— वे निश्चय कर बैठीं—'जो भी हो,

करती हुई बोली—'आप अच्छे तो हैं ?' तदुपरान्त आनन्दमयी की ओर देखकर कहने लगी—'हम परेशबाबू के घर से आई हैं।'

आनन्दमयी उन्हें आदरपूर्वक बैठाते हुए बोलीं—'मुझे अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं है, बेटी ! यद्यपि मैंने तुम लोगों को कभी देखा नहीं, परन्तु मैं तुम्हें अपने घर के आदमी की तरह ही समझती हूँ।'

वार्तालाप आरम्भ हो गया। विनय को चुप देखकर, ललिता ने उसे वार्तालाप में सम्मिलित करने के लिए कहा—'आप हमारे घर कई दिन से क्यों नहीं आये ?'

विनय एक बार ललिता की ओर दृष्टिपात करता हुआ बोला—'बार-बार तकलीफ देने से कहीं आप लोगों का स्नेह न खो बैठूँ, यही भय बना रहता है।'

सुचरिता हँसकर बोली—'पर आप शायद यह नहीं जानते हैं कि स्नेह बार-बार कष्ट देने की ही अपेक्षा रखता है।'

आनन्दमयी ने बीच में कहा—'सो तो यह तङ्ग करना खूब जानता है, बेटी ! तुमसे क्या कहूँ, यहाँ दिन भर इसकी फरमाइशें पूरी करते-करते तो मेरी नाक में दम हो जाता है।'

इतना कहकर वे विनय की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं।

विनय हँसकर बोला—'माँ ईश्वर ने तुम्हें जो धैर्य दिया है। उसकी वे मेरे द्वारा परीक्षा ले रहे हैं।'

सुचरिता ललिता को तनिक धकेलती हुई बोली—'बहिन ललिता ? हम लोगों की परीक्षा शायद समाप्त हो गई और हम सम्भवत: उसमें सफल नहीं हो सकी हैं।'

ललिता को इस वार्तालाप में सम्मिलित न होते देखकर, आनन्दमयी ने हँसकर कहा—'अब हमारा विनय अपने धैर्य की परीक्षा ले रहा है। वह तुम्हें किस दृष्टि से देखता है, इसे तुम जानती नहीं। शाम को तुम लोगों की चर्चा के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कहता। परेशबाबू का प्रसंग आते ही तो वह गल-सा जाता है।'

आनन्दमयी ने ललिता के मुँह की ओर देखा, वह अकारण ही लाल हो उठी थी।

आनन्दमयी फिर बोली—'तुम्हारे बाबूजी के लिये, यह कितने ही लोगों से झगड़ बैठा है। उसके साथी तो उसे ब्राह्म समाजी कहकर जातिच्युत कर देना चाहते हैं।'

अबकी बार जब उन्होंने ललिता की ओर देखा तो उसकी आँखें नीचे झुकी हुई थीं। सुचरिता बोली—'विनयबाबू भी हमें अपना आदमी समझते हैं, यह हम लोगों का गुण नहीं अपितु उनकी महानता है।'

आनन्दमयी बोली—'यह तो मैं नहीं कह सकती, बेटी! मैं इसे तब से जानती हूँ, जब यह छोटा-सा था। यह अपने दल के लोगों से भी उतना नहीं हिल मिल सका, जितना तुम लोगों के साथ घुल मिल गया है। तुम लोगों के समीप जाने के बाद से, हमें तो इसका पता भी नहीं मिल पाया। मैं सोच रही थी, इसके लिए तुम लोगों से झगड़ा करूँगी परन्तु अब दीखता है, मुझे भी इसी के दल में सम्मिलित होना पड़ेगा।'

सुचरिता ने विनय की यह दुर्दशा देख सहृदय होते हुए कहा—'विनय बाबू! बाबूजी भी हमारे साथ आते हैं, वे बाहर कृष्णदयालबाबू से वार्तालाप कर रहे हैं।'

यह सुन, विनय तुरन्त बाहर चल दिया। इधर गोरा और विनय की असाधारण मित्रता का प्रसंग लेकर आनन्दमयी बातें करने लगीं। सुचरिता और ललिता उस वर्णन को अतृप्त हृदय से सुनने लगी। आनंदमयी जैसी माता के गहरे स्नेह को देखकर, उन्हें और भी अधिक विशेष आनन्द का अनुभव होने लगा।

आज आनन्दमयी से परिचय होने के बाद ललिता का मजिस्ट्रेट के ऊपर क्रोध जैसे और अधिक बढ़ गया। उसके मुँह से मजिस्ट्रेट के प्रति तीव्र भर्त्सना के शब्द सुनकर आनन्दमयी को हँसी आ गई। वे बोलीं—'बेटी! आज गोरा के कारागृह में रहने से जो दुःख मुझे हो रहा है, उसे अन्तर्यामी ही जानते हैं। फिर भी मैं मजिस्ट्रेट पर...

नहीं करती। गोरा जिस काम को अच्छा समझता है, उसके समक्ष कानून वानून को कुछ नहीं समझता। वह अपना काम स्वयं कर रहा है तथा अन्य लोग भी अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं, जिसमें जिसे भी दुःख मिले, मिलेगा ही। मेरे गोरा की चिट्ठी यदि तुम पढ़ कर देखो तो समझ सकोगी कि वह कभी दुःख से नहीं डरा। किसी के ऊपर उसने व्यर्थ क्रोध नहीं किया। जिस कार्य का जो परिणाम होता है, उसे भली भाँति जानकर ही वह उसे करता है।'

इतना कहकर वे गोरा की चिट्ठी बक्स से निकाल लाईं और उसे सुचरिता के हाथ में देती हुई बोलीं—'बेटी! तुम इसे तनिक जोर से पढ़ो, ताकि मैं भी एक बार और सुनलूँ।'

गोरा के उस अद्भुत पत्र को पढ़े जाने के बाद, तीनों कुछ देर चुप बैठी रहीं। आनन्दमयी ने आंचल से अपने आंसू पोंछ लिए। उन आंसुओं में केवल माता के हृदय की कथा ही नहीं थी, अपितु उनमें आनन्द तथा गौरव भी मिश्रित था।

ललिता आश्चर्यचकित-सी आनन्दमयी का मुँह देख रही थी। उसके हृदय में ब्राह्म-परिवार का संस्कार खूब जड़ जमाये हुए था। कभी-कभी वरदासुन्दरी जब उसे किसी अपराध पर डांटती हुई यह कहती थीं कि ऐसा व्यवहार तो हिन्दुओं की स्त्रियाँ भी नहीं करतीं, तब उसे यह बोध होता था, जैसे हिन्दुओं की स्त्रियां बहुत ही असभ्य तथा पुरानी चाल की होती हैं। इसलिए उसके हृदय में हिन्दू-स्त्रियों के प्रति श्रद्धा नहीं थी परन्तु आज जब उसने आनन्दमयी को देखा, तो वह अपने हृदय को बार-बार धिक्कारने लगी। उसके हृदय में आज एक भारी विद्रोह मचा हुआ था, उसी कारण उसने विनय की ओर भी नहीं देखा था, परन्तु आनन्दमयी की स्नेहार्द्र वाणी सुनकर तथा उनके शान्त मुखमण्डल को देखकर उसके हृदय का ताप नष्ट हो गया। उसने आनन्दमयी से कहा—'गौरमोहनबाबू ने इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त की है, यह आज मैं आपको देखकर जान सकी हूं।'

आनन्दमयी बोलीं—'यह बात नहीं है बेटी! गोरा यदि साधा-

रण बालकों की भाँति होता, तो मैं इतना बल कहाँ से पाती ? तब उसके दुःख को भी मैं कैसे सह सकती थी ?'

ललिता का मन आज जो इतना व्याकुल हो उठा था, उसका कारण बताने की भी आवश्यकता है।

पिछले कई दिनों से, बिस्तर से उठने के बाद ललिता के मन में पहिला विचार यह आया था कि विनयबाबू आज नहीं आयेंगे, फिर भी वह दिन भर उनके आने की प्रतीक्षा किया करती थी। प्रतिपल वह यही सोचती कि कहीं वे परेशबाबू के साथ नीचे बैठक में बैठकर बातें न कर रहे हों। इसीलिए वह दिन भर इधर से उधर घूमती रहती और अन्त में सन्ध्या होने पर अपने बिस्तर पर जा लेटती थी। उसका हृदय जैसे फटने लगता, रुलाई आती, क्रोध आता, परन्तु यह सब किसलिए हो रहा है, इसे वह समझ नहीं पाती। वह बार-बार यही सोचती—'मैं अपने मन को कैसे समझा सकूंगी ? यह इसी प्रकार कब तक चलता रहेगा ?'

ललिता जानती थी कि विनय के हिन्दू होने के कारण उसका विवाह उसके साथ कभी नहीं हो सकता। फिर भी वह अपने हृदय को किसी प्रकार समझा नहीं पाती थी। आज प्रातःकाल से ही उसका हृदय अशान्त हो रहा था, तब उसने विचार किया कि विनय के साथ एक बार भेंट हो जाने से यह अस्थिरता दूर हो जायेगी।

आज सवेरे ही वह सतीश को अपने कमरे में खींच ले गई थी। मौसी को पाकर, सतीश आजकल विनय की याद ही जैसे भूल गया था। ललिता ने उससे कहा—'मालूम होता है, अब विनयबाबू के साथ तेरा झगड़ा हो गया है।'

सतीश ने इस अपेक्षा का खूब जोर से प्रतिवाद किया। तब ललिता बोली—'फिर तो विनयबाबू ही तुझे भूल गये हैं। अब वे तेरे मित्र नहीं रहे।'

'हिन्, ! सतीश ने कहा—'यह बात कभी नहीं हो सकती।'

समाज में अपना महत्व प्रदर्शित करने के लिए छोटे मद

को जोर से बोलना पड़ता है। आज वह अपने कथन को दृढ़ प्रभाव देने के लिए, उसी समय विनय के घर दौड़ा आया। जब लौटकर आया तो बोला—'वे घर नहीं हैं, इसीलिए यहां नहीं आये हैं।'

ललिता ने पूछा—'कई दिनों से क्यों नहीं आये हैं।'

'वे कई दिनों से घर पर नहीं हैं!' सतीश ने उत्तर दिया।

तब ललिता ने सुचरिता के पास जाकर कहा—'दीदी, हमें गौरमोहनबाबू की मां के पास एक बार अवश्य हो आना चाहिये।'

सुचरिता बोली—'परन्तु, हमारी उनसे कोई जान-पहचान तो है नहीं।'

ललिता—'उनके पिता तो हमारे बाबूजी के बचपन के मित्र हैं।'

सुचरिता को स्मरण हो आया। बोली—'हां, हैं तो सही।' फिर कहा—'ललिता बहिन! तुम्हीं बाबूजी से चलने के लिए कहो।'

'न, मैं नहीं जाऊंगी, तुम्हीं कहो न!'

अन्त में सुचरिता को ही परेशबाबू के पास जाना पड़ा। इस प्रसग के छिड़ते ही वे बोल उठे—'अवश्य, हमें उनके पास अब तक कभी का हो आना चाहिये था।'

भोजन के बाद चलने की बात जब ठीक हो गई, तब ललिता का मन फिर एकाएक विद्रोह कर उठा। उसने सुचरिता के पास जाकर कहा—'दीदी, तुम वहां हो आना, मैं नहीं जाऊंगी।'

सुचरिता बोली—'तू न जायेगी तो मैं भी नहीं जाऊंगी। तू न जाये, यह कैसे हो सकता है?'

अनेक आग्रह के उपरान्त ललिता साथ गई। परन्तु आज वह विनय के सम्मुख जैसे परास्त हो गई, क्योंकि विनय इतने दिनों से उसके घर नहीं आया था, बल्कि वही स्वयं वहां जा पहुँची थी। यद्यपि विनय को देखने की आशा से ही वह आनन्दमयी के घर आई थी, परन्तु उसने अपनी हठ बनाये रखने के लिए यहां आकर विनय की ओर एक बार भी न तो देखा और न नमस्कार ही किया था।

उसी समय विनय ने दरवाजे के पास आकर संकोचपूर्वक कहा—

'परेशबाबू घर जाना चाहते हैं, इन्हें खबर देने को कहा है।' विनय इस प्रकार खड़ा हुआ था कि ललिता उसे देख न पावे।

आनन्दमयी बोलीं—'मुँह मीठा किये बिना कैसे जा सकोगे? अब अधिक विलम्ब न होगा। विनय! तुम यहां बैठो मैं जाकर देख आऊँ। बाहर क्यों खड़े हो। यहीं भीतर आओ न?'

ललिता की आड़कर विनय कुछ दूरी पर बैठ गया। तभी सहज भाव से ललिता ने कहा—'विनयबाबू, आपने अपने मित्र सतीश को बिल्कुल भुला दिया है। अथवा नहीं, यह जानने के लिए वह आज सुबह आपके घर गया था।'

आकाशवाणी सुनकर जैसे मनुष्य अचम्भे में आ जाता है, उसी प्रकार विनय चौंक पड़ा। वह अपनी स्वभाव-सिद्ध चतुरतापूर्वक उत्तर न देकर, मुख तथा कानों को लाल करता हुआ बोला—'सतीश घर गया था? मैं तो वहाँ था ही नहीं!'

ललिता द्वारा इस साधारण बात के कहने से ही विनय को असीम आनन्द प्राप्त हुआ था। उसे मालूम हो गया कि ललिता उससे नाराज नहीं है।

देखते-देखते सब संकोच दूर हो गया। सुचरिता हँसकर बोली—'विनयबाबू तो हम लोगों को खूँखार जानवर समझ कर बिल्कुल दूर हट गये हैं।'

विनय ने कहा—'जो लोग मुँह खोलकर बात नहीं कर पाते, पृथ्वी पर उन्हीं को दोषी ठहराया जाता है। दीदी! आपके मुख से यह कथन शोभा नहीं देता। आप ही दूर चली गई हैं, इसलिए औरों को भी दूर समझ रही हैं।'

सुचरिता को विनय ने आज पहली बार 'दीदी' कहा। सुचरिता को भी यह सम्बोधन बहुत प्रिय एवं मधुर लगा। इस सम्बोधन ने शीघ्र ही एक विशेष स्नेहपूर्ण आकार धारण कर लिया।

अपनी लड़कियों के साथ जब परेशबाबू गये, उस समय शाम हो चुकी थी। विनय ने आनन्दमयी से कहा—'माँ, मैं आज तुम्हें

न करने दूंगा। ऊपर वाले कमरे में चलो।'

विनय आज अपने मन की उमंग दबा नहीं पा रहा था। आनंद-मयी को ऊपर ले जाकर उसने स्वयं चटाई बिछाकर, उन्हें बैठाया। आनन्दमयी बोलीं—'विनय, बोल तू क्या कहता है?'

'मुझे तो कुछ नहीं कहना है, मा! तुम्हीं अपने मन की बात कहो।' विनय ने उत्तर दिया।

विनय का मन यह जानने के लिये व्याकुल हो रहा था कि उन्हें परेशबाबू की लड़कियाँ कैसी लगी हैं।'

आनन्दमयी बोलीं—'अच्छा, इसीलिए तू मुझे बुलाकर लाया था? मैं समझती थी, तुझे कोई बात कहनी होगी।'

बुलाकर न लाता तो ऐसे सुन्दर सूर्यास्त की शोभा कहां देखने को मिलती?'

उस दिन कलकत्ते के सुर्यास्त में कोई विशेषता नहीं थी। सन्ध्या के धुंधले कुहरे में सूर्य छिप रहा था, परन्तु विनय के मन को आज उसने जैसे रङ्गीन बना दिया था।

आनन्दमयी बोलीं—'दोनों लड़कियाँ साक्षात् लक्ष्मी जैसे लगती हैं।'

विनय के लिये केवल इतनी प्रशंसा ही पर्याप्त न थी। उसने अनेक बातों द्वारा इस प्रसंग को आगे बढ़ाये रक्खा।

परेशबाबू की लड़कियों के सम्बन्ध में साधारण-सी घटनायें कह-कह कर भी, वह अपने उत्साह का प्रदर्शन करता रहा।

तभी आनन्दमयी ने एकाएक गहरी साँस छोड़ते हुए कहा—'सुचरिता के साथ यदि गोरा का विवाह हो सके, तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।'

विनय जैसे उछल पड़ा। बोला—'यह बात तो मैं
बार अपने मन में सोची है। गोरा के योग्य जीवन-संगिनी सु
ही है।'

'परन्तु क्या यह सम्भव हो सकेगा?'

'क्यों नहीं मा ! मैं समझता हूँ, गोरा भी सुचरिता को पसंद करता है।'

आनन्दमयी यह जानती थीं कि गोरा का हृदय किसी एक स्थान पर अवश्य उलझ रहा है। विनय की बातों से उन्होंने यह भी अनुमान कर लिया था कि वह लड़की सुचरिता ही है। कुछ देर चुप रहकर वे बोलीं—'परन्तु, क्या सुचरिता किसी हिंदू के घर विवाह करना स्वीकार करेगी ?'

विनय—'मा, क्या गोरा ब्राह्म परिवार में विवाह नहीं कर सकता ? इस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?'

आनन्दमयी—'मैं तो प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दूँगी।'

विनय ने फिर कहा—'अच्छा !'

आनन्दमयी—'क्यों नहीं। विवाह की सार्थकता मनुष्य के साथ मनुष्य का मन मिलने में ही है। मन्त्र पढ़ने से कोई लाभ-हानि नहीं होती।'

विनय के मन से जैसे एक बोझ हट गया। वह उत्साहित होकर बोला-'माँ, तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें सुनकर मैं सोचता हूँ कि तुमने ऐसी उदारता कहाँ से प्राप्त की है ?'

आनन्दमयी—'गोरा से !'

विनय—'परन्तु, वह तो इसके प्रतिकूल कहता है।'

आनन्दमयी—'उसके कहने, न कहने से क्या। मुझे यह शिक्षा गोरा ने ही दी है। मनुष्य कितना सत्य और कितना मिथ्या है-यह बात ईश्वर ने मुझे उसी दिन बता दी थी, जिस दिन उन्होंने गोरा को मेरी गोद में भेजा। बेटा, ब्राह्म और हिन्दू कौन है ? मनुष्य की आत्मा की कोई जाति नहीं होती। भगवान् सब को समान रूप से मिलते हैं, केवल मन्त्र अथवा मत के द्वारा ही कोई काम नहीं चल सकता।'

विनय ने आनन्दमयी के चरण छूते हुए कहा—'माँ, मेरा आज का दिन सार्थक हुआ। तुम्हारी बातें बड़ी प्रिय हैं।'

सुचरिता की मौसी हरिमोहिनी के कारण, परेशबाबू के घर में अशान्ति फैल गई। इससे पूर्व हरिमोहिनी ने सुचरिता को जो अपना परिचय दिया था, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

उन्होंने बताया—'मैं तुम्हारी मां से दो वर्ष बड़ी थी। पिता के घर में हम दोनों का आदर होता था। घर में और कोई बालक न था, अतः चाचा हम दोनों बहिनों को हर समय गोद में ही लिए रहते थे।'

'जब मेरी उम्र आठ वर्ष की हुई तब कृष्णनगर के प्रसिद्ध चौधरी परिवार में मेरा विवाह हुआ। वे कुलीन होने के साथ ही धनी भी थे, परन्तु विवाह में लेने-देने के कारण मेरे ससुर का पिताजी के साथ विरोध हो गया। उस झगड़े को देखकर पिताजी ने प्रतिज्ञा की कि अब मैं अपनी किसी लड़की का विवाह धनवान के घर न करूंगा। अपने इस तरह के नियमानुसार उन्होंने तुम्हारी मां का विवाह एक दरिद्र घराने में ही कर दिया।'

'मेरे ससुर का परिवार बहुत बडा था अतः मुझे नौ-दस वर्ष की आयु में ही नित्य पचास-साठ आदमियों का भोजन बनाना पड़ता था। सबको खिलाने-पिलाने के बाद मुझे भोजन मिलता था, सो मैं कभी केवल रूखा भात और कभी दाल-भात खाकर ही रह जाती थी। सुबह की रसोई शाम तक समाप्त होती और उसके तुरन्त बाद ही शाम को रसोई में जुट जाना पड़ता था, जिससे रात के बारह बजे से पहले, कभी फुर्सत नहीं मिल पाती थी। रात को जहां स्थान मिल जाता, वहीं पर मैं चटाई बिछाकर अकेली सो जाती थी।'

'घर के सब लोग तो मेरा अनादर करते ही थे, पति ने भी कभी आदर की दृष्टि से न देखा।'

'सत्रह वर्ष की आयु हो जाने पर, मैंने अपनी कन्या 'मनोरमा' को जन्म दिया। कन्या के जन्म से घर में मेरा अनादर और अधिक बढ़ गया। घर के लोग, यहां तक कि मेरे पति भी उस लड़की को प्यार

नही करते थे। परन्तु इन सब तिरस्कारों के बीच मेरे लिए, वह लड़की एकमात्र अवलम्बन थी।'

तीन वर्ष पश्चात जब मैंने एक लडके को जन्म दिया, तब लोग मुझे कुछ आदर की दृष्टि से देखने लगे। मनोरमा के जन्म के दो वर्ष बाद ही मेरे ससुर स्वर्गवासी हो चुके थे, जबकि सास पहिले से ही नही रही थी। ससुर की मृत्यु के बाद देवरो ने उनकी सम्पत्ति के विभाजन के लिए मुकद्दमेबाजी आरम्भ करदी। अन्त में पृथकीकरण के पश्चात् हम सब अलग हुए।'

'मनोरमा का व्याह मैंने अधिक दूर न करने के विचार से, कृष्णनगर से पाँच-छः कोस की दूरी पर बसे, राधा नगर में कर दिया। दूल्हा देखने मे सुन्दर, स्वस्थ्य एवं ऐश्वर्यमान था।'

इतने दिन कष्ट मे बिताने के बाद मेरा भाग्य फिरा। अब मेरे स्वामी मुझे आदर की दृष्टि से देखने लगे तथा प्रत्येक कार्य में मेरी सम्पत्ति लेने लगे, परन्तु मेरा यह सुख विधाता से अधिक दिनों तक न देखा गया, एक दिन हैजे की बीमारी से वे भी चल बसे। साथ ही मेरे लड़के की मृत्यु हो गई।'

'धीरे-धीरे मुझे अपने जमाई की प्रकृति का परिचय मिला। वह बुरे लोगों के साथ पड़कर मद्यपान करने लगा था, परन्तु मेरी लडकी ने उसके सम्बन्ध में मुझ से कभी कोई बुराई नहीं की। वह चाहे जब मेरे पास आकर घर की आवश्यकतायें बतलाता और मुझसे कुछ न कुछ रुपया पैसा ले जाता था। मेरी लडकी ने इसके लिए मुझे कई बार टोका भी, परन्तु मैंने उसकी बात पर कोई ध्यान नही दिया। अन्त में बहुत कहा-सुनी होने पर, मैं उसे अपनी लड़की से छिपाकर रुपया देने लगी। आखिर मनोरमा को जब इसका भी पता चल गया, तो एक दिन उसने मेरे पास आकर अपने पति के दुराचार की सब बातें कह सुनाई। मैंने उन बातों को सुनकर सिर पीट लिया। पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि मेरे ही एक देवर ने उसे मद्यपान की आदत डालकर खराब कर दिया था।'

'जब मैंने उसे रुपया देना बन्द कर दिया, तब उसे अपनी स्त्री पर सन्देह हो गया कि यही मुझे रुपया नहीं देने देती है। यह देखक उसने मनोरमा पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। तब मैं उ इससे रोकने के लिये, फिर से छिपा-छिपाकर रुपया देने लगी।'

'एक दिन मैंने देखा कि मनोरमा दिन के पिछले पहर मेरे द्वा पर पालकी से उतरी। उसने मेरे पास आकर हँसते-हँसते प्रणा किया।'

मैंने उसे देखकर कहा—'क्या हाल है, बेटी ?'

'अच्छी ही हूँ !'—वह बोली—'हाल अच्छा न होने पर को बेटी अपनी मां के घर हँसी-खुशी कैसे आ सकती है ?'

'मेरे समधी होशियार थे। उन्होंने मुझे कहला भेजा कि बहू का पांव भारी है, अतः सन्तान होने तक यदि वह अपनी मां पास ही रहे, तो अच्छा होगा। मैं समझ गई कि उन्होंने इस भय कि कहीं उनका लड़का अपनी गर्भवती पत्नी के साथ मार-पीट न करे उसे मेरे पास भेज दिया है। मैं कभी-कभी मनोरमा के शरीर पर ते लगाने की चेष्टा करती तो मनोरमा वैसा करने को मना कर दिय करती थी, क्योंकि उसके शरीर पर चोट के निशान थे, उन्हें व दिखाना नहीं चाहती थी।'

'कभी-कभी मेरा जमाई घर आकर मनोरमा को अपने घ लौटा ले जाने की जिद किया करता था, तब मैं उसे चुपचाप कु रुपये देकर लौटा दिया करती थी।'

'एक दिन मनोरमा बोली—'मां, मैं तुम्हारे रुपये-पैसे को अप कब्जे में रखूंगी', यह कह कर उसने मेरे हाथ से तालियों का गुच्छा लिया, तथा बक्स आदि को अपने अधिकार में कर लिया। वह नहीं चाहती थी कि इस प्रकार मैं उसके पति को रुपया-पैसा देती रहूं।'

'तब अन्त में एक दिन जमाई ने घर आकर मुझसे लाल आं करते हुए कहा—'मैं कल पालकी भेज दूंगा। यदि तुमने अपनी लड़क को न भेजा तो ठीक न रहेगा।'

'मैंने यह बात मनोरमा से कही तो उसने उत्तर दिया—'माँ, मेरे ससुर कलकत्ता गये हैं, वे आधे फागुन तक लौटेंगे, तभी मैं घर जाऊँगी।'

'परन्तु मैंने उसे समझाया—'तुम्हारे न जाने से वह और अधिक नाराज होंगे अतः तुम चली ही आओ।'-

'लाचार मनोरमा जाने को तैयार हो गई। उस दिन मैं उसके पास अधिक देर बैठ भी न सकी। उसकी ससुराल से आये हुए नौकर तथा कहारों को खिलाने-पिलाने मे ही व्यस्त रही। पालकी में सवार होते समय मनोरमा ने कहा—'माँ, मैं अब जा रही हूँ।'

'मुझे क्या पता था कि मनोरमा अब कभी इस घर में लौटकर न आयेगी, वह सदा के लिए ही जा रही है। मैंने उसे जैसे-तैसे विदा किया।'

'जिस रात वह ससुराल पहुँची, उसी दिन उसका गर्भपात हो गया। साथ ही वह सदा के लिए चिर निद्रा मे सो गई। जब तक मुझे यह समाचार मिला, उसके पूर्व ही उसकी लाश जलाई जा चुकी थी, अतः अन्त समय में, मैं उसका मुँह भी न देख पाई।'

'इस प्रकार एक-एक करके मेरे सभी स्वजन चले गये फिर भी मेरी विपत्ति का अन्त न हुआ। मेरे पति एवं पुत्र की मृत्यु के पश्चात् मेरे देवरों ने, मेरी सम्पत्ति के ऊपर अपने दाँत गड़ाना आरम्भ कर दिया। यद्यपि वे भली-भाँति जानते थे कि मेरी मृत्यु के पश्चात् सब सम्पति पर उनका अधिकार होगा, परन्तु वे उस समय तक के लिये ठहरने को तैयार न थे।'

'जब तक मनोरमा जीवित रही मैं अपने देवरों के भुलावे में भूलाई। मैंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को सुरक्षित रख छोड़ा था और मेरा यह विचार था कि मरने से पूर्व सब सम्पत्ति मैं मनोरमा को ही दे जाऊँगी। मेरे इस निश्चय को जानकर मेरे देवर और भी जल उठे।'

'नीलकान्त नामक मेरे पति का एक पुराना विश्वस्त नौकर था। उस सङ्कटकाल में वही मेरा सच्चा सहायक था। वह

देखभाल करता रहता तथा देवरों की कोई दाल न गलने देता था मैं जब कभी अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा देकर देवरों को सन्तु करने की बात कहती, तभी वह मुझे रोकता हुआ उनकी ओर निश्चिन्त रहने का आश्वासन दिया करता था। अन्त में मेरा हक हड़पने के लिये झगड़ा होने लगा। उसी समय एक दिन मेरी लड़की क देहान्त होगा। उस घटना के दूसरे ही दिन मेरे मँझले देवर ने आके मुझे वैराग्य ले लेने का उपदेश दिया। उसने समझाया—'अभी ईश्व ने तुम्हारे साथ जो किया है, उसे देखते हुए अब तुम्हें घर रहना उचि नहीं है। अब तो तुम किसी तीर्थ-स्थान में जाकर अपना शे जीवन व्यतीत कर दो। हम लोग तुम्हारे खाने-पहनने का प्रबन्ध कर रहेंगे'

'मैंने उसी समय अपने गुरु महाराज को बुलाकर उनसे इस अस यन्त्रणा से उद्धार पाने का उपाय पूछा।'

'उन्होंने मुझे हरि-मंदिर के भीतर ले जाकर उत्तर दिया—' गोपीरमण ही अब तुम्हारे सब कुछ हैं, ये ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

'उस समय से मैं दिन-रात ठाकुर-पूजा में संलग्न रहने लगी एक दिन मैंने नीलकान्त को बुलाकर कहा—'नीलबाबू! अब मैं अपन सम्पूर्ण सम्पत्ति देवरों को लिख देना चाहती हूं। वे मुझे वृत्ति के रूप प्रति मास कुछ रुपया दे दिया करेंगे।'

'नीलकांत ने उत्तर दिया—'आप स्त्री हैं, इन बातों को न समझतीं। ऐसा पागलपन मत कीजियेगा।'

'नीलकांत मेरा हक किसी को नहीं देना चाहता था। अब बहुत संकट में पड़ी। जमींदारी का काम मुझे विष तुल्य दिखाई पड़ता था परन्तु नीलकान्त को भी मैं कष्ट नहीं पहुँचाना चाह थी।'

'अन्त में, एक दिन मेरे मन में न जाने क्या आया कि मैंने नील कान्त की गैर जानकारी में, देवरों के कहने से एक कागज पर हस्ताक्ष कर दिये। उस कागज में क्या लिखा था, यह मैं भली भाँति नहीं जा

सकी। फिर मुझे उसकी कोई चिन्ता भी न थी। ससुर की सम्पत्ति को यदि उनके पुत्र पायें तो इसमें मेरा क्या बिगाड़ था ?'

'जब लिखा-पढ़ी रजिस्ट्री आदि सब हो गई, तब मैंने नीलकांत को बुलाकर कहा—'मेरे पास जो कुछ था, उस सबकी लिखा-पढ़ी मैंने देवरों को कर दी है। आप बुरा न मानियेगा।'

'नीलकांत चौंककर बोला—'अरे आपने यह क्या कर डाला ?'

'जब उसने दस्तावेज की नकल पढ़ी, तब उसे पूर्ण विश्वास हुआ कि वास्तव में मैंने अपना सब कुछ त्याग दिया है। इसे जानकर नीलकान्त के क्रोध की सीमा न रही। अपने मालिक की मृत्यु के पश्चात् अपनी सारी शक्ति एवं बुद्धि से मेरी तथा मेरी जमींदारी की सुरक्षा करना ही उसके जीवन का मुख्य ध्येय बन गया था। इसके लिए उसने अनेकों मुकदमे लड़े थे तथा अनेकों ही कष्ट उठाये थे। वह इसके लिये अपने घर का काम-काज भी नहीं देख पाता था। उसी हक को जब एक स्त्री की कलम ने एक ही घसीट से उड़ा दिया तो उसका हृदय अशान्ति से भर उठा। वह हताश होकर बोला—'मेरा आपका सम्बन्ध भी अब आज से समाप्त हो गया। मैं भी जाता हूँ।'

'मैंने उसे अपने को छोड़कर जाते हुए देखा। मैं अपनी भूल पर बार-बार पछताने लगी। मैंने उससे कहा—'आप रुष्ट न हों। मेरे पास कुछ रुपया है। मैं उसमें से आपको पाँच सौ दे रही हूँ। जब आपकी पुत्र-वधू आवे, तब मेरी ओर से आशीर्वाद स्वरूप, उसके लिए इन रुपयों से कोई गहना गढ़ा दीजियेगा।'

'मुझे अब इनकी आवश्यकता नहीं है,' उसने कहा—'मेरे स्वामी का जब सब कुछ चला गया, तो फिर इन पाँच सौ रुपयों को लेकर मैं क्या सुख पाऊंगा ? इन्हें आप अपने पास ही रखिये।' इतना कह कर वह चला गया।

'अब मैं पूजाघर में रहने लगी। एक दिन मेरे देवरों ने मुझसे कहा—'तुम्हें किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहिये।'

'मैं बोली—'मेरे लिए ससुर का घर ही सबसे बड़ा तीर्थ

जहाँ मेरे ठाकुरजी हैं, वहीं मैं रहूँगी।'

'अभी दो-एक कमरे मेरे अधिकार में थे, यह उन्हें सहन नहीं था। अतः वे एक दिन फिर बोले—'तुम्हारा जहाँ जी चाहे, अपने ठाकुरजी को लेकर चली जाओ। हम उसमें कोई हस्तक्षेप न करेंगे।'

'मैंने जब आनाकानी की तो वे बोले—'यहाँ रहने से तुम्हें खाना कपड़ा कौन देगा ?'

'तुमने जो मासिक वृत्ति निश्चित कर दी है, वही मेरे लिए बहुत होगी'—मैंने उत्तर दिया।'

'परन्तु दस्तावेज में उसका कोई जिक्र नहीं है।'

'मेरे ऊपर जैसे वज्र गिर पड़ा। लाचार मैं असहाय होकर विवाह के ठीक ३४ वर्ष बाद, ठाकुरजी को लेकर अपने ससुर के घर से निकल पड़ी। नीलकान्त को ढूँढ़ने पर पता चला कि वह मुझसे पहिले ही वृन्दावन चला गया था।'

'गाँव के तीर्थ-यात्रियों के साथ मैं काशी गई, परन्तु वहाँ भी मुझे शान्ति न मिली। मैं दिन-रात बैठी-बैठी रोया करती थी और हर समय यही मनाती थी कि हे भगवान ! जिस प्रकार मेरे बाल्यकाल में आप मेरे साथ सत्य भाव धारण किए हुए थे, उसी भाव से अब भी मुझे दर्शन दीजिए। परन्तु मेरे हृदय का ताप दूर नहीं हुआ।'

'अपनी आठ वर्ष की उम्र में जब से मैं ससुराल गई, तब से फिर कभी लौट कर अपने पिता के घर भी नहीं जा सकी। सुचरिता ! तुम्हारी मा के विवाह में जाने के लिए भी मैंने बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु उसमें कोई सफलता न मिली। केवल पिताजी के पत्र से ही मुझे तुम लोगों के जन्म का हाल मालूम हुआ था। अपनी बहिन की मृत्यु का समाचार जानकर मुझे जो दुःख हुआ, उसे मैं कैसे कहूँ ? तुम्हारे मातृ-हीन हो जाने पर भी, ईश्वर ने तुम्हें गोद में खिलाने का मुझे कभी कोई अवसर नहीं दिया।'

'तीर्थों में भ्रमण करने के पश्चात् भी जब मैंने यह देखा कि माया मेरा पीछा नहीं छोड़ती है, तब मैं तुम लोगों को ढूँढ़ने का प्रयत्न

करने लगी। यद्यपि मैंने यह सुन रक्खा था कि तुम्हारे पिता ने सनातन धर्म को त्याग कर ब्राह्मसमाजियों से अपना सम्पर्क स्थापित कर लिया है, फिर भी मेरे हृदय से तुम लोगों की ममता नहीं गई। तुम्हारी मा मेरी सगी बहिन थी। हम दोनों ने एक ही मा के पेट से जन्म लिया था। अतः ममता जाती भी तो कैसे?'

'काशी में एक सज्जन व्यक्ति से तुम्हारा पता पाकर ही मैं यहाँ आ पहुँची हूँ।'

३७

वरदासुन्दरी के न होने पर परेशबाबू ने हरिमोहिनी को अपने घर ठहरा लिया था और छत के ऊपर वाली कोठरी में उनके लिए ऐसा प्रबन्ध कर दिया था, जिससे उनके पूजा-पाठ में कोई विघ्न न पड़े।

वरदासुन्दरी जब लौटकर आईं तो वे अपने घर में एक परम वैष्णवी को ठहरी हुई देखकर जल उठीं। उन्होंने परेशबाबू से कहा—'आपने यह क्या किया? मैं किसी भी परदेशी स्त्री को अपने यहाँ ठहरने देना पसन्द नहीं करती।'

परेशबाबू बोले—'जब हमारा रहना पसन्द करती हो तो एक अनाथ विधवा का रहना पसन्द क्यों नहीं करतीं?'

सुचरिता आयु में मनोरमा के बराबर थी। उसे देखकर हरिमोहिनी का स्वभाव उससे मिल गया। सुचरिता का स्वभाव अत्यन्त शान्त था। कभी-कभी उसे पीछे से चुपचाप आते देखकर हरिमोहिनी चौंककर हँसती हुई कह उठती—'आओ, बेटी? आओ, तुम्हीं तो मेरे हृदय की मणि हो।' इतना कह कर वे सुचरिता के मस्तक पर प्यार से हाथ फेरतीं और मुँह चूमती आँसू बहाने लगती थीं। सुचरिता की आँखों में भी उस समय आँसू भर आते थे। वह उनके गले से लिपट कर कहती—'मौसी, मुझे तो जैसे खोई हुई माँ ही मिल गई है। मैं समझती हूँ, तुम्हारे रूप में वही फिर से लौट आई।'

कुछ ही दिन में मौसी के साथ, सुचरिता का

देखकर सभी दङ्ग रह गये थे।

वरदासुन्दरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हो उठती थीं। वे कहतीं—'इस लड़की को तो देखो, जिसे जीवन भर अपनी पुत्री की तरह पाल-पोस कर बड़ा किया, वही अब जैसे हमें बिल्कुल ही भूल बैठी है। इतने दिनों तक मौसी कहाँ थी? मैं पहिले ही जानती थी कि ये (परेश-बाबू) जो सुचरिता की दिन-रात प्रशंसा करते हैं, सो वह बाहर से चाहे भली दिखे परन्तु भीतर से उसका मन साफ नहीं है। हम लोगों ने इतने दिनों तक जो कुछ किया, वह जैसे व्यर्थ ही रहा।'

वरदासुन्दरी जानती थीं कि यदि वे परेशबाबू के सामने हरि-मोहिनी के ऊपर क्रोध प्रकट करेंगी तो उन्हें अवश्य अपमानित होना पड़ेगा। यह विचार कर वे हरिमोहिनी के विरुद्ध अपना दल बढ़ाने में जुट पड़ीं। अपने समाज के सभी प्रधान-अप्रधान लोगों से वे हरिमोहिनी के सम्बन्ध में आलोचना करतीं। कहतीं—'वह हिन्दू है, देवता पूजती है, उसके कुसंस्कारों को देखकर मेरी लड़कियां भी बिगड़ जायेंगी' आदि।'

लोगों के सामने आलोचना करने से ही वरदासुन्दरी को सन्तोष न हुआ, वे हरिमोहिनी को कष्ट भी देने लगीं। हरिमोहिनी का चौका बर्तन करने के लिए एक ग्वाला नियुक्त था, उसे वे हरिमोहिनी के काम के समय कहीं अन्यत्र भेज देतीं। जब उसकी खोज की जाती, तो वे चिल्लाकर कहतीं—'रामदीन है तो सही, उससे काम क्यों नहीं कर लेतीं? इतने नेम से रहना है, तो फिर ब्राह्म के घर में क्यों आई हो? हमारे यहाँ जाति-पांति का विचार नहीं होता। रामदीन दुसाध है तो क्या हुआ? जब हम छुआछात नहीं मानतीं तो तुम्हारा हिंदू-धर्म यहाँ कैसे निभ सकेगा?' आदि।

अनेक कष्ट देकर भी वरदासुन्दरी हरिमोहिनी को न भगा सकीं, उसने सब कष्ट सहकर भी वहीं रहने का प्रण ठान रक्खा था। हरिमोहिनी ने जब देखा कि पानी लाने वाला कोई नहीं है तो उसने रसोई बनाना ही बन्द कर दिया। वह दूध और फूलों से ठाकुरजी का

भोग लगाकर उसी प्रसाद के सहारे दिन काटने लगी। सुचरिता को यह देखकर दुःख होता तो वह समझाकर कहती—'बेटी! चिन्ता न करो। मेरे लिए यह भी आनन्ददायक ही है।'

सुचरिता ने पूछा—'यदि मैं दूसरी जाति के हाथ का स्पर्श किया हुआ खाना छोड़ दूँ तो क्या तुम मुझे अपना काम करने दोगी?'

हरिमोहिनी बोली—'बेटी, मेरे लिए तुम अपना धर्म क्यों छोड़ो? मैं तो तुम्हें अपने पास पाकर ही अपनी छाती ठण्डी कर लेती हूँ। परेशबाबू तुम्हारे पिता के समान पूज्य एवं गुरु हैं। उन्होंने तुम्हें जो शिक्षा दी है, उसे मानकर चलने से ही ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।'

वरदासुन्दरी के उपद्रवों को हरिमोहिनी इस प्रकार सहन करने लगी, जैसे वह उन्हें कुछ समझती ही नहीं थी। प्रतिदिन प्रातःकाल परेशबाबू उसके पास आकर जब पूछते—'कोई कष्ट तो नहीं है?' तो वह यही उत्तर देती—'आपकी दया से बड़े आनन्द में हूँ।'

परन्तु वरदासुन्दरी का यह व्यवहार सुचरिता को असह्य हो उठा। वह अपना दुःख किसी को सुनाना नहीं चाहती थी। परेशबाबू से शिकायत करना तो उसके लिए सर्वथा असम्भव ही था। वह भी चुपचाप सब सहने लगी।'

परंतु इसका परिणाम और ही निकला। सुचरिता वरदासुन्दरी के हाथ से निकलकर हरिमोहिनी की भक्त बन गई। वह दिन भर उसी के पास बैठी रहती तथा उसी के हाथ का दिया प्रसाद खाकर रह जाती थी। यह देखकर अन्त में हरिमोहिनी को फिर से रसोई बनाने का प्रबंध करना पड़ा। तब एक दिन सुचरिता बोली—'मौसी, तुम जैसे कहोगी, अब मैं वैसे ही रहूँगी। परंतु मैं तुम्हारे लिए स्वयं पानी भर कर लाया करूँगी।'

हरिमोहिनी ने उत्तर दिया—'बेटी, मैं अपने लिए कुछ नहीं कहती, परन्तु उस जल से ठाकुरजी की पूजा हो सकेगी?'

सुचरिता ने पूछा—'मौसी, तो क्या तुम्हारे ठाकुरजी भी जाति-

पति मानते हैं ? क्या वे भी किसी समाज के सदस्य हैं ? क्या उन्हें भी प्रायश्चित करना पड़ेगा ?'

लाचार, सुचरिता की भक्ति के सम्मुख एक दिन हरिमोहिनी को झुकना पड़ा। सुचरिता की सेवा को उसने स्वीकार कर लिया। बहिन की देखा-देखी सतीश भी मौसी की रसोई में खाना खाने लगा। इस प्रकार परेशबाबू के घर में तीनों ने मिल कर अपना एक अलग ही आश्रम स्थापित कर लिया। केवल ललिता ही इन दोनों आश्रमों के बीच में सेतु की भांति बनी रहती थी। अपनी अन्य पुत्रियों की भांति, ललिता को भी हरिमोहिनी के पास न जाने देने की सामर्थ्य वरदासुन्दरी में न थी।'

३८

वरदासुन्दरी ने सभा के लिए, अपनी ब्राह्म-साथिनों को प्रायः अपने घर पर बुलाना आरम्भ कर दिया। उनकी सभा छत के ऊपर ही होती थी। अपनी स्वाभाविक सरलता के अनुसार हरिमोहिनी उन स्त्रियों का स्वागत-सत्कार करती थीं, परन्तु बदले में वे उनके प्रति जो अनादर प्रकट करती थीं यह उनसे छिपा न रहा। उनमें से अनेक स्त्रियां तो हरिमोहिनी के सामने ही, उनकी आलोचना करने पर उतर आती थीं।'

सुचरिता अपनी मौसी के इस अनादर को चुपचाप सहन कर लेती थी, परन्तु अपने मनोभावों द्वारा यह अवश्य प्रकट कर देती थी कि मैं अपनी मौसी के साथ हूं। किसी दिन जब भोजन का विशेष आयोजन होता था, उस समय वरदासुन्दरी द्वारा सुचरिता को खाने के लिए बुलाये जाने पर, वह उनसे स्पष्ट मना कर देती थी कि मैं नहीं जाऊंगी।'

वरदासुन्दरी पूछतीं—'क्या तुम हम लोगों के साथ बैठकर खा भी नहीं सकतीं ?'

सुचरिता कहती—'नहीं !'

तब वरदासुन्दरी अपनी सहेलियों से कहती—'सुचरिता भी आजकल हिन्दू हो गई है, इसी से अब हमारे हाथ का छुआ नहीं खाती है।'

कभी-कभी हरिमोहिनी परेशान होकर कह उठती—'तुम जाकर खा आओ न !'

हरिमोहिनी के कारण अपने को इस प्रकार अनादृत होते देखकर सुचरिता को कभी-कभी बड़ा कष्ट होता, परन्तु वह उस कष्ट को कुछ गिनती नहीं थी। एक दिन एक ब्राह्म स्त्री जब कौतूहलवश जूता पहिने हरिमोहिनी के कमरे में जाने लगी, उस समय सुचरिता ने बीच में खड़ी होकर उसे रोकते हुए कहा—

'इस कमरे में मत जाना !'

'क्यों ?'

'वहां ठाकुरजी हैं।'

'तो क्या तुम लोग नित्य ठाकुरजी की पूजा करते हो ?'

'हां, नित्य पूजा करती हूँ !'—हरिमोहिनी ने उत्तर दिया।

'ठाकुरजी पर तुम्हारी भक्ति है ?'

'मेरे ऐसे भाग्य कहां जो उन पर कुछ भक्ति हो सके। भक्ति होने पर तो अपने जन्म को ही सफल न समझ लेती ?'

ललिता उस दिन वहां उपस्थित थी। उसने मुँह लाल करके आने वाली स्त्री से पूछा—'तुम जिसकी उपासना करती हो क्या उसकी भक्ति नहीं करतीं ?'

'क्यों नहीं करती ?'—उसने उत्तर दिया।

'तुम क्या भक्ति करोगी ?'—ललिता ने सिर हिलाते हुए कहा—'तुम्हें यह भी तो नहीं मालूम है कि भक्ति करती भी हो अथवा नहीं।'

इस पर वह स्त्री चुपचाप वहां से चली गई।

हरिमोहिनी ने सुचरिता को अपना आचार-विचार न बदलने के लिए अनेकों प्रयत्न किए, परन्तु उन्हें सफलता न मिली।

इस घटना के पूर्व वरदासुन्दरी तथा हारानबाबू में बहुत मन-

मुटाव रहा करता था, परन्तु अब दोनों में खूब मेल हो गया। वरदासुन्दरी कहतीं—'कोई कुछ भी क्यों न कहे, परन्तु ब्राह्म-समाज के आदर्श को पवित्र रखने का इच्छुक, हारानबाबू से अधिक कोई नहीं है।' उधर हारानबाबू भी ब्राह्म-समाजी परिवार को निष्कलंक रखने का सम्पूर्ण श्रेय वरदासुन्दरी को ही देते, जब कि उनकी इस प्रशंसा के भीतर परेशबाबू के प्रति एक विशेष प्रकार का आक्षेप भी विद्यमान रहता था।

एक दिन परेशबाबू के ही सामने हारानबाबू ने सुचरिता से कहा—'सुना है, तुम ठाकुरजी का प्रसाद खाने लगी हो!'

सुचरिता का मुँह क्रोध से लाल हो गया, परन्तु वह ऐसा भाव प्रदर्शित किए हुए, जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं है, मेज पर रक्खी कलम-दवात तथा पुस्तकों को ठीक करती रही। तभी परेशबाबू ने उसकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखते हुए हारानबाबू को उत्तर दिया—'हम लोग जो भी खाते हैं, वह सब ठाकुरजी का ही तो प्रसाद है।'

हारानबाबू बोले—'परन्तु, अब सुचरिता हम लोगों के ठाकुरजी को छोड़ देना चाहती है।'

परेश—'यदि यही बात है तो इसके विरुद्ध कुछ कहने से क्या लाभ होगा?'

हारान—'जो आदमी धारा में बहा जा रहा हो, उसे बाहर निकालने का प्रयत्न तो करना ही चाहिये।'

परेश—'बहते हुए व्यक्ति के सिर पर ढेला मारने को बाहर निकालने की चेष्टा नहीं कहा जा सकता। हारानबाबू! आप निश्चिन्त रहें, मैं सुचरिता को इतने दिनों से देख रहा हूँ। यदि वह गलत मार्ग पर जा रही होती तो मैं आप लोगों से पहिले ही समझ जाता और यों निश्चिन्त न बैठा रहता।'

हारान—'सुचरिता यहीं उपस्थित है, क्यों न उससे पूछ लिया जाय। सुना है, अब यह सब के हाथ का छुआ हुआ खाना भी नहीं खाती। यह असत्य है क्या?'

सुचरिता ने हारानबाबू की ओर मुँह करके कहा—'इस बात को तो बाबूजी भी जानते हैं कि अब मैं सबके हाथ का छुआ नहीं खाती। यदि वे मेरे व्यवहार को बुरा नहीं मानते, तो औरों के मानने से क्या होता है? यदि आपको मेरा व्यवहार अच्छा न लगता हो तो आप मेरी जो चाहे जहाँ बुराई कीजिए। बाबूजी को परेशान क्यों करते हैं? वे आपकी कड़ी बातों को भी शान्तिपूर्वक सहन कर लेते हैं, यह शायद उसी का परिणाम है जो आप इतना सब कुछ कह सके हैं।'

हारानबाबू चकित होकर विचारने लगे कि सुचरिता ने भी आज बोलना सीख लिया है क्या।

हारानबाबू की यह धारणा बन गई थी कि उनके समाज में लोगों ने अपने चरित्र मे जो कुछ श्रेष्ठ परिवर्तन किया है, वह सब उन्हीं के कारण से हुआ है। इसी धारणा के अनुसार अब तक जिस किसी ने उनके समक्ष सुचरिता की प्रशंसा की थी तो वह प्रशंसा भी वे अपनी स्वय की प्रशंसा ही समझ बैठे थे। उन्हें आशा थी कि वे अपने उपदेश एवम् संसर्ग द्वारा सुचरिता के चरित्र को इतना ऊँचा उठा देंगे कि कभी वह समाज एक प्रमाण के रूप मे उपस्थित किया जाया करेगा।

परन्तु आज उसी सुचरिता द्वारा ऐसी बातें किये जाने पर भी हारानबाबू को अपनी योग्यता के सम्बन्ध मे कुछ कमी अनुभव नहीं हुई। उन्होंने सारा दोष परेशबाबू के मत्थे मढ़ दिया। यद्यपि सब लोग परेशबाबू की प्रशंसा करते थे, परन्तु वे उनसे सहमत न हुए।

हारानबाबू की बातों से सुचरिता को बहुत पीड़ा होने लगी उधर ब्राह्मसमाज में भी परेशबाबू की जहा-तहाँ आलोचना होने लगी थी। सुचरिता की मौसी घर मे सब लोगो के लिये भार स्वरूप हो उठी थी, इन सब कारणो से वह दिन-रात सोच मे पड़ी रहती। इस सङ्कट से उद्धार पाने का, उसे कोई रास्ता ही नहीं सूझ रहा था।

इधर वरदासुन्दरी सुचरिता का विवाह शीघ्र कर देने के लिये परेशबाबू को परेशान करने लगीं। एक दिन वे बोलीं—'अब सुचरिता की जिम्मेदारी हम अधिक नहीं सह सकते। यदि आपने शीघ्र ही इसका

विवाह न किया तो इसकी देखा-देखी मेरी और लड़कियां भी बिग
जायेंगी। ललिता पहिले ऐसी न थी, परन्तु अब वह भी जो जी में आ
कर बैठती है। उस दिन वह विनय के साथ ही अकेली चली आ
जिसके कारण मैं लज्जा से मरी जा रही हूँ। आप निश्चय मानिये
इस कार्य में सुचरिता का हाथ भी अवश्य था'। आप अपनी लड़कियों
भी अधिक सुचरिता पर प्यार करते हैं, परन्तु अब यह सब अधिक दि
तक न चल सकेगा।'

घर के लोगों की इस अशान्ति के कारण परेशबाबू भी चिन्ति
हो उठे। हरिमोहिनी का रहना ही अशान्ति का कारण था।
जानते थे कि वरदासुन्दरी अपनी गड़बड मचाने में जितनी ही अधि
असफल होंगी, बात उतनी ही अधिक जोर पकड़ती जायेगी। सुचरि
के विवाह का प्रस्ताव भी वरदासुन्दरी ने इसी कारण रक्खा था, यह
उनसे छिपा न था। कुछ देर विचार करके उन्होंने उत्तर दिया—'य
हारानबाबू सुचरिता को तैयार कर सकें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी

वरदासुन्दरी बोलीं—'यह कई बार तो अपनी स्वीकृति दे चु
है, फिर आप निरन्तर टालमटूल क्यों कर रहे हैं ?'

परेश—'सुचरिता के हृदय में हारानबाबू के प्रति क्या भाव है,
इसे अभी तक ठीक-ठीक नहीं जान सका हूँ। अतः जब तक वे दो
पक्का निश्चय न कर लें, तब तक मैं इस सम्बन्ध में कुछ न करूंगा

वरदा०—'उस लड़की के मन की बात समझना तो असम्भ
ही है। वह बाहर से कुछ है और भ

दूसरे दिन वरदासुन्दरी ने ह
बाबू कमरे में आकर सुचरिता के पा
परन्तु सुचरिता ने उनकी ओर आँख

हारानबाबू ने सुचरिता
कहना चाहता हूं, उस पर ध्यान देन

सुचरिता ने कुछ उत्तर न दि
आ गई।

हारानबाबू उसे देखकर बोले—'ललिता, मैं आज सुचरिता से कुछ खास बातें करना चाहता हूँ।'

यह सुनकर ललिता जब जाने लगी तो सुचरिता ने उसका आंचल पकड़कर रोक लिया। ललिता बोली—'हारानबाबू तुम से कुछ खास बात करना चाहते हैं।' परन्तु सुचरिता इसका कोई उत्तर न देकर, उसका आंचल जोर से पकड़े बैठी रही। तब ललिता पास की ही एक कुर्सी पर बैठ गई।

हारानबाबू ने यह देखकर, बिना कोई भूमिका बांधे एक साथ कहना आरम्भ किया—सुचरिता, अब मैं विवाह में विलम्ब होना उचित नहीं समझता। परेशबाबू ने कहा है कि तुम्हारी सम्मति पाने पर सब निश्चय हो जायेगा। मैंने विचार किया है कि इस रविवार के बाद अगले रविवार को ही......।'

सुचरिता बीच में ही बोल पड़ी—'नहीं!'

सुचरिता के मुँह से 'नहीं' सुनकर हारानबाबू एक साथ ठिठक गये। उन्होंने रुष्ट होकर कहा—'नहीं क्यों! क्या तुम और अधिक विलम्ब करना चाहती हो?'

'नहीं!'

'तो फिर?'

'मेरी सम्मति विवाह के लिए नहीं है।'

'इसके मानी?'

तभी ललिता ने हँसते हुए कहा—'हारानबाबू, आज आप 'मानी' और 'अर्थ' कैसे भूल गये?'

हारानबाबू ने ललिता की ओर कड़ी दृष्टि से देखते हुए कहा—'मातृभाषा भूल जाने की भूल स्वीकार करना सरल हो सकता है, परन्तु जिस व्यक्ति पर मेरी निरन्तर श्रद्धा रही हो, मैं उसे भी ठीक से नहीं समझ सका, यह स्वीकार कर लेना सरल नहीं है।'

ललिता बोली—'दूसरे के मन का भाव समझने में समय लगता है, परन्तु कभी-कभी यह बात अपने बारे में भी लागू हो जाती है।'

बहुत से लोग अपने मन का भार भी नहीं समझ पाते।'

'परन्तु मेरी बात, विचार अथवा व्यवहार में अभी तक कोई अन्तर नहीं आया है'—'हारानबाबू ने कहा—'मैं अपने को परखने का किसी को अवसर नहीं देता। न हो तो, सुचरिता ही कह दे कि मैं ठीक कह रहा हूं, अथवा नहीं ?'

ललिता कुछ कहने जा रही थी, परन्तु सुचरिता उसे बीच में ही रोकती हुई बोली—'आप ठीक कहते हैं, मैं आपको कोई दोष नहीं देती।'

'यदि दोष नहीं देतीं तो फिर मेरे साथ यह अन्याय क्यों कर रही हो ?'

'आप इसे अन्यय भले ही कहें, परन्तु......'

इसी समय बाहर से किसी ने पुकारा—'बहिन, घर में ही हो ?'

सुचरिता प्रसन्न होकर बोल उठी—'आइये, विनयबाबू, चले आइये।'

विनय ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—'बहिन, तुम मुझे विनयबाबू कहकर, ऊपर के शिखर पर चढ़ा कर, क्यों लज्जित कर रही हो ? मैं तो केवल विनय ही हूं।' तभी हारानबाबू के उदास चेहरे की ओर लक्ष्य करते हुए, वह फिर बोल उठा—मेरे बहुत दिनों से न आने के कारण, कहीं आप नाराज तो नहीं हो गए हैं ?'

'नाराज होने की तो कोई बात नहीं है'—हारानबाबू ने इस परिहास में बरबस योग देते हुए कहा—'परन्तु आप आज बड़े बेमौके हैं। मैं सुचरिता के साथ कुछ विशेष बातें कर रहा था।'

'अरे, यह तो मैं आज तक नहीं जान सका कि मेरा आना कब ठीक रहेगा ?' कहकर विनय ने बाहर जाने का उपक्रम किया।

परंतु तभी सुचरिता बोली—'आप कहां चल दिए ? इनके साथ तो जो बात होनी थी, वह समाप्त हो गई। आप ठीक अवसर पर आ गये।'

विनय ने समझ लिया कि मेरे आ जाने से सुचरिता किसी सङ्कट

से उद्धार पा गई है। अतः वह प्रसन्नतापूर्वक कुर्सी पर फिर बैठते हुए बोला—'मैं किसी का मन दुखाना नहीं चाहता जब कोई बैठने को कह रहा है। तो अवश्य बैठूँगा।'

हारानबाबू कुछ न कहकर चुप बैठे रहे। वे मन ही मन सोचने लगे—'मैं भी जब तक सुचरिता से अपने मन की सब बातें न कर लूँगा, यहीं बैठा रहूँगा।'

बहुत देर तक वार्तालाप चलने के बाद, जब यह बात स्पष्ट रूप से सबकी समझ में आ गई कि हारानबाबू नहीं उठेंगे तब सुचरिता विनय से बोली—'आप बहुत दिनों से मौसी से नहीं मिले। वे नित्य ही आपको याद करती हैं। क्या उनसे मिलने के लिए आप एक बार चलेंगे?'

विनय कुर्सी से उठता हुआ बोला—'यहाँ आया हूँ तो उनके दर्शन किये बिना कैसे चला जाऊँगा।'

सुचरिता विनय को साथ लेकर अपनी मौसी के पास चली गई। तब ललिता ने हारानबाबू से कहा—'मुझसे तो आपको कोई विशेष काम नहीं है?'

'नहीं'—हारानबाबू ने कहा—'प्रतीत होता है, तुम्हें कहीं अन्यत्र आवश्यक कार्य है, तुम जा सकती हो।'

ललिता उनकी बात का भेद समझ गई। अतः उद्धत स्वभाव से सिर हिलाती हुई बोली—'आज विनयबाबू बहुत दिनों बाद आये हैं, अतः मुझे उनसे बातचीत करने जाना है।'

इसके बाद वह भी वहाँ से उठ गई।

हरिमोहिनी विनय को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। यहां आने वाले सभी लोग जब कि उन्हें एक विचित्र-सा जीव समझते थे, तब विनय ही उन्हें एकमात्र सहारा दीखता था। विनय उन्हें अपने घर के लोगों की भाँति देखता था, इसलिए उनके हृदय में बहुत सन्तोष होता था। कुछ दिन के परिचय में ही विनय को उन्होंने आत्मीय के समान अपने हृदय में स्थान दे दिया था।

बहुत से लोग अपने मन का भार भी नहीं समझ पाते।'

'परन्तु मेरी बात, विचार अथवा व्यवहार में अभी तक कोई अन्तर नहीं आया है'—'हारानबाबू ने कहा—'मैं अपने को परखने का किसी को अवसर नहीं देता। न हो तो, सुचरिता ही कह दे कि मैं ठीक कह रहा हूँ, अथवा नहीं ?'

ललिता कुछ कहने जा रही थी, परन्तु सुचरिता उसे बीच में ही रोकती हुई बोली—'आप ठीक कहते हैं, मैं आपको कोई दोष नहीं देती।'

'यदि दोष नहीं देतीं तो फिर मेरे साथ यह अन्याय क्यों कर रही हो ?'

'आप इसे अन्यय भले ही कहें, परन्तु......'

इसी समय बाहर से किसी ने पुकारा—'बहिन, घर में ही हो ?'

सुचरिता प्रसन्न होकर बोल उठी—'आइये, विनयबाबू, चले आइये।'

विनय ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—'बहिन, तुम मुझे विनयबाबू कहकर, ऊपर के शिखर पर चढ़ा कर, क्यों लज्जित कर रही हो ? मैं तो केवल विनय ही हूँ।' तभी हारानबाबू के उदास चेहरे की ओर लक्ष्य करते हुए, वह फिर बोल उठा—मेरे बहुत दिनों से न आने के कारण, कहीं आप नाराज तो नहीं हो गए हैं ?'

'नाराज होने की तो कोई बात नहीं है'—हारानबाबू ने इस परिहास में बरबस योग देते हुए कहा—'परन्तु आप आज बड़े बेमौके हैं। मैं सुचरिता के साथ कुछ विशेष बातें कर रहा था।'

'अरे, यह तो मैं आज तक नहीं जान सका कि मेरा आना कब ठीक रहेगा ?' कहकर विनय ने बाहर जाने का उपक्रम किया।

परंतु तभी सुचरिता बोली—'आप कहाँ चल दिए ? इनके साथ तो जो बात होनी थी, वह समाप्त हो गई। आप ठीक अवसर पर आ गये।'

विनय ने समझ लिया कि मेरे आ जाने से सुचरिता किसी सङ्कट

मे उद्धार पा गई है। अतः वह प्रसन्नतापूर्वक कुर्सी पर फिर बैठते हुए बोला—'मैं किसी का मन दुखाना नहीं चाहता जब कोई बैठने को कह रहा है। तो अवश्य बैठूंगा।'

हारानबाबू कुछ न कहकर चुप बैठे रहे। वे मन ही मन सोचने लगे—'मैं भी जब तक सुचरिता से अपने मन की सब बातें न कर लूंगा, यहीं बैठा रहूंगा।'

बहुत देर तक वार्तालाप चलने के बाद, जब यह बात स्पष्ट रूप से सबकी समझ मे आ गई कि हारानबाबू नहीं उठेंगे तब सुचरिता विनय से बोली—'आप बहुत दिनों से मौसी से नहीं मिले। वे नित्य ही आपको याद करती हैं। क्या उनसे मिलने के लिए आप एक बार चलेंगे?'

विनय कुर्सी से उठता हुआ बोला—'यहाँ आया हूं तो उनके दर्शन किये बिना कैसे चला जाऊंगा।'

सुचरिता विनय को साथ लेकर अपनी मौसी के पास चली गई। तब ललिता ने हारानबाबू से कहा—'मुझसे तो आपको कोई विशेष काम नही है?'

'नहीं'—हारानबाबू ने कहा—'प्रतीत होता है, तुम्हें कहीं अन्यत्र अवश्यक कार्य है, तुम जा सकती हो।'

ललिता उनकी बात का भेद समझ गई। अतः उद्धत स्वभाव से सिर हिलाती हुई बोली—'आज विनयबाबू बहुत दिनों बाद आये हैं, अतः मुझे उनसे बातचीत करने जाना है।'

इसके बाद वह भी वहाँ से उठ गई।

हरिमोहिनी विनय को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। यहां आने वाले सभी लोग जब कि उन्हें एक विचित्र-सा जीव समझते थे, तब विनय ही उन्हें एकमात्र सहारा दीखता था। विनय उन्हें अपने घर के लोगों की भांति देखता था, इसलिए उनके हृदय में बहुत सन्तोष होता था। कुछ दिन के परिचय मे ही विनय को उन्होंने आत्मीय के समान अपने हृदय में स्थान दे दिया

विनय के, हरिमोहनी के पास पहुँचने के कुछ देर बाद ही ल
कभी वहां नहीं जाती थी। परंतु आज हारानबाबू द्वारा किये गः
प्रहार की चोट खाकर, वह सब संकोच त्याग कर निर्भयता से
जा पहुँची। विनय भी उससे निस्संकोच बातें करने लगा, यहां त
इन लोगों के जोर-जोर से बातचीत करने का स्वर कभी
बैठक में अकेले बैठे हुए हारानबाबू के हृदय को भी बेध
था।

वरदासुन्दरी ने जब यह सुना कि सुचरिता ने हारानबाबू वे
विवाह करने से मना कर दिया है तो वे एकदम अधीर होकर हारा
के पास जाकर बोलीं—'हारानबाबू, आपका काम सीधेपन से न ह
जब वह कई बार अपनी सम्मति दे चुकी है और ब्राह्मसमाज के
लोगों के कानों में यह बात पड़ चुकी है, तब उसके सिर हिला देने
सब काम ठप्प नहीं हो जायेगा, आप अपना दावा किसी प्रकार न छ
देखें, वह क्या करती है ?'

हारानबाबू को इस प्रकार उत्साहित करना, अग्नि
डालने के समान था। वे अभिमान से सिर उठाकर मन ही मन बो
'सुचरिता को मेरी बात माननी ही पड़ेगी। मैं सुचरिता को त्या
से त्याग सकता हूं, परन्तु इस प्रकार ब्राह्म-समाज का मस्तक नीच
हुए नहीं देख सकता।'

विनय ने आत्मीयता प्रकट करने के लिए हरिमोहिनी से
प्रसाद पाने की इच्छा व्यक्त की। हरिमोहिनी तुरन्त एक कटोरे
मक्खन, मेवा, मिश्री, केला तथा एक कटोरी में थोड़ा-सा दूध ले अ
विनय हँसकर बोला—'मैं तो असमय में भूख की बात कहकर
को कष्ट देना चाहता था, परन्तु देखता हूं कि मैं ही ठगा गया।'
कहकर वह बड़े आडम्बर से भोजन करने बैठ गया। उसी समय
सुन्दरी भी वहां जा पहुँची। विनय ने उन्हें नमस्कार करते हुए,
पर बैठे-बैठे ही कहा—'बहुत देर तक मैं नीचे बैठा रहा, परन्तु
दर्शन ही नहीं हुए।'

वरदासुन्दरी इसका कोई उत्तर न देकर, सुचरिता की ओर देखती हुई बोली—'और यह तो यहाँ बैठी है। सब लोग इधर आनन्द मना रहे हैं, उधर बेचारे हारानबाबू इसके लिए सवेरे से बैठक में बैठे हैं, मानो वे इसके बाग के माली हों। विनयबाबू, आज तक कभी मैंने सुचरिता को ऐसा व्यवहार करते नहीं देखा था, परन्तु न जाने आज-कल यह कहाँ-कहाँ से क्या सीख रही है? हम तो समाज के लोगों को अपने मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहे। इतने दिनों तक जो शिक्षा दी थी, वह न जाने कहाँ विलीन हो गई? क्या कारण है, कुछ समझ में ही नहीं आता?'

हरिमोहिनी डरती हुई सुचरिता से कह उठी—'नीचे कोई बैठा है, यह तो मुझे मालूम भी नहीं था। बड़ा बुरा हुआ बेटी, तुम तुरन्त जाओ। मुझसे बड़ी भूल हुई।'

'इसमें हरिमोहिनी की कोई भूल नहीं है'—ललिता यह कहना चाहती थी, परन्तु तभी सुचरिता ने उसका हाथ जोर से दबाकर रोक दिया। फिर वरदासुन्दरी की बात का कोई उत्तर न देकर वह नीचे चली गई।

यह पहिले बताया जा चुका है कि विनय ने वरदासुन्दरी का स्नेह अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। उन्हें यह भी आशा थी कि विनय हम लोगों में हिलमिलकर एक न एक दिन अवश्य ब्राह्म-समाजी हो जायेगा। परंतु आज विनय को अपने विपक्षी के घर में बैठा देखकर उन्हें जलन हो उठी। उस भ्रष्टाचार में अपनी पुत्री ललिता को भी उसकी सहयोगिनी देखकर, वे और भी भभक उठीं। उन्होंने ललिता से रूखे स्वर में पूछा—'यहाँ तेरा क्या काम है?'

'विनयबाबू आए हैं, यहीं!'—ललिता ने उत्तर दिया।

'विनयबाबू जिसके पास आए हैं, उसी को उनका आतिथ्य करने देना चाहिए। तुम नीचे चलकर काम करो।'

ललिता ने सोचा—'सम्भवतः हारानबाबू ने विनयबाबू के साथ सुचरिता तथा मेरे विषय में मा से कोई ऐसी बात कही है, जिसे कहने

का उन्हें कोई अधिकार न था।' विचार कर ही वह प्रगल्भतापूर्वक बोली—'विनयबाबू बहुत दिनों बाद आये हैं। उनसे कुछ बातें करने के बाद आऊँगी।'

ललिता की बोली से बरदासुंदरी समझ गईं कि अब उनका कोई जोर न चलेगा। अतः हरिमोहिनी के सम्मुख अपने पराभव की दृष्टि से वे फिर कुछ न कहकर, चुपचाप नीचे चली गईं।

अपनी मां के समक्ष तो ललिता ने विनय के साथ बातें करने का उत्साह प्रकट किया था, परन्तु उनके चले जाने पर वह उत्साह तिरोहित हो गया। तीनों व्यक्ति एक विचित्र भाव लिए चुप बैठे रहे। कुछ देर बाद ललिता वहां से उठकर अपने कमरे में चली गई और भीतर से द्वार बंद कर लिया।

विनय समझ गया कि इस घर में हरिमोहिनी की क्या स्थिति है। बातचीत के दौरान में उसने सब बातें मालूम कर लीं। अन्त में हरिमोहिनी बोलीं—'भैया, मुझ जैसे अनाथों को किसी के घर रहना ठीक नहीं है। मैं किसी तीर्थ में जाकर देव-सेवा में लगती तो ठीक रहता। मेरे पास जो रुपया है, उससे कुछ दिन तो काम चल ही जाता। रुपया समाप्त होने पर किसी के यहां रसोई-पानी का काम करके भी जीवन बिताया जा सकता था। परन्तु जैसे किसी डूबते हुए को तिनके का सहारा मिल जाये, फिर वह उसे छोड़ना नहीं चाहता, यही स्थिति मेरी भी हो गई है। राधारानी और सतीश मेरे लिए अवलम्ब बन गये हैं। इन्हें छोड़कर कहीं चले जाने की बात सोचते ही मेरे प्राण सूखने लगते हैं। इसी चिन्ता में रात को नींद भी नहीं आती। तुमसे सच कहती हूं कि जब से मैंने इन दोनों को पाया है, तब से ठाकुरजी की पूजा-सेवा में भी उतना ध्यान नहीं लगता है। इन दोनों से अलग हो जाने पर तो ठाकुरजी की पूजा कभी कर ही नहीं सकूंगी।'

इतना कहते हुए उन्होंने आंचल से अपनी दोनों आंखें पोंछ डालीं।'

३६

नीचे बैठक में आकर सुचरिता ने हारानबाबू से कहा—'आपको जो कहना-सुनना हो कह लीजिये !'

हारानबाबू बोले—'बैठ तो जाओ।'

सुचरिता जहाँ की तहाँ मौन खड़ी रही।

हारानबाबू ने कहा—'तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, सुचरिता !'

'आपने भी मेरे साथ अन्याय किया है।'

'सो कैसे ? मैंने तुम्हें जो वचन दिया था, उस पर मैं तो अब भी....'

सुचरिता बीच में ही बोल पड़ी—'केवल मुँह की बात से ही न्याय नहीं होता। उस बात पर बल देकर, क्या आप मेरे ऊपर अत्याचार करना चाहते हैं ? सहस्र मिथ्या की अपेक्षा एक सत्य क्या बड़ा नहीं होता ? यदि मैंने कोई भूल सौ बार की, तो क्या आप उसी भूल को सबसे पहले ग्रहण करेंगे ? आज जब मुझे अपनी भूल ज्ञात हो गई है, तो मैं अपनी पिछली किसी भी भूल को ग्रहण नहीं करूँगी। उसे ग्रहण करना ही मेरा अन्याय होगा।'

हारानबाबू ने अनुमान भी नहीं किया था कि सुचरिता में कभी इतना बड़ा परिवर्तन हो सकता है। वे मन-ही-मन सुचरिता के नये साथियों पर दोषारोपण करते हुए बोले—'तुमने कौन-सी भूल की थी ?'

'उसे आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं ? पहिले मेरा मन था अब नहीं है—क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है ?'

'परन्तु हम लोग ब्राह्मसमाज के सम्मुख उत्तरदायी हैं। समाज के लोगों के आगे तुम क्या उत्तर दोगी और मैं भी क्या कहूँगा ?'

'मैं कुछ भी नहीं कहूँगी। आप कहना चाहें तो कह दीजियेगा कि सुचरिता की आयु छोटी है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं है अथवा और भी बातें जो कहें, परन्तु इस सम्बन्ध में मेरा अन्तिम निश्चय

कर वह बहुत बेचैन रहती थी। सुचरिता अभी कोई निर्णय नहीं कर रही थी कि अब उसे क्या करना चहिए।

इस संकट के समय एकमात्र परेशबाबू ही उसके सहारे थे परन्तु, वह उनसे अनेक बातों को संकोचवश कह नहीं सकती थी जबकि वह यह भी भली-भांति जानती थी कि वे उसके मन का भा अच्छी तरह जानते हैं।

आजकल शीत के कारण परेशबाबू बाग में उपासना करने नह जाते थे। घर के पश्चिम की ओर जो एक छोटी सी कोठरी थी, उस के खुले दरवाजे के सामने एक आसन बिछाकर, वे उपासना कर लिय करते थे। सुचरिता उनके पास चुपचाप जा बैठती थी। परेशबाबू उसे नित्य मौन बैठे देखते और मन-ही-मन अनेक आशीर्वाद देते थे।

सुचरिता अटल धैर्यपूर्वक सब बातों को चुपचाप सह लेने में ही अपने कल्याण का अनुभव करती थी। उसका विचार था कि कुछ दिन बाद सब झगड़े स्वयं ही समाप्त हो जायेंगे, परन्तु ऐसा हो नहीं रहा था, तब उसने किसी अन्य उपाय का आश्रय लेने का निश्चय किया।

वरदासुंदरी ने जब यह देखा कि क्रोध अथवा धिक्कार द्वारा भी सुचरिता को विवाह के लिए राजी करना सम्भव नहीं है, तथा परेशबाबू भी इस सम्बंध में उसकी कोई सहायता न करेंगे तो वह हरिमोहिनी के प्रति सिहनी की भांति खूंख्वार हो उठीं। उन्होंने उठना-बैठना भी दूभर कर दिया।

६

उस दिन वरदासुन्दरी के पिता के मृत्यु के दिन की उपासना थी। विनय को भी उसमें आमन्त्रित किया गया था। उपासना सायंकाल को होती थी। अतः वरदासुंदरी उपासना-गृह को सजाने में लगी हुई थीं। सुचरिता तथा उनकी लड़कियां इस कार्य में सहयोग दे रही थीं। तभी वरदासुंदरी की दृष्टि अचानक विनय पर पड़ी। वह समीप के जीने से हरिमोहिनी के पास ऊपर जा रहा था। वरदासुंदरी को यह असह्य हो उठा। वे सजावट का काम छोड़कर, उसके पीछे-ही-पीछे हरिमोहिनी के पास जा पहुँचीं। उस समय हरिमोहिनी बैठी हुई, विनय के साथ

त्मीयभाव से बात-चीत कर रही थीं।'

वरदासुंदरी ने पहुँचते ही कहा—'तुम्हारा मन आये, तब तक
ा यहाँ आनंद से रहो, परंतु मैं तुम्हारे ठाकुरजी को यहाँ नहीं रहने
गी।'

ब्राह्म-धर्म के सम्बंध में हरिमोहिनी की धारणा थी कि वह भी
रिश्चियन धर्म की एक शाखा है। वे पिछले कई दिनों से भविष्य की
ता कर रही थीं, उसी बीच में आज वरदासुन्दरी के मुख से यह
त सुनकर, वे स्पष्ट समझ गईं कि अब उन्हें शीघ्र ही कोई-न-कोई
उपाय करना पड़ेगा। पहले उन्होंने यह विचार किया था कि कलकत्ते
ही कोई मकान किराये पर लेकर अलग रह लूँगी तथा जो थोड़ी-सी
जी पास में बची है, उससे गुजर करूँगी। परन्तु फिर बाद में उन्हें
ान आया कि इतनी थोड़ी-सी पूँजी से वहाँ का खर्च कैसे चल
केगा।

वरदासुंदरी तूफान की भाँति आईं और चली गईं। विनय सिर
ुकाये चुप बैठा रहा।

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् हरिमोहिनी बोलीं—'मैं तीर्थ जाना
ाहती हूँ। तुममें से कोई मुझे पहुँचा सकेगा, क्या?'

विनय बोला—'मैं पहुँचा आऊँगा। परन्तु इस तैयारी में
जितने दिन का विलम्ब हो, उतने दिन आप मेरी मा के पास चल कर
हें।'

हरिमोहिनी—'मेरा भार साधारण नहीं है, बेटा! विपत्ति आने
र जब मुझे ससुराल में ही कोई नहीं रख सका तो फिर और दूसरा
ौन रख सकेगा? अब मुझे किसी के घर जाने का साहस नहीं है मैं
हीं नहीं रहूँगी'—इतना कहकर वे अपनी दोनों आँखों को आँचल से
ार-बार पोंछने लगीं।

विनय बोला—'मेरी मा की तुलना सब लोगों के साथ नहीं की
ा सकती। वे सम्पूर्ण भार जगदीश्वर के अर्पण कर चुकी हैं, अतः
भी भी दूसरे का भार उठाने का सङ्कोच नहीं करतीं। मेरी मा

परेशबाबू जैसी ही हैं। मैं आपको एक बार उनके पास अवश्य ले चलूंगा। फिर आप जहां कहेंगीं मैं पहुंचा आऊंगा।'

'तो उन्हें इसकी खबर तो·······'

'उसके लिये आप चिन्ता न करें। मेरे पहुंचने से ही उन्हें खबर मिल जायेगी।'

'तो कल सुबह·········?'

'कल ही क्यों, आज रात को ही चलिए।'

सन्ध्या के समय सुचरिता ने आकर सूचना दी—'विनयबाबू उपासना का समय हो गया। आपको मा बुला रही हैं।'

'मैं मौसी के साथ बातें कर रहा हूं'—विनय ने उत्तर दिया—'अभी न चल सकूंगा।'

विनय को वरदासुन्दरी का निमन्त्रण अब स्वीकार न था। वह मन ही मन बोला—'यह सब ढोंग मात्र है।'

तभी हरिमोहिनी घबरा कर बोलीं—'भैया, तुम अवश्य जाओ। काम पूरा होने पर जब यहां लौटोगे, तब मेरी-तुम्हारी बातें हो लेंगी।'

सुचरिता ने भी कहा—'आपका जाना ही ठीक रहेगा।'

विनय ने भी सोचा—'जाने से उपद्रव और बढ़ जायेगा।' अतः वह चला तो गया, परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ।

उपासना में पश्चात् भोजन का प्रबन्ध था। विनय ने उसके लिए कहा—'मुझे तो अभी भूख ही नहीं है।'

वरदासुन्दरी बोलीं—'भूख को क्यों दोष दे रहे हो? यह तो ऊपरी मन की बात है।'

'आपका कहना सत्य है'—विनय ने हंसकर कहा—'लोभी की दशा ऐसी ही होती है। वह वर्तमान की अल्प-प्राप्ति के लिए, भविष्य के बड़े लाभ को खो बैठता है।'

इतना कहकर वह जब जाने को उद्यत हुआ तो वरदासुन्दरी ने पूछा—'शायद आप फिर ऊपर जा रहे हैं?'

'हां !' कहकर विनय वहां से चला आया। सुचरिता दरवाजे के पास ही खड़ी थी। विनय ने उससे मीठे स्वर में कहा—'बहिन ! एक बार तुम मौसी के यहां हो आओ। सम्भवतः तुमसे कोई काम की बात पूछना चाहती हैं।'

ललिता के ऊपर अतिथियों के सत्कार का भार था। हारानबाबू ने उसे अपने पास आते देखकर कहा—'विनयबाबू ऊपर गए हैं। यहां नहीं हैं।'

उनका व्यङ्ग समझ कर, ललिता ने उनकी ओर देखते हुए निसंकोच भाव से कहा—'पता है, मुझसे भेंट किए बिना नहीं जायेंगे। मैं भी यहां काम समाप्त करके ऊपर जा रही हूं।'

ललिता किसी प्रकार चुप न हो सकी, यह देख हारानबाबू के हृदय की आग और बढ़ गई। हारानबाबू से यह भी छिपा न रहा कि विनय सुचरिता से कुछ कह गया है और सुचरिता उसके पीछे-पीछे चली गई है। आज उन्होने सुचरिता से कई बार बात करनी चाही परन्तु किसी बार उन्हें सफलता नही मिली। कई बार स्पष्ट बुलाने पर भी सुचरिता ने उनकी बात अनसुनी कर दी थी, जिससे हारानबाबू ने सब लोगों के समक्ष अपने को विशेष रूप से अपमानित अनुभव किया था।'

ऊपर जाकर सुचरिता ने देखा कि हरिमोहिनी अपनी सब चीजों की गठरी बांधे कहीं जाने को तैयार बैठी हैं। पूछा—'मौसी, यह क्या हो रहा है।'

हरिमोहिनी इसका कोई उत्तर न दे, रोती हुई बोलीं—'बेटी ! सतीश कहां है ? एक बार उसे भी बुला दो न !'

सुचरिता विनय की ओर देख उठी। विनय बोला—'मौसी का इस घर मे रहना बोझ हो गया है, अतः मैं इन्हें अपनी मा के पास लिए जा रहा हूं।'

हरिमोहिनी ने बताया—'मैंने तीर्थ-यात्रा का निश्चय किया है। मुझ जैसी अनाथ का किसी के घर रहना ठीक नहीं। फिर कोई अधि-

दिन तक रख भी कैसे सकेगा ?'

इस बात पर सुचरिता स्वयं भी कई दिनों से विचार कर रही थी। वह चुपचाप मौसी के पास बैठ गई। अँधेरा चारों ओर छा गया। परन्तु चिराग नहीं जलाया गया। उस अंधकार में किसके नेत्रों से आंसू गिर रहे हैं, यह पता न चला।

जीने से जैसे ही सतीश ने 'मौसी' कहकर आवाज दी वैसे ही हरिमोहिनी, 'आओ, बेटा !' कहती हुई उठ खड़ी हुई। 'कल सुबह चलना ठीक रहेगा। फिर बाबूजी को सूचित किये बिना तुम कैसे जा सकती हो ? क्या यह अन्याय न होगा ?' सुचरिता ने कहा।

वरदासुन्दरी द्वारा हरिमोहिनी के अपमान से उत्तेजित होकर, विनय ने इस बात को सोचा तक नहीं था। वह चाहता था कि मौसी को अब एक रात भी यहाँ नहीं ठहरना चाहिये। परन्तु सुचरिता की बात सुनकर उसे भी ध्यान आया कि जिस व्यक्ति ने उदारतापूर्वक आश्रय दिया, उसे इस प्रकार भूलकर चले जाना भी उचित नहीं है। बोला—'हाँ परेशबाबू से मिले बिना नहीं जाना चहिये।'

सुचरिता को मालूम था कि परेशबाबू सोने से पूर्व, उपासना सम्बन्धी कोई पुस्तक पढ़ा करते हैं। सुचरिता कई बार उस समय उनके पास पहुंच जाती थी और उसे पढ़कर कुछ सुनाया करते थे।

आज रात को भी परेशबाबू अपने सोने के कमरे में दीपक जलाये एमर्सन का ग्रन्थ पढ़ रहे थे। सुचरिता चुपचाप उनके पास, एक कुर्सी पर जा बैठी। परेशबाबू ने पुस्तक रखकर एक बार उसके मुँह की ओर देखा। सुचरिता जो कहने आई थी, वह न कह सकी। बोली—'बाबूजी, मुझे भी पढ़कर सुनाइये।'

परेशबाबू पुस्तक का गम्भीर आशय सुचरिता को समझाने लगे। रात के दस बजे पढ़ना समाप्त हुआ तो सुचरिता धीरे-से उठ खड़ी हुई और चल दी। तभी परेशबाबू ने उसे पुकारा—'राधा !'

सुचरिता लौट आई। परेशबाबू ने फिर कहा—'तुम अपनी मौसी की बात कहने के लिये मेरे पास आई थीं न।'

'हाँ बाबूजी !' सुचरिता ने देखा, परेशबाबू उसके मन की बात समझ गये हैं, अतः आश्चर्यचकित-सी बोली—'अब कल सवेरे]गी ।'

उसके बैठ जाने पर परेशबाबू ने कहा—'तुम्हारी मौसी को यहां ट है, यह मैं जानता हूं। पहिले मुझे यह पता नहीं था कि लावण्य । माँ के बाह्य-संस्कार में उनका धर्म-विश्वास तथा आचरण इतना पक सिद्ध होगा। अब वह उन्हें बहुत कष्ट दे रही है। फिर तुम्हारी सी यहां कैसे रह सकेंगी ?'

'वे यहाँ से जाने को तैयार हैं।'

मैं जानता हूँ, कि परन्तु क्या तुम उन्हें भिखारिनी की भाँति विदा र सकोगी ? तुम दोनों तो उनके एकमात्र अपने हो। मैं इस बात को ई दिनों से सोच रहा हूं।'

सुचरिता को यह अनुमान था कि परेशबाबू उसकी मौसी के ष्ट से परिचित हैं और उसके लिए चिन्तित भी रहते हैं। आज उनकी ात सुनकर वह आश्चर्य मे आ गई। नेत्रों मे आंसू भर आये।

'तुम्हारी मौसी के लिये मैंने एक मकान ठीक कर लिया है !' वे ार बोले।

'परन्तु वे तो—...।'

'भाड़ा नहीं दे सकेंगी, यही न ? परन्तु उन्हें भाड़ा देने की ावश्यकता भी क्या है, तुम दे दिया करना।'

सुचरिता उनकी बात का तात्पर्य न समझ पाई, अतः चुपचाप नके मुँह की ओर देखती रही।

परेशबाबू हँसकर बोले—'तुम उन्हें अपने ही मकान में रहने ना। तब भाड़ा नहीं देना पड़ेगा।'

सुचरिता और अधिक चकित हो उठी।

वे बोले—'तुम्हें पता नहीं है कि कलकत्ते में तुम्हारे भी दो कान हैं। एक तुम्हारा, दूसरा सतीश का। तुम्हारे पिता मृत्यु के समय मुझे कुछ रुपया दे गये थे। उस रुपये को किसी प्रकार बढ़ाकर;

मैंने तुम लोगों के लिए दो मकान खरीद दिये हैं। अब तक वे भाड़े पर उठ रहे थे। भाड़े का रुपया जमा हो रहा है। तुम्हारा घर कुछ दिनों से खाली पड़ा है, अतः उसका भाड़ा भी बंद है। वहाँ रहने से तुम्हारी मौसी को कोई कष्ट न होगा।'

'क्या वे वहाँ अकेली रह सकेंगी ?' सुचरिता ने पूछा।

'तुम्हारे रहते अकेली क्यों रहेंगी ?'

'मैं यही बात आप से कहने आई थी। सोच रही थी कि उन्हें अकेली कैसे जाने दूं। अब आप जो कहेंगे, वही करूंगी।'

'इस मकान के बराबर जो गली है, उसमें तीन मकान के बाद ही चौथा मकान तुम्हारा है। इस घर के बरामदे में खड़े होकर देखने से वह दिखाई पड़ता है। अतः तुम्हारे वहाँ रहने से अरक्षा का भी कोई भय न होगा। मैं तुम्हारी खोज-खबर लेता रहूँगा।'

सुचरिता का हृदय मानो एकदम हल्का हो गया। ग्यारह बज चुके थे। परेशबाबू सोने के लिए चल दिये। सुचरिता भी मौसी के पास लौट आई।

४१

दूसरे दिन प्रातःकाल हरिमोहिनी ने परेशबाबू के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया। वे हड़बड़ा कर बोल उठे—'यह क्या कर रही हैं आप ?'

हरिमोहिनी आंखों में आंसू भर कर बोलीं—'आप का ऋण मैं कभी न चुका सकूंगी। आपने मुझ अभागिन पर जो कृपा की, यह आपके ऊपर भगवान की बहुत बड़ी कृपा का फल है।'

परेशबाबू सकुचा उठे, बोले—'मैंने आपका क्या उपकार किया है ? जो किया है, वह तो राधारानी (सुचरिता) ने भले ही किया हो।'

'मैं जानती हूं !'—हरिमोहिनी रोती हुई बोलीं—'परन्तु वह भी तो आप ही की है। उसके मां-बाप जब चल बसे, तब मैंने उसे

अभागिन समझा था, परन्तु तब क्या पता था कि उसके भाग्य बड़े अच्छे हैं, जो उसने आपको पा लिया है। स्थान-स्थान पर घूमने के बाद, जब मैंने यहाँ आकर आपके दर्शन किये, तब मुझे पता चला कि निश्चय ही ईश्वर ने मुझ पर भी अपनी दया की है।'

तभी विनय ने घर के भीतर पैर रखते हुए कहा—'मौसी, माँ आपको लिवाने के लिए आई हैं।'

सुचरिता प्रफुल्लित होकर बोल उठी—'कहाँ हैं वे ?'

'नीचे आपकी माँ के पास बैठी हैं !' सुनकर सुचरिता तुरंत नीचे जा पहुँची।

इधर परेशबाबू ने हरिमोहिनी से कहा—'मैं आपके घर में आपका सब सामान रक्खे आता हूँ।'

परेशबाबू के चले जाने के बाद, विनय ने आश्चर्य से कहा—'आपके घर की बात मैं नहीं समझा।'

'मैं भी नहीं जानती'–हरिमोहिनी ने उत्तर दिया—'परेशबाबू ही जानते हैं। वह घर हमारी राधारानी का ही है।'

विनय ने कहा—'मैंने सोचा था कि मैं संसार में किसी काम आऊँगा। अब तक मैं माँ की कोई सेवा न कर सका। आज जब मौसी की ही सेवा करके कुछ मन प्रसन्न करना चाहा, तो देखता हूँ कि यह भी मेरे भाग्य में नहीं लिखा है।'

कुछ देर पश्चात् ललिता एवं सुचरिता के साथ आनंदमयी भी वहाँ आ पहुँची। हरिमोहिनी ने आगे बढ़कर कहा—'ईश्वर जब कृपा करते हैं, तो किसी बात की कमी नहीं रहती। आज आप भी मिल ही गईं, बहिन !' इतना कहकर उन्हें हाथ पकड़, चटाई पर ले जाकर बैठाया।

फिर बोलीं—'बहिन आपकी चर्चा को छोड़कर विनय के मुँह पर तो और कोई बात ही नहीं रहती।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'उसे बचपन से यही बीमारी है कि जिस बात को पकड़ता है, उसे शीघ्र छोड़ता ही नहीं। अब मौसी

तने दिनों एक सुचरिता परेशबाबू के अनेक ... ी थी। कभी फूल-दान सजाती तो कभी टेबिल पर पुस्तक ह... ती। स्नान के समय प्रतिदिन उन्हें समय का ध्यान भी दिला रती थी। अब वह जब कभी परेशबाबू के कमरे का कोई साधा- कार्य करने को भी आती, तो परेशबाबू की दृष्टि में वह कार्य महत्वपूर्ण हो उठता था।

जिस दिन सुचरिता दोपहर को भोजन करके नये घर में जाने ी थी, उस दिन परेशबाबू ने अपने उपासना वाले सूने कमरे में कर देखा कि सुचरिता उनके आसन के सामने वाली भूमि को फूलों से जाकर एक कोने में बैठी उनके आने की प्रतीक्षा कर रही है।

उपासना की समाप्ति पर. जब उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे, तो परेशबाबू बोले—'बेटी, रोओ नहीं। पीछे की ओर घूमकर देखती हुई, आगे का मार्ग निश्चित करती चलो। सुख या दुःख को समयानुसार चुपचाप सहन करने की आदत डाल लो। अपने को संपूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित कर, उन्हीं को अपना एकमात्र सहायक जानो। ईश्वर करे, उन्हें कभी हमारे साधारण आश्रय की आवश्यकता ही न पड़े।'

उपासना के पश्चात् दोनों ने बाहर आकर देखा, हारानबा... प्रतीक्षा करते हुए बैठक में बैठे हैं। आज सुचरिता ने किसी के प्र... अपने मन में विद्रोह का भाव न लाने का निश्चय कर, उन्हें सरल... पूर्वक नमस्कार किया। हारानबाबू अत्यन्त दृढ़तापूर्वक गंभीर स... बोले—'सुचरिता, तुमने अब तक जिस सत्य का अवलम्ब लि... उसी से अब पीछे हट रही हो। हम लोगों के लिए यह बड़े ... अवसर है।'

सुचरिता के हृदय में जो शान्ति और दया की रा... रही थी, उसमें ये शब्द कुछ बेसुरे से जान पड़े। उसने कोई ... दिया।

परेशबाबू बोले—'आगे कौन बढ़ रहा है और पीछे कौन हट रहा है, इसे अन्तर्यामी जानते हैं, हम लोग बाहरी बातों का विचार कर व्यर्थ ही दुःखी होते हैं।'

हारान—'तो क्या आप यह कह रहे हैं कि आपके मन में न कोई-आशंका है और न पश्चाताप का कोई कारण ही ?'

'हारानबाबू !' उन्होंने उत्तर दिया-'मैं कल्पना को या आशंका को हृदय में स्थान नहीं देता। साथ ही मन में कोई अनुताप उत्पन्न हो, पश्चाताप का कारण भी तभी मानता हूँ।'

'आपकी पुत्री ललिता, जो स्टीमर पर विनयबाबू के साथ अकेली चली आई, क्या इसे भी काल्पनिक कहा जायेगा ?'

क्रोध के कारण सुचरिता का मुँह लाल हो गया।

परेशबाबू बोले—'आपका मन किसी कारण उत्तेजित हो उठा है, अतः इस समय इस सम्बन्ध में आपसे कोई वार्तालाप करने का अर्थ आपके प्रति अन्याय करना रहेगा।'

हारानबाबू मस्तक ऊँचा उठाते हुए बोले— मैं जोश में आकर कोई बात नहीं कहता। मुझे जिस सम्बन्ध में बोलने का पूर्ण अधिकार है, उसी बात को कहता हूँ। मैं व्यक्तिगत तौर पर नहीं, अपितु ब्राह्म-समाज की ओर से कह रहा हूँ। आपकी ललिता विनयबाबू के साथ स्टीमर पर अकेली चली आई, यही एक बात आपके परिवार को ब्राह्मसमाजी संगत से हटाकर अलग बहा ले जाने का उपक्रम कर रही है। इस बात से केवल आपको ही अनुताप न होगा बल्कि संपूर्ण ब्राह्म-समाज के लिये यह अप्रतिष्ठा की बात है।'

'बाहरी व्यवहार को देखकर निन्दा करने की अपेक्षा भीतरी बात को देखना चाहिये। केवल किसी घटना से ही आप मनुष्य को दोष मत दीजिए।' परेशबाबू बोले।

'यह घटना साधारण नहीं है। आप ऐसे व्यक्तियों को ही आत्मीय बना रहे हैं, जो आपके पारिवारिक जनों को समाज से दूर ले जाना चाहते हैं। क्या आप उसे नहीं देख

'आपकी सूझ ही विलक्षण है।' परेशवावू ने कुछ रुष्ट होते हुए कहा—'आपके साथ मेरा मन कैसे मिल सकता है?'

'नहीं मिल सकता, यह सत्य है, परन्तु मैं सुचरिता को ही साक्षी वनाता हूँ। वही कह दे कि कई दिनों से विनय के साथ ललिता का जो संवंध हुआ है, क्या वह केवल वाहरी है? सुचरिता, तुम्हें इस वात का उत्तर देकर ही जाना होगा। वताओ तो?'

सुचरिता झिड़कते हुए वोली—'वात कैसी भी हो, आपको क्या? इस सम्वंध में आप कुछ कहने का अधिकार नहीं रखते।'

हारान—'अधिकार न होने पर मैं अवश्य ही चुप वैठा रहता। जव तक तुम लोग समाज में हो, तव तक समाज को तुम्हारा विचार करना ही पड़ेगा तुम। समाज के विरुद्ध नहीं जा सकते।'

तभी ललिता ने तूफान की भांति वैठक में प्रवेश करते हुए कहा—'यदि समाज ने आपको विचारक वना दिया हो, तो हमारे लिए इस समाज से वाहर रहना ही अच्छा होगा।'

हारानवावू कुर्सी से उठते हुए वोले—'आप खूव आईं, आपके विरुद्ध जो मामला चल रहा है, उसका विचार भी आपके सामने ही होना चाहिए था।'

सुचरिता ने क्रोध से भर कर कहा—'हारानवावू, अपनी अदालत अपने घर जाकर लगाइये। किसी गृहस्थ के घर आकर आप इस तरह वढ़-वढ़ कर वातें करें, यह हमें वर्दाश्त नहीं है। आओ, वहिन ललिता वैठो।'

ललिता वहीं खड़ी रही। वोली—'सुनो वहिन, हारानवावू जो कुछ कहना है, कहलें, मैं सव सुनना चाहती हूँ।' फिर हारान की ओर मुड़कर कहने लगी—'कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं?'

हारानवावू चुप रहे।

परेशवावू वोले—वेटी, आज सुचरिता मेरे घर से जा अतः आज मैं किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न नहीं होने देना फिर हारानवावू से कहा—'हमने कितने भी अपराध किये

आपको क्षमा करने पड़ेंगे ।'

हारानबाबू गम्भीर मुद्रा में चुप बैठे रहे। सुचरिता उनसे जितनी दूर रहना चाहती थी, वे उसे उतना ही अधिक पकड़ कर अपने पास रखना चाहते थे। इस समय उनके मन में यह विचार उठ रहा था कि सुचरिता के मौसी के साथ चले जाने पर, उस पर में उनका कोई जोर नहीं चल सकेगा। इसलिये वे क्षुब्ध हो रहे थे। आज सब संकोच त्याग कर खूब तेज हो यहाँ आये थे, परन्तु सुचरिता और ललिता उनके समक्ष इस प्रकार तीर तान कर खड़ी होंगी, यह उन्हें ध्यान भी नहीं आया था। अन्त में उन्होंने निश्चय किया—'यह काम ऐसे न चलेगा, इस विजय को प्राप्त करने लिये युद्ध करना ही पड़ेगा।'

सुचरिता ने हरिमोहिनी के पास जाकर कहा—'मौसी, तुम बुरा मत मानना, आज मैं इन सब लोगों के साथ सम्मिलित भोजन करूँगी।'

हरिमोहिनी चुप रहीं। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सुचरिता मेरे कहे अनुसार ही चलेगी, परन्तु आज उसका यह प्रस्ताव उन्हें अच्छा न लगा, अतः वे मौन ही रहीं।

सुचरिता ने उनके मन के भाव को समझते हुए कहा—'मैं सच कहती हूँ कि इसमें ठाकुरजी भी प्रसन्न होंगे, क्योंकि उन्हीं ने मुझे सबके साथ भोजन करने की अन्तःप्रेरणा दी है। मैं तुम्हारे क्रोध की अपेक्षा उनकी नाराजगी से अधिक डरती हूँ।'

वरदासुन्दरी द्वारा अपमानित किये जाने पर हरिमोहिनी का आचार सुचरिता ने अपने ऊपर ले लिया था, परन्तु आज उससे अलग होते समय, वह उसी आचार को क्यों भंग कर रही है, यह हरिमोहिनी की समझ में न आया। सुचरिता उनके लिए एक कठिन समस्या जैसी बनी रहती थी।

कुछ देर ठहर कर उन्होंने कहा— बेटी, तुम्हारे मन में आये वह करो, परन्तु इस दुसाध नौकर के हाथ का पानी मत पीना।'

'लेकिन यह रामदीन दुसाध ही तो तुम्हें गाय का दूध दुहकर दे

'आपकी सूझ ही विलक्षण है।' परेशबाबू ने कुछ रुष्ट होते हुए कहा—'आपके साथ मेरा मन कैसे मिल सकता है ?'

'नहीं मिल सकता, यह सत्य है, परन्तु मैं सुचरिता को ही साक्षी बनाता हूँ। वही कह दे कि कई दिनों से विनय के साथ ललिता का जो संबंध हुआ है, क्या वह केवल बाहरी है ? सुचरिता, तुम्हें इस बात का उत्तर देकर ही जाना होगा। बताओ तो ?'

सुचरिता झिड़कते हुए बोली–'बात कैसी भी हो, आपको क्या ? इस सम्बंध में आप कुछ कहने का अधिकार नहीं रखते।'

हारान—'अधिकार न होने पर मैं अवश्य ही चुप बैठा रहता। जब तक तुम लोग समाज में हो, तब तक समाज को तुम्हारा विचार करना ही पड़ेगा तुम। समाज के विरुद्ध नहीं जा सकते।'

तभी ललिता ने तूफान की भांति बैठक में प्रवेश करते हुए कहा—'यदि समाज ने आपको विचारक बना दिया हो, तो हमारे लिए इस समाज से बाहर रहना ही अच्छा होगा।'

हारानबाबू कुर्सी से उठते हुए बोले—'आप खूब आईं, आपके विरुद्ध जो मामला चल रहा है, उसका विचार भी आपके सामने ही होना चाहिए था।'

सुचरिता ने क्रोध से भर कर कहा–'हारानबाबू, अपनी अदालत अपने घर जाकर लगाइये। किसी गृहस्थ के घर आकर आप इस तरह बढ़-बढ़ कर बातें करें, यह हमें बर्दाश्त नहीं है। आओ, बहिन ललिता ! बैठो।'

ललिता वहीं खड़ी रही। बोली—'सुनो बहिन, हारानबाबू को जो कुछ कहना है, कहलें, मैं सब सुनना चाहती हूँ।' फिर हारानबाबू की ओर मुड़कर कहने लगी—'कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं ?'

हारानबाबू चुप रहे।

परेशबाबू बोले— बेटी, आज सुचरिता मेरे घर से जा रही है। अतः आज मैं किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न नहीं होने देना चाहता। फिर हारानबाबू से कहा—'हमने कितने भी अपराध किये हों, आ

आपको क्षमा करने पड़ेंगे ।'

हारानबाबू गम्भीर मुद्रा में चुप बैठे रहे । सुचरिता उनसे जितनी दूर रहना चाहती थी, वे उसे उतना ही अधिक पकड़ कर अपने पास रखना चाहते थे । इस समय उनके मन में यह विचार उठ रहा था कि सुचरिता के मौसी के साथ चले जाने पर, उस घर में उनका कोई जोर नहीं चल सकेगा । इसलिये वे क्षुब्ध हो रहे थे । आज सब संकोच त्याग कर खूब तेज हो यहाँ आये थे, परन्तु सुचरिता और ललिता उनके समक्ष इस प्रकार तीर तान कर खड़ी होंगी, यह उन्हें ध्यान भी नहीं आया था । अन्त में उन्होंने निश्चय किया—'यह काम ऐसे न चलेगा, इस विजय को प्राप्त करने लिये युद्ध करना ही पड़ेगा ।'

सुचरिता ने हरिमोहिनी के पास जाकर कहा—'मौसी, तुम बुरा मत मानना, आज मैं इन सब लोगों के साथ सम्मिलित भोजन करूँगी ।'

हरिमोहिनी चुप रही । उन्हे यह विश्वास हो गया था कि सुचरिता मेरे कहे अनुसार ही चलेगी, परन्तु आज उसका यह प्रस्ताव उन्हें अच्छा न लगा, अतः वे मौन ही रही ।

सुचरिता ने उसके मन के भाव को समझते हुए कहा—'मैं सच कहती हूँ कि इससे ठाकुरजी भी प्रसन्न होंगे, क्योंकि उन्हीं ने मुझे सबके साथ भोजन करने की अन्तःप्रेरणा दी है । मैं तुम्हारे क्रोध की अपेक्षा उनकी नाराजगी से अधिक डरती हूँ ।'

वरदासुन्दरी द्वारा अपमानित किये जाने पर हरिमोहिनी का आचार सुचरिता ने अपने ऊपर ले लिया था, परन्तु आज उससे अलग होते समय, वह उसी आचार को क्यों भंग कर रही है, यह हरिमोहिनी की समझ में न आया । सुचरिता उसके लिए एक कठिन समस्या जैसी बनी रहती थी ।

कुछ देर ठहर कर उन्होंने कहा— बेटी, तुम्हारे मन में आये वह करो, परन्तु इस दुसाध नौकर के हाथ का पानी मत पीना ।'

जाता रहा है।'—सुचरिता बोली।

हरिमोहिनी के नेत्र फैल गए, वे बोलीं—'दूध और पानी एक कैसे हो जायेगा ?'

'अच्छा मौसी !'—सुचरिता ने कहा—'मैं आज रामदीन का जल नहीं पीऊँगी, परन्तु तुमने सतीश से यदि यह बात कही तो वह तो उसका उलटा ही करेगा।'

'उसकी बात अलग है।'—कहकर हरिमोहिनी चुप हो रहीं। वे समझती थीं कि पुरुषों के लिए तो आचार-विचार के बन्धन में कुछ ढील देनी ही पड़ती है।

४३

हारानबाबू उग्र स्वरूप धारण कर मैदान में उतर आये।

विनय के साथ स्टीमर पर आये हुए ललिता को १५ दिन हो चुके थे। इस बात को दस-पांच व्यक्ति जान भी चुके थे तथा अन्य लोगों में भी यह बात धीरे-धीरे फैल रही थी। ब्राह्मसमाज के कुछ हितैषी लोग सवारियां कर-करके एक दूसरे के घर कह आये थे कि आजकल ब्राह्मसमाज में भी ऐसी घटनाएं घटने लगी हैं, जिनसे उनका भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है। यह समाचार भी घर-घर में फैलने लगा कि अब सुचरिता अपनी हिन्दू मौसी के घर में रहकर, नियम-पूर्वक ठाकुरजी की पूजा करने लगी है।

ललिता के मन में एक द्वन्द बहुत दिनों से चल रहा था। वह नित्य रात को सोने के पहले निश्चय करती कि मैं किसी के सम्मुख हार नहीं मानूँगी तथा सुबह उठने पर भी इसे दुहराती थी। उसकी यह मानसिक अशान्ति केवल विनय के साथ थी। कभी-कभी विनय को नीचे कमरे में बैठे बातचीत करता हुआ जानकर उसका हृदय उछलने लगता था, तो कभी यदि वह न आता तो उसकी चिन्ता में घुटने लगती थी। कभी-कभी वह सतीश को किसी-न-किसी बहाने विनय के घर भेज कर, उसकी खोज-खबर मंगा लिया करती थी।

एक दिन वह परेशबाबू के पास जाकर बोली—'पिताजी ! क्या मैं किसी कन्या-पाठशाला की अध्यापिका नहीं बन सकती हूँ ?'

परेशबाबू ने उसके मुख की ओर देखते हुए स्नेहार्द्र स्वर में कहा—'क्यों नहीं ? परन्तु वैसी पाठशाला है कहाँ ?'

जिस समय की यह कहानी है, उस समय कन्या-पाठशालायें अधिक नहीं थीं। जो कहीं-कहीं थीं भी, उनमें भले घर की स्त्रियाँ अध्यापन का कार्य करने को तैयार नहीं होती थीं। अतः परेशबाबू की बात सुनकर ललिता ने व्याकुल होते हुए पूछा—'क्या पाठशालायें सचमुच ही नहीं हैं ?'

परेशबाबू—'कहीं भी तो नहीं दिखातीं।'

'तो एक कन्या-पाठशाला खोली भी नहीं जा सकती ?'

'खोली तो जा सकती है, परन्तु इसके लिए बहुत पैसा चाहिए तथा अन्य लोगों की सहायता भी।'

ललिता समझती थी कि अच्छे कार्य की ओर झुकाव होना ही कठिन है। फिर उसमें इतनी बाधायें भी पड़ सकती हैं, इसकी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। कुछ देर वहाँ बैठी रहकर, वह चुपचाप उठ गई। उसके जाने के पश्चात्, परेशबाबू ने अपनी लड़की (ललिता) के मानसिक दुःख का कारण ढूँढना आरम्भ कर दिया। उस दिन हारानबाबू विनय के सम्बन्ध में कुछ कह गये थे, वह भी उन्हें स्मरण हो आया। उन्होंने लम्बी साँस लेते हुए, मानो अपने हृदय से पूछा—'क्या मैंने सचमुच ही भूल की ?' ललिता के अतिरिक्त कोई और लड़की होती, तो उन्हें विशेष चिन्ता भी न होती। वे ललिता के चरित्र को श्रेष्ठ मानते थे। वे जानते थे कि उसमें छल-कपट लेशमात्र भी नहीं है।

उसी दिन ललिता दोपहर को सुचरिता के घर में जा पहुँची। घर में सजावट की कोई वस्तु न थी। भीतर दो चटाइयाँ बिछी हुई थीं जिनमें एक ओर सुचरिता तथा दूसरी ओर हरिमोहिनी का बिस्तर था। हरिमोहिनी चारपाई पर नहीं सोती थी इसलिये सुचरिता

धरती पर विछौना करके सोती थी। कमरे की एक दीवार पर परेशबाबू का चित्र टँगा था। उसके बराबर वाली कोठरी में सतीश की चारपाई विछ रही थी। वहीं कोने में एक छोटी-सी टेविल रक्खी थी, जिस पर दवात-कलम, कापी, स्लेट तथा पुस्तकें जहां-तहाँ विछाई पड़ी थीं। एकाध कापी नीचे भी पड़ी थी। सतीश स्कूल गया हुआ था, अब उस समय कमरे में सन्नाटा था।

भोजनोपरान्त हरिमोहिनी चटाई पर लेटी हुई, सोने का उपक्रम कर रही थीं। सुचरिता अपने खुले हुए केशों को पीठ की ओर किए चटाई पर बैठी हुई, गर्दन झुकाये ध्यान से एक किताव पढ़ रही थी। उसके सामने और भीं कई पुस्तकें रक्खी हुई थीं।

घर में एकाएक ललिता के प्रवेश करते ही सुचरिता ने मानो लज्जित-सी हो, हाथ की पुस्तक को झट से नीचे रख दिया। वह पुस्तक गोरा के लेखों का संग्रह थी।

हरिमोहिनी भी उठकर बैठ गईं, बोलीं—'आओ बेटी। यहाँ बैठो। तुम्हारा घर छोड़ने के वाद सुचरिता पर जो बीत रही है, मैं उसे जानती हूँ। यहां उसका मन जरा भी नहीं लगता। बैठी-बैठी पुस्तकें पढ़ती रहती है। मैं सोच ही रही थी कि तुममें से कोई आ जाती तो ठीक रहता, सो तुम आ ही गईं। तुम्हारी उम्र बहुत बड़ी है।'

ललिता सुचरिता के पास जा बैठी। बोली—'बहिन, इस मुहल्ले में यदि हम एक कन्या-पाठशाला खोल दें, तो कैसा रहेगा?'

हरिमोहिनी चकित होकर बोल उठी—'क्या कहती हो, तुम स्कूल खोलोगी?'

सुचरिता ने कहा—'स्कूल चलेगा कैसे? कौन सहायता करेगा? क्या बाबूजी से भी इस सम्बन्ध में कुछ कहा था?'

'हम और तुम दोनों मिलकर पढ़ाया करेंगी'—ललिता बोली—'कहने पर शायद बड़ी वहिन भी तैयार हो जायगी।'

'केवल पढ़ाने की ही वात तो नहीं है। स्कूल के काम के लिए

सब प्रबन्ध करने होंगे। मकान का, छात्राओं का तथा खर्च के लिए रुपयों का भी। ये सब काम क्या यों ही हो जायेंगे ? हम-दोनों क्या-क्या कर लेंगी ?'

'यह कहने से काम न चलेगा, बहिन ! यत्न द्वारा क्या काम नहीं हो सकता ? स्त्री होने का अर्थ यह थोड़े ही है कि मुँह छिपाकर घर में ही पड़ी रहे ?'

ललिता के आंतरिक दुःख का तार सुचरिता के हृदय में बज उठा। कोई उत्तर देकर वह मन-ही-मन विचार करने लगी।

ललिता बोली—'अपने मुहल्ले में ही कितनी बे-पढ़ी लड़कियाँ हैं उन्हें हम यों ही पढ़ाना चाहें तो वे सभी प्रसन्न होंगी। उन्हें तुम्हारे इस घर में लाकर हम दोनों पढ़ा दिया करेंगी। इसमें खर्च की भी क्या आवश्यकता है ?'

अपने घर में मुहल्ले की लड़कियों को पढ़ाने की बात सुनकर हरिमोहिनी चिंतित हो उठी, क्योंकि वे एकान्त में, शुद्ध आचार-विचार से रहना चाहती थीं। इसीलिए आपत्ति कर उठी।

सुचरिता बोली—'तुम डरो मत, मौसी ! यदि लड़कियाँ आईं तो हम उन्हें नीचे वाले कमरे में पढ़ा लिया करेंगे।' फिर ललिता से कहा—'ललिता बहिन ! यदि लड़कियाँ पढ़ाने को मिल जांय, तो मैं इस कार्य में सहयोग देने को तैयार हूँ।'

ललिता बोली—'प्रयत्न करके देखूँगी।'

हरिमोहिनी बार-बार कहे जा रही थी—'तुम लोगों ने ऐसी बातों में क्रिस्तानों की होड़ की तो कैसे काम चलेगा ? गृहस्थों की कन्याओं को स्कूल में पढ़ाते मैंने कहीं नहीं देखा है।'

परेशबाबू के घर के समीप जो मकान थे, उनकी स्त्रियां अपनी-अपनी छत पर आकर, अन्य बातों के साथ-साथ कभी-कभी परेशबाबू की लड़कियों के इतनी बड़ी आयु में भी अभी तक अविवाहित रहने के सम्बन्ध में आश्चर्यपूर्ण चर्चायें किया करती थीं। ललिता इन बातों से दूर रहती थी, परन्तु लावण्यलता को उन्हें सुनने का मानो एक रोग सा

हो गया था। वह छत पर जाकर, उन स्त्रियों से हिलमिल कर बातें किया करती थी।

कन्या पाठशाला के लिए लड़कियां इकट्ठा करने का भार ललिता ने लावण्यलता पर डाल दिया। लावण्य ने यह चर्चा एक छत वाली स्त्री से कही। उसे सुनकर बहुत-सी लड़कियां पढ़ने को उल्लासित हो उठीं। तब ललिता ने प्रसन्न हो, सुचरिता के मकान वाले निचले हिस्सों को पुतवा कर, साफ करा दिया तथा लिखने-पढ़ने के लिये आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर दिया।

परन्तु, वह सामान सजा हुआ का सजा हुआ ही रह गया। पड़ौसियों ने जब यह सुना कि उनके घर की लड़कियों को फुसलाकर उन्हें ब्राह्मसमाजी बनाने का प्रयत्न किया जाने वाला है, तो वे क्रोध से भर गये। उन्होंने अपने घर की स्त्रियों को छत पर जाने से भी मना कर दिया तथा ललिता आदि के विरुद्ध असभ्य भाषा का प्रयोग करने से भी वे न चूके।

परन्तु ललिता का उत्साह इतने से ही मन्द न पड़ा। उसने कहा—'ब्राह्मसमाज के गरीब घरों की बहुत-सी लड़कियां फीस देकर स्कूल में नहीं पढ़ पातीं, अतः हम उन्हें मुफ्त में पढ़ाकर ही यह उपकार करेंगे।' यह निश्चय कर उसने छात्राओं की खोज-स्वयं आरम्भ कर दी, तथा सुधीर को भी इस कार्य में जुटा दिया।

परेशबाबू की लड़कियों की विद्या-बुद्धि का यश दूर-दूर तक फैला हुआ था, अतः गरीब लड़कियों के माता-पिता इस योजना को सुन कर बेहद प्रसन्न हुए।

पांच-छः लड़कियों को लेकर ललिता ने विद्यालय आरम्भ कर दिया। स्कूल के नियम आदि भी उसने स्वयं ही बना लिए, परेशबाबू से सलाह लेने तक का समय भी उसे न मिला। परीक्षा के अन्त में छात्राओं को पुरस्कार में कौनसी पुस्तकें देनी चाहिये, इस विषय पर ललिता और लावण्य में बहुत तर्क-वितर्क हुआ। छात्राओं की परीक्षा कौन ले—जब यह प्रश्न सामने आया तो लावण्य ने यह सोचकर कि हारानबाबू

हमारे समाज के सबसे बड़े विद्वान हैं, उन्हीं के नाम का सुझाव किया, यद्यपि वह उनको हृदय से बिल्कुल पसन्द नहीं करती थी। परन्तु ललिता यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ । वह नहीं चाहती थी कि इस शाला से हारानबाबू का किसी प्रकार से सम्बन्ध बने।

दो-तीन दिन में ही छात्राओं की संख्या घटते-घटते शून्य पर जा थी। ललिता सूने विद्यालय में बैठी प्रतीक्षा करती रही, परन्तु कोई लड़की न आई, तो वह समझ गई कि कोई-न-कोई गड़बड़ रय है।

जो लड़की समीप ही रहती थी, ललिता जब उसके घर पता गाने के लिए गई, तो उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—'मां मुझे हीं जाने देती हैं।' ललिता ने जब उसकी मां से पूछा तो उसे उत्तर ला—'वहाँ जाने में अनेकों बाधायें हैं।' बाधाओं को उसने स्पष्ट नहीं कहा। ललिता भी और अधिक कुछ पूछे बिना लौट आई। किसी की खुशामद करना उसे पसन्द न था।

उस घर के बाद ललिता जहाँ भी गई, वहीं उसे यह सुनने को मिला कि 'सुचरिता अब हिंदू हो गई है। वह जाति-पाँति मानती है तथा मूर्ति-पूजा करती है। उसके घर जाने से, लड़कियों पर भी इस कुसंस्कार का प्रभाव पड़ सकता है।'

ललिता को इस उत्तर से भी पूरा संतोष न हुआ। उसने सुधीर से पूछा—'सच बताओ, मामला क्या है? लड़कियों का आना अचानक कैसे रुक गया?'

सुधीर ने उत्तर दिया—'हारानबाबू नहीं चाहते कि तुम्हारा यह स्कूल रहे।'

'सुचरिता बहिन के घर ठाकुर-पूजा होती है, इसीलिए न?'

'केवल इतना ही नहीं है।'

'तो और क्या है, कहो न?'

'बहुत से कारण हैं।'

'मुझे शायद अपराधिनी समझा गया है, यही?'

सुधीर चुप रहा। ललिता क्रोधावेश में बोली—'यह शायद मे
उस स्टीमर-यात्रा का दण्ड है, परन्तु यदि मैंने कोई अविचारपूर्ण का
किया भी तो किसी अच्छे कार्य द्वारा उसके प्रायश्चित की व्यवस्था हम
समाज में शायद बिल्कुल नहीं है। क्या तुम लोगों ने मेरे समाज
आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग चुना है ?'

सुधीर बोला—'इस विद्यालय में कहीं विनयबाबू सम्मिलित
हों, सब लोगों को यही भय बना हुआ है।'

ललिता क्रुद्ध होकर बोली—'यह भय नहीं, बल्कि समाज
दुर्भाग्य ही मानना चाहिए। कितने ब्राह्मसमाजियों में विनयबाबू जित
योग्यता है ?'

सुधीर सहमत हुआ, बोला—'यह सत्य तो है, पर
विनयबाबू......'

'यही न कि वे ब्राह्म-समाजी नहीं हैं, इसीलिए समाज उन्हें द
दे रहा है ? मैं ऐसे समाज को भला नहीं समझती।'

छात्राओं के न आने पर सुचरिता समझ गई कि षड्यन्त्र किस
रचाया हुआ है।

सुधीर से वार्तालाप समाप्त करने के पश्चात् ललिता सुचरिता
पास पहुंच कर बोली—'बहिन तुमने कुछ सुना है ?'

'सुना तो कुछ नहीं, पर जानती सब हूं !' सुचरिता ने मुस्करा
हुए कहा।

'तो क्या यह सब सहने योग्य है ?'

'सहने से क्या मान घट जायगा ?' सुचरिता ने ललिता का हा
पकड़ कर कहा—'पिताजी की सहिष्णुता क्या देखी नहीं है ?'

'मैं तुम्हारी बात नहीं काटती, बहिन ! लेकिन मेरा मन कह
है कि किसी अनुचित बात को सह लेना अन्याय को सह लेना है। उस
तो प्रतिकार ही करना चाहिये।'—ललिता बोली।

'तुम क्या करना चाहती हो कहो ?'

'मैंने अभी अपना कर्त्तव्य निश्चित तो नहीं किया है, परन्तु कुछ

न कुछ करूँगी अवश्य। जो लोग हम जैसे कर्तव्यपरायण नारियों के पीछे ओछे भाव से पड़े हैं, वास्तव में वे सबसे बड़े नीच हैं। मैं उनके इरादों से डरने वाली नहीं हूँ। उनके जो जी में आये, क्यों न करते रहें।' कहते हुए ललिता ने अपना दाहिना पैर जोर से पृथ्वी पर पटक दिया।

सुचरिता ने कुछ देर चुप रहकर, हाथ पर अपना हाथ रखते हुए कहा—'बहिन, इस सम्बन्ध में एक बार बाबूजी से और पूछ लो। देखें वे क्या कहते हैं।'

'मैं अभी उनके पास जाती हूँ!' कहकर ललिता अपने घर चली आई। द्वार पर आते ही उसने देखा, विनय सिर झुकाये हुए घर से निकल कर बाहर जा रहा था। ललिता को देखकर वह कुछ देर ठिठका, परन्तु फिर बिना कुछ बोले, मुँह की ओर देखे बिना, केवल नमस्कार करके उसी प्रकार चला गया।

ललिता के हृदय में जैसे किसी ने गरम बर्छी चुभा दी हो। वह तेजी से अपनी मा के कमरे में गई। उस समय वे एक टेबिल के ऊपर बही खोले हुए कोई हिसाब लगा रही थीं।

ललिता वहीं एक कुर्सी खींचकर बैठ गई, परन्तु वरदासुन्दरी ने उसकी ओर मुँह नहीं उठाया। तब ललिता ने ही कहा—'माँ!'

'बैठो बेटी, मैं बहुत देर से···' कहती हुई वरदासुन्दरी बही के ऊपर और अधिक झुक गईं।'

'मैं अधिक कष्ट नहीं दूँगी।'—ललिता ने कहा—'केवल इतना बता दो कि क्या विनयबाबू तुम्हारे पास आये थे?'

'हाँ!' वरदासुन्दरी ने अपनी दृष्टि बही पर जमाये हुए ही उत्तर दिया।

'उनके साथ तुम्हारी क्या-क्या बातें हुईं?'

'बहुत-सी!'

'मेरे सम्बन्ध में कोई चर्चा हुई क्या?'

वरदासुन्दरी ने अब बचने का कोई मार्ग न देखकर, कलम फेंकते

है, समाज में निन्दा होने लगी है, तब मजबूर होकर, मुझे ऐसा कर देना पड़ा।'

ललिता का मस्तक लज्जा से झुक गया। धड़कते हुए कलेजे से पूछा—'क्या विनयबाबू को यहां न आने के लिये, पिताजी ने कहा है?'

'वे तो इन बातों को सोचते ही नहीं। सोचते तो ऐसा होता क्यों?'

'तो क्या हारानबाबू यहां आते रहेंगे?'

'हारानबाबू क्यों न आयेंगे?' वरदासुन्दरी ने भौंहें तानते हुए कहा।

'तो विनयबाबू क्यों न आ सकेंगे?' ललिता ने फिर पूछा।

वरदासुन्दरी फिर बही को हाथ में लेती हुई बोलीं—'ललिता! मैं तुमसे बहस नहीं कर सकती, तुम जाओ, मुझे अनेक काम हैं।'

दोपहर के समय जब ललिता अपने स्कूल चली गई थी, उस समय उपयुक्त अवसर देख वरदासुन्दरी ने विनय को बुलाकर, अपना वक्तव्य सुना डाला था। उन्होंने सोचा था, ललिता को इसकी खबर न लगेगी। परन्तु जब उनकी कलई खुल गई तो अब नई विपत्ति की आशंका से उनका हृदय धड़कने लगा। अपने अव्यावहारिक पति के प्रति क्रोध से भर उठीं।

ललिता शीघ्रतापूर्वक नीचे वाले कमरे में, परेशबाबू के पास जा पहुंची। वे कोई पत्र लिख रहे थे। उसने पहुंचते ही पूछा—'बाबूजी, क्या विनयबाबू हमारे घर में आने योग्य नहीं हैं?'

परेशबाबू इतना सुनते ही सम्पूर्ण स्थिति को समझ गये। उनके परिवार के सम्बन्ध में ब्राह्मसमाज में जो चर्चायें चल रही थीं, उनसे वे अनभिज्ञ न थे। यदि ललिता का मन वास्तव में विनय की ओर आकर्षित हो गया है तो उस स्थिति में क्या करना योग्य है?' यह चिन्तापूर्ण प्रश्न उनके हृदय में बार-बार उठ चुका था। ब्राह्मसमाज की दीक्षा लेने

के समय से, अबतक यही एक पहला संकट उनके घर में आकर उपस्थित हुआ था। अतः एक ओर तो उन्हें समाज का भय भीतर-ही-भीतर विचलित कर रहा था, दूसरी ओर सत्य की परीक्षा के समय निश्छल एवं निश्शंक भाव से केवल सत्य का आश्रय ही ग्रहण कर किये रहने का व्रत उन्हें बरबस अपनी ओर खींच रहा था।

ललिता के प्रश्न के उत्तर में वे बोले—'विनय को मैं बहुत श्रेष्ठ लड़का समझता हूँ। जैसी उसने विद्या तथा बुद्धि प्राप्त की है, वैसा ही श्रेष्ठ उसका चरित्र भी है।'

ललिता यह सुनकर कुछ देर चुप रहने के पश्चात् कहने लगी—'पिछले दिनों गोरमोहन की माँ हमारे घर दो बार आ चुकी हैं। आज मैं सुचरिता बहिन के साथ घर जाना चाहती हूँ।'

परेशबाबू तुरन्त इसका उत्तर न दे सके। भली-भाँति जानते थे कि गोरा के घर आने-जाने से ब्राह्मसमाज में घर की जो निन्दा हो रही है, वह और भी बढ़ जायेगी, परन्तु उनकी अन्तरात्मा ने कहा कि जब तक यह कार्य वास्तव में अनुचित न हो, जब तक रोकना नहीं चाहिए। बोले—'जाओ, मुझे कुछ कार्य करना है, अन्यथा मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता।'

४४

विनय को यह स्वप्न में भी आशंका न थी कि मैं जिस घर में इष्ट-मित्र की भाँति निस्संकोच जाता हूँ, वहाँ कोई ऐसा ज्वालामुखी धधक रहा है, विस्फोट किसी समय अत्यन्त भयानक होगा। आरम्भ में जब वह परेशबाबू के घर जाता था, तब वह प्रत्येक बात में फूँक-फूँककर पैर रखता था, अपने अधिकार की सीमा का अतिक्रमण न करने का ध्यान उसे बराबर बना रहता। परन्तु क्रमशः जब उसका संकोच दूर होता गया तब आज वहाँ यह सुनकर कि उसके व्यवहार से समाज में ललिता की निंदा हो रही है, उसका माथा ठनक गया।

से हाथ फेरते हुए कहा—'विनय, तुम्हारा मुँह क्यों सूख रहा है ? ऐसे उदास क्यों हो, बेटा !'

विनय उठकर बोला—'मां, मैं पहले जब परेशबाबू के घर आता-जाता था तो गोरा को अच्छा नहीं लगता था, परन्तु उसका वह क्रोध वास्तव में अनुचित न था, यह मुझे अब मालूम हुआ है । सचमुच में, वह मेरी मूर्खता ही थी ।'

आनन्दमयी हँसकर बोली—'तू मेरा होशियार लड़का है, इसी से मैं कुछ नहीं कहती । परन्तु अब तूने अपने भीतर मूर्खता का कौन सा लक्षण अनुभव किया है ?'

विनय बोला—'मां, हमारा समाज दूसरों से बिल्कुल भिन्न है, यह मैंने कभी सोचा ही न था । उन लोगों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी, परन्तु तब मैंने कभी एक बार भी यह न सोचा कि यह घनिष्ठता कभी मेरे लिए विशेष चिंता का कारण हो उठेगी ।'

'पर तेरी बातें सुनकर तो मुझे अब भी किसी चिंता का अनुभव नहीं होता ।'

'तुम नहीं जानतीं मां ! मैं उन लोगों के प्रति, उनके समाज में अशांति फैलाने का जिम्मेदार माना गया हूँ । लोग अब इस प्रकार निंदा कर उठे हैं कि मैं वहां जाने योग्य भी नहीं रहा ।'

'गोरा मुझसे प्रायः एक बात कहा करता था । वह यह कि जहां अंतर में कोई अन्याय छिपा हो, वहां बाहर शांति होने पर भी अमङ्गल की आग सुलगती रहती है । यदि उनके समाज में ऐसी ही कोई अशांति फैल रही है तो उसके लिए तुम्हें दुःख करने की कोई आवश्यकता नहीं है । हां, इसका परिणाम अच्छा ही रहेगा । तुम्हें तो अपना व्यवहार शुद्ध ही रखना चाहिए ।' आनंदमयी ने कहा ।

विनय के मन में यही खटका था । 'उसका व्यवहार शुद्ध है अथवा नहीं'—इसे वह समझ ही नहीं पाता था । ललिता जब अन्य समाज की है तब उसके साथ विवाह होना तो संभव ही न[illegible]स स्थिति में उसके ऊपर अनुराग होना ही विनय को संताप [illegible]

एक दिन दोपहर के समय, वरदासुन्दरी ने एक पत्र लिखकर विनय को अपने घर बुलाकर पूछा—'विनयबाबू, आप तो हिन्दू हैं न ?'

'हां'—विनय ने उत्तर दिया।

'हिन्दू-समाज को आप छोड़ तो सकेंगे नहीं ?'

'नहीं !' कहने पर वरदासुंदरी ने कहा—'तो क्यों आपने…?'

'इस क्यों ?' शब्द के सुनते ही विनय अवाक रह गया। अपराधी की भांति उसने सिर झुका लिया, मानो उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो। वह मन-ही-मन यही सोच रहा था—'जिस बात को मैंने सूर्य, चन्द्र तथा वायु से भी छिपा रक्खा था, वही आज सब लोगों पर प्रगट हो गई। परेशबाबू न जाने क्या सोचते होंगे ? ललिता न जाने क्या समझती होगी। सम्भवतः आज इस अनाधिकार चेष्टा के कारण, उसे लज्जित होकर इस घर से सदा के लिये निष्कासित होना पड़ेगा।'

इसके उपरांत जब वह परेशबाबू के कमरे के सामने से होता हुआ मकान के बाहर निकला, तभी उसे ललिता दीख पड़ी। एक वार उसकी इच्छा हुई कि वह ललिता से अन्तिम बार मिले और आज इस परिचय के सम्बन्ध सूत्र को बिलकुल ही तोड़ देने के बाद जाये, परन्तु उसे इसमें सफलता न मिली। वह ललिता के मुंह की ओर देखे बिना ही, हाथ जोड़कर चुपचाप नमस्कार करता हुआ चला गया।

घर से बाहर आकर, जल विहीन मछली की भांति उसका हृदय छटपटाने लगा, मानो किसी ने उसके जीवन का सहारा ही छीन लिया हो। 'ऐसा क्यों हुआ' यह प्रश्न वह बार-बार अपने हृदय से पूछने लगा।

स्वप्नावस्थित की भांति विनय सीधा आनन्दमयी के घर गया, परन्तु वे वहां नहीं थीं। तब वह छत के ऊपर वाले उस सूने कमरे में गया, जहां गोरा सोता था।

छत के ऊपर कपड़े सूख रहे थे। दिन के तीसरे पहर आनन्दमयी जब उन्हें उठाने के लिए आईं तो गोरा के कमरे में विनय को बैठे देखकर अचम्भे में रह गईं। उन्होंने पास पहुंचकर उसकी पीठ पर स्नेह

से हाथ फेरते हुए कहा—'विनय, तुम्हारा मुँह क्यों सूख रहा है ? ऐसे उदास क्यों हो, बेटा !'

विनय उठकर बोला—'मां, मैं पहले जब परेशबाबू के घर आता-जाता था तो गोरा को अच्छा नहीं लगता था, परन्तु उसका वह क्रोध वास्तव में अनुचित न था, यह मुझे अब मालूम हुआ है। सचमुच मे, वह मेरी मूर्खता ही थी।'

आनन्दमयी हँसकर बोली—'तू मेरा होशियार लड़का है, इसी से मैं कुछ नहीं कहती। परन्तु अब तूने अपने भीतर मूर्खता का कौन सा लक्षण अनुभव किया है ?'

विनय बोला—'माँ, हमारा समाज दूसरों से बिलकुल भिन्न है, यह मैंने कभी सोचा ही न था। उन लोगों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी, परन्तु तब मैंने कभी एक बार भी यह न सोचा कि यह घनिष्ठता कभी मेरे लिए विशेष चिंता का कारण हो उठेगी।'

'पर तेरी बातें सुनकर तो मुझे अब भी किसी चिंता का अनुभव नहीं होता।'

'तुम नहीं जानती मां ! मैं उन लोगों के प्रति, उनके समाज में अशांति फैलाने का जिम्मेदार माना गया हूँ। लोग अब इस प्रकार निंदा कर उठे हैं कि मैं वहां जाने योग्य भी नहीं रहा।'

'गोरा मुझसे प्रायः एक बात कहा करता था। वह यह कि जहाँ अंतर में कोई अन्याय छिपा हो, वहां बाहर शांति होने पर भी अमङ्गल की आग सुलगती रहती है। यदि उनके समाज में ऐसी ही कोई अशांति फैल रही है तो उसके लिए तुम्हें दुःख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, इसका परिणाम अच्छा ही रहेगा। तुम्हें तो अपना व्यवहार शुद्ध ही रखना चाहिए।' आनंदमयी ने कहा।

विनय के मन में यही खटका था। 'उसका व्यवहार शुद्ध है अथवा नहीं'—इसे वह समझ ही नहीं पाता था। ललिता जब अन्य समाज की है तब उसके साथ विवाह होना तो संभव ही न था, इस स्थिति में उसके ऊपर अनुराग होना ही विनय को संताप दे रहा था।

इसी पाप के कारण यह प्रायश्चित का समय आ उपस्थित हुआ है—यह सोचकर वह और अधिक व्याकुल हो रहा था।

तभी वह सहसा बोल उठा—'मा, शशिमुखी के साथ मेरे विवाह का जो प्रस्ताव था, उसका हो जाना ही ठीक रहता। मुझे अपने अधिकार की सीमा में ही बँधना चाहिये। अब मैं इस प्रकार बँधना चाहता हूँ कि फिर किसी प्रकार हिल ही न सकूँ।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'अब समझी, तुम शशिमुखी को अपनी पत्नी न बनाकर, घर की साँकल बनाना चाहते हो। परन्तु उसका ऐसा भाग्य कहाँ है?'

उसी समय दरवान ने आकर सूचना दी—'परेशबाबू के घर की दो स्त्रियाँ आई हैं।'

विनय का हृदय धड़क उठा। उसने सोचा—'कहीं वे मुझे सावधान करने के हेतु मा से कुछ कहने-सुनने न आई हों।' अतः वह खड़ा होता हुआ बोला—'मा, अब मैं जा रहा हूँ।'

'विनय!'—आनंदमयी ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—'अभी जाना नहीं। नीचे के कमरे में जा बैठो।'

विनय नीचे जाते समय सोच रहा था—'अब तो उनके आने की कोई आवश्यकता न थी। मैं तो मर जाने पर भी उनके यहां कभी नहीं जाता।'

जिस समय विनय गोरा की बैठक की ओर जा रहा था, उसी समय अपने पेट को अचकन के बटन से मुक्त करते हुए महिम अपने आफिस से लौटकर आ रहे थे। उन्होंने विनय का हाथ पकड़ते हुए कहा—'वाह! भाई खूब मिल गए। मैं तो तुम्हें कई दिन से ढूंढ़ रहा था।' इतना कहकर वे बड़े आदरपूर्वक विनय को बैठक में ले गए। एक कुर्सी पर विनय को बैठाया, दूसरी पर स्वयं बैठते हुए उन्होंने अपनी अचकन की जेब से पान का डिब्बा निकाल कर, एक बीड़ा विनय की ओर बढ़ा दिया।

'अरे, कोई है? जरा तम्बाकू भर लाना।'—कहकर उन्होंने

नौकर को आज्ञा दो। फिर विनय से बोले—'विनयबाबू, उस सम्बन्ध में तुमने क्या निश्चय किया ?'

विनय का भाव आज उन्हें बहुत कोमल दिखाई दिया। उन्हें उसमें बात टाल देने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने विवाह का दिन पक्का कर देने की बात चलाई।

विनय बोला—'गोरा को आ जाने दीजिए।'

महिम निश्चिन्त होकर बोले—'उसके आने में तो अभी कई दिन की देर है। खैर, कुछ जलपान करो तो मँगवाऊँ ? आज तुम बड़े उदास से दीख रहे हो, स्वास्थ्य में तो कोई गड़बड़ी नहीं है न ?'

विनय से जलपान का आग्रह करने के पश्चात्, महिम अपनी क्षुधा के निवारणार्थ भीतर चला गया। गोरा की मेज पर कोई किताब रखी थी, विनय उसे देखने लगा। कुछ देर बाद किताब रखकर, उसने कमरे में टहलना आरम्भ कर दिया।

उसी समय नौकर ने उसके पास आकर कहा—'माँ बुला रही हैं।'

'किसे !'

'आपको !'

'वहाँ कोई और भी लोग हैं ?'

'जी हाँ !'

छत के ऊपर पहुँचते ही सुचरिता सदैव की भाँति स्वाभाविक स्निग्ध स्वर में बोली—'विनयबाबू, आइए !'

विनय को यह स्नेह-सिंचित स्वर सुनकर अपार आनन्द हुआ, परन्तु जब वह कमरे में भीतर पहुँचा तो सुचरिता और ललिता उसके चेहरे को देखकर आश्चर्य-चकित रह गईं। वे सोचने लगी—'ऐसी कौन सी व्यथा है जो विनय के मुख को इस प्रकार फीका किए हुए है, जैसे किसी हरे-भरे खेत पर टिड्डी दल ने उतर कर उसका सर्वनाश कर दिया हो ? इससे ललिता के हृदय में कुछ वेदना करुणा, साथ-ही-साथ कुछ आनन्द का आभास भी प्रस्फुटित हो उठा।

किसी और दिन चाहे ललिता विनय से बात न करती, परन्तु

आज उसके आते ही बोल उठी— विनयबाबू, आपसे एक विषय पर बात चीत करनी है।'

विनय आनन्द के मारे भौंचक हो गया। उसकी मुरझाई हुई आशा-लता जैसे फिर लहलहा उठी। प्रसन्नता की झलक चेहरे पर स्पष्ट दीखने लगी।'

ललिता बोली—'हम कई बहनें मिलकर एक छोटी-सी कन्या-पाठशाला खोलना चाहती हैं।'

विनय उत्साहित होता हुआ बोला—'यह तो बहुत दिनों से मेरे जीवन का एक सङ्कल्प है।'

'तो आपको इस कार्य में हमारी सहायता करनी होगी!' ललिता ने कहा।

'मैं जहां तक कर सकूंगा, अवश्य करूंगा। क्या करना होगा, वह आप बतायें?'

'हमें ब्राह्म समझ कर, हिन्दू हम पर विश्वास नहीं करते हैं। अत: आपको कुछ भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा।'

'उसके लिए चिन्ता न करें। मैं उस भार को उठाने के लिए प्रस्तुत हूं।'

तभी आनन्दमयी बोल उठीं—'हां, यह भार अवश्य उठायेगा। लोगों को भ्रम में डालकर, वश में करना इसे खूब आता है।'

ललिता बोली—'पाठशाला का काम किस प्रकार होगा, उसके लिये क्या-क्या सामान चाहिये, किस क्लास में कौन-सी पुस्तक पढ़ाई जायेगी, यह सब काम आप कर डालिये।'

विनय के लिये यह काम कुछ कठिन नहीं था परन्तु तभी एक बात का ध्यान आ जाने से वह ठिठक गया, उसने सोचा 'वरादसुन्दरी ने उसे अपनी पुत्रियों से मिलने को मना कर दिया है तथा समाज में उनके विरुद्ध आन्दोलन हो रहा है। क्या इन सब बातों की खबर ललिता को नहीं है?' परन्तु ललिता के अनुरोध को टाल देने की शक्ति भी तो उसमें नहीं थी।

ललिता की बातों से सुचरिता को भी कुछ कम आश्चर्य नहीं हुआ। उसे स्वप्न मे भी यह आशा नही थी कि कभी ललिता इस प्रकार अचानक ही विनय से कन्या पाठशाला के लिये अनुरोध कर बैठेगी। विनय को लेकर एक तो समाज मे वैसे ही घोर आन्दोलन चल रहा है, दूसरी ओर यह प्रस्ताव ! ललिता जान-बूझकर ही यह कार्य करना चाहती है ! यह समझ कर सुचरिता को भय हो आया। परन्तु ललिता के मन में जो विद्रोह उठा है, उसमे विनय को भी सम्मिलित कर लेना कहाँ तक उचित है ? अतः वह अपने मन के आवेश को न दबाती हुई बोल पड़ी—'इस सम्बन्ध में अभी पिताजी से पूछ लेना आवश्यक है। विनयबाबू को भी अभी से कन्या-पाठशाला की इंस्पेक्टरी के पद की आशा नही कर लेनी चाहिये।'

सुचरिता ने जिस चतुराई से इस प्रस्ताव का विरोध किया, उससे विनय की आशङ्का और अधिक बढ गई। वह समझ गया कि जो संकट उपस्थित है, उससे सुचरिता भली भाँति परिचित है तथा ललिता से भी वह छिपा नही है। तब ललिता ऐसी बातें क्यो करती है ? इसे वह नही समझ सका।

ललिता ने कहा—'पिताजी से तो पूछना ही है, परन्तु पहिले विनयबाबू तैयार हो जायें, तभी तो उनसे पूछूँगी। पिताजी कभी आपत्ति न करेंगे, बल्कि सहयोग भी देंगे।' फिर आनन्दमयी की ओर देखकर कहने लगी—'हम लोग आपको भी नहीं छोडेंगी !'

आनंदमयी मुस्कराती हुई बोली—'हाँ, मैं तुम्हारे स्कूल मे झाड़ू दे आया करूँगी, इससे अधिक मैं और कर भी क्या सकती हूँ ?'

विनय बोला–'यही बहुत है। स्कूल साफ तो हो जाया करेगा।'

सुचरिता और ललिता के चले जाने के बाद, विनय अचानक ही ईडन गार्डन की ओर पैदल चल दिया। इधर महिम ने आनन्दमयी के पास आकर कहा—'विनय मेरे प्रस्ताव पर तैयार हो गया है, अतः काम शीघ्र कर देना चाहिये। क्या पता, फिर कभी उसकी मति पलट जाये ?'

आनंदमयी चकित होकर बोलीं—'क्या कह रहे हो ? विनय कब तैयार हुआ ? मुझसे तो उसने कुछ भी नहीं कहा।'

'मेरी बातचीत आज ही हुई है। कहता है—गोरा के आने पर मुहूर्त निश्चित किया जायेगा।'

आनंदमयी सिर हिलाती हुई बोली—'महिम, तुम ठीक नहीं समझे हो।'

'मेरी बुद्धि चाहे मोटी ही क्यों न हो, परन्तु मेरी उम्र सीधी बात समझने योग्य अवश्य हो गई है, यह सत्य समझो।'

'मैं जानती हूँ कि तुम मुझ पर नाराज होओगे, परन्तु तुम्हारी इस बात में विघ्न अवश्य पड़ेगा।'

'विघ्न डालने से ही विघ्न पड़ सकता है!' महिम ने मुँह लटकाते हुए कह डाला।

आनन्दमयी—'तुम जो भी कहो, मैं सब सह लूँगी, महिम! परंतु जिस बात में विघ्न हो, उसमें सम्मिलित होना मेरे वश की बात नहीं है। यह मैं तुम्हारी भलाई के लिये ही कह रही हूँ।'

महिम ने नाराजी प्रकट करते हुए कहा—'अपनी भलाई मुझे स्वयं ही सोचने दो। जिस कार्य में तुम्हारे सोचने-समझने की आवश्यकता न पड़े, मेरे लिए वही होगा। मेरी भलाई की चिन्ता तुम शशिमुखी के विवाह के बाद खूब कर लेना। इस सम्बन्ध में क्या कहती हो?'

आनन्दमयी ने इसका कोई उत्तर न देकर एक लम्बी सांस खींची तब जेब से पान का डिब्बा निकालकर तथा उसमें से एक बीड़ा अपने मुँह में रखते हुए महिम चले गये।

४५

ललिता ने परेशबाबू के पास आकर कहा—'बाबूजी! हम लोग ब्राह्म है, इसलिए हिन्दू लड़कियां हमारे पास पढ़ने को नहीं आतीं। अतः सोचती हूं कि यदि हिंदू-समाज के किसी व्यक्ति को इस कार्य में साथ ले

लिया जाए, तो आसानी रहेगी। आपकी क्या राय है ?'

'परन्तु, हिन्दू-समाज का आदमी मिलेगा कहाँ से ?' परेशबाबू ने पूछा।

'मिलेगा क्यों नहीं ? विनयबाबू ही हैं न ?'

'वे क्या तैयार हो सकेंगे ?'

'तैयार तो हो सकते हैं।'

परेशबाबू कुछ देर मौन रहे। फिर बोले—'सब बातों पर विचार करने के पश्चात् वे कभी तैयार न होंगे।'

'तो क्या हमारा स्कूल किसी प्रकार न चल सकेगा, बाबूजी ?'

'इस समय तो उसे चलाने में बहुत बाधायें दीख पड़ती हैं। प्रयत्न करने से अनेक अप्रिय बातें बल पकड़ने लगेंगी।'

ललिता फिर अधिक देर वहाँ न ठहरी। अपने कमरे में पहुँचने पर उसने देखा—उसके नाम डाक द्वारा एक पत्र आया था। हस्ताक्षर देखने पर पता चला, वह पत्र उसकी बचपन की सहेली शैलबाला का था। उसका विवाह हो चुका था और इस समय वह अपने पति के साथ बांकीपुर मे रह रही थी।

पत्र मे लिखा था—

'तुम लोगों के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की बातें सुनकर चित्त बहुत व्यग्र हो उठा, अतः सोचा कि तुम्हें एक पत्र लिखकर समाचार पूछ लूँ—परन्तु अभी तक फुरसत ही नहीं मिली। परसों एक सज्जन से (जिनका नाम नही बताऊँगी) जो समाचार मिला, उससे तो मेरे ऊपर जैसे वज्र ही गिर पड़ा। मैंने वैसा होने की कल्पना भी नहीं की थी। परन्तु उन्होंने जो लिखा है, उस पर विश्वास भी नही किया जा सकता। उन्होंने लिखा है— तुम्हारा विवाह किसी हिन्दू युवक के साथ होने की सम्भावना है यदि यह समाचार सत्य हो तो''''''।' आदि।'

ललिता का शरीर क्रोध के मारे काँपने लगा। उसी समय उसने उत्तर लिखा—'यह समाचार सत्य है अथवा नही, इस सम्बन्ध में तुम्हा

प्रश्न करना ही आश्चर्यजनक है। ब्राह्म-समाज के जिस व्यक्ति ने तुम्हें समाचार दिया है, क्या उसकी सत्यता की जांच करने की भी आवश्यकता है? किसी हिन्दू युवक के साथ मेरा विवाह होने जा रहा है।—यह सुनकर तुम्हारे सिर पर तो वज्र गिर ही पड़ा, परन्तु मैं तुमसे यह विश्वासपूर्वक कहती हूं कि ब्राह्म-समाज में कुछ ऐसे प्रसिद्धि-प्राप्त साधु-युवक मौजूद हैं, जिनके साथ विवाह होने की आशंका ही वज्रपात से अधिक भयानक सिद्ध हो सकती है। हां, मैं एक-दो हिन्दू युवकों को अवश्य जानती हूं, जिनके साथ विवाह होना प्रत्येक ब्राह्म-कुमारी के लिए परम सौभाग्य एवं गौरव की बात ही होगी। इसमें अधिक कुछ लिखना व्यर्थ है।'

उस दिन परेशबाबू का काम-काज दिनभर को बन्द हो गया। वे बड़ी देर तक चुप बैठे हुए कुछ सोचते रहे। फिर सुचरिता के घर जा पहुंचे। उनके उदास मुख को देखकर सुचरिता का हृदय हाहाकर कर उठा। उन्हें जो चिन्ता थी, उसे वह भली प्रकार जानती थीं।

एकान्त स्थान में बैठकर, परेशबाबू ने सुचरिता से कहा—'बेटी, इस समय ललिता के संबंध में चिन्ता का विषय आ उपस्थित हुआ है।'

'मैं जानती हूं बाबूजी!' सुचरिता ने उनके मुख की ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

'मैं समाज-निन्दा की चिन्ता नहीं करता' परेशबाबू बोले—'पर सोचता हूं, अच्छा तो क्या ललिता···।'

सुचरिता ने सब मामले को समझते हुए कहा—'ललिता मुझसे अपने हृदय की सब बातों को स्पष्ट कह दिया करती थी, परन्तु पिछले कुछ दिनों से वह अपने मन की थाह नहीं देती। मैं अच्छी तरह जानती हूं कि····।'

'ललिता के मन में कोई ऐसा भाव उत्पन्न हुआ है, जिसे वह स्वयं भी स्वीकार करना नहीं चाहती'—परेशबाबू ने बीच ही में बात काटते हुए कहा—'मैं भी उसे ठीक नहीं सोच पाता हूं कि उसकी क्या मीमांसा की जाय? अच्छा, तुम्हीं बताओ, विनय को अपने परिवार में

थाने देकर मैंने ललिता का कोई अनिष्ट किया है ?'

'विनयबाबू में तो कोई भी दोष नहीं है बाबूजी, यह आप जानते हैं' सुचरिता बोली—'उनका स्वभाव एवं चरित्र निर्मल है। उन जैसे भद्र-पुरुष तो कम ही दीख पड़ते हैं।'

परेशबाबू ने जैसे किसी नवीन तत्व को पा लिया। वे बोले—'राधे, तुमने ठीक कहा! वे अच्छे आदमी हैं या नहीं, यह देखने की बात है। अन्तर्यामी परमात्मा भी यही देखते हैं। विनय को सज्जन व्यक्ति समझने में भूल नहीं की, इसके लिये मैं उस जगदीश्वर को बारम्बार प्रणाम करता हूँ।'

परेशबाबू में जैसे जान आगई—एक गोरखधन्धा जो सुलझ गया था! वे अपने प्रभु के निकट अपराधी नहीं रहे, यह जानकर उनके मन की ग्लानि दूर हो गई। उन्हें आश्चर्य हुआ कि अभी तक वे इस अत्यन्त सरल बात को ठीक-ठीक न समझकर, पीड़ा का अनुभव क्यों कर रहे थे। वे सुचरिता के मस्तक पर हाथ रखते हुए बोले—'बेटी, तुम्हारे पास आज मुझे एक नई शिक्षा मिली है।'

सुचरिता ने उसी समय उनके पैर छूते हुए कहा—'न बाबूजी! यह आप क्या कह रहे हैं ?'

'सम्प्रदाय ऐसी चीज है, जो यह भुला देता है कि सब मनुष्य, मनुष्य ही हैं। सत्य की उपेक्षा कर, मनुष्य स्वयं ही हिंदू, ब्राह्म, मुसलमान आदि गढ़े हुए नामों का समाज बनाकर अपने लिए एक भूलभुलैयां तैयार कर लेता है। मैं अभी तक उसी में भटक रहा था।'—परेशबाबू ने सहज भाव से कहा। फिर कुछ देर मौन रहकर बोले—'कन्या-पाठशाला का विचार छोड़ने के लिए ललिता किसी प्रकार तैयार नहीं है। वह विनय से सहायता लेने के लिए मेरी सम्मति मांगती है।'

सुचरिता ने कहा—'न, बाबूजी! अभी कुछ दिन यों ही रहने दीजिये।'

'क्या, रहने क्यों दिया जाये ?'

'अभी मां बहुत नाराज हो जायेंगी।'

परेशबाबू ने विचार किया—'सुचरिता ठीक ही तो कहती है।'

४६

चार दिन पश्चात् एक चिट्ठी लिए हुए, हारानबाबू वरदासुन्दरी के पास जा पहुँचे। परेशबाबू से अब उन्हें कोई आशा न रही थी।

वरदासुन्दरी के हाथ में वह चिट्ठी देते हुए हारानबाबू ने कहा—'मैंने आप लोगों को पहले ही सावधान करने का प्रयत्न किया था। अब इस पत्र को देखकर आप समझ जायेंगी कि मामला कहाँ से कहाँ जा पहुँचा है।'

ललिता ने शैलबाला को उत्तर लिखा था, यह वही पत्र था। वरदासुन्दरी उसे पढ़कर बोलीं—'आप ही कहिये, मैं यह कैसे जान सकती हूं? जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की, वह हो रहा है, परन्तु इसके लिये आप लोग मुझे दोष न दें। सुचरिता को आप सबने ही इतना सिर चढ़ा रक्खा था। अब उस आदर्श ब्राह्म-कुमारी की कीर्ति को आप ही सँभालें। विनय और गोरा को वही इस घर में लाई। विनय को तो मैं बहुत कुछ अपने मार्ग पर ही ले आई थी, परन्तु न जाने कहाँ से वह अपनी एक मौसी को ले आई, जिसने हमारे घर में आकर मूर्तिपूजा को ही आरम्भ कर दिया। विनय को भी उसने ऐसा बिगाड़ दिया कि अब मुझे देखते ही भाग जाता है। इस सब घटनाक्रम की जड़ में आपकी वह सुचरिता ही है। मैंने जो उसे अपनी बेटी से भी अधिक पालापोसा, उसी का यह फल अब देखने को मिला है। अब मुझे यह चिट्ठी दिखाना बेकार है, आप लोगों को जो उचित जान पड़े, वह करो, मैं कुछ-नहीं जानती।'

हारानबाबू ने आज स्पष्टतया यह स्वीकार करके कि अब तक उन्होंने वरदासुन्दरी को पहिचाना नहीं था, उदार भाव से पश्चाताप प्रकट किया। अन्त में, परेशबाबू को बुलाकर, उनके हाथ में वह पत्र दे दिया। परेशबाबू ने उसे दो-तीन बार पढ़ने के उपरान्त कहा—'फिर क्या हुआ?'

वरदासुन्दरी तेज होकर बोलीं—'और क्या होना चाहिए ? अब रह ही क्या गया ? ठाकुर-पूजा, जाति-पाँति सभी तो हो गया, अब केवल किसी हिन्दू के घर में तुम्हारी लड़की का विवाह होना ही शेष रह गया है। यह भी हो जाये—बस ! उसके पश्चात् तुम भी प्रायश्चित करके हिन्दू-समाज में प्रविष्ट हो जाना, परन्तु मैं कहे देती हूँ···'

परेशबाबू हँसते हुए बीच में बोल उठे—'तुम्हें कुछ भी न कहना होगा। तुम क्यों यह निश्चय किए बैठी हो कि ललिता का विवाह किसी हिन्दू के घर में हो गया है। इस पत्र में तो वैसी कोई बात भी नहीं दीख पड़ती।'

वरदा०—'तुम कैसे देख पाओगे, यह तो मैं आज तक नहीं समझ सकी। परन्तु यदि तुम देख पाते तो ऐसी बड़ी घटना कभी नहीं घट पाती। किसी पत्र में इससे अधिक और लिखा भी क्या जा सकता है ?'

हारानबाबू बोले—'यदि ललिता को ही यह चिट्ठी दिखाकर, उसका अभिप्राय जाना जाये तो कहीं अधिक उचित रहेगा। आप लोग आज्ञा दें तो मैं ही उससे पूछ भी सकता हूँ।'

उस समय वहाँ बवण्डर की भाँति प्रवेश करते हुए ललिता ने कहा—'बाबूजी, देखिए। आजकल ब्राह्म-समाज से इस प्रकार की गुम-नाम चिट्ठियाँ आ रही हैं।' परेशबाबू ने चिट्ठी लेकर पढ़ी।

विनय के साथ ललिता का विवाह गुप्त रूप से निश्चित हो गया है—यह मानकर, पत्र-लेखक ने भाँति-भाँति की भर्त्सना, धमकी तथा उपदेशों के साथ यह लिखा था कि विनय की नीयत अच्छी नहीं है। वह ब्राह्म-समाज की स्त्री को दो दिन बाद ही त्यागकर, फिर किसी हिंदू घर में विवाह कर लेगा—आदि।

परेशबाबू के पढ़ चुकने पर वह पत्र हारानबाबू ने पढ़ा। तत्पश्चात् ललिता से कहा—'इस पत्र को पढ़कर तुम्हें क्रोध आता है, परन्तु क्या इस पत्र के लिखने का कारण तुम्हीं ने उपस्थित नहीं कर दिया है ? कहो, तुमने यह पत्र अपने हाथ से किस प्रकार

लिखा है ?'

क्षणभर को दूसरी चिट्ठी देखकर ललिता स्तब्ध खड़ी रही, फिर बोली—'सम्भवतः इस सम्बन्ध में आपका पत्र व्यवहार शैला के साथ चल रहा है ?'

हारानबाबू ने कोई स्पष्ट उत्तर न देते हुए कहा—'ब्राह्म-समाज के प्रति अपने कर्तव्य को ध्यान में रखकर ही शैल तुम्हारे इस पत्र को भेज देने के लिये बाध्य हुई है।'

ललिता तनकर खड़ी हो गई, बोली—'अब ब्राह्म-समाज जो कहना चाहता हो, कह डाले।'

हारानबाबू ने कहा—'तुम्हारे और विनयबाबू के सम्बन्ध में जो अफवाह फैल रही है, यद्यपि उस पर मुझे कोई विश्वास नहीं है, परन्तु मैं उसका स्पष्ट प्रतिवाद तुम्हारे ही मुख से सुनना चाहता हूं।'

ललिता की आंखें अङ्गारे की भांति जलने लगीं। उसने अपने कांपते हुए हाथों से कुर्सी को जोर से पकड़ते हुए कहा—'वैसे, किसी भी तरह विश्वास नहीं कर सकते क्या ?'

तभी परेशबाबू ने ललिता की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—'ललिता, तुम्हारा मन इस समय स्थिर नहीं है। यह बातचीत फिर मेरे साथ होगी—अभी रहने दो।'

हारान बोले—'परेशबाबू, आप बात को दबाने का प्रयत्न मत कीजिये।'

ललिता ने फिर क्रोध से कांपते हुए कहा—'बाबूजी दबा देने का प्रयत्न करेंगे ? वे तुम लोगों की तरह समय के प्रकाश से नहीं डरते। वे सत्य को ब्राह्म-समाज से भी बड़ा मानते हैं। मैं स्पष्ट कहती हूं कि विनय के साथ अपने विवाह को मैं तनिक भी असम्भव अथवा अन्याय नहीं मानती।'

वरदासुन्दरी अभी तक चुप थीं वे चाहती थीं कि हारानबाबू के सम्मुख अपना अपराध स्वीकार करके परेशबाबू पश्चाताप प्रकट करें, परन्तु अब वे अधिक मौन न रह सकीं। बोलीं—'ललिता, तू कह क्या

रही है, पागल हो गई है क्या ?'

ललिता बोली—'यह पागलपन की बात नहीं है। मैं खूब सोच समझकर ही कह रही हूँ। इस प्रकार मुझे लोग चारों ओर से बांधना चाहेंगे तो मैं बँध न सकूँगी। हारानबाबू जैसे के समाज के सम्बन्ध से, मैं अपने आपको मुक्त कर डालूँगी।'

हारानबाबू बोले—'तुम उच्छृङ्खलता को मुक्ति कह रही हो ?'

ललिता—'न, नीचता के आक्रमण तथा असत्य की दासता से छुटकारा पाने को ही मैं मुक्ति कहती हूँ। मैं जहां कोई अन्याय, कोई अधर्म नहीं देखती, वहाँ ब्राह्म-समाज मेरे लिए विघ्न स्वरूप कैसे बन सकेगा ?'

हारानबाबू बोले—'देख लीजिये परेशबाबू, मैं जानता था कि अन्त में ऐसी ही घटना घटेगी, मैंने यथा-सम्भव आप लोगों को सावधान करने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।'

ललिता बोली—'देखिये, मैं आपको भी सावधान किये देती हूँ, कि जो व्यक्ति आपकी अपेक्षा सब बातों में बड़े हैं, उन्हें सावधान करने का अहंकार आप अपने मन में मत रखियेगा।'

ललिता इतना कहकर चली गई।

वरदासुन्दरी बोलीं—'यह सब क्या हो रहा है ? अब क्या होना चाहिये इसका विचार करो।'

परेशबाबू ने कहा—'कर्त्तव्य का ही पालन किया जायगा। इस प्रकार उपद्रव से कर्त्तव्य निश्चित न होगा। मुझे क्षमा करो, इस विषय में मुझसे कुछ न बोलो। मैं कुछ देर एकान्त में बैठना चाहता हूँ।'

४७

सुचरिता सोच रही थी—'ललिता ने यह क्या किया ?' कुछ देर मौन रहने के उपरान्त उसने ललिता की गर्दन में हाथ डालते हु 'बहिन, मुझे तो डर लग रहा है।'

'काहे का ?' ललिता ने पूछा।

'यही कि इधर ब्राह्म-समाज में तो चारों ओर हलचल मची हु है, इधर विनयबाबू तैयार न हुए तो ?'

'वे अवश्य तैयार होंगे !' ललिता ने सिर झुकाते हुए दृढ़ स्व में कहा।

'तू तो जानती ही है, बहिन, हारानबाबू मां से स्पष्ट कह ग हैं कि विनयबाबू इस विवाह के लिए अपना समाज छोड़ने को कभ तैयार न होंगे। तुमने सब पहलुओं पर विचार किये बिना, हारानबा के सामने यह बात क्यों कह डाली ?'

'कह डालने के लिए मुझे कोई पछतावा नहीं है, दीदी'— ललिता बोली—'हारानबाबू ने सोचा होगा कि वे तथा उनका समाज शिकार के जानवर की भांति पीछा करते हुए, मुझे समुद्र-तट तक ले आया है, अतः अब मुझे आत्म-सर्म्पण करने के लिए विवश होना ही पड़ेगा। परन्तु वे यह नहीं समझते कि मैं इस समुद्र में कूद पड़ने से भी डरने वाली नहीं हूं। मैं तो उन शिकारी कुत्तों के पीछा करने से ही म खाती हूं।'

'अच्छा, एक बार बाबूजी से भी सलाह कर देखूं ?'

'बाबूजी कभी भी शिकारियों के दल में सम्मलित न होंगे। य मैं दृढ़तापूर्वक कह रही हूं'—ललिता बोली—'उन्होंने हमें कभी बन्ध में नहीं बांधना चाहा। किसी समय उनके मत से जब हमारी राय नह मिलती, तो क्या वे इसके लिए नाराज होते हैं ? ब्राह्मसमाज की दुहा देकर, उन्होंने कभी हमारा मुंह बन्द नहीं किया। मा कितनी ही बा नाराज हुईं, परन्तु केवल यही भय रहा कि कहीं हम अपने सोचने विचारने का साहस न खो बैठें। इस प्रकार जब उन्होंने हमें मनुष् बनाया है तो क्या वे हारनबाबू जैसे समाज के जेल-दरोगा के हाथों हमें यों ही सौंप देंगे ?'

'माना कि बाबूजी ने कोई बाधा न डाली तो फिर उसके बा क्या किया जायेगा ?'

'यदि तुम लोग कुछ न करोगे, तो अन्त में, मैं स्वयं ही·····'

सुचरिता ने व्यग्र होकर कहा—'न, न तुझे कुछ नहीं करना होगा, बहिन ! मैं ही इसका कुछ उपाय करूँगी।'

शाम को सुचरिता परेशबाबू के पास जाने को उद्यत हो ही रही थी तभी वे उसके पास आ उपस्थित हुए।

परेशबाबू ने बड़े कोमल-स्वर में कहा—'राधे सब सुन तो लिया ही होगा ?'

'हां, बाबूजी !' सुचरिता बोली—'सब कुछ सुन लिया है, परन्तु आप इतने चिन्तित क्यों हैं ?'

'मैं कुछ और नहीं सोचता। ललिता ने तो तूफान खड़ा कर दिया है, उन सब आघातों को वह सह भी सकेगी या नहीं—यही चिन्ता है।'

'समाज की कोई उत्पीड़न ललिता को परास्त नहीं कर सकती, बाबूजी ! यह मैं दृढ़तापूर्वक कहती हूं।'

'मैं इस बात को भली-भांति जानना चाहता हूं कि ललिता किसी क्रोध के आवेश में तो यह उद्धत-विद्रोह प्रकट नहीं कर रही है ?'

'नहीं बाबूजी !'—सुचरिता ने सिर झुकाकर कहा—'यदि यह बात होती तो मैं उसकी कोई बात नहीं सुनती। उसके हृदय में जो बात जमी हुई थी वही आघात पाकर एक साथ बाहर निकल पड़ी है। ललिता जैसी लड़की के प्रति उस बात को किसी प्रकार दबा देना, अब उचित न होगा। बाबूजी विनयबाबू बड़े अच्छे व्यक्ति हैं।'

'तो क्या विनय ब्राह्मसमाज में आने को तैयार हो जायेगा ?'

'यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। कहें तो मैं एक बार गौरा की मा के पास हो आऊं ?'

४८

'मैं भी यही सोच रहा था कि उनके पास हो आना ठीक ही रहेगा'—परेशबाबू बोले।

विनय आनन्दमयी के घर से प्रतिदिन सुब.

अपने घर जाता था। आज घर पहुँचने पर उसे एक पत्र मिला। पत्र में किसी का नाम नहीं था। उसमें केवल यही लम्बा-चौड़ा उपदेश लिखा था कि विनय का ललिता के साथ विवाह करना किसी प्रकार सुखदायी न होगा तथा वह ललिता के लिए भी अमंगल का कारण बन जायेगा। अन्त में यह लिखा था कि इतने पर भी यदि विनय ललिता से विवाह करने का विचार न बदले, तो पहले यह सोचकर भी देखले कि ललिता का फेफड़ा कमजोर है और डाक्टर लोग उसे क्षय रोग होने की आशंका करते हैं।'

इस गुमनाम पत्र को पाकर हतबुद्धि-सा रह गया। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कोई इस प्रकार की झूठी बात भी उड़ाई जा सकती है। सामाजिक बाधाओं के कारण विनय का विवाह ललिता के साथ किसी भी प्रकार नहीं हो सकता था, फिर भी जब उसे ऐसी चिट्ठी मिली, तो उसे अनुभव हुआ कि निस्संदेह इस धारणा को लेकर समाज में बहुत कुछ चर्चायें चल रही होंगी। समाज के सम्मुख ललिता को इस प्रकार अपमानित होते हुए जानकर विनय का मन क्षोभ से भर गया।

जिस समय विनय चंचल होकर बरामदे में टहल रहा था, उसी समय उसने देखा कि हारानबाबू उसी के पास चले आ रहे हैं। उसने यह भी अनुमान कर लिया कि उस गुप्त-पत्र के पीछे कोई बहुत बड़ी हलचल अवश्य उपस्थित है।

अन्य दिनों की भांति विनय ने आज अपनी स्वाभाविक प्रगल्भता प्रकट की। हारानबाबू को एक कुर्सी पर बिठाकर उनके कुछ कहने की प्रतीक्षा करने लगा।

तभी हारानबाबू ने कहना आरम्भ किया—'विनयबाबू, आप 'हिंदू हैं न ?'

'हिन्दू तो हूँ ही !'—'विनय बोला।

'तो आप मेरे प्रश्न से नाराज न होइयेगा। कोई-कोई समय ऐसे भी आते हैं, जब हम अपने चारों ओर की अवस्था पर विचार किए बिना

ही अन्धे होकर चलने लगते हैं—इसमें संसार में दुःख का जन्म होता है। यदि एक ही स्थान पर कोई ऐसे प्रश्न करे कि 'हम क्या हैं, हमारी सीमा कहाँ है, हमारे आचरण का फल कहाँ तक पहुँचेगा, तो आप उस अप्रिय सत्य कहने वाले प्रश्नकर्त्ता को अपना मित्र ही मानियेगा'—हारान-बाबू एक ही स्वर में कह गये।

विनय ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—'इतनी भूमिका न बाँध कर, आपको मुझसे जो पूछना हो, वह अपने को पूर्णतः निरापद जानकर पूछ सकते हैं।'

'मैं आपके ऊपर किसी अपराध का दोषारोपण नहीं करना चाहता'—हारानबाबू बोले—'परन्तु विवेचना की त्रुटि का फल विषैला भी हो सकता है। यह बात यदि आपसे न भी कही जाये तो भी आप समझ जायेंगे।'

'जिसे कहने की आवश्यकता न हो, उसे न कहें, परन्तु जो वास्त-विकता हो, उसे तो प्रकाशित कीजिये ही।' विनय ने कहा।

'आप हिंदू हैं, अपने समाज को छोड़ना भी आपके लिए असम्भव है—हारानबाबू बोले—'तब परेशबाबू के परिवार में आपका आना किस प्रकार उचित हो सकता है? इससे उनकी लड़कियों के विषय में समाज में अप्रिय बातें जोर पकड़ती हैं।'

विनय कुछ देर गम्भीर बना रहा। फिर बोला—'हारानबाबू समाज के व्यक्ति किस घटना का क्या अर्थ निकालते हैं, यह बहुत कुछ उनके स्वभाव पर निर्भर करता है। मैं उसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले सकता। परेशबाबू की लड़कियों के सम्बन्ध में भी यदि आपके समाज में कोई ऐसी बात उठना सम्भव हो, तो उसमें लज्जा का जितना विषय आप लोगों के लिए है उतना लड़कियों के लिए नहीं है।'

'यदि कोई कुमारी अपनी मां को छोड़कर किसी बाहरी पुरुष के साथ, जहाज भ्रमण के लिए अकेली चल दे तो उस सम्बन्ध में भी कुछ विचार करने का अधिकार समाज को है अथवा नहीं? आप बताइये।' हारानबाबू ने कहा।

आप लोग भी यदि बाहरी घटना को भीतरी अपराध का स्
दें तो फिर आपको हिन्दू-समाज छोड़कर, ब्राह्म-समाज में आने की
आवश्यकता थी ? इन बातों के लिए, मैं बहस करना आवश्यक
समझता। मुझे जो कहना है, उसका निश्चय मैं स्वयं करूँगा।
सम्बन्ध में आप मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते।'

'मैं भी आपसे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता' हारानबाबू
उत्तर दिया—'इस समय आपको परेशबाबू के परिवार से दूर ही र
चाहिए। अन्यथा यह अन्याय होगा। आप लोगों को यह पता भी
है कि परेशबाबू के हृदय में एक प्रबल अशान्ति उत्पन्न करके, अ
लोगों ने उनका कितना बड़ा अनिष्ट किया है।'

हारानबाबू के चले जाने पर विनय के हृदय में एक म
वेदना शूल की भाँति चुभ उठी।

४६

जिस समय हारानबाबू विनय के घर आये, ठीक उसी स
आनन्दमयी के पास जाकर अविनाश ने यह समाचार सुनाया कि ललि
के साथ विनय का विवाह पक्का हो गया है।'

आनन्दमयी बोलीं—'यह बात सत्य नहीं हो सकती।'

'सत्य नहीं हो सकती ?' अविनाश ने कहा—'उसके लिए ऐ
करना क्या असम्भव है ?'

'मैं यह नहीं जानती, परन्तु इस बात को विनय मुझसे क
नहीं छिपाता !' आनन्दमी बोलीं।

अविनाश ने यह बारम्बार कहा कि उसे यह खबर ब्राह्म-सम
के एक खास व्यक्ति से मिली है तथा पूर्ण विश्वसनीय भी है। वह
बात को बहुत पहले से जानता था कि विनय का यही शोचनीय परिण
होगा, यहाँ तक कि उसने इस सम्बन्ध में कई बार गोरा को भी सावध
कर दिया था। आनन्दमयी को यह समाचार सुनाने के बाद, अविन
ने महिम को भी यह खबर जा सुनाई।

आज विनय जब आया तो आनन्दमयी उसकी मुखाकृति देख कर ही समझ गईं कि उसके हृदय में कोई गहरी चोट लगी है। भोजन कराने के उपरान्त वे उसे अपने कमरे में ले पहुँचीं और कहने लगीं—'विनय, तुझे क्या हो गया है ?'

'इस चिट्ठी को पढ़कर देखो, मा।' विनय ने कहा।

आनन्दमयी के पत्र पढ़ लेने के बाद विनय फिर बोला—'हारान-बाबू आज सुबह मेरे घर आये थे। वे मुझसे बहुत बातें कह गये हैं।'

'क्यों ?' आनन्दमयी ने पूछा।

'उनका कहना है कि मेरा आचरण ही परेशबाबू के परिवार की निन्दा का कारण बन गया है।'

'लोग कहते हैं कि तेरा विवाह ललिता के साथ पक्का हो गया है, इस सम्बन्ध में मुझे तो कोई निंदा की बात नहीं दीखती।'

'यदि ऐसा हो सकता तो कोई बात नहीं थी, परन्तु जहाँ ऐसा होने की कोई संभावना ही नहीं है, वहाँ ललिता के सम्बन्ध में ऐसी बातें उड़ाना कितनी बड़ी नीचता है, तुम्हीं सोचो।'

'परन्तु, यदि तुझमें पुरुषार्थ हो तो तू इस निंदा एवं अपमान से ललिता की रक्षा कर सकता है।'

'सो कैसे मा ?'

'उसके साथ विवाह करके !'

'माँ, यह तुम क्या कह रही हो ? अपने विनय को तुम क्या समझती हो, यह मैं नहीं जान सका। क्या तुम यह समझती हो कि मेरे एक बार 'हाँ' कह देने मात्र से ही सब बातें बन्द हो जायेंगी—क्या सब लोग केवल मेरी ही ओर दृष्टि लगाये बैठे हैं ?'

'मैं इतनी बातें सोचने की आवश्यकता नहीं देखती। तू जो कुछ कर सकता है, उसे करने से अपना कर्तव्य पूरा कर देगा। तू कह सकता है कि मैं ललिता के साथ विवाह करने को प्रस्तुत हूँ।'

'मैं ऐसी असङ्गत बात कहूँगा तो क्या वह ललिता के लिए अपमानजनक न होगी ?'

'तू असङ्गत क्यों कहेगा ? जब तुम दोनों के विवाह का अफवाह उड़ ही चुकी है, तब यह निश्चय समझलो कि यह सङ्गत समझकर ही उड़ाई गई है। मैं कहती हूँ, तुझे इसमें कोई संकोच नहीं करना चाहिये।'

'परन्तु गोरा का भी तो ख्याल करना पड़ेगा !'

'इस सम्बन्ध में उसका ख्याल करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं जानती हूँ कि वह नाराज होगा और यह भी नहीं चाहती कि वह तुम पर नाराज हो, परन्तु फिर भी तू क्या करेगा ? यदि तेरी ललिता के ऊपर श्रद्धा है तो तू उसे समाज में अपमानित होने देना कभी पसन्द नहीं करेगा।'

'मा ! मैं तुम्हें जितना देखता हूँ, उतना ही आश्चर्यचकित हो जाता हूँ।' तुम्हारा हृदय इतना निर्मल क्यों है ? क्या तुम्हें पैरों से नहीं चलना पड़ता ? ईश्वर ने तुम्हें आंख दे रक्खी हैं, तुम संसार-रूपी मार्ग पर चलने में, कहीं भी तो नहीं अटकतीं !'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'मुझे अटकाने के लिए ईश्वर ने कोई सामग्री ही नहीं छोड़ी। मेरा मार्ग तो एकदम साफ कर रक्खा है उसने।'

'परन्तु मा !' विनय ने कहा—'मैं मुँह से चाहे जो कुछ कह लूँ परन्तु मेरा मन अवश्य अटक जाता है। मैं इतना पढ़ता-लिखता, बहस करता तथा समझता-बूझता हूँ, परन्तु मुझे अचानक दिखाई देता है कि फिर भी मेरा मन निरा मूर्ख ही बना हुआ है।'

इसी समय वहाँ महिम ने आकर ललिता के सम्बन्ध में ऐसे उजड्डपन की बातें बकनी आरम्भ करदीं, जिन्हें सुनकर विनय का हृदय संकोच से पीड़ित हो उठा। वह चुपचाप बैठा रहा। महिम उन दोनों के प्रति अत्यन्त अपमानजनक बातें बकने के उपरान्त, कुछ देर बाद वापिस लौट गया।

इस प्रकार चारों ओर से विनय को लांछित होते देखकर आनन्दमयी ने कहा—'विनय ! जानता है, अब तुझे क्या करना चाहिये ?'

विनय ने मस्तक उठाकर उनके मुँह की ओर देखा। वे बोली– मुझे एक बार परेशबाबू के पास जाना चाहिये। उनसे बातचीत करने पर सब मामला स्पष्ट हो जायेगा।'

५०

आनन्दमयी को अचानक आया हुआ देखकर सुचरिता ने चकित होकर कहा—'मैं आपके ही पास जाने की तैयारी कर रही थी।'

आनन्दमयी हँसकर बोलीं—'तुम मेरे पास आने की तैयारी कर रही थी, या नहीं, यह मैं नही जानती, परन्तु जिस बात के लिए तुम चाहती थीं, उसका समाचार पाकर मुझसे नहीं रहा गया, इसीलिए यहाँ चली आई।'

आनन्दमयी को समाचार मिलने की बात सुनकर, सुचरिता को वास्तव में आश्चर्य हुआ। आनन्दमयी बोली— बेटी, विनय को मैं अपने लड़के की तरह ही मानती हूँ। पहले उसी विनय के द्वारा तुम लोगों की प्रशंसा सुनकर, मैंने तुम्हें बिना देखे हुए भी मन-ही-मन कितने ही आशीर्वाद दिये थे। अब उस विनय द्वारा तुम्हारे प्रति कोई अन्याय होने की बात सुनकर, मैं भला कैसे स्थिर रहती? मेरे द्वारा तुम्हारा कोई उपकार हो सकेगा, इसे तो मैं नहीं जानती, परन्तु मन कुछ अजीब सा हो उठा था, इसीलिए यहां चली आई हूँ। सच कहना बेटी, क्या विनय की ओर से कोई अन्याय हुआ है?'

'कुछ भी तो नहीं'—सुचरिता ने कहा—'जिस बात को लेकर हलचल मच रही है, उसकी जिम्मेदार तो ललिता ही है विनयबाबू ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी ललिता बिना किसी से कुछ कहे-सुने अचानक ही स्टीमर पर चली आयेगी। परन्तु लोग इस बात को इस प्रकार उड़ा रहे हैं, जैसे इस संबंध में दोनों ने पहले कोई गुप्त-सलाह कर रक्खी थी। इधर ललिता ऐसी तेजस्विनी लड़की है कि वह इस संबंध में किसी प्रकार का प्रतिवाद करके, किसी से कुछ कहना ही नहीं चाहती कि वास्तविकता आखिर थी क्या?'

ाकि लिए ...

' बातों को सुनकर विनय के हृदय में तो जरा भी शांत नहीं
संबंध में वह स्वयं को ही अपराधी समझे बैठा है।'

चरिता ने अपना मुख नीचे झुकाकर कहा—'क्या आप समझती
यवाबू······?'

ानंदमयी उसके सङ्कोच को देखकर बीच में ही बोल उठीं—
लता विनय से जो करने को कहेगी, उसे वह निस्सन्देह स्वीकार
मैं उसे बचपन से देखती आई हूं। वह जिसका हो जाता है, उसे
र्वस्व समर्पित कर देता है। इसीलिए मुझे भय रहता है कि
न किसी ऐसे स्थान पर न चला जाये, जहां से उसे फिर कुछ भी
की आशा न की जा सके।'

सुचरिता के हृदय से जैसे एक बोझ हट गया। बोली—'ललिता
ाकृति के लिए आपको कोई चिंता न करनी पड़ेगी। परन्तु, क्या
ाबू अपना समाज छोड़ने को प्रस्तुत हो सकेंगे?'

'समाज चाहे उसका त्याग कर दे, परन्तु वह समाज का त्याग
करने लगा? इसकी आवश्यकता भी क्या है बेटी?' आनन्दमयी
ा।

'यह आप क्या कह रही हैं?' विनयबाबू हिन्दू रहते हुए भी क्या
-समाज की लड़की से विवाह कर लेंगे?'

'यदि वह ऐसा करने को तैयार हो तो उसमें तुम लोगों को क्या
त्ति होगी?'

सुचरिता इस झमेले को न समझ सकी। बोली—'मैं नहीं सम-
ी कि यह किस प्रकार संभव हो सकेगा?'

आनंदमयी—'पर बेटी, मैं खूब समझती हूं। देखो, मैं अपने घर
नियम को नहीं मानती, इसीलिए लोग मुझे क्रिस्तानी कहते हैं।
नी इच्छा से ही मैं प्रत्येक काम-काज के समय अलग रहती हूं। तुम
ाश्चर्य करोगी कि गोरा मेरे कमरे में पानी तक नहीं पीता, परंतु क्या
सीलिए मैं यह कह दूं कि यह मेरा घर और समाज नहीं है? सब निंद



और अपमान को सहकर भी, मैं अपने ही और समाज में बनी हुई हूँ। इससे मेरा कोई काम नहीं अटकता। जो मेरा है उसे अन्त तक अपना ही कहूँगी, चाहे वह स्वयं मुझे स्वीकार न करे।'

सुचरिता अब भी ठीक से नहीं समझ सकी। बोली—'परंतु, ब्राह्म समाज चाहता है कि विनयबाबू......।'

'उसका मत भी तो उसी प्रकार है'—आनन्दमयी ने कहा—ब्राह्म-समाज का मन कोई संसार से निराला मत नहीं है। तुम्हारे पत्रों में जो उपदेश प्रकाशित होते रहते हैं, विनय उन्हें पढ़कर मुझे सुनाया करता है। मुझे तो उनमें कहीं कोई अन्तर नहीं जान पड़ता।'

इसी समय 'दीदी' कहकर कमरे में प्रवेश करती हुई ललिता, आनंदमयी को बैठी देख, लज्जा से लाल हो उठी। सुचरिता का मुँह देखते ही उसने समझ लिया कि उसी के विषय में कोई चर्चा चल रही थी, परन्तु उस समय वहाँ से निकल भागने का भी तो कोई चारा न था।

तभी आनंदमयी बोल उठी—'आओ बेटी ललिता, आओ।'

इतना कह, उन्होंने ललिता को हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया जैसे अब वह कोई विशेष प्रकार से उनकी अपनी हो चुकी हो।

तत्पश्चात् पहली ही बातचीत का सिलसिला आरंभ करते हुए आनंदमयी ने सुचरिता से कहा—'देखो बेटी, भले के साथ बुरे का मिलना ही कठिन है, परन्तु तो भी संसार में उनका मिलन देखा जाता है, यह नहीं, सुख दुःख में भी वे साथ ही रहते हैं। जब यह संभव है, तब जहाँ केवल मत का थोड़ा-सा अन्तर हो, वहाँ उस थोड़े-से अन्तर के कारण, वे दो व्यक्ति-जिनके हृदय परस्पर मिल चुके हो, क्यों नहीं मिल सकते? मनुष्य का वास्तविक मेल क्या मत पर ही आधारित है!'

सुचरिता मस्तक झुकाये बैठी रही।

आनन्दमयी ने फिर कहा—'क्या तुम्हारा ब्राह्म-समाज भी एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से नहीं मिलने देगा? जिन्हें ईश्वर ने भीतर से एक कर दिया, क्या उन्हें तुम्हारा समाज बाहर से अलग रख सकेगा?'

इस विषय को लेकर आनन्दमयी जिस उत्साह के साथ बातें कर

रही थीं, वह केवल ललिता तथा विनय के वीच विवाह की वाधा दूर करने के लिए ही नहीं थीं। उनकी इच्छा थी कि सुचरिता यह भलीभांति जान ले कि यदि वह ऐसे ही संस्कारों में फँसी रही तो किसी प्रकार काम नहीं चल सकेगा। 'विनय के ब्राह्म होने पर ही उसका विवाह ललिता के साथ हो सकता। है'—यदि इस सिद्धान्त को वल मिला तो आनन्दमयी ने पिछले कुछ दिनों से जो आशा वांध रक्खी थी, वह तो मिट्टी में ही मिल जायेगी।

आज विनय ने जव आनन्दमयी से यह प्रश्न किया था, 'माँ! क्या मुझे ब्राह्म-समाज में नाम लिखाना ही होगा और क्या मुझे वह स्वीकार करना ही पड़ेगा?' तो उस समय आनन्दमयी ने उसे उत्तर देते हुए कहा था—'नहीं तो, इसकी तो मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती।'

'फिर जव विनय ने पूछा—'यदि वे लोग हठ करें, दवाव डालें, तव?'

आनन्दमयी ने कुछ देर चुप रह कर कहा था—'यह दवाव नहीं डाला जा सकता। दवाव चलेगा भी नहीं।'

आनन्दमयी की इस आलोचना में सुचरिता सम्मिलित नहीं हुई। वह चुपचाप वैठी रही। तव आनन्दमयी ने अनुभव किया, जैसे सुचरिता का मन अभी भी उनकी वात को स्वीकार नहीं करता।

वे सोचने लगीं—'इस गोरा के स्नेह के कारण ही तो मेरा मन समाज के सव संस्कार को त्याग सका है तो क्या सुचरिता गोरा को नहीं चाहती? यदि चाहती होती तो यह छोटी-सी वात उसके लिए इतनी वड़ी न हो उठती।'

आनन्दमयी का हृदय कुछ उदास हो गया। गोरा के जेल से छूटने में अव दो ही दिन शेप थे। वे अपने मन में सोच रही थीं, जैसे अव सुख का एक क्षेत्र प्रस्तुत हो रहा है। अव की वार तो गोरा को वन्धन में वांधना ही पड़ेगा, परन्तु उसे वांधना कोई सरल कार्य नहीं है। हिन्दू-समाज की किसी लड़की के साथ गोरा का विवाह करना अन्याय

ही होगा। इसीलिए उन्होंने अनेकों कन्याओं के पिताओं से गोरा के विवाह के लिए इन्कार कर दिया था। गोरा कहता था, 'मैं विवाह न करूँगा।' आनन्दमयी तब भी उसका कोई प्रतिवाद नहीं करती थीं। परन्तु उन दिनों गोरा के लक्षण देखकर उन्हें मन में कुछ सन्तोष हो बैठा था। इसीलिए सुचरिता के मौन-विरोध से उनके हृदय को बड़ी ठेस लगी। परन्तु वे सहज ही में हारने वाली स्त्री नहीं थीं। उन्होंने मन में कहा—'सब देखा जायगा।'

५१

परेशबाबू बोले—'विनय, मैं नहीं चाहता कि तुम एक संकट से ललिता का उद्धार करने के लिए, कोई दुस्साहसिक कार्य कर बैठो। आज जो भाँति-भाँति की अफवाहें फैल रही हैं, दो दिन बाद किसी को उनकी याद भी नहीं रहेगी।'

ललिता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के निमित्त आज विनय कटिबद्ध होकर आया था। जानता था कि समाज मे इस विवाह से विरोध उत्पन्न होगा। इससे भी बढ़कर उसे गोरा के क्रोध करने का भय था, फिर भी कर्त्तव्य की दुहाई देकर, उसने इन सब अप्रिय कल्पनाओं को अपने हृदय से निकाल फेंका था। ऐसी अवस्था में जब परेशबाबू ने उसकी कर्तव्य बुद्धि पर अपनी सम्मति प्रकट की, तब विनय ने उसे किसी प्रकार काटना न चाहा।

वह बोला—'मैं आपके स्नेह-ऋण को कभी नहीं चुका सकूँगा। परन्तु मेरे कारण आपको तनिक भी अशान्ति हो, इसे मैं तनिक भी नहीं सह सकता।'

'तुम मेरे कहने का आशय ठीक-ठीक नही समझे, विनय?'—परेशबाबू ने कहा—'मेरे ऊपर तुम्हारी जो श्रद्धा है, उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। परन्तु उस श्रद्धा को शिरोधार्य करके, जो तुम अपना कर्त्तव्य पालन करने के निमित्त मेरी कन्या से विवाह करना चाहते हो, यह कन्या के लिये गौरव की बात नही है। इसलिये मैं कहता हूँ कि

ऐसा कोई भारी सङ्कट नहीं है, जिसके कारण तुम्हें कोई त्याग करने की आवश्यकता पड़े।'

जो भी हो, कर्त्तव्य के हाथ से विनय को छुटकारा मिल गया, परन्तु उसका मन बारम्बार कह रहा था कि तुम लौटना चाहो तो भले ही लौट जाओ, मैं यहीं रहना चाहता हूँ।

परेशबाबू ने जब कोई भाव छिपा रखने का अवसर न दिया, तो विनय बोला—'मैं किसी कर्त्तव्य के अनुरोध से इस कष्ट को स्वीकार क रहा हूँ, ऐसा आप न समझें। यदि आपकी सम्मति हो तो मेरे लि अधिक सौभाग्य और क्या होगा? मुझे यदि भय है तो केवल यह पीछे.....'

यह सुनकर सत्यप्रिय परेशबाबू भी संकोच-रहित होकर व लगे—'तुम्हें जिस बात का भय है, उसका कोई आधार नहीं है। मैंने सुचरिता से सुना है कि ललिता का हृदय भी तुमसे विमुख नहीं है।'

विनय के हृदय में आनन्द की बिजली चमक उठी! ललिता के मन की गूढ़ बात जो सुचरिता के मुख से प्रकट हुई थी, वह कब हुई, कैसे हुई? इसमें उसका मन रम गया।

वह बोला—'आप मुझे इस योग्य समझते हैं, तो मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है?'

परेशबाबू ने कहा—'तुम यहीं ठहरो, मैं जरा ऊपर हो आऊँ।' वे वरदासुन्दरी से सलाह लेने जा पहुँचे। वरदासुन्दरी ने कहा- 'विनय को ब्राह्म-धर्म की दीक्षा लेनी पड़ेगी।'

'सो तो लेनी ही पड़ेगी।' परेशबाबू ने कहा।

'तो यह पहले ही निश्चय हो जाना चाहिये'—वरदासुन्दरी बोलीं—'विनय को यहां ही बुलालो न!'

विनय के ऊपर आ जाने पर वरदासुन्दरी ने कहा—'दीक्षा की तिथि भी निश्चित हो जानी चाहिये।'

विनय ने पूछा—'दीक्षा की क्या आवश्यकता है?'

'यह तुम क्या कह रहे हो?' वरदासुन्दरी बोलीं—'दीक्

बिना तुम्हारा विवाह ब्राह्म-समाज में कैसे हो सकेगा ?'

विनय कुछ उत्तर न देकर, सिर नीचा किये बैठा रहा। परेश-बाबू ने अब तक यही समझ रक्खा था कि जब विनय हमारे घर में विवाह करने को तैयार हुआ है तो वह ब्राह्म-समाज की दीक्षा भी अवश्य ले लेगा।

कुछ देर मौन रहकर, विनय बोला—'ब्राह्म-समाज के सिद्धान्तों पर मेरी पूर्ण श्रद्धा है और मेरा व्यवहार भी कभी उसके विरुद्ध नहीं रहा है, फिर भी विशेष मत से दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ?'

वरदासुन्दरी बोलीं—'जब मत मिलता है तो दीक्षा ले लेने में हानि भी क्या है ?'

'मैं हिन्दू-समाज को एक साथ छोड़ दूँ, यह मुझसे न हो सकेगा !'

'तब तो ऐसी बातें कहना भी अनुचित ही है। क्या तुम हम लोगों का उपकार करने के लिए हमारी कन्या से विवाह करने को प्रस्तुत हुए हो ?'

विनय को यह बात बुरी लगी। उसने देखा—वास्तव में, इन लोगों के लिए उसका प्रस्ताव अपमानजनक हो उठा है।

सिविल-मैरेज का कानून पास हुए लगभग एक वर्ष हो चुका था। उस समय गोरा तथा विनय ने इस कानून के विरोध में समाचार पत्रों में तीव्र आलोचना की थी। आज उसी सिविल-मैरेज को स्वीकार करके विनय स्वयं को हिन्दू न माने, यह बड़ी कठिन बात थी।

उधर परेशबाबू की आत्मा ने यह बात स्वीकार नहीं की कि विनय हिन्दू-समाज में रहते हुए ललिता से विवाह करे। कुछ देर बाद विनय एक लम्बी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ। उसने वरदासुन्दरी तथा परेशबाबू को प्रणाम करते हुए कहा-'आप मुझे क्षमा कर दें। इस बात को और आगे बढ़ाकर मैं अपराधी नहीं बनना चाहता।' इतना कहकर वह घर से निकल पड़ा।

सीढ़ी के पास आकर उसने देखा, बरामदे के कोने में एक ह

सा डेस्क रक्खे हुए, ललिता अकेली बैठी हुई पत्र लिख रही थी। विनय के पैरों की आहट सुनकर उसने आंख उठाकर, उसके मुंह की ओर देखा। उस दृष्टि ने विनय के हृदय को चञ्चल कर दिया। ललिता का मुख उसने पहिले भी कई बार देखा था परन्तु आज उस दृष्टि में कुछ और ही रहस्य भरा था। ललिता के मन की बात सुचरिता जान गई है, यह आज विनय को ललिता के करुणापूर्ण नेत्रों में घिरे हुए मेघ की भांति दिखाई दी। उसकी टकटकी बँध गई। फिर वह बिना कोई बात किये अपने मन की गति जैसे-तैसे रोक कर, सीढ़ी से नीचे उतरता हुआ चला गया।

५२

जेल से छूटने पर गोरा ने देखा—परेशबाबू तथा विनय फाटक के बाहर खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

परेशबाबू के शान्ति एवं स्नेहपूर्ण मुखमण्डल को देखकर, उसने आज जिस प्रसन्नता एवं भक्तिपूर्वक उनके चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगाई, वैसी भक्ति उसने कभी नहीं दिखाई थी। परेशबाबू ने स्नेहार्द्र हो, उसे अपने कण्ठ से लगा लिया।

फिर गोरा ने हँसते हुए विनय का हाथ पकड़कर कहा—'विनय स्कूल से कालेज तक हम दोनों ने एक साथ रहकर ही शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु मैं इस विद्यालय में, तुम्हें छोड़कर अकेला ही चला आया।'

विनय यह सुनकर न तो हँसा और न कुछ बोला ही।

तब गोरा ने फिर पूछा—'मा कैसी हैं?'

'अच्छी तरह हैं!' विनय ने उत्तर दिया।

परेशबाबू बोले—'आओ, बहुत देर से तुम्हारे लिए गाड़ी खड़ी हुई है।'

गाड़ी में सवार होकर तथा फिर स्टीमर में बैठकर, तीनों व्यक्ति दूसरे दिन सुबह कलकत्ते पहुँचे। गोरा के आने की बात सुनकर, सैकड़ों लोग उसके दर्शन करने के लिए फाटक पर आये थे। गोरा उनसे किसी

प्रकार छुटकारा पाकर, भीतर घर मे आनन्दमयी के पास जा पहुँचा। आनन्दमयी आज प्रातःकाल ही स्नानादि से निवृत्त हो, उससे मिलने के लिए उत्सुक बैठी थी। गोरा ने जब उनके पैरों पर गिरकर प्रणाम किया, उस समय उनके नेत्रों से आँसू बह निकले।

गङ्गा-स्नान करके कृष्णदयालबाबू जैसे ही घर आये, वैसे ही गोरा उनसे मिलने जा पहुँचा। उसने उन्हें दूर ही से प्रणाम किया। कृष्णदयाल कुछ लज्जित से हो, उससे कुछ दूरी पर, एक दूसरे आसन पर बैठ गए।

गोरा बोला—'पिताजी, मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ।'

'इसकी तो कोई आवश्यकता नही दीखती' कृष्णदयालबाबू ने कहा—'तुम यह सब मत करो, मैं इसके लिए स्वीकृति न दूँगा।'

आनन्दमयी ने गोरा तथा विनय के लिए चौके में आसन बिछवा दिया। भोजन करने के बाद, जब दोनों मित्र छत के ऊपर वाली निर्जन कोठरी में जाकर बैठे तो कुछ देर तक खामोशी का वातावरण छाया रहा। विनय की समझ में न आया कि इस एक महीने के भीतर उसके सम्बन्ध मे जो कोई बात उठ खड़ी हुई है, उसे वह गोरा से किस प्रकार कहे? गोरा परेशबाबू के घर वालो की कुशलता पूछना चाहता था, परन्तु वह भी न पूछ सका। वह इस प्रतीक्षा में बैठा था कि विनय स्वय उनकी चर्चा करेगा। यद्यपि उसने परेशबाबू से उनकी पुत्रियो का, कुशल समाचार पूछा था, परन्तु उसके उत्तर मे 'वे सब ठीक हैं' सुनकर ही उसे पूर्ण सन्तोष नही हुआ था। वह उनके विषय मे ब्यौरेवार सब समाचार जानना चाहता था।

सहसा विनय सावधान होकर बैठ गया। बोला— पिछले दिनो एक अनिवार्य घटना के कारण ललिता के साथ मेरा सम्बन्ध उलझ गया है, यदि मैं उसके साथ विवाह करूँ, तो उसे समाज मे बहुत दिनो तक अन्यायपूर्ण अपमान सहना पड़ेगा।'

'कैसी घटना है, जरा सुनूँ भी तो सही।' गोरा ने कहा।

विनय—'बहुत-सी बातें हैं, उन्हे क्रमशः बताऊँगा, पर

ी बात को मानलो।'

'अच्छा, मान लेता हूँ'—गोरा ने कहा--'परन्तु मेरा इस सम्बन्ध में यही कहना है कि यदि घटना अनिवार्य है तो उसका दुःख भी अनिवार्य होगा। यदि ललिता के भाग्य में, समाज द्वारा अपमान सहना ही बदा है तो उसे भोगना ही पड़ेगा, उसके लिए कोई उपाय नहीं है।'

'परन्तु उस दुःख का निवारण करना तो मेरे हाथ में है।'

'है तो ठीक है। परन्तु हठ करने से यह न हो सकेगा। कोई अन्य उपाय न रहने पर चोरी करना अथवा हत्या करना भी तो पुरुष के ही हाथ में है परन्तु क्या ऐसा करना चाहिये ? ललिता के साथ विवाह करके तुम अपना कर्तव्य पूरा करना चाहते हो तो क्या तुम्हारे कर्त्तव्य की इतिश्री यहीं हो जायेगी ? अपने समाज के प्रति तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है क्या ?'

'मालूम होता है, अब मेरा मत तुमसे न मिलेगा। मैं किसी व्यक्ति की ओर आकृष्ट होकर समाज का विरोध नहीं करता। मैं कहता हूँ कि व्यक्ति तथा समाज, दोनों के ऊपर एक धर्म है। उसी पर दृष्टि रख कर चलना चाहिये। जिस प्रकार व्यक्ति को बचाना मेरा कर्त्तव्य नहीं उसी तरह समाज का मन रखना भी मेरा कर्त्तव्य नहीं है। मुझे तो केवल धर्म की ही रक्षा करनी चाहिये।'

'परन्तु जो धर्म व्यक्तिगत अथवा समाजगत न हो, मैं उसे धर्म मानने के लिए ही तैयार नहीं हूँ।'

विनय को क्रोध हो आया। बोला--'मैं मानता हूँ कि धर्म व्यक्ति और समाज की भित्ति पर आधारित नहीं है, बल्कि व्यक्ति और समाज ही धर्म की भित्ति पर आधारित हैं। समाज जिसे चाहे, उसी को धर्म मान लिया जाए, तो एक प्रकार से समाज का सर्वनाश करना हुआ यदि समाज मेरी किसी धर्मगत स्वाधीनता में बाधा डाले तो उस अनुचित बाधा को मानकर चलना ही समाज के प्रति कर्त्तव्य-पालन करना माना जायेगा। ललिता के साथ मेरा विवाह अनुचित नहीं है, अवस्था में समाज से प्रतिकूल होने के कारण ललिता से विमुख हो

ही मेरे लिए अधर्म है ।'

'न्याय-अन्याय केवल तुम्हारे ऊपर ही निर्भर नहीं है'—गोरा बोला—'इस विवाह के पश्चात् तुम अपनी सन्तानों को कहाँ ले जाओगे, क्या इस पर भी तुमने कभी विचार किया है ?'

'इस प्रकार सोचते रहने से ही, मनुष्य सामाजिक अन्याय को चिरस्थायी बना बैठता है । जो किसी साहब की लात खाकर कई दिनों तक अपमान सहता है, तुम उसे दोष क्यों देते हो ? वह भी तो अपनी भावी सन्तान की बात सोचकर ही वैसा करता है ।'

'मैं तुम्हारे साथ विवाद न करूँगा । तुम्हारे तर्क में कोई बल नहीं है । इसमें हृदय को भले ही समझा लो । ब्राह्म-कुमारी के साथ विवाह करके तुम देश के आम लोगों से अलग होना चाहते हो, यह बड़े खेद की बात है । तुम ऐसा काम कर सकते हो, परन्तु मुझसे यह कभी नहीं हो सकता । यही आकर मुझमें-तुममें भेद हो जाता है । जहाँ मेरा प्रेम है, वहाँ तुम्हारा नहीं है । तुम जिस जगह छुरी चलाकर अपने को मुक्त करना चाहते हो, वहाँ तुम्हारा कोई मोह नहीं है, परन्तु उस जगह मेरे प्राण कण्ठ-होठों पर आ जाते हैं । मैं तो अपने भारतवर्ष को चाहता हूँ । तुम चाहे दोष दो अथवा गालियाँ, मैं उससे बढ़कर और किसी को नहीं चाहता । मैं ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे मेरा भारतवर्ष के साथ रत्तीभर भी संबंध हो सके ।'

विनय कुछ कहने ही वाला था कि गोरा फिर बोला—'तुम मेरे साथ विवाद करते हो ? यह संसार जिस भारतवर्ष को त्याग रहा है, अपमान कर रहा है, मैं उसी के साथ अपमान के आसन पर बैठना चाहता हूँ । यह जाति-भेद का पक्षपाती, कुसंस्कारों से ग्रसित तथा मूर्ति पूजक भारतवर्ष ही मेरा है और मैं इसका हूँ । यदि तुम इससे अलग होना चाहते हो तो फिर मुझसे अलग होना पड़ेगा ।'

इतना कह कर गोरा कमरे से निकल कर बाहर घूमने लगा । उसी समय नौकर ने आकर सूचना दी—'आपको माँ बुला रही हैं ।'

आनन्दमयी के पास गोरा जब पहुँचा, उस समय उनके

प्रसन्नता झलक रही थी। गोरा का चित्त पहले से उद्भ्रान्त था। अतः वह यह न पहचान सका कि माँ के पास और कौन बैठा हुआ है।

सुचरिता ने खड़े होकर गोरा को अभिवादन किया। गोरा बोला—'अरे आप आई हैं, ! आइये बैठिये।'

'आप आई हैं !' यह बात गोरा ने इस प्रकार कही जैसे सुचरिता का आगमन असाधारण हो।

एक दिन इसी सुचरिता को देखकर तथा उससे वार्तालाप करके, गोरा घर छोड़कर भाग गया था। जितने दिन वह देश के काम से घूमता रहा, उसने सुचरिता को अपने मन से बहुत कुछ अलग रखने का प्रयत्न किया। परन्तु उसकी स्मृति को वह किसी प्रकार हटा नहीं सका। एक दिन था, जब गोरा को यह ध्यान भी नहीं आता था कि भारतवर्ष में स्त्रियाँ भी रहती हैं। इतने दिन बाद सुचरिता को देखकर, उसके हृदय में स्त्रियों का अस्तित्व प्रतिष्ठित हो गया। जिस विषय का उसे ज्ञान भी न था, उसे हृदय में एकाएक इस प्रकार प्रतिष्ठित होते देखकर, वह एकबारगी जैसे काँप उठा।

जेल से बाहर आने पर, परेशबाबू को देखकर गोरा का हृदय आनन्द से भर गया था। वह आनन्द केवल परेशबाबू से भेंट होने के कारण ही न था। अपितु उस आनन्द के साथ गोरा की कई दिनों की संगिनी कल्पना ने भी अपनी कुछ माया मिला दी थी। स्टीमर से उतर कर घर आ जाने पर, उसने यह भली भाँति अनुभव कर लिया था कि परेशबाबू उसे केवल गुणों के कारण ही अपनी ओर आकर्षित नहीं कर रहे हैं।

५३

उस समय भावावेश में गोरा सुचरिता को एक व्यक्ति विशेष के रूप में न देखकर किसी भाव-विशेष के रूप में देख रहा था सुचरिता के रूप में सम्पूर्ण भारत की नारी जाति उसके सम्मुख जैसे मूर्तिरूप में प्रकट हुई थी। गोरा को जान पड़ा, जैसे

सौन्दर्य एवं प्रेम को—मधुर तथा पवित्र बनाने के लिए ही उसका आविर्भाव हुआ है। जो लक्ष्मी रूपी नारी भारत के शिशु को पाल कर बड़ा करती है रोगी की सेवा करती है, तुच्छ को अपने प्रेम के गौरव द्वारा प्रतिष्ठा देती है तथा जो दुःख तथा दुर्गति में भी दीनतर पुरुष का कभी त्याग नहीं करती, अवज्ञा नहीं करती है, जो पूजा-योग्य होकर भी अयोग्य पुरुष को अनन्य भाव से पूजा करती चली आ रही है, जिसके दोनों निपुण हाथ पुरुष-जाति के कार्यों में उत्सर्ग हो चुके हैं, जिसका स्थायी, सहनशील एवं क्षमापूर्ण-प्रेम, ईश्वर ने अक्षय-दान के रूप में पुरुष को प्रदान किया है, उसी लक्ष्मी के एक प्रकाश को अपनी माता के समीप प्रत्यक्ष बैठे देखकर, गोरा का हृदय गम्भीर आनन्द की अनुभूति से परिपूर्ण हो उठा।

इसलिये जब गोरा ने सुचरिता से कहा—'आप आई हैं !'—उस समय यह शब्द उसके मुख से केवल प्रचलित शिष्टाचार के रूप में नहीं निकले थे—इस अभिवादन के भीतर उसके जीवन का एक नवीन आनन्द तथा विस्मय भरा हुआ था।

गोरा के शरीर पर कारावास के चिन्ह स्पष्ट थे। पहिले की अपेक्षा अब वह रोगी की भाँति दुर्बल हो गया था। जेल के भोजन में अश्रद्धा एवं अरुचि होने के कारण उसने महीने भर तक एक प्रकार से उपवास-सा ही किया था। उसका शुभ्र उज्ज्वल वर्ण भी पहले की अपेक्षा कुछ मलिन हो गया था। केश कटकर बहुत छोटे रह जाने के कारण, उसका मुख वास्तविकता से अधिक दुर्बल दीख पड़ता था।

गोरा के शरीर की इस दुर्बलता ने सुचरिता के हृदय में एक विशेष वेदनापूर्ण सम्मान का भाव जाग्रत कर दिया। उसकी इच्छा हुई कि वह गोरा को प्रणाम करके, उसकी चरण-रज को अपने मस्तक पर लगाये। जिस प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा का धुँआ तथा काष्ठ दिखाई नहीं पड़ता, उसी की भाँति उसे गोरा दिखाई पड़ा। किसी करुणा मिश्रित भक्ति के आवेग से उसका हृदय काँपने लगा। तब उसके
बात नहीं निकल सकी।

आनंदमयी बोलीं—'गोरा, यदि मेरे कोई लड़की होती, उसका सुख कैसा होता, यह बात मुझे अब जान पड़ी है। जि दिन तू यहां नहीं रहा, उतने दिन सुचरिता ने मुझे जो सात्वना दी, मैं किस प्रकार कहूं ?' फिर सुचरिता की ओर लक्ष्य करके कहने लगीं 'बेटी, तुम शरमा रही हो ! परन्तु तुम्हीं ने मुझे दुःख के दिनों में पहुँचाया है, इसीलिये मैं यह बात तुम्हारे सामने कहे बिना किसी प्र नहीं रह सकती।' यह सुनकर गोरा ने गहरी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि सुचरिता के लज्जित मुख की ओर देखा। फिर आनंदमयी से बोला 'मा, तुम्हारे दुःख के समय, जो तुम्हारे दुःख का भाग लेने आई थीं अब तुम्हारे सुख के समय में भी तुम्हारा सुख बढ़ाने आई हैं। जिन हृदय महान् तथा उदार होता है, उनकी मैत्री इसी प्रकार अकारण होती है।'

सुचरिता का संकोच देखकर विनय बोला—'दीदी, चोर पकड़े जाने पर वह सब ओर से दण्ड पाता है। आज तुम जो इन सबक निकट पकड़ी गई हो, उसी का तुम्हें यह दण्ड मिल रहा है। अब भग कर कहां जाओगी ? मैं तुम्हें बहुत दिनों से पहिचानता हूं, परन्तु किसी के आगे कुछ प्रकट नहीं करता। मन में सब कुछ जानते हुए भी चुप्पी मारे बैठा रहता हूं, परन्तु अधिक समय तक कोई बात छिपी नहीं रहती है।'

आनंदमयी हँसकर बोलीं—'तुम चुप क्यों न रहोगे ? क्योंकि चुपचाप रहने वाले लड़के तुम्हीं तो हो न ?' फिर सुचरिता से कहा—'बेटी, जिस दिन से इसने तुम लोगों से मेरी जान-पहचान कराई है, उस दिन से निरन्तर तुम्हारे गुण-गाते रहने पर भी इसका जी कभी नहीं भरता।'

विनय बोला—'दीदी, सुन लो, मैं गुणग्राही हूं, अकृतज्ञ नहीं हूं, इसकी साक्षी और प्रमाण तुम्हारे सामने उपस्थित है।'

'उससे तो वे केवल अपने गुण का ही परिचय दे रहे हैं।' सुचरिता ने कहा।

'परन्तु आप मेरे निकट, मेरे गुण का कुछ परिचय नहीं पायेंगी'-विनय कह रहा था—'यदि आप मेरे गुण का परिचय चाहें, तो मेरी मा के पास आइए। आप आश्चर्यचकित रह जायेंगे। मैं जब उनके मुंह से अपने गुण सुनता हूँ तो स्वयं ही आश्चर्यचकित-सा रह जाता हूँ। हाँ, यदि मा मेरा जीवन-चरित्र लिखें, तो मैं अभी-अभी मरने के लिए तैयार बैठा हूँ।'

आनन्दमयी बोलीं—'सुन रही हो न—इस लड़के की बातें ?'

'विनय !'—गोरा ने कहा—'तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा नाम सार्थक ही रखा था।'

'जान पड़ता है, उन्होंने मुझसे किसी अन्य गुण की आशा नहीं की थी, इसीलिये वे मेरे *विनय गुण की दुहाई दे गये हैं। अन्यथा* उन्हें अवश्य हास्यास्पद होना पड़ता।'—विनय इतना कहकर मुस्करा दिया।

प्रथम वार्तालाप का संकोच इस प्रकार दूर हो गया।

चलते समय सुचरिता विनय से बोली—'क्या आप एक बार हमारे घर नहीं आयेंगे ?'

५४

विनय समझ गया था ललिता के साथ उसके विवाह-प्रसंग पर वार्तालाप करने के लिये ही सुचरिता उसे बुला गई है। इस प्रस्ताव के तय कर देने से ही मामला समाप्त नहीं हो पाया था। जब तक उसे चलना है, तब तक उससे छुटकारा भी मिल भी कैसे सकता था ?

जिस समय विनय सुचरिता के घर पहुँचा, उस समय हरिमोहिनी रसोई बना रही थी। विनय रसोई के द्वार पर यह दावा स्वीकार करा कर कि वह ब्राह्मण की सन्तान है, इसलिए आज मध्याह्न को वहीं भोजन करेगा, ऊपर चला गया।

सुचरिता उस समय सिलाई का कुछ काम कर रही थी। वह उसी प्रकार उँगलियाँ चलाते हुए, अपने काम पर दृष्टि रखती हुई बोली

—'देखिये, विनयबाबू ! जहां आन्तरिक बाधा नहीं है, वहां वाह्य प्रतिकूलताओं को ध्यान में रखकर चलने से काम चल सकेगा क्या ?'

जिस समय गोरा के साथ बहस हुई थी, उस समय विनय ने उसके विरोध में युक्तियां पेश की थीं, परन्तु अब जब उसी विषय पर सुचरिता के साथ उसकी वार्ता प्रारम्भ हुई तो उसने विपरीत पक्ष की युक्तियों का आश्रय लिया। उस स्थिति में कौन यह कह सकता था कि गोरा तथा विनय में कुछ भी मत भेद है।

वह बोला—'दीदी, तुम, लोग ब्राह्म प्रतिकूलताओं को तुच्छ नहीं मानते हो।'

'उसका कारण है विनयबाबू !'—'सुचरिता ने कहा—'हमारी बाधा ठीक बाहरी बाधा नहीं है। हमारा समाज तथा धर्म विश्व के ऊपर प्रतिष्ठित है, परन्तु जिस समाज में आप रहते हैं, उसमें केवल सामाजिक बन्धन ही हैं अतः ललिता को ब्राह्म-समाज छोड़ने से जो हानि होगी, उतनी हानि आपको नहीं होगी।'

यह सुनकर विनय इस बात को लेकर विवाद करने लगा कि धर्म व्यक्तिगत साधना की वस्तु है, उसे किसी समाज के साथ बांधना उचित नहीं है।'

इसी समय एक चिट्ठी तथा अंग्रेजी का अखबार लिये हुये सतीश ने प्रवेश किया। विनय को देखते ही वह प्रफुल्लित हो उठा। उसका मन किसी प्रकार से शुक्रवार को रविवार बना देने के लिये अधीर हो उठा। देखते-देखते विनय और सतीश की वार्तालाप-गोष्ठी जम गई। सुचारिता ललिता की चिट्ठी तथा साथ में भेजे गये अखबार को पढ़ने लगी।

उस ब्राह्म-समाजी अखबार में एक समाचार यह छपा था कि किसी ब्राह्म-परिवार की कुमारी के साथ, किसी हिन्दू-युवक का विवाह होने की जो आशंका उत्पन्न हुई थी, वह उस हिन्दू-युवक की असम्मति के कारण दूर हो गई है। इस बात को लेकर, समाचार में उस हिंदू युवक की धर्मनिष्ठा की तुलना करते हुए, उस ब्राह्म-परिवार की शोच

नीय दुर्बलता के संबन्ध में खेद प्रकट किया गया था।

सुचरिता ने मन-ही-मन कहा—'कुछ भी क्यों न हो, ललिता का विवाह विनय के साथ करना ही पड़ेगा।' परन्तु ऐसा होना वहम के द्वारा संभव न था। तभी सुचरिता ने एक चिट्ठी अपने घर आने के लिये ललिता को लिख दी। पत्र में उसने यह नहीं लिखा कि इस समय विनय यहाँ उपस्थित है।

कमरे में प्रवेश करते हुए, हरिमोहिनी ने विनय से कुछ जलपान करने के सम्बन्ध मे पूछताछ की। विनय के मना कर देने पर वे कमरे के भीतर आ बैठीं।

जितने दिनों तक हरिमोहिनी परेशबाबू के घर रहीं, तब तक विनय के ऊपर उनका विशेष स्नेह बना रहा, परन्तु जब से वे सुचरिता को लेकर, इस अलग मकान में गृहस्थी बाँधे बैठी हैं, तब से उन्हें विनय आदि का आना-जाना अरुचिकर हो उठा है। सुचरिता आजकल उनके कहे अनुसार आचार-विचार मान कर नहीं चलती थी, इसका दोष, वे इन्हीं लोगों पर डालती थीं। यद्यपि उन्हें यह मालूम था कि विनय ब्राह्म-समाजी नहीं है, फिर भी उन्हें इसका स्पष्ट अनुभव होता था कि उसके हृदय में हिन्दू-संस्कार के लिये भी कोई दृढ़ता नहीं है। यही कारण था कि अब वे पहले की भाँति इस ब्राह्मण-बालक को बुलाकर, अपने ठाकुर जी के प्रसाद का अपव्यय नहीं करती थीं।

आज वार्तालाप के सिलसिले में हरिमोहिनी ने विनय से पूछा-'भैया, तुम तो ब्राह्मण के लड़के हो, फिर सध्या पूजा आदि कुछ क्यों नहीं करते हो?'

विनय ने उत्तर दिया—'मौसी, मैं दिन-रात पाठ याद करने के फेर में पड़कर सन्ध्या-गायत्री आदि सब भूल गया हूँ।'

'पढ़े-लिखे तो परेशबाबू भी हैं न?' हरिमोहिनी ने कहा—'परन्तु वे तो अपने धर्म को मानकर, उनके अनुसार प्रातःसन्ध्या पूजा-उपासना अवश्य करते हैं।'

'वे जो करते हैं, उसे केवल मन्त्र रटकर नहीं किया जा सकता

कि फिर किसी समय आऊँगी, अब मैं अधिक देर नहीं ठहर सकूँगी।'

इतना कह, विनय की ओर देखे बिना ही, ललिता शीघ्रतापूर्व चली गई। उस समय हरिमोहिनी भी विनय के पास बैठे रहना अनावश्य जानकर घर के काम धन्धे के बहाने वहाँ से उठ गईं।

नहा-धोकर, सतीश को खिलाने-पिलाने तथा स्कूल भेजने के बा सुचरिता जब विनय के पास लौटी, उस समय वह चुपचाप बैठा हु था। सुचरिता ने पहले वाला प्रसंग नहीं छोड़ा। जब विनय भोजन क बैठा तो उसने कुल्ला नहीं किया। यह देखकर हरिमोहिनी बोलीं— 'भैया' हिन्दू आचार-विचार की कोई बात तो तुम मानते ही नहीं, फि तुम्हारे ब्राह्म हो जाने में ही क्या विघ्न है?'

विनय मन-ही-मन चोट खाकर बोला—'मैं जिस दिन हिन्दू ध को छुआछात तथा खान-पान मानने वाला एक निरर्थक धर्म जानू ग उस दिन ब्राह्म, ईसाई, मुसलमान में से कुछ भी हो जाऊँगा। पर हिन्दू-धर्म के ऊपर अभी तक मुझे उतनी अश्रद्धा नहीं हुई है।'

सुचरिता के घर से निकलते समय विनय का चित्त व्याकुल रहा था, जैसे वह चारों ओर से धक्के खाकर किसी आश्रय-हीन शून्य आ पड़ा हो।

'मैं ऐसे स्वाभाविक स्थान पर क्यों आ पहुँचा' यह सोचता हु वह नीचा सिर किये, सड़क पर धीरे-धीरे चलने लगा। हेदुआ ताल के समीप एक पेड़ देखकर, वह उसके नीचे बैठ गया। अब तक उस जीवन में जब भी समस्यायें आकर उपस्थित हुई थीं, उन पर उस अपने मित्र गोरा के साथ बहस करके अथवा आलोचना करके, उन समाधान कर लिया था। परन्तु आज वह मार्ग भी बन्द है। उसे अकेले ही सोचना होगा।

सूर्य ढलने पर छाया के स्थान पर धूप आ गई। तब विनय फि उठकर सड़क पर चलने लगा। कुछ दूर जाने पर उसे सुनाई पड़ा- 'विनयबाबू, ओ, विनयबाबू!' और तभी सतीश ने आकर उसका हा पकड़ लिया। उस दिन शुक्रवार था। सतीश अपनी पढ़ाई खतम कर

स्कूल से घर लौट रहा था।

सतीश बोला—'विनयबाबू आप मेरे साथ घर चलिये।'

'यह कैसे हो सकता है, सतीशबाबू ?' विनय ने कहा।

'क्यों, हो क्यों नहीं सकता ?'

'इतनी जल्दी-जल्दी तुम्हारे घर जाने से, लोग मुझे कैसे सह सकेंगे ?'

सतीश इस युक्ति का कोई उत्तर देने के अयोग्य समझता हुआ बोला—'नहीं चलिए न !'

सुचरिता के घर के लिये परेशबाबू के घर के सामने ही होकर जाना पड़ता था। परेशबाबू की नीचे की बैठक राह से ही दिखाई पड़ती थी। उस बैठक के सामने पहुँचते ही विनय से एक बार उसकी ओर देखे बिना न रहा गया। उसने देखा, मेज के सामने परेशबाबू बैठे थे। वे कुछ बातें कर रहे थे अथवा नहीं, यह नहीं ज्ञात हुआ। परेशबाबू की कुर्सी के पास ही, बेंत के एक छोटे से मूढ़े पर ललिता सड़क की ओर पीठ किये, एक छात्रा की भाँति चुपचाप बैठी हुई थी।

सुचरिता के घर से लौट आने के पश्चात् जो आन्तरिक क्षोभ ललिता के हृदय को अशान्त बनाये हुए था, संभवतः उसी को दूर करने के लिहाज से वह इस समय परेशबाबू के पास आकर बैठ गई थी। परेशबाबू के भीतर शान्ति का एक ऐसा आदर्श था कि कभी-कभी चंचल ललिता अपनी किसी असहिष्णुता को दबाने के लिये चुपचाप उनके कमरे में आ बैठती थी। ऐसी स्थिति में यदि किसी समय परेशबाबू पूछ बैठते—'क्या है बेटी ?' तो वह एक ही उत्तर देती—'बाबूजी, आपके इस कमरे में ठण्डक बहुत है।'

परेशबाबू यह स्पष्ट समझ रहे थे कि आज ललिता अपने चोट खाये हुए हृदय को लेकर, उनके पास आ बैठी है। उनके हृदय में भी एक दुख छिपा हुआ था। इसलिये उन्होंने एक ऐसी चर्चा छेड़ दी थी जो व्यक्तिगत जीवन के दुःख-सुख को एकदम हल्का कर देने

वाली थी।

पिता-पुत्री के इस एकान्त-आलोचना दृश्य को देखकर विनय के, पांव क्षणभर के लिये रुक गये। उस समय सतीश क्या कह रहा था, यह उसने सुना ही नहीं। सतीश ने उस समय उससे युद्ध-सम्बन्धी एक जटिल प्रश्न पूछा था। 'यदि बाघों के एक झुण्ड को पकड़ लिया जाय, तत्पश्चात् बहुत दिनों तक सिखाकर, अपनी सेना के अगले भाग में खड़ा —रके युद्ध किया जाय तो कैसा रहेगा'—यही उसका प्रश्न था। अब क दोनों मित्रों में वार्तालाप होता चला आ रहा था, परन्तु इस समय चानक ही विक्षेप आ जाने से आगे चल रहे सतीश ने मुड़कर विनय : मुँह की ओर देखा, फिर विनय की दृष्टि को देखे बिना ही, वह परेश- ाबू की बैठक की ओर नजर डालकर, ऊँचे स्वर से चिल्ला उठा-'दीदी ो दीदी! देखो, मैं विनयबाबू को रास्ते से पकड़कर लाया हूं।'

सतीश के इस शौर्य्य-प्रदर्शन के कारण विनय को लज्जा के मारे सीना आ गया। उधर क्षणभर में ही ललिता कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी ्ई। परेशबाबू ने गली की ओर मुँह घुमाकर देखा-सब मिलाकर एव ाजीब काण्ड हो गया।

तब विनय लाचार हो, सतीश को विदा करके परेशबाबू के घ ां घुसा। बैठक में पहुँच कर उसने देखा—ललिता चली गई है तथ ान्य लोग उसे शान्ति भङ्ग करने वाले चोर की भांति देख रहे हैं। वनय यह अनुमान करते ही सकुचित होकर एक कुर्सी पर बैठ गया

शारीरिक स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में साधारण शिष्टाचार वे ाश्चात्, विनय ने एक साथ बोलना आरम्भ कर दिया। उसने कहा— जब मैं हिन्दू-समाज के आचार-विचार को न मानकर, नित्य ही उनक ाल्लंघन करता हूं तो फिर उस स्थिति में ब्राह्म-समाज का आश्रय ग्रहण ार लेना ही मैंने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। मेरी इच्छा है कि ां ापके ही समीप दीक्षा ग्रहण करूँ।'

पन्द्रह मिनट पूर्व तक विनय के मन में यह इच्छा और विचा ा था। परेशबाबू क्षण-भर चुप रहने के बाद बोले—'सब बातों प

भली-भाँति विचार करके देख लिया न ?'

'इसमें अधिक सोचने की कोई बात नहीं है'—विनय ने कहा। 'केवल यही देखने की बात है कि मेरा यह कार्य उचित है अथवा अनुचित तो यह सीधी-सादी बात है। मैं जो करता आई हूँ, उसके कारण केवल आचार-विचार के उल्लंघन के भय से आगे आने वाले धर्म को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। यही कारण है जो मेरे व्यवहार में पग-पग पर असंगति दीख पड़ती है। जो लोग हिन्दू-धर्म को श्रद्धापूर्वक धारण किये हुए हैं, वहाँ मेरा व्यवहार आघात ही पहुँचाया करता है। मैं उनके साथ अन्याय कर रहा हूँ, यह मुझे भली-भाँति विदित है। अतः इस अन्याय को मुझे दूर कर ही देना चाहिए। अन्यथा मैं अपनी स्वयं की दृष्टि में भी सम्मान न पा सकूँगा।'

परेशबाबू को समझाने के लिए इतनी बातें कहने की आवश्यकता न थी। विनय ने यह बातें अपने मन को दृढ़ बनाने के लिए ही कहीं। 'वृहद् अन्याय एवं न्याय के युद्ध में पड़कर न्याय का ही अनुसरण करूँगा'—यह कहकर जैसे उसकी छाती फूल उठी। मानवता की मर्यादा की बढ़ती ही है।

परेशबाबू ने पूछा—'धर्म-विश्वास के सम्बन्ध में तुम्हारा मत ब्राह्म-समाज से तो मिलता है न ?'

विनय कुछ देर चुप रहकर बोला—'आपसे सत्य कहूँ ? पहिले मैं सोचता था कि मेरे अन्दर कोई धर्म-विश्वास है—इसी के लिए मैं लोगों से प्रायः वाद-विवाद भी किया करता था, परन्तु आज मैंने समझ लिया है कि धर्म-विश्वास मेरे जीवन में कभी परिणत नहीं हो सका। इतना सब भी मैं आपको देखकर समझ सका हूँ। मेरे जीवन में धर्म का कोई सत्य प्रयोजन नहीं रहा और न उसके प्रति मेरा कोई सत्य-विश्वास ही हो सका। इसीलिये अब मुझे—कौन-सा धर्म सत्य है ? यह सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।'

परेशबाबू के साथ वार्तालाप करते हुए, विनय अपनी उस समय की अवस्था के अनुरूप युक्तियों को उपस्थित करने लगा। वह इस प्रकार

उत्साह से बोल रहा था, जैसे बड़े समय के तर्क-वितर्क के पश्चात्, वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा हो।

तो भी परेशबाबू ने उसे इस विषय पर कुछ दिनों तक और विचार करने के लिए विशेष जोर दिया, उसने परन्तु अब वह अपने निश्चय से डिगना नहीं चाहता है—यह बात उसने परेशबाबू से बार-बार दुहरा कर कही। ललिता के विवाह के संबन्ध में किसी ओर से कोई बात नहीं हुई।

इसी समय वरदासुन्दरी किसी काम से, उस कमरे में आईं। उन्होंने अपना भाव ऐसा बना रक्खा था, जैसे उन्हें विनय के वहाँ उपस्थित रहने की कोई कल्पना भी नहीं है। अपना काम समाप्त करके वे जाने को उद्यत हो उठीं।

विनय ने सोचा था—'परेशबाबू वरदासुन्दरी से उसके मत परिवर्तन की बात कहेंगे, परन्तु वे कुछ भी नहीं बोले। उनकी धारणा थी कि अभी यह समाचार किसी को सुनाने का समय नहीं आया है। वे बात को अभी छिपाये ही रखना चाहते थे, परन्तु जिस समय वरदासुन्दरी विनय के प्रति अवज्ञा प्रकट करती हुईं, जाने को उद्यत हुईं, तब विनय से चुप न रहा गया। उसने वरदासुन्दरी के पैरों पर मस्तक रख कर प्रणाम करते हुए कहा—'आज मैं आपके पास ब्राह्म-समाज की दीक्षा लेने का प्रस्ताव लेकर आया हूँ। मैं अयोग्य हूँ, परन्तु मुझे विश्वास है कि आप लोग मुझे योग्य बना लेंगे।'

वरदासुन्दरी घूमकर खड़ी हो गईं, फिर चुपचाप उसके पास आ बैठीं तथा परेशबाबू की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगीं।

परेशबाबू बोले—'विनयबाबू दीक्षा लेने का आग्रह कर रहे हैं।'

यह सुनते ही वरदासुन्दरी को जैसे अपनी विजय के लाभ का गर्व हुआ, परन्तु उन्हें पूर्ण आनन्द नहीं मिला। शायद इसीलिए कि वे अब की बार परेशबाबू को यह भली-भांति समझा देना चाहती थीं कि उनकी लापरवाही के कारण ही यह सब घटना घटी, अतः अब उन्हें भविष्य के लिए सचेत हो जाना चाहिये। उन्होंने अपने मुख का भाव

र बनाते हुए कहा—'यदि यह प्रस्ताव कुछ दिन और पहिले आ तो हम लोगों को इतना दुःख तथा अपमान नहीं सहना पड़ता।'

परेशबाबू बोले—'इस समय हम लोगों के दुःख अथवा अपमान त नहीं हो रही है। विनयबाबू दीक्षा लेना चाहते हैं'।

वरदासुन्दरी ने पूछा—'केवल दीक्षा ?'

विनय बोला—'ईश्वर ही जानते हैं कि आप लोगों का सारा तथा अपमान मेरा ही है।'

'देखो विनय !' परेशबाबू ने कहा—'तुम धर्म की दीक्षा लेना हो, इस विषय को आवान्तर न करो। हम लोगों के किसी जिक संकट में पड़ने की कल्पना करके, तुम इस गुरुतर कार्य में न होना।'

वरदासुन्दरी बोल उठीं—'यह तो ठीक है, परन्तु हम सब लोगों ाल में डालने के बाद, इनका चुप बैठे रहना भी तो उचित है।'

'चुप बैठे न रहकर, चचल हो जाने से जाल में उलझकर और धिक मजबूत गाँठ पड़ जाती है। कुछ-न-कुछ कर बैठने को ही य नहीं कहा जा सकता। कोई समय ऐसा भी होता है, जब कुछ न ही सबसे बड़ा कर्त्तव्य माना जाता है।' परेशबाबू ने गम्भीर कहा।

'यही सही !' वरदासुन्दरी बोलीं—'मैं ठहरी मूर्ख स्त्री, सब बातें तरह नहीं समझ सकता। अब क्या निश्चय हुआ, यह जानकर मैं चाहती हूँ। मुझे बहुत से काम करने हैं।'

विनय बोला—'मैं परसों, रविवार को ही दीक्षा ले लूँगा। ा हूँ कि परेशबाबू ...'

परेशबाबू ने बीच में टोका 'मेरा परिवार जिस दीक्षा से किसी ही आशा करे, वह मैं नहीं दे सकूँगा, इसके लिए तुम्हें ब्राह्म-समाज यंना पत्र देना होगा।'

विनय का मन खिन्न हो उठा। ब्राह्म-समाज में नियमानुसा

दीक्षा के लिए प्रार्थना-पत्र देना विनय के वश की बात नहीं थी। तथा उसके सम्बन्ध में ब्राह्म-समाज में इतनी चर्चायें चल चुकी अब किस मुँह से वह प्रार्थना-पत्र लिखता। जब उसका वह पत्र पत्रिका में प्रकाशित होगा, जब उसे गोरा तथा आनन्दमयी पढ़ें वह चार आदमियों के सामने मुँह उठाकर किस प्रकार चल सकेगा यद्यपि उस पत्र में केवल इतनी ही बात होगी कि उसका मन ए दीक्षा लेने को तैयार हो गया है, परन्तु बात केवल इतनी ही तो थी। विनय को चुप्पी साधे देखकर वरदासुन्दरी को भय हुआ। वे 'यह तो ब्राह्म-समाज के किसी कार्यकर्त्ता को जानते नहीं-मैं ही सब प्रबन्ध कर दूँगी। मैं कभी हारानबाबू को बुलाये लेती हूँ समय भी तो अधिक नहीं रहा—रविवार परसों ही तो है।'

इस समय सुधीर ऊपर जाता हुआ दिखाई दिया। वरदा उसे पास बुलाकर बोलीं—'परसों विनयबाबू हमारे समाज में दीक्षा

सुधीर अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। वह मन-ही-मन विनय श्रद्धा रखता था। विनय जितनी बढ़िया अँग्रेजी लिख सक जितना विद्वान् तथा बुद्धिमान था उसे देखते हुए सुधीर को उसका समाजी न होना असंगत लगता था। विनय जैसे व्यक्ति ब्राह्म-स बाहर नहीं रह सकते, इसका प्रमाण पाकर उसकी छाती गर्व उठी। बोला—'क्या परसों तक इसकी तैयारी हो सकेगी? व पास तो समाचार भी नहीं पहुँच सकेगा।'

सुधीर चाहता था कि विनय दीक्षा को एक आदर्श की सर्वसाधारण के सम्मुख खूब धूम-धाम से उपस्थित किया जाना च

वरदासुन्दरी बोलीं—'हाँ, इसी रविवार को ही हो। तु कर हारानबाबू को बुला लाओ।'

सुधीर जिस विनय के दृष्टान्त द्वारा ब्राह्म-समाज की अजेय के प्रदर्शन करने की बात सोच रहा था, उसी का चित्त उस समय संकुचित हो रहा था।

हारानबाबू का नाम सुनते ही विनय उठ खड़ा हुआ।

सुन्दरी बोलीं—'थोड़ी देर और बैठ जाओ। हारानबाबू अभी आये जाते हैं—विलम्ब न लगेगा।'

'नहीं, मुझे क्षमा करें!' विनय बोला। इस समय वह उस घेरे से दूर निकलकर सब बातों पर भली-भांति विचार करने का अवसर पाना चाहता था।

विनय के उठते ही परेशबाबू ने उसमें कन्धे पर अपना दाहिना हाथ रखते हुए कहा—'विनय, शीघ्रता मत करो। शान्त एवं स्थिर-चित्त होकर, एक बार सब बातों पर सोच-विचार करलो। मन को भली-भांति समझे बिना, जीवन के इतने बड़े कार्य में एक साथ प्रवृत्त हो जाना उचित नहीं है। ऐसा कभी मत करना।'

मन-ही-मन अपने पति पर अत्यन्त असंतुष्ट होकर वरदासुन्दरी ने कहा—'आरम्भ में कोई सोच-विचार कर काम नहीं करता, अनर्थ कर बैठता है, उसके पश्चात् जब एकदम सांस रुकने लगती है, तब वह कहता है, बैठकर सोचो। तुम लोग स्थिर होकर सोच सकते हो, लेकिन हम लोगों के तो प्राण निकल रहे हैं।'

सुधीर भी विनय के साथ ही चल पड़ा। सुधीर का मन चंचल हो उठा। उसकी यह इच्छा हुई कि विनय को इसी समय मित्र-मण्डली में ले जाकर, उनके साथ आनन्दोत्सव मनाये। सुधीर ने विनय से प्रस्ताव किया—'विनयबाबू आइये न, हम दोनों ही पानूबाबू के पास चलें। तब विनय सुधीर की बात पर ध्यान न देकर अपना हाथ छुड़ाकर चला गया।

विनय ने कुछ दूर जाते ही देखा कि अविनाश दो-एक आदमियों के साथ तेजी से कहीं जा रहा है। अविनाश ने विनय को देखते ही रुक कर कहा—'यही तो विनयबाबू हैं, चलिए विनयबाबू, हम लोगों के साथ!'

विनय ने पूछा,—'कहां जा रहे हो?'

अविनाश ने कहा—'काशीपुर का बगीचा ठीक करने हैं। आज वहीं गोरमोहनबाबू के प्रायश्चित की सभा होगी।'

विनय—'परन्तु इस समय मुझे जाने का अवकाश नहीं है।'

अविनाश ने कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या आप यह नहीं समझते कि यह कितना बड़ा काम हो रहा है ? आजकल के समय में हिन्दू-समाज को अपनी शक्ति प्रकट करनी पड़ेगी । गौरमोहनबाबू के इस प्रायश्चित से लोगों के हृदय में क्या कम आन्दोलन होगा ? हम लोग देश-विदेश से ब्राह्मण-पण्डितों को निमन्त्रण देकर बुलायेंगे । तब लोग समझ सकेंगे कि हिन्दू-समाज मर नहीं सकता, हम लोग अब भी जीवित हैं।'

विनय अविनाश से बचकर चला गया।

५५

हारानबाबू ने वरदासुन्दरी से जब सभी बातें सुनीं, तब वह थोड़ी देर तक गंभीर भाव से बैठे रहे। फिर बोले—'इस विनय में ललिता के साथ आलोचना करके विचार करना उचित है।'

ललिता के आने पर हारानबाबू ने और भी अधिक गंभीर होकर कहा—'ललिता ! तुम्हारे जीवन में यह एक अत्यन्त दायित्व का समय आ गया है। एक ओर तुम्हारा धर्म है और दूसरी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति—इन दोनों में से तुम्हें अपना मार्ग चुनना पड़ेगा।'

हारानबाबू यह कहकर चुप हो गये और ललिता के मुँह की ओर टकटकी बांधकर देखने लगे।

ललिता भी हारानबाबू की बात का उत्तर न देकर, चुपचाप बैठी रह गयी।

हारानबाबू ने कहा—'तुमने शायद सुना है, तुम्हारी अवस्था देखकर अथवा अन्य कारण से, विनयबाबू अन्त में हमारे समाज में दीक्षा लेने को तैयार हो गये हैं।'

ललिता ने यह समाचार पहले नहीं सुना था। यह सुनकर उसके मन में जो भाव उत्पन्न हुए, उन्हें भी उसने प्रकट नहीं किया। वह पत्थर की मूर्ति की भांति स्थिर बैठी रही है।

हारानबाबू ने कहा—'परेशबाबू विनय की इस बाध्यता से बहुत खुश हुए हैं। परन्तु वास्तव में इसमें प्रसन्नता की कोई बात है या नहीं, यह तुम्हें ही निश्चय करना पड़ेगा। इसलिए आज मैं तुम से ब्राह्म-समाज के नाम पर अनुरोध कर रहा हूँ कि तुम अपनी प्रवृत्ति को दूर रखकर केवल धर्म की ओर दृष्टि रखकर अपने हृदय से पूछो कि इसमें प्रसन्न होने का वास्तविक कारण क्या है!'

ललिता को अब भी चुप देखकर हारानबाबू समझे कि उनकी बातों का उस पर खूब असर पड़ रहा है। वे फिर दूने उत्साह से बोले-'दीक्षा! दीक्षा जीवन की कितनी पवित्र वस्तु है, क्या यह बात आज मुझे बतानी पड़ेगी? उसी दीक्षा को कलुषित करना होगा? आसक्ति-सुख और सुविधा के आकर्षण से, हम असत्य को ब्राह्म-समाज में प्रवेश करने देंगे? कपट का आदर करके उसे आह्वान करेंगे? ललिता! बताओ, तुम्हारे जीवन के साथ ब्राह्म-समाज की दुर्गति का इतिहास क्या हमेशा के लिए जकड़ा रह जायगा?'

ललिता अब भी चुप रही। वह कुर्सी की बाँहों पर अपने हाथ रखे हुए, शान्त ही बैठी रही। हारानबाबू ने कहा—'मनुष्य की दुर्बलता, आसक्ति के छिद्र द्वारा उस पर किस प्रचण्ड वेग से आक्रमण करती है, यह मैं कई बार देख चुका हूँ और मैं यह जानता हूँ कि मनुष्य की दुर्बलता को किस प्रकार क्षमा किया जाता है। किन्तु जो दुर्बलता अपने ही नहीं, सैकड़ों-हजारों मनुष्यों के जीवन-आधार पर आक्रमण करती है, ललिता! तुम्हीं बताओ, क्या उसको एक क्षण के लिए भी सहन किया जा सकता है? क्या ईश्वर ने उसको क्षमा करने का अधिकार हम लोगों को दिया है?'

ललिता कुर्सी से उठती हुई बोली—'नहीं-नहीं पानूबाबू! आप क्षमा मत कीजियेगा। आपकी क्षमा शायद सबके लिए बिल्कुल ही असह्य होगी, क्योंकि आपका आक्रमण ही संसार भर के लो अभ्यास हो गया है।'

यह कहकर ललिता वहाँ से चली गयी।

हारानबाबू की बात से वरदासुन्दरी उद्विग्न हो उठीं। वे अब विनय को किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहती थीं। उन्होंने बेकार में ही हारानबाबू से अनुनय-विनय करके, अन्त में क्रुद्ध होकर उनको विदा कर दिया। उनको कठिनाई यह पड़ी कि वे परेशबाबू को भी अपने पक्ष में न पा सकीं और न हारानबाबू को ही।

विनय जब तक दीक्षा ग्रहण करने के व्यापार को हल्के तौर से देखता रहा तब तक वह बड़ी दृढ़ता के साथ अपना संकट प्रकट करता रहा। किन्तु यह देखकर कि इसके लिये ब्राह्म-समाज में आवेदन-पत्र भेजना होगा और हारानबाबू के साथ इसके लिये परामर्श करना पड़ेगा, तब इस खुली प्रकटता की विभीषिका ने उसको एकदम कुण्ठित कर दिया। वह कुछ भी न समझ सका कि किसके साथ वह परामर्श करे? घूमने फिरने की शक्ति भी उसमें न रही। यहाँ तक कि आनन्दमयी के मकान तक जाना भी उसके लिये भार हो गया। इसलिए वह अपने निजी मकान में जाकर ऊपर वाले कमरे में लेट गया।

शाम को अँधेरे कमरे में नौकर को बत्ती लेकर आते देख, वह उसे मना करने का विचार कर ही रहा था कि उस समय नीचे से आवाज सुनी—'विनयबाबू! विनयबाबू!'

यह आवाज सुनकर विनय की निर्जीवता दूर हो गई। क्या है, भाई सतीश?' कहकर वह बिछौने से उछल पड़ा, फिर नंगे पैर ही तेजी के साथ सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

नीचे पहुँचकर उसने देखा, वरदासुन्दरी सामने ही सतीश को साथ लिये खड़ी हैं। फिर वही समस्या और फिर वही लड़ाई। यह सोचकर विनय सतीश और वरदासुन्दरी को ऊपर के कमरे में ले गया। वरदासुन्दरी ने सतीश से कहा—'सतीश? तुम उस बरामदे में थोड़ी देर तक बैठो।'

विनय ने सतीश को समय काटने के लिये, कुछ चित्रों की पुस्तकें देकर पास वाले कमरे में बत्ती जलाकर बैठा दिया।

वरदासुन्दरी ने कहा—'विनय! तुम तो ब्राह्म-समाज के किसी

व्यक्ति को नहीं जानते, मुझे एक पत्र लिखकर दे दो, मैं कल सवेरे स्वयं ही सम्पादकजी को देकर सब प्रबन्ध कर दूँगी, जिससे रविवार को तुम्हारी दीक्षा हो जाये।' यह सुनकर विनय कुछ न कह सका। उसने एक पत्र लिखकर वरदासुन्दरी के हाथ में दे दिया।

तब ललिता के साथ विवाह होने की कुछ चर्चा भी वरदासुन्दरी ने छेड़ दी।

वरदासुन्दरी के चले जाने पर विनय के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा। यहाँ तक कि ललिता की स्मृति भी उसके मन में कुछ खटकने लगी। वह सोचने लगा कि वरदासुन्दरी की इस घबराहट के साथ कहीं ललिता का भी हाथ तो नहीं है। उसके मन में सबके प्रति श्रद्धा कम होने लगी।

घर लौट कर वरदासुन्दरी ने सोचा कि आज मैं ललिता को प्रसन्न कर दूँगी। उसे निश्चय हो गया था कि ललिता विनय को प्यार करती है, इसलिये जब उन दोनों के विवाह के बारे में समाज में गड़बड़ी मची हुई थी, तब उन दोनों ने अपने सिवा और सभी को अपराधी मान लिया था। इधर कुछ दिनों से ललिता के साथ उनकी बातचीत बन्द थी। इसीलिए आज जब इसका निपटारा हो गया और यह काम भी उनके द्वारा ही हुआ, इस गौरव को ललिता के सम्मुख प्रकट करके उसके साथ बात-चीत करने के लिए वे व्याकुल हो उठीं। ललिता के पिता सब काम बिगाड़ ही चुके थे। स्वयं ललिता भी सफलता प्राप्त न कर सकी। पानूबाबू किसी तरह की सहायता न कर सके। अकेली वरदासुन्दरी ने सब काम ठीक कर लिया है। हाँ, हाँ! पाँच पुरुष जिस काम को नहीं कर सके, एक स्त्री उसमें सफलता प्राप्त कर सकी है।

घर आकर वरदासुन्दरी ने सुना, ललिता आज सवेरे-सवेरे ही सोने चली गई है, उसकी तबियत ठीक नहीं है। उन्होंने मन ही मन प्रसन्न होते हुए कहा—'आज मैं उसकी तबियत ठीक किए देती हूँ।'

जब वे बत्ती लेकर उसकी अँधेरी कोठरी में पहुँची तो

हारानबाबू की बात से वरदासुन्दरी उद्विग्न हो उठीं। वे अब विनय को किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहती थीं। उन्होंने बेकार में ही हारानबाबू से अनुनय-विनय करके, अन्त में क्रुद्ध होकर उनको विदा कर दिया। उनको कठिनाई यह पड़ी कि वे परेशबाबू को भी अपने पक्ष में न पा सकीं और न हारानबाबू को ही।

विनय जब तक दीक्षा ग्रहण करने के व्यापार को हल्के तौर से देखता रहा तब तक वह बड़ी दृढ़ता के साथ अपना संकट प्रकट करता रहा। किन्तु यह देखकर कि इसके लिये ब्राह्म-समाज में आवेदन-पत्र भेजना होगा और हारानबाबू के साथ इसके लिये परामर्श करना पड़ेगा, तब इस खुली प्रकटता की विभीषिका ने उसको एकदम कुण्ठित कर दिया। वह कुछ भी न समझ सका कि किसके साथ वह परामर्श करे? घूमने फिरने की शक्ति भी उसमें न रही। यहाँ तक कि आनन्दमयी के मकान तक जाना भी उसके लिये भार हो गया। इसलिए वह अपने निजी मकान में जाकर ऊपर वाले कमरे में लेट गया।

शाम को अँधेरे कमरे में नौकर को बत्ती लेकर आते देख, वह उसे मना करने का विचार कर ही रहा था कि उस समय नीचे से आवाज सुनी—'विनयबाबू! विनयबाबू!'

यह आवाज सुनकर विनय की निर्जीवता दूर हो गई। क्या है, भाई सतीश?' कहकर वह बिछौने से उछल पड़ा, फिर नंगे पैर ही तेजी के साथ सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

नीचे पहुँचकर उसने देखा, वरदासुन्दरी सामने ही सतीश को साथ लिये खड़ी हैं। फिर वही समस्या और फिर वही लड़ाई। यह सोचकर विनय सतीश और वरदासुन्दरी को ऊपर के कमरे में ले गया। वरदासुन्दरी ने सतीश से कहा—'सतीश? तुम उस बरामदे में थोड़ी देर तक बैठो।'

विनय ने सतीश को समय काटने के लिये, कुछ चित्रों की पुस्तकें देकर पास वाले कमरे में बत्ती जलाकर बैठा दिया।

वरदासुन्दरी ने कहा—'विनय! तुम तो ब्राह्म-समाज के किसी

व्यक्ति को नहीं जानते, मुझे एक पत्र लिखकर दे दो, मैं कल सवेरे स्वयं ही सम्पादकजी को देकर सब प्रबन्ध कर दूँगी, जिससे रविवार को तुम्हारी दीक्षा हो जाये।' यह सुनकर विनय कुछ न कह सका। उसने एक पत्र लिखकर वरदासुन्दरी के हाथ में दे दिया।

तब ललिता के साथ विवाह होने की कुछ चर्चा भी वरदासुन्दरी ने छेड़ दी।

वरदासुन्दरी के चले जाने पर विनय के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा। यहाँ तक कि ललिता की स्मृति भी उसके मन में कुछ खटकने लगी। वह सोचने लगा कि वरदासुन्दरी की इस घबराहट के साथ कहीं ललिता का भी हाथ तो नहीं है। उसके मन में सबके प्रति श्रद्धा कम होने लगी।

घर लौट कर वरदासुन्दरी ने सोचा कि आज मैं ललिता को प्रसन्न कर दूँगी। उसे निश्चय हो गया था कि ललिता विनय को प्यार करती है, इसलिये जब उन दोनों के विवाह के बारे में समाज में गड़बड़ी मची हुई थी, तब उन दोनों ने अपने सिवा और सभी को अपराधी मान लिया था। इधर कुछ दिनों से ललिता के साथ उनकी बातचीत बन्द थी। इसीलिए आज जब इसका निपटारा हो गया और यह काम भी उनके द्वारा ही हुआ, इस गौरव को ललिता के सम्मुख प्रकट करके उसके साथ बात-चीत करने के लिए वे व्याकुल हो उठीं। ललिता के पिता सब काम बिगाड़ ही चुके थे। स्वयं ललिता भी सफलता प्राप्त न कर सकी। पानूबाबू किसी तरह की सहायता न कर सके। अकेली वरदासुन्दरी ने सब काम ठीक कर लिया है। हाँ, हाँ! पाँच पुरुष जिस काम को नहीं कर सके, एक स्त्री उसमें सफलता प्राप्त कर सकी है।

घर आकर वरदासुन्दरी ने सुना, ललिता आज सवेरे-सवेरे ही सोने चली गई है, उसकी तबियत ठीक नहीं है। उन्होंने मन ही मन प्रसन्न होते हुए कहा—'आज मैं उसकी तबियत ठीक किए देती हूँ।'

जब वे बत्ती लेकर उसकी अँधेरी कोठरी में पहुँची तो देखा कि

ललिता अभी आराम कुर्सी पर ही पड़ी हुई है। बिछौने पर सोई नहीं है।

ललिता उन्हें देखकर उसी क्षण उठकर बैठ गई, उसने पूछा— 'मा ! तुम कहां गई थीं ?'

ललिता को खबर मिल चुकी थी, वे सतीश को लेकर विनय घर गयी थीं।

वरदासुन्दरी ने कहा—'मैं विनय के यहां गई थी।'

'क्यों ?'

'क्यों ?' वरदासुन्दरी ने मन ही मन क्रोध किया। उन्हें सोचा—'ललिता समझती है कि मैं केवल शत्रु ही हूं। अकृतज्ञ !'

वरदासुन्दरी ने कहा—'यह देखो, क्यों ?' यह कह कर उन्हें विनय के लिखे हुए पत्र को ललिता की आंखों के सम्मुख खोलकर र दिया, उस पत्र को पढ़कर ललिता का मुंह लाल हो गया। वरदासुन्द ने अपनी सफलता की प्रसंशा करते हुए कहा—'इस पत्र को विनय हाथ से लाना कोई आसान काम न था। मैं विश्वास के साथ कह सक हूं कि इतने काम का साहस और किसी में नहीं था।'

ललिता अपने दोनों हाथों से मुंह ढंककर आराम कुर्सी पर गई। वरदासुन्दरी यह सोचकर कि ललिता उनके सामने लज्जा अनु कर रही है कमरे से बाहर चली गयीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल, जब वे उस पत्र को लेकर ब्राह्म-सम में जाने का विचार करने लगीं, तब उन्होंने देखा किसी ने उस पत्र फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया है।

५६

तीसरे पहर सुचरिता जब परेशबाबू के पास जाने को तैयार थ उसी समय नौकर ने आकर समाचार दिया—'एक बाबू आये हैं !'

सुचरिता ने पूछा—'कौन ? विनयबाबू हैं ?'

'नहीं, खूब गोरे और लम्बे कद वाले हैं ?'

सुचरिता यह सुनते ही चौंक पड़ी। बोली—'उन्हें ऊपर कमरे में ले जाकर बैठाओ !'

आज सुचरिता क्या कपड़ा पहिने थी, यह उसे जैसे ध्यान ही नहीं था। दर्पण के सामने खड़ी होकर, जब उसने अपने पहनावे को देखा तो वह उसे किसी भी तरह पसन्द नहीं आया। परन्तु अब इतना समय नहीं था जो कपड़े बदले जा सकें। उसने काँपते हुए हाथों से अपने बालों को सँवारा, तत्पश्चात् वस्त्रों को ठीक करते हुए वह कमरे में घुसी। उसकी मेज पर गोरा की लिखी पुस्तकें पड़ी थीं और गोरा ठीक उसी मेज के पास वाली कुर्सी पर बैठा हुआ था। अब उन पुस्तकों को हटाने या ढँक देने का अवसर भी तो नहीं था।

'मौसी बहुत दिनों से आपसे भेंट करने को व्याकुल हैं, मैं उन्हें अभी खबर दे आती हूँ !'—यह कहकर वह शीघ्र ही कमरे से बाहर निकल गई। एकान्त में गोरा के साथ बातचीत करने का साहस सुचरिता में न था।

कुछ देर बाद हरिमोहिनी को साथ लेकर सुचरिता लौट आई। पिछले दिनों से सुचरिता के मुख से गोरा की मत-निष्ठा एवं विश्वास को सुनकर, उन्हें उसके प्रति सहानुभूति हो चली थी। पहिले वे विनय की ओर आकर्षित हुई थीं, परन्तु उसके आचार-विचार की न्यूनता उन्हें सहन न हुई। इधर गोरा की अपने मत में दृढ़ता सुन सुनाकर, वे उसे देखने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगी थीं।

गोरा को देखते ही हरिमोहिनी आश्चर्य में पड़ गईं। उसका गोरा शरीर मानो हवन की अग्नि अथवा महादेव के समान देदीप्यमान था। वे गोरा को प्रणाम करती हुई बोलीं—'बेटा ! तुम्हारे विषय में मैंने बहुत कुछ सुना। तुम वास्तव में गौरमोहन हो ! तुम्हें किस दुष्ट ने कारावास की सजा दी, मैं यही विचार कर रही हूँ।'

गोरा हँसता हुआ बोला—'यदि आप मजिस्ट्रेट होतीं तो कारागार चूहे और चिमगादड़ों का घर बना रहता।'

हरिमोहिनी ने कहा—'नहीं बेटा ! संसार में चोर, बदमाशों का अभाव नहीं। परन्तु मजिस्ट्रेट शायद अन्धा था जो तुम्हें देखकर भी नहीं

पहिचान सका।'

'मनुष्य का मुँह देखने से भगवान् का स्वरूप दिखाई देता है'—गोरा ने उत्तर दिया—'इसीलिये मजिस्ट्रेट लोग किताबों पर ही अपनी दृष्टि रखते हैं।'

हरिमोहिनी आश्वस्त होकर बोलीं—'राधारानी के मुँह से तुम्हारी पुस्तकें पढ़वा कर सुनती हूं। कभी तुम्हारे मुख से भी कुछ अच्छी बातें सुन सकूंगी, इसी आशा में अब तक बैठी थी। मुझे पक्का विश्वास है कि तुमसे मुझे कुछ ज्ञान-शिक्षा प्राप्त हो सकेगी।'

गोरा चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा।

हरिमोहिनी फिर बोलीं—'बेटा! तुम्हारे जैसे तेजस्वी ब्राह्मण पुत्र को मैंने कभी कुछ खिलाया-पिलाया नहीं है, पर आज मुँह मीठा किये बिना तुम्हें न जाने दूंगी। फिर किसी दिन भोजन करने का निमन्त्रण भी आज ही दिये दे रही हूं।'

इतना कह हरिमोहिनी कुछ खाने की व्यवस्था करने चली गईं। सुचरिता का हृदय तब धड़क रहा था।

तभी गोरा एकाएक बोल उठा—'आपके यहां आज विनय आया था?'

'हां!' सुचरिता ने उत्तर दिया।'

'यद्यपि उसके बाद विनय से मेरी भेंट नहीं हुई, परन्तु मैं जानता हूं कि वह यहां किसलिए आया था?'

सुचरिता चुप रही।

वह बोला—'आप लोग ब्राह्म-मत के अनुसार विनय के विवाह की चेष्टा कर रही हैं, क्या यह अच्छी बात है?'

इस व्यंग से सुचरिता के हृदय का संकोच दूर हो गया। वह गोरा की ओर आंखें उठा कर बोली—'क्या आप मुझसे यह आशा करते हैं कि मैं ब्राह्म-मत के अनुसार विवाह होने को अच्छा न समझूंगी।'

गोरा ने कहा—'मैं आप से किसी छोटे काम की आशा नहीं

करता। मैं जानता हूँ और आप भी अपने मन में यह भली-भाँति अनुभव करती होंगी कि आप संकुचित दल विशेष की नहीं हैं।'

सुचरिता अपनी सारी शक्ति को जाग्रत कर, तर्क के भाव से बोली—'क्या आप भी ऐसे ही हैं ?'

गोरा ने कहा—'मैं हिन्दू हूँ ! हिन्दू कोई दल नहीं, वह तो एक जाति है। उसे किसी संज्ञा द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। उसका विस्तार समुद्र की भाँति व्यापक है।'

'हिन्दू कोई दल नहीं है तो वह दलबन्दी क्यों करता है ?' सुचरिता ने पूछा।

'मनुष्य को जब कोई आघात पहुँचता है तो वह स्वयं को बचाने की चेष्टा करता है। केवल पत्थर ही आघातों को सहता हुआ चुपचाप पड़ा रहता है।'

'मैं जिसे धर्म समझती हूँ, उसे हिन्दू अपने ऊपर आघात समझें तो उस उस स्थिति में आप मुझे क्या करने को कहेंगे ?'

'मैं यही कहूँगा कि आप जिसे धर्म समझ रही है वह हिन्दू-जाति की विराट सत्ता पर एक करारा आघात है। उस समय आपको स्वयं यह देखना होगा कि आप केवल अभ्यास के कारण ही तो ऐसा नहीं कर रही हैं। क्या आप अपने दल का शासन ही सबके ऊपर लादना चाहती हैं ? क्या आप यह समझती हैं कि केवल ब्राह्म-समाज के खाते में अपना नाम दर्ज कराने के लिए ही सब लोगों ने संसार में जन्म लिया है। यदि ऐसी ही बात है तो उन जातियों में जो संसार में केवल दासता ही फैलाना चाहती हैं तथा आप में, फिर अन्तर ही क्या रहा ?'

क्षणभर के लिए सुचरिता अपने तर्क को भूल गई। गोरा गम्भीर कण्ठ-स्वर सुनकर उसे केवल यही भासित होने लगा, जैसे वह सब कुछ सत्य ही कह रहा है।

गोरा फिर बोला—'भारत के चालीस करोड़ लोगों को केवल आपके समाज ने ही पैदा नहीं किया है। आप बलपूर्वक सबके ऊपर

अपने विचार लाद कर, जो सम्पूर्ण भारत को एक-सा समतल कर देना चाहती हैं, यह कैसे चल सकता है ? अपनी बुद्धि एवं अपने दल के अहङ्कार के कारण आप वास्तविकता को समझने की चेष्टा क्यों नहीं करतीं ?'

सुचरिता को फिर मौन देखकर गोरा के हृदय में उसके प्रति करुणा का संचार हो आया। कुछ रुककर वह फिर बोला—'सम्भवतः आपको मेरी बातें बुरी लगी हों। परन्तु सच मानिये, यदि मैं आपको किसी एक पक्ष का समझता तो ऐसी कोई बात कभी नहीं कहता। आपके हृदय को उदार-शक्ति एक दल विशेष के कारण संकुचित होती जा रही है, मुझे तो यही देखकर कष्ट होता है।'

सुचरिता का मुँह लज्जा से लाल हो गया। बोली—'नहीं आप मेरे संबन्ध में चिन्ता न कीजिये। आप अपनी बात कहिये, मैं उसे समझने का प्रयत्न कर रही हूँ।'

गोरा ने कहा—'मुझे और अधिक नहीं कहना है। आप भारतवर्ष को अपने हृदय से देखें तथा प्यार करें, मैं यही चाहता हूँ। यदि आप ग्राह्य-अग्राह्य की दृष्टि से सबको देखेंगी तो आप उसे गलत समझती रहेंगी। ईश्वर ने सब लोगों को अलग-अलग बनाया है। वे अलग-अलग सोचते और विचार करते हैं। अतः उनकी कल्पना को झूठ बताकर उन पर अश्रद्धा करना, नास्तिकता से अलग और कुछ नहीं है।'

सुचरिता गर्दन झुकाये सब बातों को सुन रही थी। बोली—'और मुझे क्या करने को कह रहे हैं ?'

गोरा बोला—'हिन्दू धर्म माता के समान सभी मतों को अपनी गोद में धारण देने का प्रयत्न करता है। यह मनुष्य को मनुष्य स्वीकार करता है। ज्ञान की किसी एक मूर्ति विशेष को नहीं मानता। वह ज्ञान के अनेकों प्रकार के विश्वासों का प्रतिपादन करता है। परन्तु क्रिस्तान धर्म इस विचित्रता को स्वीकार नहीं करता। जो लोग क्रिस्तान धर्म का अन्धानुकरण करते हैं, वे ही हिन्दू-धर्म की विशेषता से लज्जित

होते दीख पड़ते हैं। अतः जब तक हम अपने मन को खोजकर विदेशी धर्म की दासता से छुटकारा नहीं पायेंगे, तब तक हिन्दू-धर्म के सत्य का परिचय भी प्राप्त न कर सकेंगे।'

सुचरिता केवल गोरा की बातों को सुन ही नहीं रही थी। ऐसा लगता था, मानो वह सुदूर भविष्य को अपनी दोनों आँखों से टकटकी लगाये ध्यानपूर्वक देख रही हो। अब तक उसने समाज के विद्वानों के मुख से आलोचनायें ही सुनी थीं, परन्तु गोरा का कथन आलोचना न होकर मानो एक सृष्टि था—ऐसा प्रत्यक्ष व्यवहार, जो संपूर्ण शरीर एवं मन पर एक साथ ही अपना अधिकार कर लेता है।

इसी समय सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। सतीश गोरा से डरता था, अतः वह अपनी बहिन के पास चुपचाप आ खड़ा हुआ। तदन्तर धीमे स्वर में बोला—'पानूबाबू आये हैं।'

सुचरिता यह सुनकर चौंक पड़ी, मानो किसी विच्छू ने डङ्क मार दिया हो। वह सावधानी से उठी तथा सीढ़ियों से उतर कर नीचे चली गई। हारानबाबू के पास पहुँच कर उसने कहा—'मुझे क्षमा करें। आज मैं आप से बात न कर सकूँगी।'

'क्यों?' हारानबाबू ने पूछा।

सुचरिता इस प्रश्न का कोई उत्तर न देते हुए बोली—'आप कल सवेरे बाबूजी के पास आयें तो वहीं मुझसे भेंट हो सकेगी।'

हारानबाबू ने कहा—'तुम्हारे कमरे में शायद कोई आदमी है?'

सुचरिता इसे भी टालती हुई बोली—'आज मुझे समय नहीं है। कृपया क्षमा करें।'

परन्तु हारानबाबू फिर बोले—'मैंने सड़क से गौरमोहनबाबू का कण्ठ सुना है। वे बैठे हुए हैं क्या?'

सुचरिता अब और न टाल सकी। वह लाल मुँह करके बोली—'हाँ बैठे हुये हैं।'

'तब ठीक है'—हारानबाबू बोले—'मुझे उनसे करनी हैं। तुम जब तक अपना काम करोगी, तब तक

वार्तालाप कर लूँगा।'

इतना कह, सुचरिता की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही, वे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगे। सुचरिता उनकी ओर दृष्टिपात किये बिना गोरा के पास आकर बोली—'मौसी आपके लिये नास्ता तैयार कर रही हैं। मैं उन्हें देखकर अभी आती हूँ।'

इतना कह कर वह कमरे से बाहर चली गई। इधर हारानबाबू गम्भीर से होकर कुर्सी पर बैठ गए। तत्पश्चात् गोरा से बोले—'आप कुछ दुर्बल से दिखाई दे रहे हैं।'

'जी हाँ!'—गोरा ने उत्तर दिया—'दुर्बल होने की चिकित्सा ही चल रही थी।'

हारानबाबू किंचित् नम्र स्वर में बोले—'आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ा।'

'जो आशा की जाती थी, उससे अधिक कष्ट नहीं हुआ।' गोरा ने फिर उत्तर दिया।

हारानबाबू बोले—'मुझे आपसे विनयबाबू के सम्बन्ध में कुछ बातें करनी हैं। यह तो आप सुन ही चुके होंगे कि अगले रविवार को वे ब्राह्म-समाज में दीक्षा ले रहे हैं?'

'नहीं, मैंने तो नहीं सुना।'

'परन्तु क्या इस कार्य में आपकी सम्मति है?'

'विनय मुझसे कभी सम्मति नहीं लेता।'

'क्या आप समझते हैं कि विनयबाबू हृदय से यह दीक्षा लेने को तैयार हुये हैं?'

'जब वे दीक्षा लेने को तैयार ही हो गये हैं तो आपका प्रश्न निरर्थक है।'

'यद्यपि आपके साथ मेरे मत एवं समाज का कोई साम्य नहीं है, फिर भी आप पर श्रद्धा रखता हूँ। मैं समझता हूँ कि आपका जो विश्वास है, वह सत्य या मिथ्या कैसा भी क्यों न हो, उसे कोई डिगा नहीं सकता। परन्तु······'

गोरा बीच में ही टोकता हुआ बोला—'आप जो मेरे प्रति थोड़ी-सी श्रद्धा बचा सके हैं, उससे वंचित होने पर विनय को क्या नुकसान उठाना पड़ेगा ? मैं चाहता हूँ कि आप अपनी श्रद्धा को संसार के सब लोगों तक फैलाने का प्रयत्न करें।'

हारानबाबू बोले—'इस विषय को छोड़िये। परन्तु मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि विनयबाबू जो परेशबाबू के घर मे विवाह कर रहे हैं, क्या आप उसमे कोई बाधा न डालना चाहेंगे ?'

गोरा क्रुद्ध हो उठा। बोला—'हारानबाबू ! विनय की आलोचना करते समय आपको यह भली-भाँति ध्यान रखना चाहिये कि वह मेरा मित्र है, आपका नहीं।'

हारान— इस कार्य का ब्राह्म-समाज के साथ सम्बन्ध है, इसीलिये मैंने यह प्रसङ्ग उठाया है, अन्यथा···।'

'मगर मैं ब्राह्म-समाज का कोई नहीं हूँ,' गोरा बोला—'मेरे सामने आपकी यह दुश्चिन्ता क्या मूल्य रखती है ?'

इसी समय सुचरिता ने कमरे मे प्रवेश किया। हारानबाबू उससे बोले—'सुचरिता ! मुझे तुमसे एक विशेष बात कहनी है।'

सुचरिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वास्तव मे सुचरिता से अपनी घनिष्ठता दिखाने के लिये हारानबाबू ने गोरा के सामने उसे ऐसी बात कही थी। परन्तु कोई उत्तर न पाने पर, वे फिर बोले—'सुचरिता ! तुम उस कमरे मे तो चलो, मैं एक बात कहना चाहता हूँ।'

सुचरिता ने फिर भी बात अनसुनी करदी। वह गोरा की ओर देखती हुई बोली—'आपकी माँ तो अच्छी तरह हैं ?'

'मैंने तो उन्हें कभी ऐसा देखा ही नहीं, जब वे अच्छी तरह न हों।' गोरा ने उत्तर दिया।

'यह तो मैं भी देख चुकी हूँ'—सुचरिता बोली—'उनकी सहन-शक्ति का परिचय मुझे भी कुछ मिला है।'

इसी समय हारानबाबू ने मेज पर रक्खी हुई गोरा, की लिखी एक पुस्तक उठाली। उसे पलटते हुए बोले—'गौरमोहनबाबू ! यह

पुस्तक आपने शायद बचपन में लिखी थी ?'

'वह बचपन तो अभी भी चल रहा है'—गोरा ने हँसते हुए उत्तर दिया—'कुछ लोगों का बचपन शीघ्र समाप्त हो जाता है और कुछ बहुत अधिक समय तक बच्चे बने रहते हैं।'

तभी सुचरिता ने कुर्सी से उठते हुए कहा—'गौरमोहनबाबू ! आपके लिए खाना तैयार हो गया है। मौसी पानूबाबू के सामने नहीं निकलतीं, अतः वहीं आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। आप उस कमरे में चले चलिये।'

यह बात सुचरिता ने हारानबाबू को चोट पहुँचाने के लिए ही कही थी, परन्तु हारानबाबू ने फिर भी अपराजित से होकर कहा—'तो मैं तुम्हारी यहीं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'आप क्यों प्रतीक्षा करते हैं ? मुझे आज समय नहीं है।'

परन्तु हारानबाबू फिर भी न उठे। सुचरिता गोरा को साथ लेकर कमरे से बाहर चली गई। इधर हारानबाबू एक कागज लेकर सुचरिता को पत्र लिखने लगे। उनका विश्वास था कि सत्य की दुहाई देने पर, उनका तेजस्वी वाक्य निष्फल न जा सकेगा।

कुछ खा-पीकर जब गोरा अपनी छड़ी लेने के लिए सुचरिता के कमरे में आया, उस समय सन्ध्याकाल निकट आ चुका था। हारानबाबू ने सुचरिता के नाम पत्र लिखकर मेज पर इस प्रकार रख दिया था कि कमरे में प्रवेश करते ही गोरा की दृष्टि उस पर जा पड़े। ऐसा ही हुआ भी। गोरा ने जब उस पत्र को देखा, तो वह मन-ही-मन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने न जाने क्या-क्या सोचते हुए, सुचरिता से कहा—'मैं कल आऊँगा।'

'अच्छा' कहकर सुचरिता सिर झुकाए खड़ी रही।

तभी गोरा जाते-जाते ठिठक कर खड़ा हो गया और बोला—'तुम भारतवर्ष के सौर-मण्डल की ही एक नक्षत्र हो। कोई कभी धूमकेतु तुम्हें अपनी पूँछ में लपेट कर शून्य में नहीं ले जा सकता। मैं तुम्हें

तुम्हारे उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करके ही छोड़ूँगा। मैं तुम्हें यह स्पष्ट रूप से ज्ञान करा दूँगा कि जिन लोगों ने तुम्हारे धर्म तथा सत्य को बाँध रक्खा है, वे मिथ्यावादी हैं। जिस समाज मे तुम्हारा स्थान है, तुम्हें उसी का आश्रय लेना पड़ेगा। यदि तुम उसे स्वीकार न करोगी, तो तुम्हारा धर्म, तुम्हारी शक्ति—सब कुछ छाया की भांति मलिन हो जायेंगे। यही सब समझाने के लिए मैं कल फिर आऊँगा।'

इतना कहकर गोरा चला गया। उस कमरे की हवा, मानो बहुत देर तक उसके इन्हीं शब्दों को प्रतिध्वनित कर काँपती रही। सुचरिता उस समय मूर्ति के समान निस्तब्ध बैठी हुई थी।

५७

विनय ने आनन्दमयी से कहा—'माँ' जब-जब ठाकुरजी को प्रणाम किया, तब-तब मुझे अपने मन मे एक प्रकार की लज्जा का-सा अनुभव हुआ है। या समझो कि मेरे मन ने इस कार्य में कभी साथ नहीं दिया।'

आनन्दमयी बोलीं—'तेरा मन क्या सहज है? तू सभी बातों मे मन को ढूँढ़ता है, इसीलिए तेरे मन का सन्देह दूर नही होता।'

विनय बोला—'इसीलिये तो मैं पूछता हूँ कि जिस पर मैं विश्वास नहीं करता, उस पर विश्वास करने का ढोंग क्या अच्छी बात है?'

आनन्दमयी कुछ समझ न सकी। बोली—'ऐसी बात भी क्या कभी पूछी जाती है?'

विनय—'मा! मैं परसों ब्राह्म-समाज में दीक्षा लूँगा।'

आनन्दमयी यह सुनकर आश्चर्य मे पड़ गई। बोली—'यह आज तू कैसी बात कर रहा है? दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है, भला?'

'मा! यही बात तो मैं इतनी देर से कहना चाहता था ने उत्तर दिया।

'क्या तू अपने विश्वास को लेकर हमारे समाज में नहीं रह सकता ?'

'पर मा ! यदि समाज मुझे स्वीकार न करे तो क्या मैं बल-पूर्वक हिन्दू रह सकता हूँ ?'

'यह तर्क करने का विषय नहीं है। ऐसे महत्वपूर्ण विषय में निरर्थक तर्क नहीं करना चाहिए।'

'पर मा ! मैं चिट्ठी लिखकर वचन दे चुका हूँ कि मैं कल दीक्षा लूँगा।'

'परन्तु यदि तू परेशबाबू को समझा दे तो वे कभी दीक्षा लेने के लिए हठ नहीं करेंगे।'

'लेकिन मा, अब बात पक्की हो चुकी है। उसे बदला नहीं जा सकता।'

'इस बारे में तूने गोरा से भी कहा है ?'

'उससे तो मेरी मुलाकात भी नहीं हुई।'

'वह इस समय घर में है ?'

'नहीं, मुझे पता चला है कि वह आज सुचरिता के घर गया हुआ है।'

'सुचरिता के घर !'—आनन्दमयी आश्चर्य में पड़कर बोलीं—'वहाँ तो वह कल गया था ?'

'आज भी गया है'—विनय बोला।

इसी समय आंगन में कहारों के आने की आवाज सुनाई दी। आनन्दमयी के कुटुम्ब की कोई स्त्री आई है, यह विचार कर विनय बाहर चला गया।

तभी ललिता ने आकर आनन्दमयी को प्रणाम किया। आनन्द-मयी को उसके आने की कुछ भी आशा नहीं थी। परन्तु फिर उसे सत्कार-पूर्वक बैठा कर बातचीत को आरम्भ करती हुई बोलीं—'बेटी ! तुम्हारे आने से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ। अभी विनय भी यहीं था। वह तुम्हारे समाज में दीक्षा लेगा, इसी विषय पर बातचीत चल रही थी।'

ललिता बोली—'परन्तु उनके दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ?'

आनन्दमयी आश्चर्य में पड़ कर बोलीं—'क्या आवश्यकता नहीं है ?'

'मैं तो नहीं समझती ।' ललिता ने उत्तर दिया ।

'परन्तु वह तो दीक्षा लेने का पक्का वचन दे चुका है ।'

'ऐसे विषयों में यदि आवश्यकता पड़े तो अपने वचन को बदल देना चाहिये, मा !'

आनंदमयी बोलीं—'बेटी ! तुम मुझसे लज्जा न करो । विनय समझता है कि दीक्षा न लेने पर उसका तुमसे मिलन न हो सकेगा, इसीलिए वह ऐसा निश्चय कर बैठा है । पर, क्या यह सचमुच आवश्यक नहीं है ?'

ललिता ने आनन्दमयी की ओर अपना मुँह उठाकर कहा—'मा ! मैं तुमसे कुछ भी लज्जा नहीं करूँगी । मैंने भली-भांति विचार करके यह देख लिया है कि धर्म-विश्वास एवं समाज का लोप कर देने के बाद ही किसी मनुष्य का परस्पर मिलन-संयोग नहीं हो सकता । ऐसा हो, तब तो किसी हिन्दू की मैत्री किसी क्रिस्तान से भी न हो सकेगी ।'

आनन्दमयी प्रसन्न होकर बोली—'तेरी बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है । मैं जानती हूँ कि वह अपना मन और सब कुछ तुझे दे चुका है। यह मत परिवर्तन की जो एक दीवार रुकावट बनकर खड़ी हुई थी, उसे भी तूने कैसी सरलता से काट दिया । यह उसका सौभाग्य नहीं तो और क्या है ? परन्तु, मैं यह और पूछना चाहती हूँ कि क्या परेशबाबू से भी इस सम्बन्ध में कोई बात हुई है ?'

ललिता लज्जा को दबाती हुई बोली—'बात तो नहीं हुई, परन्तु वे सब कुछ ठीक समझ जायँगे ।'

आनन्दमयी ने पुलकित होकर, ललिता की ठोड़ी चूम ली। तत्पश्चात् वे आनन्द-विभोर हो, विनय को बुला लाईं । फिर चतुरता

लछमियां को कमरे में बैठाकर, ललिता को कुछ खिलाने के बहाने दूसरी ओर चली गईं।

अब ललिता और विनय को संकोच की आवश्यकता नहीं थी। ललिता ने स्वयं ही अपने मुख को प्रदीप्त करते हुए विनय से कहा—'आप स्वयं को छोटा बनाकर मुझे ग्रहण करना चाहेंगे तो मैं इस अप्रतिष्ठा को सहन न कर सकूंगी। आप जहां हैं, वहीं बने रहें, मैं यही चाहती हूं।'

तदनन्तर ललिता और विनय में बीस मिनट तक अनेक बातें होती रहीं, जिनका सारांश यह कि वे दोनों ही इस बात को भूल गए कि वे ब्राह्म हैं अथवा हिन्दू वे दोनों केवल मानव हैं, यही बात उनके हृदय में दीप-शिखा की भांति अबाध गति से जलने लगी।

५६

उपासना के बाद परेशबाबू अपने कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठे हुए थे। सूर्य अस्त हो चुका था। इसी समय ललिता को साथ लिए हुए विनय ने वहां प्रवेश किया तथा पृथ्वी पर मस्तक रखकर उसने परेशबाबू को प्रणाम कर, चरण-धूलि ली।

परेशबाबू उन दोनों को देख कुछ आश्चर्य में पड़ गये, तदुपरान्त पास में बैठने को अन्य कुर्सियां न देखकर बोल उठे—'चलो, कमरे में चलें।'

परन्तु विनय वहीं नीचे पृथ्वी पर बैठता हुआ बोला—'आप यहां से उठें नहीं। आज हम दोनों संयुक्तरूप से आपका आशीर्वाद लेने के लिए आये हैं। यही हमारे जीवन की सच्ची दीक्षा है।'

'परेशबाबू ने आश्चर्य से उन दोनों के मुंह की ओर देखा।

विनय बोला—'मैं बंधे हुए नियमों द्वारा निर्मित वाक्यों से समाज में दीक्षा ग्रहण न करूंगा। आपका आशीर्वाद ही हमारी दीक्षा है।'

परेशबाबू कुछ देर मौन रहे। फिर बोले—'तो तुम ब्राह्म

बनोगे ?

'नहीं !' विनय ने उत्तर दिया।

'तो तुम हिंदू-समाज में ही रहना चाहते हो ?'

'जी !'

परेशबाबू ने तभी ललिता के मुँह की ओर देखा। वह उनका आशय समझ कर बोली—'बाबू जी ! मेरा धर्म साथ है, परन्तु जिस धर्म के साथ मेरे आचरण की भिन्नता है, उसे मैं किसी भी प्रकार सहन न कर सकूँगी।'

परेशबाबू कुछ मलिन-भाव से मुस्करा उठे। फिर बोले-'बेटी ! तुम्हारे भावी वंश के भीतर जो दूरव्यापी भविष्य छिपा है, उसके बारे में तुम क्या सोचती हो ?'

'उसके लिये हिंदू-समाज तो है ?' विनय ने उत्तर दिया।

'परन्तु यदि हिन्दू-समाज तुम्हारा भार न ले तो ?'

विनय ने आनन्दमयी की बात का स्मरण करते हुए कहा—'उसे स्वीकार कराने का हमें प्रयत्न करना पड़ेगा। हिंदू-समाज तो सदैव से नये-नये सम्प्रदायों को आश्रय देता आया है। अतः वह सभी सम्प्रदायों का एक मिला-जुला समाज है।'

'मुख के तर्क द्वारा एक वस्तु को जिस प्रकार दिखाया जा सकता है, कार्य में वह उसी प्रकार की नहीं पाई जाती, क्या इसका भी तुमने कभी विचार किया है ?' परेशबाबू ने शान्त भाव से कहा।

ललिता बोली—'बाबूजी' ! मैं इन बातों को नहीं समझती, परंतु किसी अन्याय का भार सहन करना मेरे वश की बात नहीं है।'

परेशबाबू स्नेहार्द्र स्वर में बोले—'अभी तुम्हारा मन चंचल है। इसके लिये विचार करने को कुछ और समय लेना क्या अच्छा न रहेगा ?'

ललिता ने कहा—'मुझे समय लेने में कोई आपत्ति नहीं है, परं मुझे भय है कि इन अनाचारों के प्रतिरोध में मैं कोई ऐसा [illegible] बैठूँ, जिससे आप सभी को कष्ट हो।'

परेशबाबू कुछ देर तक स्तब्ध रहने के उपरान्त बोले– विनय ! तुम्हारे यहाँ शालिग्राम की शिला रखकर विवाह होता है। क्या ललिता उसे स्वीकार कर सकेगी ?'

विनय ने देखा—'इस बात को सुनकर ललिता का मन अत्यन्त संकुचित हो उठा है। ललिता भी सिर झुकाये बैठी थी। एकाएक उसने विनय की ओर मुँह उठाकर कहा—'क्या आप शालिग्राम की शिला को सचमुच देवता करके मानते हैं ?'

'मैं उसे केवल एक सामाजिक चिन्ह मानता हूँ'—विनय ने उत्तर दिया—'इससे अधिक और कुछ नहीं।'

'तो क्या आप उसे बाहर से देवता न मानेंगे ?'

'मैं शालिग्राम को रक्खूँगा ही नहीं।' विनय का उत्तर स्पष्ट था।

परेशबाबू कुर्सी से उठ खड़े हुए। बोले—'अभी तुम्हारा मन स्थिर नहीं है। तुम इस पर भली-भांति विचार कर निश्चय करलो कि विवाह एक सामाजिक कार्य है। केवल व्यक्तिगत ही हो, ऐसी बात नहीं है।'

इतना कह परेशबाबू बगीचे में जाकर टहलने लगे।

ललिता ने भी उठते हुए, विनय की ओर पीठ करके कहा—'मैं इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूँ कि जिस कार्य में हमारी इच्छा नहीं है, उसे भी समाज के भय से करना ही पड़ेगा'

तभी विनय ने उत्तर दिया—'मैं भी किसी समाज से नहीं डरता। यदि हम सत्य का आश्रय लें तो समाज हमसे बड़ा सिद्ध न हो सकेगा।'

इसी समय वरदासुन्दरी ने आंधी के समान दोनों के सामने आकर कहा—'विनय ! मैंने सुना है कि तुम दीक्षा नहीं लोगे ?'

विनय बोला—'ठीक ही सुना है। मैं योग्य गुरु से दीक्षा लूँगा, किसी समाज से नहीं।'

वरदासुन्दरी इस उत्तर से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठीं। बोलीं—'इस

षड्यंत्र का क्या अर्थ है ? क्या अब तक तुम दीक्षा लेने का ढोंग रचकर, सब लोगों को भुलावे में ही डाल रहे थे ? इससे ललिता का कितना सर्वनाश होगा, क्या यह भी तुमने कभी सोचा है ?'

तभी ललिता बीच में बोल पड़ी—'मां ! तुमने अखबार में देखा ही होगा कि विनयबाबू के दीक्षा लेने में तुम्हारे ब्राह्म-समाज के सब लोगों की सम्मति नहीं है। तब ऐसी दीक्षा लेने की आवश्यकता ही क्या है ?'

वरदासुन्दरी बोलीं—'परन्तु दीक्षा लिये बिना विवाह कैसे होगा ?'

'होगा क्यों नहीं ?' ललिता ने कहा।

'क्या हिन्दू-धर्म के मत से ?'

'हां'—विनय ने बीच में उत्तर दिया—'इसमें जो बाधा पड़ेगी, मैं उसे दूर कर दूंगा।'

वरदासुन्दरी के मुंह से बहुत देर तक कोई बात नहीं निकली, तत्पश्चात् उन्होंने रुद्ध कण्ठ से कहा—'विनय ! तुम यहां से चले जाओ। अब फिर कभी इस मकान में मत आना।'

६०

सुचरिता यह नहीं जानती थी कि आज गोरा आयेगा। प्रातःकाल से ही उसकी छाती में धड़कन हो रही थी। कल गोरा ने मौसी के कमरे में जाकर ठाकुरजी को प्रणाम किया था, इस बात से उसके हृदय पर मानो छुरी चल गई थी। प्रणाम करने से कोई दुख नहीं था, परन्तु उसका अपना विश्वास टूट गया था॥

हरिमोहिनी आज भी गोरा को ठाकुरजी वाले कमरे में ले गईं और आज भी गोरा ने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उ[illegible] ने सुचरिता की बैठक में प्रवेश किया, तो सुचरिता ने उससे प्र[illegible] कर दिया—'क्या आप भी ठाकुरजी की भक्ति करते हैं ?'

'क्यों नहीं ?' गोरा ने उत्तर दिया—[illegible]

करता हूं।'

सुचरिता ने यह सुनकर चुपचाप मस्तक झुका लिया। उसकी मर्म वेदना का गोरा के हृदय पर बड़ा आघात हुआ। वह बोला—'देखो, मैं सच बात कहता हूं, ठाकुरजी की भक्ति मुझसे होती या नहीं, यह तो मैं ठीक से नहीं बता सकता, परन्तु मैं अपने देश की भक्ति अवश्य करता हूं। समस्त देश की पूजा जहां इतने दिनों से पहुंच रही है, उसे मैं भी अपना पूजनीय मानता हूं। हां, क्रिस्तान पादरियों की भांति उस स्थान पर अपनी विषयपूर्ण दृष्टि कभी नहीं डालता।'

सुचरिता बोली—'क्या भक्ति करने से ही सब काम बन जाते हैं? किसकी भक्ति की जा रही है—यह भी तो सोचना ही होगा।'

गोरा मन-ही-मन कुछ उत्तेजित होकर बोला—'तुम समझती हो कि किसी सीमाबद्ध पदार्थ को ईश्वर मानकर, उसकी पूजा करना भ्रम है, परन्तु क्या उस सीमा का निर्णय केवल देश-काल की ओर से ही हो सकता है? आपकी असीमता विस्तार की असीमता से बड़ी वस्तु है। तुम्हारी मौसी के लिए ये छोटे से ठाकुरजी सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणों से भरे विशाल आकाश की अपेक्षा कहीं अधिक असीम हैं। तुम जो परिमाणगत असीम को असीम कहती हो, मैं नहीं समझता कि इससे तुम्हें कोई फल मिलता है या नहीं, परन्तु यह सत्य है कि हृदय के भावों द्वारा असीम को आंखें खोलकर देखने से, उसे छोटे से पदार्थ में भी पाया जा सकता है। भाव की असीमता के बिना मनुष्य के खाली हृदय का स्थान कभी नहीं भरता।'

सुचरिता फिर भी मौन रही। तब गोरा का हृदय एक प्रकार से व्यथित हो उठा। वह अपने कण्ठ-स्वर को कोमल बनाकर बोला—'मैं तुम्हारे मत की निन्दा नहीं कर रहा हूं। मेरा कहने का तात्पर्य केवल यही है कि तुम जिस ठाकुरजी की निन्दा करती हो, वह क्या है, इसे केवल आंखों से देखकर ही नहीं जाना जा सकता। जिसका मन उसमें स्थिर होकर तृप्त हो गया है, वही यह भली-भांति अनुभव कर सकता है कि ठाकुरजी भी मृत्तिकामय, पाषाणमय, ससीम अथवा असीम

है।। मैं यह दावे के साथ कहता हूँ कि हमारे देश का कोई
प्रतीक की पूजा नहीं करता है। सभी उस प्रतीक को उपास
हैं। सीमा के भीतर सीमा को खो देने ही में भक्ति का
आनन्द है।'

सुचरिता बोली—'परन्तु सभी लोग तो ऐसे भक्त नहीं
गोरा—'जो भक्त नहीं है, वह किसकी पूजा करता
जानने-न-जानने से लाभ हानि भी क्या है?'

सुचरिता ने इसका कोई उत्तर न देते हुए कहा—'क
के सम्बन्ध में ये बातें क्या भली-भाँति ध्यानपूर्वक होने के न
रहे हैं?'

गोरा ने मुस्कराकर कहा—'तुम यह जानना चाहती
मैंने कभी ईश्वर से स्नेह किया है या नहीं? परन्तु मेरा मन
उस ओर गया ही नहीं।'

सुचरिता को इस बात से कोई प्रसन्नता नहीं हुई, ि
जैसे वह एक संकट से छूट गई। तभी गोरा फिर कह उठा—'
को धर्म की शिक्षा देने की योग्यता का दावा नहीं करता। परन्
देश के लोगों की भक्ति का तुम लोग उपहास करो यह भी क
नहीं कर सकता हूँ। तुम देश के लोगों को मूर्ति-पूजक और
सकती हो, परन्तु मैं उन्हें ज्ञानी और भक्त कहना चाहता हूँ। ह
में जो धर्म-तत्त्व में भक्ति-तत्त्व की प्रधानता है, मैं उसके प्रति श्र
करके अपने देश को जाग्रत करना चाहता हूँ। किसी के हृदय
के प्रति धिक्कार पैदा हो तथा सत्य के प्रति अन्ध-विश्वास
आदि, यह मैं कभी सहन न करूँगा। मैं जो आज तुम्हारे पास
उसका भी एक ही कारण है। मैंने ध्यान देकर देखा है कि
की दृष्टि से ही भारतवर्ष पूर्ण न होगा। जिस दिन हमारे देश
भाइयों के सामने भी वह दिन आविर्भूत होगा, तभी हम पूर्णता
कर सकेंगे। मैं तुम्हें साथ लेकर एक दृष्टि से अपने समस्त देश
यही आकांक्षा मेरे हृदय को उत्तेजित कर रही है। मैं अपने

पर मर मिटने को तैयार हूँ, परन्तु तुम्हारे विना उस प्रदीप को जलाक
अपनायेगा कौन ? यदि तुम दूर रहोगी तो भारतवर्ष की भली-भां
सेवा न हो सकेगी। मैं तुम्हें लेने के लिए आया हूँ तुम्हारे अलग रहने
वह यज्ञ पूरा न होगा।'

सुचरिता की दोनों आंखों से आंसू वह निकले। क्यों ? इसे व
स्वयं भी न जान सकी।

जिस प्रकार भूकम्प आने पर पत्थर का बना हुआ राजमहल भ
डगमगाने लगता है, उसी प्रकार सुचरिता की आंसुओं से भीगी आं
देखकर गोरा का हृदय भी डगमगाने लगा। वह अपनी पूरी शक्ति
अपने को संभालता हुआ, मुँह फेरकर खिड़की के वाहर देखने लगा, उ
मालूम हुआ, जैसे आकाश निस्तब्ध और अन्धकारमय है। केवल आं
से भरे दो करुण नेत्र निर्मिमेप दृष्टि से, अनादिकाल की ओर दे
रहे हैं।

तभी हरिमोहिनी की आवाज सुनकर उसका ध्यान भंग हुआ
उसने मुड़कर देखा। हरिमोहिनी कह रही थीं—'वेटा कुछ जलपा
करके जाना।'

'नहीं मा !'—गोरा ने शीघ्रतापूर्वक उत्तर दिया—'आज नहीं,
अव जा रहा हूँ।'

इतना कह, वह विना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए, तेजी
वाहर निकल गया। हरिमोहिनी आश्चर्यचकित-सी हो, सुचरिता के मुं
की ओर देखने लगीं। तभी सुचरिता भी कमरे से वाहर निकल गई।

इसके थोड़ी देर वाद ही परेशवावू वहाँ आगए। उन्होंने हरि
मोहिनी से पूछा—'राधारानी कहाँ है ?'

हरिमोहिनी ने झुँझलाते हुए उत्तर दिया—'पता नहीं। अ
तक गोरा से वातें कर रही थी। अव शायद छत पर अकेली टहल र
होगी।'

परेशवावू चकित होकर वोले—'इतनी रात गए ठण्ड में छ
पर है ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'कुछ ठण्ड लग जाना ही ठीक है आजकल की लड़कियों को ठण्ड लगने से कुछ बिगाड़ नहीं होता है।'

हरिमोहिनी का मन खराब हो गया था, इसलिए आज उसने सुचरिता को खाने के लिए भी नहीं बुलाया। तभी हठात् परेशबाबू को ऊपर छत पर आते देख, वह लज्जित सी हो उठी। उसने परेशबाबू से कहा—'बाबूजी! नीचे चलिये, आपको ठण्ड लग जायगी।'

कमरे में आकर सुचरिता ने दीपक के उजाले में परेशबाबू का उदास मुख देखा तो उसके हृदय को बड़ी ठेस लगी। जब परेशबाबू व्यथित होकर कुर्सी पर बैठ गए तो उनकी कुर्सी के पीछे खड़ी हो, उनके बालों में उँगलियाँ फिराने लगी।

परेशबाबू ने भारी गले से कहा—'विनय ने दीक्षा लेने से इन्कार कर दिया है।'

सुचरिता मौन रही।

परेशबाबू फिर बोले—'विनय के दीक्षा लेने के प्रस्ताव पर ही मुझे सन्देह था, अतः अब उसे अस्वीकृत कर देने पर उतना दुःख नहीं है। परन्तु ललिता दीक्षा लिये बिना भी उसके साथ विवाह करने में बाधा नहीं समझ रही है।'

सुचरिता यह सुनकर जोर से चिल्ला पड़ी—'नहीं बाबूजी! यह तो किसी तरह नहीं हो सकता।'

परेशबाबू उसके आकस्मिक आवेग को देखकर कुछ आश्चर्य में पड़ गये। बोले—'क्यों, हो क्यों नहीं सकता?'

सुचरिता—'विनय के ब्राह्म न होने पर विवाह किस रीति से होगा?'

'हिन्दू रीति से?' परेशबाबू ने उत्तर दिया।

सुचरिता—'यह कैसी बातें आजकल हो रही हैं? ठाकुरजी की पूजा के साथ ललिता का विवाह हो, यह मैं किसी भी तरह न होने दूँगी।'

परेशबाबू—'परन्तु विनय शालिग्राम की शिला को बीर

पिना विवाह को तैयार हो गया है।'

सुचरिता चुप रही। वह परेशबाबू के सामने वाली कुर्सी पर बैठी। परेशबाबू ने फिर कहा—'इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

सुचरिता—'ऐसी स्थिति में ललिता को हमारे समाज से अल हो जाना पड़ेगा।'

परेश—'परन्तु ललिता कहती है कि इस दुःख में भी उसे आनन् ही प्राप्त होगा। यदि यह बात सत्य है, तो फिर मैं बिना किसी अन्या के किस प्रकार रोक सकूँगा ?'

सुचरिता–'तो क्या आपने सम्मति दे दी है ?'

परेश–'अभी तो नहीं दी है, परन्तु अब देनी ही पड़ेगी।' ललित जिस रास्ते पर जा रही है, उसमें मेरे अतिरिक्त और कौन उसे आशी र्वाद दे सकेगा ? ईश्वर के अतिरिक्त उसकी सहायता करने वाला औ है भी कौन ?'

परेशबाबू इतना कह कर चले गए। सुचरिता स्तम्भित-सी चुप चाप बैठी रही। वह सोच रही थी–'परेशबाबू भी कैसे व्यक्ति हैं, ज ऐसे विप्लव में भी ललिता की केवल इसलिये सहायता करने जा रहे कि ललिता को हृदय से प्यार करते हैं और उधर गोरा ? उसकी इच्छा शक्ति भी कैसी प्रबल है कि वह अपने प्रभाव से दूसरों को अभिभूत क देता है। 'परेशबाबू और गोरा दोनों की तुलना कर, सुचरिता अत्यन आनन्द विभोर हो उठी। उसने दोनों को ही अपनी भक्ति पुष्पाञ्जलि समर्पित की। तत्पश्चात वह अपनी दोनों हथेलियों को जोड़कर बड़ देर तक, चित्रलिखी-सी शान्त एवं निस्तब्ध-जहाँ की तहाँ स्थिर बैठ रही।'

६१

आज प्रातःकाल से ही गोरा के कमरे में आन्दोलन उठ रहा था महिम ने हुक्के का दम खींचते हुए गोरा के पास आकर पूछा—'आखि इतने दिनों बाद गोरा ने जंजीर तोड़ डाली न ?'

गोरा महिम की बात का तात्पर्य नहीं समझ सका। वह चुप बैठा रहा। महिम ने कहा—'अब छिपाने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारे मित्र का ढोल बज चुका है। लो इसे भी देख लो न!'

इतना कहकर महिम ने बंगला का एक अखबार गोरा के हाथ में दे दिया। उसमें आज रविवार के दिन विनय द्वारा ब्राह्म-समाज मे दीक्षा लेने के प्रस्ताव पर एक तीखा व्यङ्ग प्रकाशित हुआ था। उसमे लिखा था—जिस समय गोरा जेल मे था, उन दिनों कन्याओं के भार से बोझिल किसी ब्राह्म-समाजी ने इस दुर्बल चित्त-युवक विनय को गुप्त-रूप से प्रलोभन मे डालकर, उसे हिंदू-समाज से प्रथक् कर दिया। ऐसी ही अनेक कटु बातें उस लेख में लिखी गई थी।

गोरा ने जब यह कहा कि मुझे इस सम्बन्ध मे कुछ भी पता नहीं है, तब महिम ने पहले तो अविश्वास प्रकट किया, परन्तु बाद में उन्हें विनय के इस व्यवहार पर आश्चर्य होने लगा। वे बोले—'जिस समय विनय ने शशिमुखी से विवाह करने के सम्बन्ध में इधर-उधर की बातें करनी आरम्भ की थीं, उसी समय हमे यह समझ लेना चाहिये था कि उसके सर्वनाश का सूत्रपात आरम्भ हो गया है।'

उसी समय अविनाश ने वहां हाँफते हुए आकर कहा—'गौर-मोहनबाबू! यह कैसी बात है! हम तो इसका स्वप्न मे भी अनुमान नहीं कर सकते थे। विनयबाबू क्या अन्त में·· ···।'

अविनाश अपनी बात पूरी न कर पाया। तब तक गोरा के दल के अन्य सभी प्रधान व्यक्ति वहाँ आ इकट्ठे हुए। वे सभी विनय के बारे में उत्तेजनापूर्ण आलोचनायें करने लगे। जिसके जो मन मे आता, कह रहा था।

गोरा ने उनकी बातों में कोई योग नहीं दिया। वह शान्त रहा।

दिन चढ़ आने पर जब सब लोग चले गये तो गोरा ने देखा विनय उसके कमरे में न आकर समीप वाली सीढी से ऊपर को चला आ रहा है। गोरा यह देखते ही अपने कमरे से बाहर निकल आ

विनय को पुकारते हुए बोला—'विनय !

विनय ने सीढ़ी से नीचे उतर कर जब गोरा के कमरे में प्रवेश
, तो गोरा ने उससे कहा—'विनय ! मैंने अनजाने में तुम्हारे साथ
क्या अन्याय किया है, जो तुम मुझे इस प्रकार त्याग दे रहे
?'

विनय आज गोरा से झगड़ा होने की बात सोचकर आया था,
न्तु जब उसने गोरा के स्वर में स्नेहभरी वेदना का अनुभव किया तो
ह विह्वल होकर बोल उठा—'मुझे गलत न समझो। जीवन में अनेक
रिवर्तन होते हैं, उनमें बहुत-सी वस्तुओं को छोड़ देना पड़ता है, परन्तु
स कारण तुम्हारी मित्रता को मैं क्यों त्याग दूँगा ?'

गोरा कुछ देर चुप रहकर बोला—'तुमने ब्राह्म-समाज में दीक्षा
ले ली है क्या ?'

विनय—'नहीं, न तो मैंने दीक्षा ली है और न लूँगा ही, परन्तु
मैं इस बात पर कोई जोर नहीं देना चाहता।'

'इसका तात्पर्य ?' गोरा ने पूछा।

'यही कि इस सम्बन्ध में कुछ विस्तारपूर्वक कहने के लिए अभी
मेरा मन तैयार नहीं है।'

'मैं तुमसे पूछता हूँ कि मन का भाव पहिले कैसा था और अब
कैसा हो गया है ?'

गोरा की बात सुनकर विनय के मन में एक बार वाक्‌युद्ध की
इच्छा जाग उठी। बोला—'पहले जब मैं यह सुनता था कि कोई हिंदु
ब्राह्म बनने जा रहा है तो मेरा हृदय क्रोध से जल उठता था, परन्तु अब
मुझे वैसा अनुभव नहीं होता। मैं सोचता हूँ कि मत को मत तथा युक्ति
को युक्ति द्वारा ही परास्त करना चाहिये, परन्तु इस सम्बन्ध में क्रोध
करना उचित नहीं है।'

गोरा ने कहा—हिंदू ब्राह्म बन जायँ, इसमें तुम्हें क्रोध नहीं
होगा, परन्तु कोई ब्राह्म प्रायश्चित करके फिर हिंदू बनना चाहे तो तुम्हें
भारी क्रोध हो जायेगा। शायद अब तुम में पहिले की अपेक्षा यही अन्तर

था गया है ?'

विनय बोला—'ऐसा तुम मुझ पर क्रोध करके कह रहे हो। तुम इस संबंध में कुछ विचार करने को तैयार नहीं हो ?'

गोरा—'मैं तो तुम्हारे ऊपर श्रद्धा रखकर कहता हूँ कि ऐसा ही होना चाहिए था, तुम्हारी जैसी स्थिति होने पर मैं यही मानता। बहुरूपिया जिस प्रकार भेष बदल लेता है, वह कला मुझे नहीं आती है। मैं सत्य को सत्य और यथार्थ को यथार्थ मानकर ही ग्रहण करता हूँ। सत्य कोई ऐसी सुलभ वस्तु नहीं है, जिसे मूल्य चुकाये बिना आसानी से हर व्यक्ति प्राप्त कर सके।'

तर्क-युद्ध आरम्भ हो चुका था। देखते-ही-देखते प्रहार-पर-प्रहार हो उठे।

बहुत देर तक वाद-विवाद होने के उपरान्त विनय उठकर खड़ा हो गया। फिर बोला—'मेरी और तुम्हारी प्रकृति में एक मौलिक मत-भेद है। तुम सन्धि करना नहीं जानते, यह मानकर ही मैं अब तक अपनी प्रकृति को दबाता चला आ रहा था। ऐसा मैंने मित्रता की रक्षा करने के लिए ही किया। परन्तु अब मुझे अनुभव होता है कि उससे न तो कल्याण हुआ और न कभी हो ही सकता है।'

'मैं तुम्हारा तात्पर्य नहीं समझ सका'—गोरा बोला—'तुम जो कुछ कहना चाहते हो, उसे स्पष्ट कहो।'

विनय—'मैं मनुष्य को बलि चढ़ाकर, समाज रूपी राक्षस को शान्त करने और उसके शासन में रहकर अपने गले में जंजीर बांध— प्राणों को संकट में डालने का पक्षपाती नहीं हूँ।'

गोरा—'तुम्हारी इन रूपक-युक्त बातों को समझना भी कठिन हो गया है।'

विनय बोला—'तुम्हारे लिए समझना नहीं, बल्कि मान लेना कठिन है। जहां मनुष्य स्वभावतः स्वतन्त्र है, वहां वह धर्म के विषय में भी स्वतन्त्र है। समाज ने उसे निरर्थक नियमों में व्यर्थ ही बांध रखा है। तुम भी इन बातों को भली-भांति जानते हो। परन्तु मैं आज य

बात कहता हूं कि समाज के नियमों को तब तक मानूंगा, जब तक कि समाज भी मेरी उचित मांगों की रक्षा नहीं करेगा। यदि वह मुझे मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनेगा, तो मैं चन्दन और फूल से उसकी पूजा नहीं करूंगा।'

गोरा—'इसका अर्थ यह है कि तुम ब्राह्म बनोगे ?'

'नहीं !'

'ललिता से विवाह तो करोगे ?'

'हां !'

'हिन्दू रीति से विवाह ?'

'हां !'

'परेशबाबू इसमें संमति देंगे ?

'यह उनकी चिट्ठी पढ़ लो ।'

गोरा ने परेशबाबू की चिट्ठी को दो बार पढ़ा। उसके अन्त में लिखा था—'मैं तुमसे अच्छे-बुरे या सुविधा-असुविधा की कोई बात नहीं करूंगा। मेरे मत और विश्वास की बाबत तुम जानते ही हो ललिता जिन संस्कारों में पली है, वह भी तुम्हें विदित है। इतने पर भी तुम लोगों ने जो रास्ता चुना है, उस सम्बन्ध में अब मुझे और कुछ नहीं कहना है। मैंने भली-भांति विचार करके यह देख लिया है कि तुम दोनों के मिलन में धर्म कोई बाधा नहीं डाल सकता। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति पूर्ण श्रद्धा है। ऐसी स्थिति में यदि कोई सामाजिक बाधा पड़ेगी, तो तुम उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं हो। मेरा कहना केवल इतना ही है कि जिस समाज को तुम लांघ जाना चाहते हो, तुम्हें उससे भी बड़ा बनने का प्रयत्न करना होगा। मैं यही चाहता हूं कि तुम्हारा मिलन केवल प्रलय का ही सूचक न बने। उसमें सृष्टि एवं स्थिति का पूर्ण समावेश होना चाहिये। समाज तुम्हें अपने बराबरी के अधिकार से वंचित कर देगा, परन्तु तुम्हें साधारण श्रेणी से बहुत ऊंचा चढ जाना चाहिये, अन्यथा तुम बहुत निम्न कोटि पर जा पहुंचोगे। मुझे तुम्हारे भविष्य के विषय में बहुत-सी आशङ्कायें हैं, परन्तु केवल उन

आशंकाओं के कारण ही तुम लोगों के मिलन में बाधा डालने का कोई कारण मुझे नहीं मिला है। जो शक्ति तुम्हें सामाजिक नियमों से परे स्वच्छन्दता के पथ पर आगे बढ़ाये ले जा रही है, उसी शक्ति को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके मैं तुम दोनों को उसी के हाथों सौंप रहा हूँ। वह तुम्हारे दुर्गम पथ को सुगम बनाने तथा लक्ष्य को प्राप्त कराने में सहायक हो, यही मेरी मंगल कामना है।'

पत्र पढ़ कर गोरा कुछ देर चुप बना रहा। तब विनय ने ही उस मौन को भंग करते हुए फिर कहा—'गोरा! परेशबाबू ने जैसी सम्मति दी है, वैसी ही सम्मति तुम्हें भी देनी पड़ेगी।'

गोरा बोला—'परेशबाबू सम्मति दे सकते हैं, क्योंकि उन लोगों की धारा तट को भूमि को तोड़ने वाली है, इसके विपरीत हमारी धारा तट-भूमि की रक्षा करने वाली है, इसीलिए मैं अपनी संमति नहीं दे सकता। हम अपनी तट-भूमि को चट्टानों से सुरक्षित रखना चाहते हैं, इसके लिए तुम लोग चाहे हमारी निन्दा ही क्यों न करो।'

विनय—'इसका अर्थ यह है कि तुम्हें हमारा यह विवाह स्वीकार नहीं है?'

'नहीं!'

'और···?'

'और तुम्हें त्याग भी देना पड़ेगा।'

'यदि मैं मुसलमान मित्र होता, तब?'

'तब दूसरी बात होती। यदि वृक्ष की डाली टूटकर अलग हो जाती है, तो वृक्ष उस डाली को फिर नहीं अपना सकता। इसके विपरीत कोई बाहरी लता बढ़ती चली आती है, तो वह उसे अवश्य आश्रय देता है, इतना ही नहीं, आंधी में टूट जाने पर उसे फिर से उठा लेने में भी कोई बाधा नहीं होती। अपना जब पराया हो जाय, तब उसे पूरा त्याग देने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं।'

विनय—'इसलिये त्याग का कारण इतना हल्का है। परन्तु ऐसा विधान उचित तो नहीं कहा जा सकता। जिस समाज में पुरुष को

स्वच्छन्दता से चलने-फिरने तथा काम-काज करने में भी विघ्न है, क उसकी बुराइयों पर भी तुमने कभी विचार किया है ?'

गोरा—'इन बातों के संबंध में मुझे सोचने की आवश्यकता नह है। इन सब बातों पर समाज सहस्रों वर्षों से विचार करता च आ रहा है जिस प्रकार पृथ्वी और सूर्य की गति, आकृति आदि के संबं में न सोचने पर मुझे कोई बाधा नहीं पड़ी, उसी प्रकार समाज के संबं में भी मेरा मत जान लेना चाहिये।'

विनय हँसकर बोला—'गोरा ? तुम्हारा कहना ठीक है। किस दिन मैं भी ऐसी बातें किया करता था। उस समय कौन जानता था ि कभी मुझे भी ऐसी बातें सुननी पड़ेगी ? खैर, इस तर्क से कोई ला नहीं है। आज एक बात अवश्य स्पष्ट हो गई कि पुरुष का जीवन ए महानदी की भांति है, जो अपने बहाव द्वारा नवीन दिशाओं में अपन मार्ग बना लेती है। जब यह बात प्रत्यक्ष हो गई, तब तुम्हारी सुन्दर बातें सुनकर, मेरा किसी भुलावे में पड़ना भी सर्वथा असंभव ह गया है।'

गोरा ने कहा—'जब पतंगा लौ में कूदने को होता है, तब व भी तुम्हारी ही भांति तर्क करता है अतः अब मैं तुम्हें समझाने की को चेष्टा नहीं करूँगा।'

विनय यह सुनकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। फिर बोला—'अच्छ यही सही। मैं अब जा रहा हूँ। परन्तु मा से एक बार और मिल आऊँ'

विनय के चले जाने पर, महिम ने गोरा के कमरे में प्रवेश किया वे आते ही बोले—'तभी शशिमुखी के साथ यदि विवाह कर दिया होत तो यह दिन देखने को न मिलता। विनय जैसा लड़का भी अब तुम्ह दल छोड़ गया, इससे अधिक अफसोस की बात और क्या हो सकती है !

गोरा चुप रहा। महिम ने फिर कहा—'विनय गया, तो जा दो। परन्तु शशि का विवाह करने में देर नहीं करनी चाहिये। उस विवाह की चर्चा से जो गड़बड़ी फैल गई है, उसे रोकने के लिए शीघ्र शीघ्र उसे पराये घर भेज देना ही उचित है। अब तुम्हें डरने की को

बात भी नहीं है। तुम्हें तकलीफ न उठानी पड़ेगी। दूसरा लड़का, मैंने खुद ही ढूँढ लिया है।'

'वह कौन है ?' गोरा ने पूछा।

'तुम्हारा ही अविनाश !'

'राजी हो गया है वह ?'

'राजी क्यों न होगा ?'—महिम ने उत्तर दिया—'वह तुम्हारे विनय की भाँति थोड़े ही है। मैंने यह देखा कि तुम्हारे दल में एक वही लड़का तुम्हारा सच्चा भक्त है। जब उसे यह पता लगा कि तुम्हारे परिवार में उसका संबंध होगा, तो वह खुशी से नाचने लगा। बोला—'मेरा अहोभाग्य, जो यह संबंध हो रहा है।' दहेज की बात पर उसने कान पकड़ कर कहा—'ऐसी बातें आप बिल्कुल मत कहिये।' मैं उसके पिता के पास भी गया। इतने सज्जन हैं वे, कि क्या कहा जाये ! बस, अब कम्पनी के कागज तुड़वा डालो। तुम भी दो-चार बात अपने मुँह से उसे कह देना।'

गोरा—'सब बातें पक्की हो चुकी हैं ?'

महिम—'हाँ।'

गोरा—'दिन-घड़ी ?'

महिम—'माघ की पूर्णिमा को अब अधिक दिन नहीं हैं। लड़के के पिता ने कहा है कि गहने खूब भारी बनने चाहिये। इस संबंध में सुनार से भी बातचीत करनी होगी।'

गोरा—'परन्तु इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है ?'

महिम—'बाबूजी की तबियत आजकल खराब रहती है। तुम तो उधर ध्यान भी नहीं देते। डाक्टर लोग जितना मना करते हैं, वे उतने ही कड़े नियम अपनाते चले जा रहे हैं। उनके साथ जो साधु बाबा रहता है, वह उन्हें दिन में तीन बार स्नान कराता है तथा हठयोग की क्रियायें अलग साधन कराता है। उनके जीवित रहते हुए ही शशि की शादी हो जाये, यही अच्छा है। पेंशन का रुपया जो उन्होंने जमा कर रखा है, वह स्वामी ओंकारानन्द के हाथ में पड़ने से पहिले ही यह काम

हो जाना चाहिए। बाबूजी से भी मैंने कह दिया है। मेरा विचार है कि एक दिन उस साधू को खूब गांजा पिलाकर अपने वश में कर लूंगा, तब काम बन सकेगा। मुझे यही चिन्ता है कि बाबूजी दूसरों से तो रुपये कड़ाई से मांगते हैं, परंतु स्वयं रुपया देते समय प्राणायाम करने लगते हैं। अब मैं उस ग्यारह वर्ष की लड़की को गले बांधकर आखिर कहां पानी में डूब मरूं।'

६२

हरिमोहिनी ने पूछा—'राधारानी, कल रात को तुमने कुछ खाया क्यों नहीं?'

सुचरिता ने चकित होकर कहा—'खाया तो था।'

हरिमोहिनी ने उसका ढका हुआ भोजन दिखाकर कहा—'कहां खाया है? सब तो यह पड़ा हुआ है।'

तब सुचरिता को स्मरण हो आया कि कल खाने की बात उसे याद ही नहीं रही थी।

हरिमोहिनी ने रुखे स्वर में कहा—'ये बातें ठीक नहीं हैं। मैं तुम्हारे परेशबाबू को अच्छी तरह जानती हूं, वे कभी भी तुम्हारी इन बातों को पसंद नहीं करेंगे। यदि वे तुम्हारी आजकल की चाल-ढाल जान जायेंगे तो क्या कहेंगे?'

हरिमोहिनी के कथन का उद्देश्य सुचरिता समझ गई। पहले तो उसके मन में कुछ संकोच हो आया। गोरा के साथ मेरे व्यवहारिक संबंध की नितान्त साधारण स्त्री-पुरुष के संबंध के साथ तुलना करके एक ऐसे अपवाद का कटाक्ष मेरे ऊपर हो सकता है, इस बात को उसने कभी न सोचा था। इसीलिए हरिमोहिनी की वक्रोक्ति से वह क्षुब्ध हो गई। किंतु वह तुरंत सँभल कर बैठ गई और हरिमोहिनी के मुंह की ओर देखने लगी।

सुचरिता ने उसी समय निश्चय कर लिया कि गोरा के सम्बन्ध की बातों में किसी के सामने संकोच न करूंगी। वह बोली—'मौसी,

तुम तो जानती ही हो कि कल गोराबाबू यहां आये थे। उनके मुख से निकले हुए गम्भीर विषय ने मेरे मन को मुग्ध कर दिया। इसीलिए मैं खाने की बात भूल गई थी।'

हरिमोहिनी जैसी बातें सुनना पसन्द करती हैं, गोरा की बातें वैसी नहीं हैं। वह भक्ति की बातें सुनना चाहती हैं। किन्तु गोरा के मुख से भक्ति की बातें, वैसी सरल और रोचक नहीं सुनाई पड़तीं। जिस बात को लेकर गोरा को उत्तेजना रहती है उसके प्रति हरिमोहिनी बिल्कुल उदासीन रहती हैं। इसीलिए गोरा के साथ बातचीत करके उनके हृदय को जरा भी रस नहीं मिला। इसके बाद हरिमोहिनी ने ज्योंही अनुभव किया कि गोरा ने ही सुचरिता के मन पर अधिकार कर लिया है, त्योंही गोरा की बातें उनको और भी अरुचिकर लगीं। उनके मन में केवल यही विचार उठने लगा कि गोरा का आदि से लेकर अन्त तक सब कुछ बनावटी है। उसके मन का तथ्य है, किसी प्रकार सुचरिता के चित्त को आकर्षित करना। वे यहां तक भी कल्पना करने लगीं कि गोरा की लोलुप दृष्टि उनकी अपनी धन-दौलत पर भी है। हरिमोहिनी गोरा को अपना शत्रु समझकर, उसको बाधा देने के लिए मन-ही-मन कमर कस कर तैयार हो गयीं।

आज सवेरे गोरा जब सुचरिता के घर पहुंचा, तो हरिमोहिनी ठाकुरजी की पूजा कर रही थीं। सुचरिता अपने कमरे में मेज पर रखी हुई वस्तुओं को सँवारने में लगी थी। ठीक इसी समय सतीश ने आकर खबर दी कि गौरबाबू आये हैं। सुचरिता ने विशेष आश्चर्य प्रकट नहीं किया। मानो वह गौरबाबू के आगमन की बात पहले से ही जानती थी।

गोरा कुर्सी पर बैठते हुए बोला—'विनय ने आखिर हम लोगों को छोड़ ही दिया।'

सुचरिता ने कहा—'छोड़ेंगे कैसे? वे तो अभी ब्राह्म-समाज में सम्मिलित नहीं हुए।'

गोरा ने कहा—'ब्राह्म-समाज में सम्मिलित हो जाता, तब तो कोई बात ही नहीं थी। तब वह किसी प्रकार हमारे पास ही रहता।

वह हिन्दू-समाज का गला खूब कसकर पकड़े हुए है। यही बात अधिक कष्टप्रद है। इससे तो वह हमारे समाज को छोड़कर बड़ा उपकार करता।'

सुचरिता ने मन में एक वेदना का अनुभव करते हुए कहा—'आप समाज को इस प्रकार अलग क्यों देखते हैं? समाज पर आपका जो इतना विश्वास है, वह क्या आपका स्वाभाविक विश्वास है? या आप अपने ऊपर बल प्रयोग करते हैं?'

गोरा ने कहा—'ऐसी अवस्था में यह बल-प्रयोग करना ही स्वाभाविक है। जहां गिरने का डर होता है वहां पैर पर जोर देकर ही चलना पड़ता है। यह चारों ओर विरोध चल रहा है, इसलिए हमारी बातों और व्यवहारों में कुछ बाहुल्य पाया जाता है, स्वाभाविक नहीं है।

सुचरिता ने कहा—'आप चारों ओर जो विरोध देख रहे हैं, उसे आप अन्याय और अनावश्यक क्यों समझ रहे हैं? यदि समय की गति में समाज बाधा दे, तो समाज को आघात सहना ही पड़ेगा।'

गोरा ने कहा—'समय की गति जल की लहरों के समान होती है। वह आस-पास की भूमि को काटकर गिरा देती है, इससे मैं यह नहीं मान सकता कि भूमि काटकर गिरना ही उसका धर्म है। तुम यह मत समझो कि हम समाज की भली-बुरी बातों पर कुछ विचार नहीं करते। यह विचार करना इतना सहज है कि आजकल के बालक भी विचारक हो उठे हैं।'

सुचरिता ने कहा—'श्रद्धा से क्या हम लोग केवल सत्य को ही पाते हैं?' मैं आपसे एक बात पूछती हूँ—हम लोग क्या मूर्ति-पूजा की श्रद्धा कर सकते हैं? क्या आप इन सबको सत्य कह कर ही विश्वास करते हैं?'

गोरा ने कुछ देर चुप रह कर कहा—'मैं तुम्हें सच्ची बात बताने की चेष्टा करूँगा। मैंने आरम्भ से ही इन सबको सत्य कह कर मान लिया है। धर्म के संबन्ध में मेरी अपनी कोई विशेष साधना नहीं है, किन्तु मूर्ति-पूजा और साकार पूजा एक ही चीज है, यह बात

मैं अत्यन्त अभ्यस्त वचन की तरह आँखें बन्द करके सुना न सकूँगा। हमारे देश की मूर्ति-पूजा में ज्ञान और भक्ति के साथ कल्पना का सम्मेलन करने की जो चेष्टा की गई है, उसी के द्वारा क्या हमारे देश का धर्म पुरुषों की दृष्टि में दूसरे देशों की अपेक्षा सम्पूर्णता में श्रेष्ठ नहीं हुआ है ?'

सुचरिता ने कहा—'ग्रीस और रोम में भी तो मूर्ति-पूजा थी ?'

गोरा ने कहा—'उन देशों की मूर्तियों में मनुष्य की कल्पना ने सौन्दर्य-बोध का जितना सहारा लिया था, उतना ज्ञान भक्ति का नहीं लिया था। हमारे देश में कल्पना ज्ञान और भक्ति के साथ गम्भीर रूप से गुँथी हुई है। भक्ति का ऐसा अत्यधिक प्रकाश ग्रीस और रोम के इतिहास में कब दिखाई पड़ा है ?'

सुचरिता ने कहा—'काल परिवर्तन के साथ-साथ क्या आप धर्म और समाज के परिवर्तन को स्वीकार नहीं करना चाहते ?'

गोरा ने कहा—'क्यों नहीं चाहता ? किन्तु परिवर्तन के पागलपन होने से काम न चलेगा। पुरुष का परिवर्तन पुरुष में ही होता है। भारतवर्ष का परिवर्तन भारतवर्ष में ही होना चाहिये। अचानक अँग्रेजी इतिहास का रास्ता पकड़ने से शुरू से अन्त तक सब ही चौपट हो जायगा। देश की शक्ति, देश का ऐश्वर्य देश में ही सचित है, उसी बात की जानकारी तुम लोगों को करने के लिए मैंने जीवन उत्सर्ग कर दिया है। मेरी बात तुम समझ रही हो ?'

सुचरिता बोली—'हां' मैं समझ रही हूँ। परन्तु पहले कभी इन सब बातों को नहीं सुना और सोचा भी नहीं।'

गोरा बोल उठा—'कभी नहीं ? मैं अनेक पुरुषों को जानता हूँ—वे एकदम निश्चिन्त भाव से यह समझकर बैठे हुए हैं कि वे लोग खूब समझ गये हैं। किन्तु मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, अपने मन के सामने आज तुम जिन को देख रही हो, उनमें से किसी एक ने भी उसको न देखा है। मैंने तुम्हें देखते ही अनुभव कर लिया था कि [illegible] गम्भीर दृष्टि है। इसीलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अप [illegible]

मैंने तुम्हारे सामने खोल दिया है, जरा भी संकोच नहीं किया।'

सुचरिता ने कहा—'आप जब ऐसी बातें करते हैं, मेर वहुत व्याकुल हो जाता है। आप मुझसे क्या चाहते हैं कि किस योग्य हूं, मुझे क्या करना होगा ? मैं आपकी आशा को क पूरी कर सकूंगी, यह मैं नहीं जानती। मेरे हृदय में एक भा आवेग आ रहा है। वह क्या है, मैं कुछ नहीं समझती ! सच पूछि मुझे भय केवल इतना ही है कि मेरे ऊपर आपका जो विश्वास है किसी दिन अपनी भूल समझकर कहीं आपको पछताना न पड़े।'

गोरा ने गंभीर स्वर में कहा—'वहां कहीं भी भूल नह तुममें कितनी बड़ी शक्ति है, यह मैं तुम्हें दिखा दूंगा तुम किसी बात का सोच मत करो। तुम मेरे ऊपर निर्भर रहो। योग्यता प्रकट करने का भार ऊपर है।'

सुचरिता चुप रही। गोरा ने भी फिर कुछ नहीं पूछा औ ही रहा। कमरे में बड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा।

हरिमोहिनी पूजा समाप्त करके रसोई घर में जा रहं सुचरिता के कमरे में भीतर दृष्टि डालकर हरिमोहिनी ने देखा, सु और गोरा चुपचाप बैठे हुए सोच रहे हैं, दोनों में किसी प्रव बातचीत नहीं हो रही है। तब उसका क्रोध अपनी सीमा तक गया। किसी प्रकार अपने को संभाल, द्वार पर खड़ी होकर, पुकारा—'राधारानी !'

सुचरिता उनके पास गई। हरिमोहिनी ने मीठे स्वर में व 'बेटी, आज एकादशी है, मेरा जी ठीक नहीं है। तुम रसोई घर में चूल्हा जलाओ—'मैं तब तक गोरबाबू के पास बैठती हूं।'

सुचरिता मौसी का भाव देख, उठकर रसोई-घर में चली गोरा ने हरिमोहिनी के कमरे में आते ही प्रणाम किया। कोई भी न देकर वे एक कुर्सी पर बैठ गईं, कुछ देर तक वे चुपचाप बैठी रहीं, फिर गोरा की ओर देखकर बोलीं—'तुम तो ब्राह्म नहीं हो ?

गोरा ने कहा—'नहीं।'

हरिमोहिनी ने कहा—'तुम हमारे हिन्दू-समाज को मानते हो !'

गोरा ने कहा—'जी हाँ, मानता हूँ।'

हरिमोहिनी ने कहा—'तो तुम्हारा यह व्यवहार कैसा है ?'

हरिमोहिनी की इन प्रतिकूल बातों का कुछ अर्थ न समझ, गोरा चुपचाप उनके मुँह की ओर देखने लगा।

हरिमोहिनी बोली—'राधारानी अब सयानी हो गई है। तुमसे उसका कोई नाता भी नहीं। उसके साथ तुमको इतनी बात करने की आवश्यकता ही क्या है ? तुम तो समझदार आदमी हो, देश के सभी लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। किन्तु ऐसी बातें हमारे देश में कब थीं और किस शास्त्र में लिखी हैं ?'

यह सुनकर गोरा को धक्का लगा, सुचरिता के संबंध में ऐसी बात मैं किसी के मुँह से सुन सकता हूँ, इसका स्वप्न में भी उसने विचार नहीं किया था। वह कुछ देर चुप रहकर बोला—'ये ब्राह्म-समाज में हैं। इनको बराबर इसी प्रकार सब के साथ देखता हूँ, उसी से मैंने इस बात पर कभी ध्यान नहीं दिया।'

हरिमोहिनी ने कहा—'यह बात मैं मानती हूँ कि वह ब्राह्मसमाज में है, किन्तु तुम तो इन बातों को कभी पसन्द नहीं करते। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होने से लोग तुम्हारी बात कैसे मानेंगे ? कल रात इतनी देर तक बातें करने पर भी अपनी बातें समाप्त न कर सके, आज सवेरे से न वह रसोई-घर में ही गई और न भण्डार-घर में ही। आज एकादशी को वह मेरी कुछ सहायता करती, यह भी उससे न हुआ। क्या उसको यही शिक्षा दी जा रही है ? तुम्हारे घर में भी तो लड़कियाँ हैं ? क्या उन्हें भी ऐसी ही शिक्षा देते हो ? अथवा कोई और ही उन्हें ऐसी शिक्षा दे, तो तुम पसन्द करोगे ?'

गोरा के पास इन बातों का कोई उत्तर नहीं था। उसने इतना ही कहा—'ये ऐसी ही शिक्षा पाकर इतनी बड़ी हुई हैं, इसलिये इनके सम्बन्ध में कुछ विचार नहीं किया है।'

हरिमोहिनी ने कहा—'इसे जो भी शिक्षा क्यों न मिली हो,

तक यह मेरे पास है और जब तक मैं जीवित हूं यह बात न चलेगी। मैं उसको बहुत कुछ उस रास्ते से लौटा लाई हूं। जब यह परेशबाबू के घर में थी तभी चारों ओर यह अफवाह फैल गई थी कि मेरे साथ मिलकर वह हिन्दू हो गई है। उसके पश्चात् इस घर में आने पर न मालूम तुम्हारे विनय के साथ और क्या २ बातें होने लगीं फिर सब कुछ बदल गया। वे तो आज ब्राह्म के घर में ब्याह करने जा रहे हैं। जांय! बड़े कष्ट से मैंने विनय को विदा किया है। उसके बाद हारान नाम का एक आदमी आता था। उसे देखते ही मैं सुचरिता को लेकर ऊपर के कमरे में जा बैठती थी। वह फिर सफल न हो सका। इसी प्रकार मैं इसे बहुत कुछ सुधार सकी हूं। इस मकान में आने पर इसने फिर सबका छुआ खाना शुरू कर दिया था। कल से इसने ऐसा करना छोड़ दिया है। अब मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं कि तुम लोग इसे अब मिट्टी में मत मिलाओ। संसार में अब केवल यही मेरी बची हुई है। इसका भी मेरे सिवाय कोई स्वजन नहीं है। इसे तुम लोग छोड़ दो, उनके घर में तो और भी बड़ी २ लड़कियां हैं—लावण्य है, लीला है, वे भी तो पढ़ी-लिखी बुद्धिमती हैं, उनसे बातचीत करने से तुम्हें कोई नहीं रोकेगा।'

गोरा चुपचाप ज्यों का त्यों बैठा रहा। हरिमोहिनी ने कुछ देर बाद फिर कहा—'सोच-विचार कर देखो, अब कहीं इसका ब्याह करना ही होगा। तुम्हारा क्या यही विचार है कि वह सदा इसी तरह अविवाहित रहेगी? गृहस्थ-धर्म में प्रवेश करना तो स्त्रियों के लिए आवश्यक है। अब तो वह सयानी भी हो गई है।'

साधारण भाव से गोरा के मन में इस विषय में कोई विचार न था। उसका भी यही मत है। परन्तु उसने सुचरिता के विषय में आज तक कभी अपने मत का प्रयोग करके नहीं देखा। उसके मन में कभी कल्पना नहीं उठी थी कि सुचरिता गृहिणी बनकर किसी गृहस्थ के घर में घर-गृहस्थी में लगी हुई है। वह सोचता था, सुचरिता सदा ऐसी ही रहेगी, जैसी आज है।

गोरा ने पूछा—'आपने अपनी बहिन की लड़की के ब्याह के
ारे में क्या सोचा है ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'उसके विषय में मेरे सिवाय और कौन
ोचेगा ?'

गोरा ने कहा—'क्या हिंदू-समाज में उसका ब्याह हो
ेगा ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'चेष्टा करके देखूँगी। यदि वह ठीक प्रकार
रही, तो मैं उसको खूब अच्छी तरह चला सकूँगी। मैंने अपने मन में
श्चय कर लिया है। अब तक उसके रङ्ग-ढङ्ग को देखकर, मैं कुछ भी
कर सकी थी। अब दो दिन से फिर उसका बदला हुआ स्वभाव देख
ः भरोसा हो रहा है।'

गोरा इस सबंध में और कुछ न पूछना चाह कर भी चुप न रह
का। उसने पूछा—'क्या कोई उपयुक्त वर कहीं ढूँढा है ?'

हरिमोहिनी ने कहा—'हाँ, ढूँढ तो रखा है। बहुत अच्छा है।
ह है मेरा छोटा देवर कैलाश। कुछ दिन पूर्व उसकी स्त्री का स्वर्गवास
गया है। मन-पसन्द सयानी लड़की न मिलने के कारण, अब तक
ठा हुआ है, नहीं तो ऐसा योग्य लड़का क्या बच सकता है ? राधारानी
साथ उसकी ठीक जोड़ी मिलेगी।'

गोरा के हृदय में जितने ही काँटे चुभने लगे, वह उतने ही प्रश्न
ारा के संबंध में करने लगा।

हरिमोहिनी के देवरों में कैलाश ही अपने विशेष प्रयत्नों से थोड़ा-
हुत लिख-पढ़ सका था। कहाँ तक पढ़ा था, यह हरिमोहिनी न बतला
की। परिवार में वही विद्वान कहा जाता है। गाँव के पोस्ट मास्टर के
रुद्ध सदर डाकघर दरख्वास्त भेजते समय कैलाश ने अंग्रेजी में ऐसी
तें लिखी थी कि डाकघर के बड़े बाबू स्वयं आकर जाँच कर गये थे।
ससे कैलाश की योग्यता देखकर गाँव के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये
, इतना शिक्षित होने पर भी कैलाश की आचार और धर्म में निष्ठा
म नहीं हुई थी।

गोरा कैलाश का सारा इतिहास सुन लेने पर, उठ खड़ा हुआ। वह हरिमोहिनी को प्रणाम करके, चुपचाप कमरे से बाहर हो गया।

गोरा जिस समय सीढ़ियों से उतर रहा था, उस समय सुचरिता रसोई-घर में काम-काज में व्यस्त थी। वह गोरा की पदचाप सुनकर द्वार के पास आ खड़ी हुई। गोरा किसी ओर बिना देखे हुए, बाहर चला गया। सुचरिता एक लम्बी सांस खींचकर पुनः रसोई के काम में लग गई।

गली के मोड़ पर ही गोरा की हारानबाबू से भेंट हो गई। हारानबाबू ने मुस्कराते हुए कहा—'आज इतने सवेरे आ गये!'

गोरा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। हारानबाबू ने पुनः जरा हँस कर पूछा—'आप वहां गये थे! क्या सुचरिता घर में है?'

गोरा ने कहा—'जी हां!' यह कह कर वह तेजी से आगे बढ़ गया।

हारानबाबू ने सुचरिता के मकान में घुसकर, रसोई-घर के खुले द्वार की ओर झांक कर देखा। सुचरिता के भागने का रास्ता बन्द हो गया। मौसी भी पास नहीं थीं।

हारानबाबू ने कहा—'अभी गौरमोहनबाबू से भेंट हुई थी, शायद वे यहीं थे अब तक!'

सुचरिता कोई जवाब न देकर, रसोई के बर्तन लेकर काम में व्यस्त हो गई। किन्तु हारानबाबू इससे रुके नहीं। वे कमरे के बाहर आंगन में खड़े हो कर बातचीत करने लगे। हरिमोहिनी ने सीढ़ी के पास आकर तीन-चार खांसा, इससे भी कुछ फल नहीं निकला। हरिमोहिनी हारानबाबू के सामने ही चली आतीं, परन्तु वे जानती थीं कि एक बार यदि मैं इसके सामने आजाऊँगी, इस घर में इस उ[...] शील युवक के उत्साह से मैं और सुचरिता दोनों कहीं आत्मरक्षा न कर सकेंगे। इसीलिए वे हारानबाबू की परछाईं देखते ही इतना लंबा [...] खींच लेती हैं कि उनके दुलहिन की अवस्था में रहने पर भी, यह [...] ही माना जाता।

हारानबाबू ने कहा—'सुचरिता, शायद तुमने सुना ही हो

विनयबाबू के साथ ललिता का हिन्दू-मत से विवाह होगा।'

सुचरिता ने कोई उत्तर न पाकर हारानबाबू ने नम्र और गंभीर स्वर से कहा—'इसकी उत्तरदायी तुम्हीं समझी जाओगी।'

सुचरिता पर इसका कोई प्रभाव न देखकर, हारानबाबू ने अपना स्वर गम्भीर बनाकर पुनः उनसे कहा—'सुचरिता, मैं फिर कहता हूँ, तुम्हीं इसके लिये उत्तरदायी हो, तुम अपने हृदय पर हाथ रख कर, क्या कह सकती हो कि तुमको इसके लिए ब्राह्मसमाज के सामने अपराधी न होना पड़ेगा?'

सुचरिता ने चूल्हे पर तेल की कड़ाई चढ़ा दी, तेल चड़-चड़ करने लगा।

हारानबाबू कहने लगे—'तुम्हीं ने विनय और गौरमोहनबाबू घर में बुला-बुलाकर उन्हें इतना महत्व दिया है कि आज तुम्हारे ब्राह्म-समाज के सभी माननीय मित्रों की अपेक्षा, ये दोनों तुम लोगों के लिए बड़े हो उठे हैं। इसका फल क्या हुआ है, देख रही होगी। क्या मैंने तुम्हें शुरू से ही सावधान नहीं किया था? आज ललिता को कौन रोकेगा? तुम सोचती हो कि ललिता के ऊपर से ही विपत्ति का तूफान चला जायेगा! लेकिन ऐसा नहीं है। आज मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। अब तुम्हारी बारी है। आज ललिता की दुर्घटना से तुम मन-ही-मन अवश्य पछता रही हो। किन्तु वह दिन अब दूर नहीं, जब तुम अपने अधःपतन पर जरा भी नहीं पछताओगी। किन्तु, सुचरिता, अब भी संभलने का समय है। एक बार सोचकर देखो, एक दिन कितनी बड़ी आशा से हम दोनों मिले थे। हमारे कितने ही शुभ संकल्प थे, हमने कितनी ही काम की बातें सोच रखी थीं। क्या वे सब नष्ट हो गईं? कभी नहीं, यह सब तुम्हारा विचार है। हमारी आशाओं के क्षेत्र भी उसी तरह तैयार पड़े हुए हैं। एक बार मुँह उठाकर ... बार लौट आओ।'

सुचरिता उस समय तेल में तरकारी भून रही थी ... पर से कड़ाही को नीचे उतार कर अपना मुँह फेर लिया था।

से कहा—'मैं हिन्दू हूं।'

हारानबाबू ने एकदम हतबुद्धि होकर कहा—'तुम हिन्दू हो !'

सुचरिता ने कहा—'जी हां, मैं हिन्दू हूं !'

यह कहकर कढ़ाही को फिर चूल्हे पर चढ़ाकर बार-बार तरकारी को उलटने-पलटने लगी।

हारानबाबू ने इस धक्के से संभल कर तीखे स्वर में कहा—'शायद इसलिये गोरमोहनबाबू सुबह-शाम आकर तुमको दीक्षा देते हैं ?'

सुचरिता ने बिना मुँह घुमाये ही कहा—'हां मैंने उनसे ही दीक्षा ली है, वे मेरे गुरु हैं।'

हारानबाबू अब तक अपने को सुचरिता का गुरु समझते थे। किन्तु आज उनका अधिकार गोरा ने छीन लिया है, सुचरिता के मुँह की यह बात उनको बरछी की तरह छिदने लगी।

उन्होंने कहा—'तुम्हारे गुरु चाहे जितने बड़े आदमी हों, क्या तुम समझती हो कि हिन्दू-समाज तुमको ग्रहण करेगा ?'

सुचरिता ने कहा—'यह मैं नहीं जानती हूं, मैं सिर्फ यह जानती हूं कि मैं हिन्दू हूं।'

हारानबाबू ने कहा—'तुम जानती हो, अभी तक तुम अविवाहित हो, केवल इसी बात से हिन्दू-समाज से तुम्हारी जाति जा चुकी है।'

सुचरिता ने कहा—'आप इसके लिये व्यर्थ में कोई चिन्ता न करें। मैं आप से कह चुकी हूं, मैं हिन्दू हूं।'

हारानबाबू ने कहा—'जो शिक्षा तुमने परेशबाबू से पाई थी, वह भी तुमने अपने नये गुरु के पैरों-तले विसर्जन कर दी ?'

सुचरिता ने कहा—'मैं किसी के साथ इस बात की आलोचना करना नहीं चाहती। मेरे धर्म को मेरे अन्तर्यामी जानते हैं। आप जान लीजिए मैं हिदू हूं।'

'हारानबाबू आपे से बाहर होकर बोल उठे—'मैं तुमसे कहे देता

हूँ। तुम चाहे जितनी बड़ी हिन्दू क्यों न बनो, उनसे तुम्हें कोई लाभ होगा। गोरा को तुम विनय न समझना। तुम अपने को हिंदू-हिंदू हकर गला फाड़कर मर क्यों न जाओ, तो भी तुम्हें गोराबाबू ग्रहण न रेंगे। ऐसी आशा तुम स्वप्न में भी मत करना। शिष्य को लेकर दम दिखाना सहज है, परन्तु इसीलिए वे तुम्हें गृहिणी बनावें, इस त की कभी कल्पना भी न करना।'

सुचरिता खाना पकाना भूलकर, विद्युत गति से खड़ी होकर ली—'आप यह सब क्या कह रहे हैं?'

हारानबाबू ने कहा—'यही कह रहा हूँ कि गौरमोहनबाबू तुम कभी विवाह न करेंगे।'

सुचरिता की आँखें लाल हो गईं। वह बोली—'विवाह! मैंने पको बताया नहीं कि वे मेरे गुरु हैं।'

हारानबाबू ने कहा—'सो तो तुम बता चुकी हो न्तु जो नहीं कहा है, वह तो हम अपने बुद्धि-बल से जान कते हैं।'

सुचरिता ने कहा—'आप यहाँ से चले जाइये। मेरा अपमान त कीजिए। मैं आज आप से कहे देती हूँ, आज से मैं आपके सामने हर नहीं निकलूँगी।'

हारानबाबू ने कहा—'अब तुम बाहर किस तरह निकालोगी? ब तुम हिंदू स्त्री हो! परेशबाबू के पाप का घड़ा अब भर गया। इस द्धावस्था में वे अपने कर्मों का फल भोगें। मैं जानता हूँ।'

हारानबाबू यह कहकर चले गये गये। सुचरिता जोर से रसोई दरवाजा बन्द करके बैठ गई और मुँह में आँचल का कपड़ा ठूँस कर पनी रुलाई को रोकने का प्रयत्न करने लगी।

हरिमोहिनी ने दोनों की बातें सुन ली थीं। आज उन्होंने चरिता के मुँह से बातें सुनीं, वे आशा के विपरीत थीं। उनका हृदय ं से फूल उठा। उन्होंने कहा—'नहीं होगा। मेरी गोपीवल्लभ की जा क्या निरर्थक हो जायेगी?'

हरिमोहिनी ने उसी समय पूजा की कोठरी में जाकर ठाकुरजी को साष्टांग प्रणाम किया। आज से उनका भोग और बढ़ाने की प्रतीज्ञा की। अब तक उसकी पूजा शोक को सांत्वना के रूप में थी, आज वह स्वार्थ का साधन रूप धारण कर, उग्र, उत्तम और क्षुधातुर हो गई।

६३

गोरा ने सुचरिता के सम्मुख जिस प्रकार खुलकर बातचीत की थी, वैसे और किसी से नहीं की थी। इतने दिनों तक वह अपने श्रोताओं के सामने, केवल मत को उपदेशों को, वाक्यों को ही प्रकट करता आया है, आज उसने सुचरिता के सामने अपने बीच से अपने ही को निकाल कर बाहर किया। इस आनन्द से केवल शक्ति से ही नहीं, एक रस से उसका समस्त मत और संकल्प परिपूर्ण हो उठा। उसकी तपस्या पर मानो देवताओं ने अमृत-वर्षा कर दी।

इसी आनन्द में गोरा लगातार बिना कुछ सोचे हुए, दिन प्रति दिन ही सुचरिता के पास आया करता था, किन्तु हरिमोहिनी की बात सुन कर आज एकाएक उसे ख्याल आया कि ऐसी मुग्धता देखकर ही उसने एक दिन विनय का तिरस्कार किया था। आज वह अज्ञात भाव से अपने को उसी अवस्था के बीच खड़े देखकर चौंक उठा। गोरा बराबर ही कहता आया है कि दुनियां की अनेक जातियां बिल्कुल ही ध्वस्त हो चुकी हैं। केवल भारत की संयम के द्वारा दृढ़ता से नियमों का पालन करके प्रतिकूल संघातों में भी अपने को बचाता आया है। उन्हीं नियमों में गोरा जरा भी शिथिलता स्वीकार करना नहीं चाहता। गोरा कहता है, जब तक हम लोग परजाति के आधीन हैं, तब तक अपने नियमों दृढ़ता के साथ मानना पड़ेगा। अब भले-बुरे का विचार करने का नहीं है। गोरा बराबर कहता आया है और आज भी वह यही है। उसी गोरा के आचरण को निन्दा जब हरिमोहिनी ने की, तब लगा जैसे किसी ने अंकुश बेध दिया हो।

गोरा जब घर पहुँचा तो दरवाजे के सामने महिम बैठे

नंगे शरीर से तम्बाकू पी रहे थे। आज उनके आफिस की छुट्टी है। गोरा को अन्दर जाते देखकर वे भी उसके पीछे गये और उसे बुलाकर बोले—'गोरा, एक बात सुनो।'

महिम गोरा को अपने कमरे में ले जाकर बोले—'तुम्हें क्रोध ही करना चाहिये। क्या तुम्हें भी विनय की छूत लग गई?'

गोरा ने कहा—'डरने की कोई बात नहीं है।'

महिम ने कहा—'इस रङ्ग-ढङ्ग को देखकर तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तुम उसे एक खाने की चीज समझते हो, जो मजे में निगल जाओगे। किंतु बन्सी अन्दर मौजूद है। तुम अपने मित्र की दशा सब समझ जाओगे। अरे! जाते कहां हो? मुख्य बात तो अभी तक हुई ही नहीं। उधर विनय का विवाह ब्राह्म-लड़की के साथ एकदम पक्का हो गया है, यह समाचार सुना है। मैं तुमको पहिले से ही बता देता हूं कि अब उसके साथ हम लोगों का कोई व्यवहार न चलेगा।'

गोरा ने कहा—'वह तो नहीं चलेगा।'

महिम ने कहा—'यदि मां गड़बड़ी करेंगी तो सुविधा न होगी। हम लोग गृहस्थ हैं, यदि घर में ब्राह्म-समाज की बैठक करने लगोगे तो उस दशा में मुझे यहाँ से अपना डेरा उठाना पड़ेगा।'

गोरा ने कहा—'नहीं, यह कभी नहीं होगा।'

महिम ने कहा—'शशि के विवाह का प्रस्ताव जोर पकड़ता जा रहा है। हमारे समधी लड़की को अपने घर जिस परिणाम में ले जायेंगे, उससे कम मोल लिए बिना वे न छोड़े गे। इस विवाह में कुछ खर्च तो होगा जरूर, परन्तु उससे मुझे बड़ी शिक्षा मिलेगी। यह लड़के के विवाह के समय काम में आयेगी। इस लोभ के कारण मेरा भी जी चाहता है कि एक बार फिर इस युग में जन्म लेकर, बाबूजी को बीच में बिठाकर विधिपूर्वक अपना विवाह ठीक कर लूं। मेरे लड़के की अवस्था अ[illegible] चौदह महीने की है। पहिले कन्या पैदा करके मेरी पत्नी ने अपनी भू[illegible] सुधार करने में बहुत समय लगाया है। जो हो, उसके विवा[illegible] हिंदू लोग मिलकर हिंदू समाज को ताजा रखो। उसके बाद

के हिंदू लोग हो जायें या मुसलमान, मैं कुछ भी न कहूँगा !'

गोरा उठ खड़ा हुआ, तभी महिम ने कहा—'इसीलिए मैं कह रहा था कि शशि के विवाह के समय विनय को निमन्त्रित नहीं किया जा सकता। यह नहीं हो सकता कि उस समय इस बात को लेकर, बखेड़ा खड़ा कर दो। मा को तुम अभी से समझा देना।'

गोरा ने माँ के कमरे में पहुँच कर देखा—आनन्दमयी फर्श पर बैठी आँखों पर चश्मा चढ़ाये, एक कापी लिए कुछ लिख रही हैं। गोरा को देखकर उन्होंने लिखना बन्द कर दिया और चश्मा उतार कर बोलीं—'बैठो।'

गोरा के बैठ जाने पर आनन्दमयी ने कहा—'विनय के ब्याह की खबर तो तुम सुन चुके हो। मुझे तुम्हारे साथ एक सलाह करनी है।'

गोरा चुप रहा। आनन्दमयी ने कहा—'विनय के चाचा नाराज हो गए हैं, वे लोग कोई न आयेंगे। इधर परेशबाबू के घर में भी इस विवाह में सन्देह है। विनय को ही दोनों ओर का सारा प्रबन्ध करना होगा। इसीलिए मैं कह रही थी कि हमारे उत्तरीखण्ड के घर में ऊपर के भाग का किरायेदार चला गया है। उसी भाग में विनय के विवाह का प्रबन्ध किया जाये, तो बड़ी सुविधा रहेगी।'

गोरा ने कहा—'क्या सुविधा होगी ?'

आनन्दमयी ने कहा—'मेरे बिना उसके विवाह में कौन देखभाल करेगा ? उस घर में अगर विवाह ठीक हो जाये, तो मैं यहीं से सब प्रबन्ध कर सकती हूँ।'

गोरा ने कहा—'मा, यह नहीं होगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'क्यों नहीं होगा ? मैंने उनको (पति को) राजी कर लिया है।'

गोरा ने कहा—'नहीं मा, यह विवाह यहाँ नहीं हो सकेगा—मैं कहता हूँ, मेरी बात सुनो।

आनन्दमयी ने कहा—'क्यों ? विनय तो उन लोगों के मत से विवाह नहीं कर रहा है।'

गोरा ने कहा—'ये सब तर्क की बातें हैं। समाज के साथ वकालत नहीं चलेगी। विनय की जो खुशी हो, सो करे, हम इस विवाह को नहीं मान सकते। इतने बड़े कलकत्ता शहर में घरों की तो कोई कमी नहीं है। उसका अपना डेरा ही खाली है।'

आनन्दमयी जानती थी कि घर बहुत से मिल सकते हैं। किन्तु विनय आत्मीय बन्धुओं से परित्यक्त होकर, अकेला किस तरह अपने डेरे में विवाह की रस्म पूरी कर लेगा? इसी कारण उन्होंने अपने घर के इस भाग में विनय का विवाह करने का निश्चय किया था। इस प्रकार समाज के साथ किसी प्रकार का विरोध खड़ा न करके, वे अपने ही मकान में यह शुभ कार्य सम्पन्न कराकर सन्तुष्ट हो सकती थीं।

गोरा का दृढ़ निश्चय देखकर, उन्होंने लम्बी सांस खींच कर कहा—'यदि तुम लोगों को इसमें आपत्ति है, तो कोई दूसरा मकान किराये पर लेना पड़ेगा। परन्तु इससे मेरे ऊपर अधिक भार आ पड़ेगा। खैर जो भी हो, जब यह हो ही नहीं सकता, तो इसके लिए क्या सोच करना?'

गोरा ने कहा—'मां, इस विवाह में तुम्हारा शामिल होना उचित न होगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'मैं न रहूँगी, तो विनय के विवाह में देख भला कौन करेगा?'

गोरा ने कहा—'मां, यह किसी तरह न हो सकेगा।'

आनन्दमयी ने कहा—'गोरा, विनय के साथ तुम्हारा भले ही मतभेद हो, किन्तु क्या इसी के लिए उसके साथ शत्रुता की जायेगी?'

गोरा कुछ उत्तेजित होकर उठ पड़ा और बोला—'मां! क्या बात कह रही हो? यह मुझे स्वयं अच्छा नहीं लग रहा कि मैं आज विनय के विवाह में सम्मिलित नहीं हो सकता हूं। मेरे इस कृत्य में न तो शत्रुता है और न मित्रता का ही समावेश है। यह जानते हुए भी, वह सब कर रहा हूं। अतः मेरे इस कृत्य से उसे तनिक भी आघात न पहुंचेगा।'

मा ने उत्तर दिया—'यह तो ठीक है गोरा, विनय यह जानता है कि विवाह के साथ उसका तुम्हारा संपर्क समाप्त हो रहा है। पर मेरी दशा तुमसे भिन्न है। मैं उसके विवाह-अवसर पर उपस्थित होकर, उसकी बहू को आशीर्वाद दूंगी। यदि मैं न गई, तो उसे बहुत दुःख होगा।'

आन्तरिक पीड़ा के कारण आनन्दमयी के नेत्रों में जो आंसू छलक आये थे, वे उन्होंने बड़ी सावधानी से पोंछ डाले। गोरा के हृदय में भी टीस उठी, किन्तु फिर भी उसने कहा—'समाज की तुम सदस्या हो, मा ! अतः तुम्हें समाज का भी तो हित सोचना है।'

आवेश में मा ने कहा—'गोरा, कितनी ही बार मैं तुम्हें बता चुकी हूं कि समाज से मेरा कोई संबंध नहीं है। जब समाज मुझसे घृणा करता है, तो मैं उसकी मर्यादा क्यों मानूं ?'

गोरा दुःखी हो गया। बोला—'मा ! तुम्हारी यह बात मुझे पीड़ा पहुंचाती है।'

आनन्दमयी भी दुःखी हो गईं। आंखों में आंसू भर कर, उन्होंने ममतामयी निगाह से गोरा को देखकर कहा—'भगवान साक्षी है, बेटा ! मैं तुझे पीड़ा पहुंचाना नहीं चाहती किन्तु सत्य तो कहना ही पड़ता है।'

आवेश में भरकर गोरा खड़ा हो गया। उसने कहा—'ठीक है, इस परिस्थित को रोकने के लिए मैं विनय के पास जा रहा हूं और उससे अनुरोध करूंगा कि वह तुम्हें अपने विवाह से दूर ही रखे, ताकि तुम्हारे और समाज के बीच खाई अधिक गहरी न हो।'

आनन्दमयी हंस पड़ीं और बोलीं—'तू भी अपने मन की निकाल ले। देखती हूं, तेरा कहना कितना सार्थक होता है।'

गोरा चला गया। काफी देर तक आनन्दमयी सोचती रहीं और फिर उठ कर अपने पति के कमरे में चली गईं।

एकादशी होने के कारण कृष्णदयाल ने रसोई की व्यवस्था नहीं की थी। वे घेरण्ड संहिता के नये बंगला अनुवाद की एक प्रति हाथ में

'फ़क़ीर !' कहकर कृष्णदयाल मुस्करा उठे।

आनंदमयी के चले जाने के बाद, उन्होंने पुनः पुस्तक का पाठ करना आरंभ किया। बाहर के कमरे में उनके गुरु महाराज तथा महिम इस प्रश्न पर उलझे हुए थे कि गृहस्थों की मुक्ति का क्या उपाय है? साधु महाराज का कहना था कि गृहस्थों को स्वर्ग मिल सकता है, मोक्ष नहीं। महिम का कहना था कि कन्या का विवाह करके, वे गृहस्थ-धर्म का परित्याग कर, मोक्ष की अवश्य साधना करेंगे। आवेश में महिम को शायद यह याद नहीं रहा कि कन्या का विवाह भी कर देना सहज काम नहीं।

६४

गोरा ने सोचा कि नियम-पालन में शिथिलता आ जाने के ही कारण उनकी दशा बिगड़ गई है। प्रातःकाल जब वह पूजा-पाठ से निवृत्त होकर कमरे में गया, तो उसने परेशबाबू को प्रतीक्षा में बैठा पाया। उसकी नस-नस में बिजली दौड़ गई। वह उन्हें प्रणाम करके बैठ गया।

परेशबाबू ने उससे पूछा—'विनय के विवाह का समाचार जानते हो?'

'हां !' गोरा ने उत्तर दिया।

परेश—'ब्राह्ममतानुसार तो विनय विवाह करने को तैयार नहीं।'

गोरा ने कहा—'ऐसी दशा में विवाह करना ठीक है।'

परेशबाबू ने कहकहा लगाया। गोरा की बात पर बिना ध्यान दिए उन्होंने कहा—'सुना है, समाज इस विवाह से रुष्ट है। विनय के बन्धु-बान्धव भी सम्मिलित नहीं हो रहे हैं। अपनी पुत्री की तरफ से मैं हूं और विनय की ओर सिवाय तुम्हारे कोई नहीं है। यही सोचकर मैं तुमसे सलाह करने आया हूं।'

गोरा ने अस्वीकृति सूचक सिर हिलाकर कहा—'मेरे साथ इस विषय पर चर्चा करना बेकार है। मैं इस विवाह से सहमत नहीं हूं।'

परेशबाबू की मुद्रा को देखकर गोरा को सङ्कोच हुआ, किन्तु उसने दृढ़ होकर, दुगने उत्साह से कहा—'मैं कैसे सम्मिलित हो सकता हूँ ?'

'मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि तुम उसके मित्र हो। क्या मित्र की आवश्यकता इस समय सबसे अधिक नहीं ?' परेशबाबू ने पूछा।

'ठीक है, मैं उसका मित्र हूँ। किंतु ऐसा तो मैंने कभी नहीं कहा कि वही मेरा एकमात्र सांसारिक बन्धन है।'

'गोरा ! क्या तुम्हारे दृष्टिकोण से विनय उचित नहीं कर रहा है ?'

'धर्म के दृष्टिकोणों का विचार करते हुए मैं तो यही सोचता हूँ कि जहाँ सामाजिक नियमों में धार्मिक पुट मिलता हो, वहाँ उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं।'

जितने भी नियम हैं उन सब मे धर्म का कुछ न कुछ पुट है, क्या तुम इस बात से सहमत नहीं हो ?'

परेशबाबू ने वह तीखा वार किया, जो गोरा के मर्मस्थल पर लगा। उसके हृदय मे पहले ही से उस बात को लेकर द्वन्द्व चल रहा था। वह इतना सोचता था कि यदि प्राणी सामाजिक नियमों का उल्लघन करता है, तो वह समाज को ऐसी क्षति पहुँचाता है, जिसका उसको आभास तक नहीं होता।

दत्तचित्त होकर परेशबाबू गोरा की मीमांसा सुनते रहे। जब गोरा सजाकर शान्त हो गया, तो उन्होंने कहा—'तुम्हारी बातें किसी सीमा तक ठीक हैं। प्रत्येक समाज मे कोई न कोई विशेष अभिप्राय है किंतु वह सहज ही समझा नहीं जा सकता। मनुष्य को उचित है कि वह जड़वत होकर उनका अनुसरण न करके, उन्हें जानने की चेष्टा अवश्य करे।'

गोरा ने स्पष्ट किया—'मेरा अपना विचार है कि समाज का

रूप-रेखा को पूर्ण मानकर यदि नहीं चला जाता, तो हमें सामाजिक जीवन में विवाद-स्थल के साथ ही उसे समझने में भी कठिनाई होती है।'

परेशबाबू बोले—'जहाँ तक सत्य का प्रश्न है, उसके विषय में मुझे यही कहना है कि तर्क-वितर्कों द्वारा सत्य की मीमांसा होती रही है। सनातन से ऋषि-मुनि अपने ही ढङ्गों से उसकी खोज में लगे रहे हैं। क्या यह सच नहीं कि हमारे पूर्वजों ने अनेकों बार सत्य को खोज निकाला था, किन्तु आगे की पीढ़ी सन्तुष्ट न हुई।'

इतना कहकर परेशबाबू उठकर खड़े हो गये और उनके साथ ही गोरा भी कुर्सी से उठ बैठा। उठते-उठते परेशबाबू ने कहा—'मेरा विचार था कि इस विवाह के अवसर पर सगे-सम्बन्धियों के सहयोग मिलने की आशा नहीं है। तुम मित्रता के नाते अवश्य मेरा हाथ बटाते, किंतु अब तुमसे भी सहायता की आशा नहीं रही।'

गोरा यह नहीं जानता था कि परेशबाबू पूर्णतया एकाकी हैं। यद्यपि वरदासुन्दरी ने उनका विरोध किया, अन्य लड़कियाँ भी उनके इस विचार से सहमत नहीं थीं। हरिमोहिनी को यह विवाह मान्य न देखकर उन्होंने सुचरिता को बुलाया तक नहीं। ब्राह्मसमाज के सत्ताधारियों ने उनका विरोध खुले आम प्रारम्भ कर दिया था और विनय के चाचा ने तो खुले आम विवाह के जाल में फँसाने वाला षडयन्त्रकारी सम्बोधन करके, उन्हें दो पत्र भी लिखे थे।

ज्योंही परेशबाबू गोरा के कमरे से बाहर गये, दो तीन आदमी जो गोरा और अविनाश के विचारों के समर्थक थे, उस कमरे में आ पहुँचे और परेशबाबू पर व्यंग करने को तत्पर हुए। गोरा ने उन्हें रोकते हुए कहा—'मैं नहीं चाहता कि जिनका हमने सदैव आदर किया है, आज उनका उपहास किया जाये।'

प्रायश्चित के समारोह की तैयारियों में गोरा ने बड़ी दिलचस्पी दिखाई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रायश्चित द्वारा न केवल जेल-खाने की अपवित्रता को ही दूर किया जायेगा, अपितु वह पूर्णतया अपने

है कि उस लड़की की निष्ठा हिन्दू-धर्म में है, किन्तु पालन-पोषण ब्राह्म-परिवार में हुआ है, यह बात गुप्त रखनी ही पड़ेगी। इसका जिक्र करने की कोई आवश्यकता नहीं। अगली पूर्णिमा पर चन्द्रग्रहण के अवसर पर गंगा-स्नान के लिए आते समय, यदि हो सका तो कन्या को भी देख लूंगा।'

जब से हरिमोहिनी ससुराल से निर्वासित होकर आई थीं, कलकत्ते में कठिनाई से दिन काट ही रही थीं, किन्तु आज देवर का पत्र पाकर वे लौट जाने के लिए अधीर हो गईं। कई बार उनके मन में आया कि वह सुचरिता से कहकर दिन और तिथि ठीक करालें, किन्तु उनका साहस ही नहीं हुआ।

वे सतर्कता से सुचरिता का समझाने की चेष्टा करने लगीं। पहले वह जितना समय सन्ध्या-पूजा में लगाती थीं, वह अब धीरे-धीरे कम होने लगा। उनका ध्यान सुचरिता पर केन्द्रित हो गया।

गोरा का आना-जाना एकदम बन्द होते देखकर, सुचरिता ने समझा कि इस कारण हरिमोहिनी है। अत: उसने कहा, 'चाहे वह आते-जाते नहीं, किन्तु मेरे गुरु हैं।'

सुचरिता को आभास हुआ कि गोरा की उपस्थिति में वह उसकी विचार-धाराओं पर तर्क करती थी, किन्तु अनुपस्थिति में उसकी रचनाओं को पढ़कर बिना प्रतिवाद किये ग्रहण करने लगी है। उसकी रह-रहकर यह इच्छा होती कि वह गोरा का तेजस्वी मुख देखती रहे और उसके गम्भीर वचनों को सुनती रहे। कभी-कभी वह सोचती कि जिन लोगों के बीच गोरा सदैव रहता है, वह उसके महत्व को नहीं जानते हैं।

एक दिन तीसरे पहर ललिता आई और उसके गले लग गई।

'क्या हुआ ललिता बहिन?' सुचरिता ने पूछा।

'सूची बहिन, सब तय हो गया।' उसने उत्तर दिया।

'कौन-सा दिन तय हुआ?'

'सोमवार।'

ललिता ने कहा—'सूची बहिन, जब तुम किसी और को आदर देने लगी थीं, तो मुझे बड़ी वेदना होती थी। मैं आज स्पष्ट कहूँगी कि जब गौरमोहनबाबू का हमारे घर आना-जाना था, तब से मैं समझती हूँ कि तुम मुझसे अधिक उन्हें प्यार करती हो। यह सब कुछ बिन बताये, मैं तुमसे विदा न हो सकूँगी, इसी कारण कहे दे रही हूँ। यद्यपि तुमने मुझ पर कभी अपने मनोभाव जाहिर नहीं होने दिए, किन्तु मैं इतना अवश्य जानती हूँ कि तुम उन्हें सर्वाधिकार प्यार करती हो। यदि तुम्हारा.........'

इससे पहले ललिता अपना वाक्य पूरा कर सके सुचरिता ने आगे बढ़कर उसका मुँह हाथ से बन्द कर दिया, बोली—'आगे कुछ मत कहो, ललिता! मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूँ। यह सब कुछ सुनकर मैं शर्म से गड़ जाती हूँ।'

ललिता ने पूछा—'क्या वे ......'

अधीर होकर सुचरिता ने कहा—'नहीं, पागल मत बनो। न तो यह बात सोची ही जा सकती है और न कभी कही जा सकती है।'

यह ललिता को अच्छा न लगा। उसने विरक्त भाव से कहा—'ऐसा सोचना तुम्हारी ज्यादती है। मैं तो निश्चित रूप से कह सकती हूँ......'

दुःखी होकर सुचरिता कमरे में चली गई। दौड़ कर ललिता ने उसे रोका और कहा—'अच्छा अब मैं और कुछ न कहूँगी।'

सुचरिता बोली—'भविष्य में कभी नहीं ?'

ललिता ने उत्तर दिया—'जब मेरा यह कहने का यथार्थ दिन होगा, तब तो अवश्य कहूँगी, वरना कभी नहीं कहूँगी। यह वचन देती हूँ।'

पिछले कई दिनों में सुचरिता ने यह अनुभव किया था कि हरिमोहिनी उस पर कड़ी नजर रख रही है। इस कारण सुचरिता को मानसिक क्लेश था। वह छटपटा कर रह जाती थी, किंतु कह कुछ न पाती थी। ललिता के चले जाने के पश्चात् अपने बोझिल हृदय को हलका

खाना खाने चली गई। खाना खाते समय मौसी ने कहा—'राधारानी ! मैं तुमसे अधिक उम्र की हूँ। मैंने बचपन से लेकर आज तक हिन्दू-धर्म का पालन किया है। मैं तुमको यह बताना चाहती हूँ कि गौरमोहन, जिसे तुम अपना गुरु मानती हो उसकी बातों में केवल भुलावा है। मैं उसकी बातों और उसके बनाये हुए शास्त्र की बातों से सहमत नहीं हूँ। अगर मौका आया तो मैं उन्हें अपने गुरुजी से ही मन्त्र दिलाऊँगी। यह माना कि तुम्हारा लालन-पालन ब्राह्म-परिवार में हुआ है, किन्तु इससे क्या ? यह बात तो कोई जान भी नहीं पायेगा। यह ठीक है कि तुम्हारी आयु कुछ अधिक अवश्य हो गई है, परन्तु तुम जैसी गठन की लड़कियाँ आसानी से प्राप्त नहीं होतीं। धन मनुष्य की समस्त कठिनाइयों को दूर कर देता है। मैं तुम्हें हिन्दू-समाज के एक ऐसे ब्राह्मण-परिवार में स्थान दिलाऊँगी जहाँ पहुँच कर कोई तुम पर उँगली उठाने का साहस ही न कर सकेगा। समाज के भाग्य-विधाताओं की शरण में जाकर तुम निश्चिन्त रह सकोगी। अतः जब मैं इतना सब कुछ करने को तैयार हूँ, तो तुम व्यर्थ ही क्लेश पा रही हो।'

हरिमोहिनी की इस लम्बी-चौड़ी भूमिका को सुनकर सुचरिता को भोजन से भी अरुचि हो गई। जैसे-तैसे जो कुछ बन पड़ा, वह खाती रही।

सुचरिता को अपनी बातों में कोई दिलचस्पी लेते न देख, हरि-मोहिनी ने मन ही मन यह सोच लिया कि न जाने वह अपने को कैसे हिन्दू कहती है। शुभवसर पाकर भी वह उसका लाभ उठाने की इच्छा नहीं करती, किन्तु 'हिन्दू' नाम की दुहाई देकर प्रायश्चित करने को तत्पर है। यह पहेली उनकी समझ में न आ सकी। तब हरिमोहिनी ने दूसरी युक्ति से काम लेना चाहा। उन्होंने अपनी ससुराल वालों के ऐश्वर्य का वर्णन करना आरम्भ किया। उनकी सामाजिक शक्तियों की मीमांसा कर और अनेकों उदाहरण देकर सिद्ध करना चाहा कि उन लोगों ने जिसको चाहा, समाज में प्रविष्ट करा दिया, चाहे वह कितना ही पतित क्यों न हो।

इसका भी विशेष लाभ नहीं हुआ।

परेशबाबू के घर जाने में सुचरिता को एक रुकावट थी, वह थी वरदासुन्दरी। उसने स्वयम् यह सुना था कि वरदासुन्दरी यह नहीं चाहतीं कि सुचरिता उनके घर आये। वरदासुन्दरी का कठोर बर्ताव तथा परेशबाबू के पारिवारिक जीवन की अशान्ति के विचार से ही सुचरिता ने उनके घर आना-जाना बन्द कर दिया था, किन्तु परेशबाबू स्वयं प्रतिदिन सुचरिता से आकर मिल जाते थे।

कई दिनों से अपने कार्यों में व्यस्त रहने के कारण, परेशबाबू सुचरिता से भेंट करने न आ सके थे। वह नित्य उनके आने की प्रतीक्षा करती और अन्त में निराश हो जाती। आज हरिमोहिनी के बर्ताव से ऊबकर और अपनी तमाम समस्याओं की बिना चिन्ता किये, वह परेशबाबू के घर चली गई। अभी सन्ध्या नहीं हुई थी। जब वह परेशबाबू के घर पहुँची, उस समय वे अपने बगीचे में चहलकदमी कर रहे थे।

सुचरिता उनके पास जाकर शान्त खड़ी हो गई और बोली—'बाबूजी ! आप कुशल से तो हैं ?'

परेशबाबू चौंककर खड़े हो गये और बोले—'मैं ठीक हूँ, राधे !'

सुचरिता भी उनके साथ टहलने लगी। चलते-चलते परेशबाबू ने बताया—'सोमवार को ललिता का विवाह है।'

पहले तो उसके मन में आया कि वह उनसे पूछे कि विवाह के परामर्श आदि में उन्होंने उसकी उपेक्षा क्यों करदी, किन्तु, स्वयम् ही सोचने लगी कि यह प्रश्न अटपटा ही रहेगा, क्योंकि इसके पहले तो मैंने कभी ऐसे अवसरों पर यह नहीं सोचा कि जब मुझे बुलाया जाये तब ही जाऊँ। अभी यह विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काट ही रहे थे कि परेशबाबू ने स्वयम् ही कहा—'राधे, इस बार मैं तुम्हें बुला नहीं सका।'

'क्यों, क्या बात थी बाबूजी ?'

परेश ने सुचरिता के इस उत्तर से चौंककर, उसके चेहरे को गौर से देखा। सुचरिता अपने को सँभाल न सकी, सिर झुकाकर बोली—

'आपने शायद सोचा कि मेरा हृदय कुछ परिवर्तित हो गया है।'

'मैंने तो यही समझा था और इसी कारण कोई अनुरोध करके तुम्हें किसी तरह के संकोच में डालना उचित नहीं समझा।'

'मैं भी यही चाहती थी कि मैं अपने विचार आपके सम्मुख स्पष्ट कर दूं। किन्तु इन दिनों भेंट ही न हो सकी। इसीलिए आज स्वयम् चली आई हूं। मुझे भय है कि मैं अपने मनोभाव यथार्थ रूप में समझा भी सकूंगी अथवा नहीं।'

'इसका मुझे अनुमान है कि ये सब मनोभाव तुम सहज ही बता न सकोगी। जिस विचार को तुम हृदय में अनुभव करती हो, उसे कहने की क्षमता तुम्हारे पास नहीं है।'

उनकी इस बात से सुचरिता के हृदय का भार हलका हो गया। बोली—'हां, सत्य तो यही है। आपसे क्या कहूं कि मुझमें एक नवीन चेतना जाग्रत हो गई है। अब तक मैंने देश के भूत और भविष्य को कभी नहीं सोचा था। लेकिन आज समझ रही हूं कि यह महान संबंध है, पहले कभी मेरे मुंह से यह निकल ही न पाता था कि मैं हिन्दू हूं, किंतु आज यह कहते हुए मुझे बहुत आनन्द हो रहा है।'

परेशबाबू ने कहा—'क्या, तुमने इस बात के अंग-प्रत्यंग पर पूर्णतः विचार कर लिया है?'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'यह सब सोचने विचारने की क्षमता मुझमें नहीं है। मैंने इस विषय में बहुत कुछ पढ़ा है और तर्क-वितर्क भी किये हैं। पहले मुझे जब तक यह सब जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मुझे हिंदू कहलाने में घृणा होती थी और हिंदू-धर्म की अनेकों गलतियां बड़े आकार में प्रतीत होती थीं। इसका ही यह परिणाम था कि हिंदू मात्र से घृणा करती रही।'

उसकी बातों को सुनकर परेशबाबू को आश्चर्य हुआ। इतना उन्हें स्पष्ट हो गया कि सुचरिता के हृदय में ज्ञान का संचार हुआ है। सत्य प्राप्त हो जाने से उसकी सारी आशंकायें दूर हो गई हैं। अच्छी तरह समझ बूझकर ही वह यह सब कुछ कह रही है।

सुचरिता ने फिर कहा—'बाबूजी, मैं अपनी जाति और देश द्वारा ठुकराई हुई एक साधारण स्त्री हूँ ऐसा मैं नहीं कहती। मैं यह अवश्य कह सकती हूँ कि मैं हिंदू हूँ।'

परेश मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—'अच्छा तो बेटी! तुम मुझ से ही यह पूछ रही हो कि मैं अपने को हिंदू क्यों नहीं कहता? इसका कोई विशेष कारण तो प्रतीत नहीं होता? केवल इतना कह सकता हूँ, हिंदू मुझे स्वीकार नहीं करते और फिर जिन लोगों के साथ मेरा धर्म बन्धन है, वे लोग भी हिंदू कहकर अपना परिचय देना नहीं चाहते।'

सुचरिता सोच में पड़ गई। परेश ने पुनः कहना आरम्भ किया 'यह तो पहले ही मैंने तुम्हें बता दिया था कि यह कारण विशेष महत्व-पूर्ण नहीं है। यह रखते हुए भी काम चल सकता है। असल बात तो यह है कि हिंदू-समाज मे प्रवेश पाने के लिए कोई प्रमुख मार्ग भी तो नहीं है। अन्य चोर दरवाजों से मैं प्रवेश करना नहीं चाहता। मेरे विचार से तो यह समाज समस्त मनुष्य-जाति के लिए नहीं है—इसमें वे लोग ही रह सकते हैं, जो भगवान की कृपा से हिंदू-घरों ही में जन्म लेंगे।'

सुचरिता बोली—'सभी समाजों की यही दशा है?'

परेशबाबू ने कहा—'नहीं, अन्य किसी बड़े समाज की यह दशा नहीं। मुसलमान और ईसाई-समाज के सिंहद्वार प्रत्येक प्राणी के लिए खुले हैं। जो भी उस समाज में प्रवेश होना चाहे, प्रवेश कर सकता है। हिंदू-धर्म की व्यूह रचना, चक्र-व्यूह की रचना से बिल्कुल विपरीत है। चक्रव्यूह में तो प्रवेश करने के लिए हजारों मार्ग थे, किन्तु यहां बाहर निकलने के हजारों मार्ग हैं, किंतु प्रवेश का मार्ग बिल्कुल बन्द है।'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'इतना होने पर भी हिन्दू-जाति अभी तक नष्ट होने से बची हुई है।'

परेशबाबू बोले—'समाज का नाश हो रहा है। धीरे-धीरे जाति अवनति-पथ पर जा रही है। मुसलमानों के शासन-काल तक हिन्दू राजाओं और जमींदारों का प्रभाव था, अतः सहज ही धर्म नही छोडा जा सकता था, किन्तु जब से अंग्रेजों का शासन आया है, उनका कानून

ो जायेगा और ऐसी दशा में इसे हिंदुस्तान कहना अन्याय

त से सुचरिता व्यथित हो गई। वह बोली—'ऐसे कठि
म लोगों को यह उचित नहीं कि हम क्षय को रोकें
समय है, जब इसे जी-जान से पकड़े रहना चाहिये।'
क्त शब्दों में परेशबाबू ने सुचरिता की पीठ सहलाते हु
ग यह जानते हैं कि सांसरिक रक्षा का एक नियम
यम को त्याग देता है, उसको सभी छोड़ बैठते हैं। केव
कड़े बैठे रहने से हम उसको बचा नहीं सकेंगे। हिंदू-ध
ागा है, वह बहिष्कार करने लगा है और इस कारणव
ने में असमर्थ हो गया है। उसके अनेकों प्रतिद्वन्दी उत्प
वह उसके द्वारा बहिष्कृत और अपमानित लोगों को यथे
। जब तक हिन्दू-समाज अपनी इस अपमान और ब
को त्याग कर संग्रह की नीति को नहीं अपनायेगा, त
तार नहीं होगा।'
ता को यह सुनकर ठेस पहुँची। वह व्यथित होकर बोली
नहीं जानती। केवल इतना मानती हूँ कि यदि सब आ
को तत्पर हैं, तो ऐसे संकटकाल में मैं तो इसका त्या
ीं हूँ।'
ाबू बोले—'बेटी! मैं तुम्हारी भावनाओं के विरुद्ध कु
चाहता। तुम एकाग्रचित होकर, अपनी उपासना, स
प्रकाश में अपने विचारों पर पुनः विचार करके देखो
यह बातें धीरे-धीरे तुम समझ सकोगी। जो मेरी दृष्टि
ौर जिसकी शरण में मैंने अपने को अर्पण करने का विच
ो तुम देश के अथवा किसी प्राणी के समक्ष तुच्छ

बताओ। ऐसा करने से तुम्हारा और देश का कोई लाभ न होगा।'

इसी बीच एक आदमी ने पत्र लाकर परेशबाबू को दिया। पत्र सुचरिता को देकर उन्होंने कहा—'चश्मा भी नही है और इस प्रकाश मे पढ़ना भी मुश्किल है। जरा तुम पढ़कर सुनाओ।'

सुचरिता ने पत्र सुनाया। उसमें लिखा था कि ब्राह्म-समाज समिति नही चाहती कि परेशबाबू अपनी कन्या का विवाह एक अब्राह्म मत के युवक से करें। यदि इस संबन्ध मे उन्हे कुछ कहना है, तो आगामी रविवार के पहले ही पत्र द्वारा उन्हे सूचित कर दें। अन्यथा समिति उन्हें अपनी सदस्यता से मुक्त कर देगी। पत्र के नीचे अनेक ब्राह्म-समाजियो के हस्ताक्षर थे।

पत्र सुनकर परेशबाबू ने जेब में रख लिया। सुचरिता के साथ वह बगिया में टहलते रहे। धीरे २ उपासना का समय हो आया। तब सुचरिता ने कहा—'बाबूजी! आपकी उपासना का समय हो गया है, मैं भी आज आपके साथ ही उपासना करूँगी।'

परेशबाबू को सुचरिता उपासना के कमरे मे ले गई। वहाँ आसन बिछा था और मोमबत्ती जल रही थी। परेशबाबू ने देर तक उपासना की, अन्त में छोटी-सी प्रार्थना करके, वह बाहर आये। बाहर उन्होंने देखा कि दरवाजे के पास ही ललिता विनय के पास बैठी है। उनको देखते ही दोनों ने उनकी चरण-रज मस्तक से लगाई। उन्हें आशीर्वाद देकर सुचरिता से कहा—बेटी! आज मैं तुम्हारे घर आऊँगा।'

सुचरिता के नेत्रो से जलधार बह चली थी। वह शान्त होकर बरामदे के अन्धकार मे खडी रही। काफी देर तक ललिता और विनय ने उससे कुछ नही कहा।

सुचरिता जब घर लौटने को उद्यत हुई, तो विनय ने उसके पास आकर कहा—'बहिन तुम्हारा आशीर्वाद क्या हम लोगों को नहीं मिलेगा?' यह कहकर उसने ललिता के साथ उसके चरण स्पर्श किये।

आशीर्वाद दिया।

परेशबाबू अपने कमरे में लौट आये। उन्होंने ब्राह्म-समाज समिति को उत्तर में लिखा—'मुझे ही ललिता का विवाह करना है। इस दिशा में यदि आप मुझे त्याग रहे हैं, तो इसे मैं अन्याय नहीं कहता। मेरी तो परमपिता परमेश्वर से एक ही प्रार्थना है, मैं सभी समाजों द्वारा बहिष्कृत होकर उन्हीं के चरणों में आश्रय ग्रहण कर सकूँ।'

६५

कई दिनों तक अनेक प्रकार की पीड़ा भोगने के पश्चात् इन दिनों आनंदमयी के पास रहकर सुचरिता ने जो सुख-चैन पाया, वैसा कभी नहीं पाया था, एक दिन वह सोते में 'मा ! मा !!' कहकर पुकारने लगी, तो आनन्दमयी ने उसके पलंग के पास जा, उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए पूछा—'क्या तू मुझे पुकार रही थी ?'

सुचरिता को जब चेत हुआ, तब वह आनंदमयी के आँचल में मुँह छिपाकर रो उठी। उस रात आनंदमयी उसके पास सो गईं।

विनय का विवाह हो जाने पर भी, आनन्दमयी शीघ्र विदा न हो सकीं। उन्होंने कहा—'अभी ये दोनों तो गृह-कार्य से अनभिज्ञ हैं, इनके घर का पूर्ण प्रबन्ध किये बिना, मेरा जाना कैसे हो सकेगा ?'

सुचरिता बोलीं—'मा ! तब तक मैं भी तुम्हारे साथ ही रहूँगी।'

ललिता उत्साहपूर्वक बोली—'हाँ, मा ! सुचरिता बहिन को कुछ दिन हमारे साथ रहना चाहिए।'

इसी समय सतीश दौड़ा चला आया। वह सुचरिता के गले से लिपट कर बोला—'बहिन, मैं भी तुम्हारे साथ ही रहूँगा।'

सुचरिता ने कहा—'पर तुझे पढ़ना जो है।'

'विनयबाबू मुझे पढ़ा देंगे।' सतीश ने उत्तर दिया।

सुचरिता—'पर वे तुम्हारी मास्टरी स्वीकार न करेंगे।'

तभी पास के कमरे से विनय बोल उठा—'करूँगा क्यों नहीं ? एक ही दिन में कोई ऐसा असमर्थ तो नहीं हो गया हूँ।'

तब आनन्दमयी सुचरिता से बोलीं—'तुम्हारा यहां रहना क्या तुम्हारी मौसी को अच्छा लगेगा ?'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'मैं उन्हें ही पत्र लिखे देती हूँ।'

आनन्दमयी बोलीं—'नहीं, मत लिखो। मैं ही लिख दूँगी।'

आनन्दमयी ने हरिमोहिनी को इस आशय का एक पत्र लिख दिया कि ललिता के नये घर का प्रबन्ध करने के लिए मुझे तथा सुचरिता को कुछ दिनों विनय के घर ही रहना पड़ेगा, अतः आप इसे स्वीकार कर लें।

आनंदमयी का पत्र पाकर हरिमोहिनी न केवल नाराज ही हुईं, अपितु वह सशंकित भी हो उठीं। उन्होंने सोचा, अब सुचरिता को फांसने का जाल बिछाया जा रहा है।

हरिमोहिनी दूसरे दिन शीघ्रतापूर्वक पालकी लेकर, स्वयं विनय के घर जा पहुँचीं। आनंदमयी ने बड़े आदर से उन्हें पालकी से उतारा। परन्तु वह उस स्वागत सत्कार पर कोई ध्यान न देती हुई बोलीं—'मैं राधारानी को लेने आई हूँ।'

आनंदमयी ने उसे बैठने के लिए कहा, परन्तु ऐसा करना उन्होंने शीघ्र लौटने की बात कहकर स्वीकार नहीं किया। सुचरिता उसी समय ऊपर के कमरे में बैठी हुई, आलू छील रही थी। हरिमोहिनी सीधी उसी के पास जा पहुँची।

सुचरिता उसे देखकर उठ खड़ी हुई, फिर उसे हाथ पकड़ कर एक दूसरे कमरे में ले जाकर बोली—'मौसी, तुम आई तो तुम्हारे साथ चलूँगी अवश्य, परन्तु आज दोपहर को ही, मैं फिर यहां लौट आऊँगी।'

हरिमोहिनी ने कहा—'क्यों नहीं कहती कि यहीं रहना चाहती हो ?'

सुचरिता ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—'यहां हमेशा तो नहीं

रहना है, परन्तु मा जब तक रहेंगी मैं उन्हें छोड़कर न जाऊँगी।'

यह उत्तर सुनकर हरिमोहिनी का सर्वांग जल उठा, परन्तु वह मौन रही। अन्त में आनन्दमयी से विदा लेकर, सुचरिता हरिमोहिनी के साथ घर लौट आई।

घर पहुँचकर हरिमोहिनी ने देवर के आने का सम्वाद सुचरिता को कह सुनाया तथा बड़े नाटकीय ढंग से भूमिका बांधते हुए यह भी जाता दिया कि उन्हें सुचरिता के विवाह की बड़ी चिन्ता है और वे एक अत्यन्त प्रतिष्ठित घराने में उसका विवाह कर देना चाहती हैं।

सुचरिता को जब यह मालूम हुआ कि कैलाश ही उसे देखने आया है तो वह क्रोध के मारे जल उठी। उसने हरिमोहिनी से स्पष्ट शब्दों में इन्कार करते हुए कहा—'न तो वह उस पुरुष के सामने जायेगी और न विवाह सम्बन्धी कोई बात ही करेगी।'

हरिमोहिनी ने उसका उत्तर सुनकर अपनी कोपाग्नि का लक्ष्य गोरा को बना लिया। वह बोली—'तुम नहीं जानती हो कि गोरा चाहे जितना कट्टर हिन्दू बने, परन्तु समाज में उसे कोई नहीं पूछता है।'

सुचरिता ने उत्तर दिया—'मौसी ! तुम बेसिर-पैर की बातें मत करो। मुझे विवाह नहीं करना है।'

हरिमोहिनी इस उत्तर को सुनकर आंखें फाड़े रह गईं।

६६

गोरा के मन का भाव बदलता जा रहा था। सुचरिता के द्वारा जो उसके मन को ठेस लगी थी, उसका कारण देखने पर उसने सोचा कि वह कब और कैसे उन लोगों के साथ इतना हिल-मिल गया है ? परन्तु उसे कोई ठोस बात दिखाई न दी। हृदय का आकर्षण जिधर चाहें खिंच जाये, उधर को बढ़ता चला जाता है।

केवल ब्राह्म-घराने की लड़कियों से मिलने-जुलने से ही गोरा अपने को भूल गया हो, ऐसी बात नहीं थी। वह जो आस-पास के गाँव के लोगों से मिलने-जुलने जाता वहां भी मानो वह एक भ्रमजाल में पड़

कर अपने को भूल गया था ।

उसने सोचा—'मैं भारतवर्ष का ब्राह्मण हूँ । परन्तु जो ब्राह्मण धन के लोभ में पड कर शूद्रत्व की रस्सी को अपने गले में बांधकर मरने के लिए तैयार दिखाई दिए, उनकी गणना उसने स्वदेश के जीवित पदार्थों मे नहीं की । वह विचार करने लगा कि अपने वास्तविक कर्म मे पतित हो जाने के कारण ही उसका देश आज ऐसी शोचनीय परिस्थिति में पडा हुआ है ।

गोरा का मन पहले कभी देव-पूजा में नहीं लगता था । परन्तु अब वह देवमूर्ति के सामने बैठकर, स्वयं को उसी मे आत्मसात् कर देना चाहता है । फिर भी कल्पित मूर्ति के समक्ष उसकी भक्ति स्थिर नहीं होती थी । मनोभावों की प्रबलता को रोकने के लिए, वह विभिन्न नियमों का पालन करने लगा ।

वह गांव के देवालयों में आकर विचार करता—यही मेरे साधन का विशिष्ट स्थान है और इसी भक्ति-साधना रूपी सम्पत्ति द्वारा मनुष्य का कल्याण हो सकता है । परन्तु कभी-कभी उसके मन में ऐसे विचार भी उठने लगते थे कि केवल भक्ति मे तन्मय होकर रह जाना ब्राह्मण के सुख की सामग्री नही है ।'

६७

गंगा-तट पर एक बाग में प्रायश्चित की सभी तैयारियां होने लगीं ।

अविनाश इस कमी को विशेष रूप से अनुभव करता था कि कलकत्ते से बाहर जो यह प्रायश्चित का अनुष्ठान हो रहा है, वहाँ जन-साधारण की दृष्टि विशेष आकर्षित न होगी । वह समझता था कि गोरा को अपने लिए प्रायश्चित करने की कोई आवश्यकता नही है । उसका यह प्रायश्चित तो देश के लोगों के लिए है, अतः इसे भारी भीडभाड़ के बीच किया जाना चाहिये ।

परन्तु गोरा इस बात से सहमत नहीं था । वह वेद-मन्त्रो द्वारा

जिस प्रकार का बड़ा यज्ञ करना चाहता था, वैसा कलकत्ता शहर के बीच होना सम्भव नहीं था । उसके लिए तो यह शान्त तपोवन ह उपयुक्त था ।

गोरा का हठ देखकर, अविनाश ने उससे छिपाकर समाचा पत्रों का सहारा लिया तथा उस प्रायश्चित के सम्बन्ध में बड़े-बड़े लेर लिखकर भेज दिये ।

गोरा उन लेखों को पढ़कर नाराज हो उठा, परन्तु अविनाश भं दबने वाला न था । गोरा के गाली देने पर भी वह प्रसन्न होता था परिणाम यह हुआ कि गोरा के प्रायश्चित की चारों ओर धूम मच गई चारों ओर से प्रतिदिन इतने पत्र आने लगे कि अन्त में उनका पढ़ना भं बन्द कर देना पड़ा ।

कृष्णदयालबाबू समाचार-पत्रों को छूते तक न थे । परंतु लोग के मुँह द्वारा यह समाचार उनके कानों में भी जा पड़ा । वे बहुत दिन से गोरा के कमरे में नहीं गये थे, परंतु आज वहाँ जाना आवश्यक ह उठा ।

नौकर से पूछने पर, जब उन्हें यह मालूम हुआ कि गोरा ठाकु जी के कमरे में बैठकर पूजन कर रहा है, तो उन्हें और भी अधिव आश्चर्य हुआ । वे सीधे उसी कमरे में जा पहुँचे ।

गोरा ने अपने पिता को आते देखा, तो वह भी आश्चर्य में भ कर उठ खड़ा हुआ । तभी 'कृष्णदयालबाबू ने कहा—'गोरा, मैंने सुन है, तुम सब पण्डितों को बुलाकर प्रायश्चित करने जा रहे हो ।'

'हाँ' । गोरा ने उत्तर दिया ।

'परंतु मैं कभी ऐसा न होने दूँगा ।'

'क्यों ?'

'यह फिर कभी बतलाऊँगा । इस समय इतना ही समझ लो वि ऐसा करने में बड़ी हानि है ।'

गोरा ने सिर झुका कर कहा—'परंतु यदि मैं प्रायश्चित करूँगा तो शशिमुखी के विवाह में सब के साथ बैठकर भोजन भी ह

हीं कर सकूँगा ?'

'उसमे क्या हानि है ?' कृष्णदयालबाबू बोले—'तुम्हारे लिए आसन रख दिया जावेगा, उसी पर बैठकर खा लेना।

'तो मुझे समाज मे अलग होकर रहना पड़ेगा ?'

'अच्छा यही रहेगा। देखते नही, मैं स्वयम् भी किसी के साथ न नहीं करता, किसी का छुआ भी नहीं खाता! इसी प्रकार क जीवन बिताना तुम्हारे लिए भी श्रेष्ठ है। इसी में तुम्हारा गण है।'

इतना कहकर कृष्णदयालबाबू चले गये। दोपहर को उन्होंने नाश को बुलाकर कहा—'मैं चाहता हूँ कि तुम लोग गोरा के प्राय- त के चक्कर में मत पड़ो। मेरी इसमे सम्मति नहीं है।'

अविनाश चतुर आदमी था। उसने सोचा—यह बूढ़ा भी कैसा है जो अपने पुत्र के महत्व को नहीं समझता। परन्तु वाद-विवाद समाप्त करने के उद्देश्य से उसने कहा—'यदि आपकी सम्मति नहीं तो गोरा प्रायश्चित न करेगा। परन्तु चूँकि सब आयोजन हो चुका इसीलिए उसके बदले हमी लोग प्रायश्चित कर लेंगे।'

इस उत्तर से कृष्णदयालबाबू आश्वस्त हो गये।

गोरा देश के प्रश्न पर, अपने माता-पिता की सम्मति की भी भी परवाह नही करता था। परन्तु आज कृष्णदयालबाबू की बातों में से किसी छिपे हुए सत्य की धुँधली छाया प्रतीत होने लगी। वह जितना ही इस विषय पर अधिक सोचता था, उतना ही उसका सन्देह ढ़ होता जा रहा था। उसे लगा, मानो चारों ओर से कोई उसे बाहर फेंक देने की चेष्टा कर रहा है। आज उसे अपना एकाकीपन विराट् स्वरूप धारण किये हुए दिखाई देने लगा। जैसे उसका कर्म-क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, परन्तु उसके पास कोई नहीं है, वह नितान्त अकेला है।

६८

प्रातःकाल प्रायश्चित की सभा होगी और आज रात ही से गोरा

बाग में जाकर रहेगा, यह निश्चित हुआ था। जिस समय गोरा बाग में जाने को तैयार हुआ, उसी समय हरिमोहिनी उसके सामने आ उपस्थित हुई। उनके आने से गोरा को कोई प्रसन्नता नहीं हुई। वह शीघ्रता में बोला—'मुझे जाना है. मा भी घर पर नहीं है। यदि उनसे कोई काम हो तो……'

हरिमोहिनी बोलीं—'मैं तुम्हारा अधिक समय नहीं लूँगी। कुछ देर के लिये ही बैठ जाओ।'

गोरा के बैठ जाने पर, हरिमोहिनी ने जो कहा, उसका तात्पर्य यह था कि सुचरिता के ऊपर गोरा के उपदेशों का बहुत प्रभाव पड़ा है। अब वह विवाह-योग्य हो चुकी है। उसने बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् अपने देवर कैलाश को उससे विवाह करने के लिये तैयार किया, परन्तु वह विवाह के एकदम विरुद्ध हो पड़ी है, अतः अब उसे ही सुचरिता को सीधी राह पर लाने का उपाय करना चाहिये। हरिमोहिनी ने गोरा को यह भी बताया कि यदि तुम उससे विवाह करोगे, तो शहर के लोग तुम्हारे विरोधी हो जायेंगे, अतः किसी देहात में ही उसका विवाह कर देना ठीक है, क्योंकि वहाँ के लोग उसके पूर्व इतिहास को न जान सकेंगे।

हरिमोहिनी की बात सुनकर गोरा क्रोध में भर गया। बोला—'आप यह सब क्या कह रही हैं आपने किससे सुना कि मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ।'

हरिमोहिनी उसी प्रकार बोलीं—'मुझे क्या पता भैया? यह बात तो अख़बार में छप गई है, उसी लज्जा से मरी जा रही हूँ।'

गोरा समझ गया कि हारानबाबू अथवा उनके दल के किसी आदमी की यह करतूत होगी! वह क्रोध से मुट्ठी बाँधते हुए बोला—'यह सब झूठ है।'

'तो तुम्हीं एक बार चलकर उसे समझा दो।' हरिमोहिनी फिर उसी स्वर में बोलीं।

गोरा कुछ देर चुप रहा। फिर कुछ सोचकर बोला—'उसे क्या समझाना होगा?'

'और कुछ नहीं'—हरिमोहिनी बोलीं—'केवल यही कि हिन्दू धर्म के अनुसार सुचरिता जैसी सयानी लड़की का शीघ्र विवाह कर देना चाहिए और हिन्दू-समाज में कैलाश जैसा सत्पात्र मिलना सुचरिता के लिए बड़े सौभाग्य की बात है।'

गोरा के हृदय में जैसे किसी ने बर्छियाँ चुभा दीं। जिस आदमी को उसने सुचरिता के घर देखा था, उसका स्मरण करके गोरा को हजारों बिच्छू डंक मारने लगे। वह कुछ देर चुप बना रहा।

तभी हरिमोहिनी बोली—'क्या राधारानी इसी प्रकार सदैव कुमारी ही बनी रहेगी? क्या कभी ऐसा हो सकता है?'

हरिमोहिनी न जाने क्या-क्या बकती चली जा रही थीं, उनका एक शब्द भी गोरा के कान में नहीं पड़ रहा था। वह निरन्तर सोचता चला जा रहा था—'पिताजी जोर देकर मुझे प्रायश्चित करने से रोक रहे हैं, क्या उनकी असहमति का कोई मूल्य नहीं? उसने निश्चय किया कि मुझे पिताजी के पास अभी जाकर, उनसे जोर देकर सब बातें पूछ लेनी चाहिए। आखिर उन्होंने ऐसी बात कही क्यों? मेरे लिए प्रायश्चित की राह भी क्यों बन्द है। यदि वे मुझे यह बात भली-भाँति समझा देंगे, तो मैं उधर से छुट्टी भी पा जाऊँगा।'

इन्हीं विचारों में पड़े हुए गोरा ने हरिमोहिनी से कहा—'आप यहीं ठहरिये, मैं अभी आता हूँ।'

गोरा शीघ्रतापूर्वक अपने पिता के पास चल दिया। उसे लगा कि अब वे ही उसे छुटकारा दे सकते हैं।

साधना-आश्रम का द्वार बन्द था। भीतर से धूप के धुएँ की सुगन्ध आ रही थी। गोरा ने दो-एक-बार धक्का दिया। परन्तु द्वार नहीं खुला। आज कृष्णदयालबाबू दरवाजा बन्द करके, सन्यासी के साथ किसी दुरूह योग-प्रणाली का अभ्यास कर रहे थे।

६६

गोरा जब लौट आया, हरिमोहिनी शीघ्रतापूर्वक कह उठीं—

'भैया ! तुम मेरे साथ चलो। वह तुम्हें देवता समान मानती है। तुम एक बार अपने मुख से कुछ कह दोगे तो सब काम बन जायेगा।'

परन्तु गोरा ने सुचरिता के पास जाना स्वीकार नहीं किया। हरिमोहिनी ने जब यह देखा कि गोरा को अपने निश्चय से डिगाना असम्भव है, तो वह इस प्रकार कहने लगीं—'यदि तुम चल नहीं सकते हो, तो उसके नाम एक चिट्ठी लिख दो।'

गोरा ने कहा—'यह भी नहीं हो सकता। मैं किसी को कोई पत्र नहीं लिखूंगा।'

अब की बार हरिमोहिनी कुछ तीव्र होकर बोलीं—'तो अपने मन की बात खोलकर क्यों नहीं कह देते? यह गुत्थी तुम्हारी ही डाली हुई है। अब जब खोलने का समय आया है, तो तुम इससे बच का निकलना चाहते हो? इससे वास्तविकता यही प्रतीत होती है कि तु स्वयं ही सब मामले को सुलझाना नहीं चाहते।'

और कोई समय होता, तो गोरा यह सुनकर आग-बबूला उठता, परन्तु आज उसका प्रायश्चित शुरू हो गया है, इसीलिए उ क्रोध नहीं किया। उसने अपने मन को टटोल कर देखा तो ऐसा प्र हुआ कि हरिमोहिनी सत्य ही कह रही है। सुचरिता के साथ स सम्बन्ध को वह अभी तक पूर्णरूप से नहीं त्याग सका है।

परन्तु यह कृपणता तो दूर करनी ही है। एक हाथ से देकर, दूसरे हाथ से उसे पकड़े रहने से तो काम नहीं चल सकता।

गोरा ने कागज उठाकर, उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह 'नारी-जीवन का साधना-मार्ग विवाह ही है। वह चाहे सुखमय हो दुःखमय, उसे एकाग्रचित्त से ग्रहण करना चाहिये। गृहस्थाश्रम का स्त्रियों के लिए सर्वश्रेष्ठ व्रत है।'

हरिमोहिनी ने उसे देखकर कहा—'इसमें कैलाश के तुमने कुछ लिखा नहीं, उसके विषय में लिख देते तो अच्छा रह

गोरा बोला—'मैं उन्हें नहीं जानता, अतः उनकी सिफारिश नह करूंगा।'

हरिमोहिनी ने आगे कुछ नहीं कहा। वह इस कागज को बड़े यत्नपूर्वक अपने आंचल में बांधकर घर लौट आई।

घर आने पर उसने सुचरिता को यह सन्देश देकर बुला भेजा कि वह एक आवश्यक कार्य के लिये दूसरे पहर घर को आ जाये, तीसरे पहर फिर लौट कर चली जा सकती है।'

दूसरे दिन सुचरिता उस सन्देश को प्राप्त कर घर चली आई। हरिमोहिनी ने भोजन आदि समाप्त करने के उपरान्त उससे कहा—'कल सन्ध्या को मैं तुम्हारे गुरू के पास गई थी।'

सुचरिता चुप रही। सोचने लगी–'मौसी न जाने क्या-क्या बात कह कर गोरा का फिर अपमान कर आई होगी।'

तभी हरिमोहिनी ने फिर कहा—'मैंने देखा, वे वास्तव में बड़े ज्ञानी हैं। उन्हें स्त्री जाति का बहुत दिनों तक अविवाहित रहना अच्छा नहीं लगता। उनका कहना है, हिन्दू-स्त्री का शास्त्र के मतानुसार शीघ्र विवाह कर लेना ही धर्म है। मैंने उनसे कैलाश के सम्बन्ध की बात भी खोल कर कही थी। अब तुम उन्हें अपना गुरू मानती हो तो उनकी आज्ञा का पालन भी अवश्य करना चाहिये।'

सुचरिता फिर भी चुप रही। हरिमोहिनी ने पुनः कहा—'गौर-मोहनबाबू ने अपने हाथ से यह पत्र लिख दिया है। इसे देख लो।'

हरिमोहिनी ने गोरा का पत्र अपने आंचल से खोलकर, सुचरिता के सामने रख दिया। सुचरिता ने उसे पढ़ा, तो जैसे गोरा के उस पत्र में कोई ऐसी बात नहीं थी, जो नई या अनुचित हो। सुचरिता के मत के साथ इन बातों का अनैक्य भी नहीं था। किन्तु हरिमोहिनी के द्वारा विशेष-रूप से यह बात लिख कर भेजने का जो मतलब है वही सुचरिता को कष्टदायक हुआ।

आज गोरा से यह आदेश क्यों मिला? अवश्य ही सुचरिता का समय भी आयेगा, तुमको भी एक-न-एक दिन वैवाहिक बन्धनों में बंधना पड़ेगा—गोरा को इसके लिए इतनी शीघ्रता करने की क्या आवश्यकता है? इस शीघ्रता का क्या कारण है? इसके विषय में गोरा के सभी

काम एकदम समाप्त हो गए। उसने गोरा के कामों में क्या ...
पहुँचाई है ? उसके जीवन-मार्ग में क्या कोई बाधा उपस्थित की है ?
क्या गोरा के पास उसको देने या उससे पाने की आशा करने की कोई
भी बात नहीं है ? किन्तु उसने इस प्रकार सोचा ही नहीं था। वह अभी
तक प्रतीक्षा कर रही थी। अपने अन्तर के असह्य कष्ट के विरुद्ध लड़ाई
करने के लिए वह जी-जान से प्रयत्न करने लगी, किन्तु अपने मन में उसे
तनिक भी सांत्वना नहीं मिली।

हरिमोहिनी ने सुचरिता को विचार करने के लिये, बहुत देर त...
समय दिया। वे नित्य के नियमानुसार सोती रहीं। नींद खुलने ...
उन्होंने सुचरिता के कमरे में आकर देखा, सुचरिता अब भी उसी प्र...
चुपचाप बैठी हुई है, जिस प्रकार पहले बैठी हुई थी।

उन्होंने कहा—'बेटी ! इतना सोच क्यों करती हो ? ...
सोचने की क्या बात है ? क्या गौरमोहनबाबू ने पत्र में कोई अ...
बात लिखी है ?'

सुचरिता ने शान्त स्वर से कहा—'नहीं-नहीं, ऐसी को...
नहीं। उन्होंने ठीक ही लिखा है !'

हरिमोहिनी आशाजनक स्वर में बोलीं—'तो अब देर करने से
क्या लाभ होगा, बेटी ?'

सुचरिता ने कहा—'नहीं, मैं बिलकुल भी देर करना नहीं
चाहती। मैं एकबार बाबूजी के पास जाऊँगी।'

हरिमोहिनी ने कहा—'राधा देखो, तुम्हारा विवाह हिन्दू-समाज ...
में ही होगा, तुम्हारे गुरुजी हैं वे ....।'

सुचरिता असहिष्णु होकर बोल उठी—'मौसी, बार-बार तुम
क्यों उसी बात को दुहरा रही हो ? मैं बाबूजी से विवाह के विषय में
कोई बात कहने नहीं जा रही हूँ। मैं तो यों ही एक बार उनके पास
जाऊँगी।'

सुचरिता के लिये परेशबाबू का साथ ही सांत्वना का स्था...
था। सुचरिता ने उनके पास जाकर देखा कि वे एक काठ के सन्दूक

कपड़े-लत्ते रखने में व्यस्त हैं।

सुचरिता ने पूछा—'बाबूजी, यह क्या हो रहा है ?

परेशबाबू ने जरा हँसकर कहा—'बेटी, मैं कल प्रातः काल की गाड़ी से शिमला पहाड़ पर घूमने जा रहा हूँ।'

परेशबाबू की हँसी मे एक जबर्दस्त विप्लव का इतिहास छिपा था जो सुचरिता से छिपा न रह सका। घर में उनकी स्त्री, कन्यायें और बाहर उनके इष्ट-मित्र उनको जरा भी शान्ति का अवसर नहीं दे रहे थे। वे कुछ दिनों के लिए यदि किसी स्थान में न घूम आयें तो घर मे ही उनको केन्द्र बनाकर बराबर ही एक चक्र घूमता रहेगा। उन्होंने पहाड़ पर जाने का निश्चय किया है, किन्तु आज उनका कोई भी आदमी उनका सामान कपड़े आदि सँभालने नहीं आया। यह देखकर कि वे स्वयं ही सब कर रहे हैं, सुचरिता के मन को बहुत आघात पहुँचा। उसने परेशबाबू को रोक कर, पहले सन्दूक बिलकुल खाली कर दिया। पश्चात् कपड़ों को ठीक प्रकार से तह लगाकर, अपने हाथों से सन्दूक में सजाकर रखने लगी और उनकी पढ़ने की पुस्तको को इस प्रकार सँभाल कर रख दिया कि हिलाने-डुलाने पर भी उन पर किसी प्रकार का आघात न लग सके। इस प्रकार सुचरिता ने सब सामान ठीक करते-करते धीरे-से पूछा—'बाबूजी, तुम अकेले ही जाओगे क्या ?'

परेशबाबू ने सुचरिता के इस प्रश्न में वेदना का आभास पाकर कहा—'राधे, मुझे इसमे कोई कष्ट नहीं है।'

सुचरिता ने कहा—'नहीं बाबूजी मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।'

परेश ने सुचरिता के मुँह की ओर देखा। सुचरिता ने कहा—'बाबूजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें, मैं आपको जरा भी तंग नहीं करूँगी।'

परेशबाबू ने कहा—'राधे, तुम यह बात क्यो कहती हो ? तुमने मुझे तंग किया है ?'

सुचरिता ने कहा—'बाबूजी, अलग रहना मेरे लिये अच्छा न

होगा । मैं बहुत-सी बातें समझ ही नहीं सकती । यदि तुम मुझे समझा कर न बताओगे, तो मैं किनारा न पाऊँगी । बाबूजी, तुम मुझे अपनी जिस बुद्धि पर निर्भर रहने को कहते हो, वह बुद्धि मुझमें नहीं है । मुझे अपने मन में वह बल नहीं मिलता । तुम मुझे अपने साथ ले चलो, बाबूजी !'

यह कहकर वह परेश की ओर पीठ करके सिर झुकाये सन्दूक के कपड़े ठीक करने लगी । उसकी आँखों से टप-टप आँसू झरने लगे ।

हरिमोहिनी के हाथ में जब गोरा ने चिट्ठी लिखकर दे दी, त उसको ऐसा लगा, मानो उसने सुचरिता के सम्बन्ध में त्याग-पत्र लिख दिया हो । परन्तु केवल दस्तावेज लिख देने से तो काम उसी क्ष समाप्त नहीं हो जाता । उसके हृदय ने तो दस्तावेज को ठुकरा दिय उस दस्तावेज में तो गोरा की इच्छा-शक्ति ने जबरदस्ती नाम को सा करा दिया था, किंतु उसके हृदय का साक्षर तो उसमें नहीं था । इस हृदय तो अवाध्य ही बना रहा । वह अवाध्यता ऐसी प्रचण्ड थी कि रात को गोरा को सुचरिता के घर की ओर दौड़ जाना पड़ा । ठीक उसी समय गिर्जाघर की घड़ी में दस बजने की आवाज सुना और गोरा को ज्ञान हुआ कि इतनी रात में किसी के घर जाय करना ठीक नहीं है । उसके बाद वह घड़ी की आवाज सुनता ही क्योंकि उस रात को वह बगीचे में न जा सका । दूसरे दिन प्र वहां आने का समाचार वहां भेज दिया ।

प्रातः ही वह बगीचे में गया, किंतु जैसा स्वच्छ और बलिष्ट हृदय लेकर उसने प्रायश्चित करने का निश्चय किया था, मन की वैसी अवस्था उसकी कहां है ?

अध्यापक-पण्डितों में से बहुत से वहां आ गए थे और भी अने लोग वहां आने वाले थे । गोरा ने सबसे कुशल-समाचार पूछा, सब शिष्टतापूर्वक बातें कीं । उन लोगों ने—उन सभी लोगों ने सनातन के प्रति गोरा के अटल निश्चय का उल्लेख करके, भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

बगीचा धीरे-धीरे कोलाहलपूर्ण हो गया। गोरा चारों ओर देखभाल करता हुआ घूमने लगा। किन्तु इन सभी के बीच गोरा के कान में केवल एक बात गूँज रही थी, मानो कोई कह रहा था–'तुमने अन्याय किया है, अन्याय किया है।' वह अन्याय क्या है? कहाँ है? उसको ष्ट रूप से सोचने-विचारने का तब समय नहीं था। किंतु किसी प्रकार ी वह अपने गम्भीर हृदय का मुख बन्द न कर सका। प्रायश्चित के नुष्ठान के विपुल आयोजन के बीच उसके हृदय में रहने वाला कोई हे-शत्रु आज उसके विरुद्ध गवाही दे रहा था, कह रहा था—'अन्याय हो या। वह अन्याय नियमों की त्रुटियों से कम नहीं है, वह मन्त्रों की भूल ी नहीं है, वह शास्त्र की विरुद्धता से नहीं है—वह अन्याय प्रकृति के न्दर हुआ है।' इसलिए गोरा के समस्त अन्तःकरण ने इस अनुष्ठान के उद्योग से अपना मुँह फेर लिया।

समय निकट आ गया। बाहर सभा का स्थान बाँसों का घेरा डालकर, पाल टाँगकर तैयार किया गया था। गोरा गंगा-स्नान से निवृत होकर कपड़े बदल रहा था, उसी समय जनता के बीच उसे एक चंचलता ज्ञात हुई। मानो एक तरह की घबराहट चारों ओर फैल रही थी। अन्त में अविनाश ने मुख उदास करके कहा—'आपके घर से खबर आई है, कृष्णदयाल के मुख से खून निकल रहा है। आपको शीघ्र ले आने के लिए, उन्होंने गाड़ी पर आदमी भेजा है।'

गोरा उसी समय चला गया। अविनाश भी उसके साथ जाने को तैयार हुआ। परन्तु गोरा ने उसे रोकते हुए कहा—'नहीं, तुम सब लोगों की देखभाल में रहो, तुम्हारे जाने से काम नहीं चलेगा।'

गोरा ने कृष्णदयाल के कमरे में प्रवेश करके देखा कि वे बिछौने पर लेटे हुए हैं और आनन्दमयी उनके पैरों के पास बैठी हुई, धीरे-धीरे उनके पैरों पर हाथ सहला रही हैं। गोरा ने घबरा कर दोनों के मुँह की ओर देखा। कृष्णदयाल ने इशारे से पास की कुर्सी पर बैठने को कहा। गोरा बैठ गया।

गोरा ने मां से पूछा—'अब कैसी तबियत है ?'

आनन्दमयी ने कहा--'पहले से अब कुछ अच्छे हैं। अंग्रेज डाक्ट को बुलाया है।'

उस कमरे में शशिमुखी और एक नौकर था। कृष्णदयाल हाथ के संकेत से उन दोनों को वहां से हटा दिया।

जब उन्होंने देखा कि सब लोग गये, तब वे चुपचाप आनन्दमर के मुंह की ओर देखने लगे। फिर उन्होंने धीमे स्वर में गोरा से कहा 'मेरा समय अब पूरा हो गया है। इतने दिनों तक जो बात तुमसे छिप थी, आज उसे तुमको न बताने से मेरी मुक्ति न होगी।'

गोरा का चेहरा कुछ उतर-सा गया। वह स्थिर भाव से बै रहा। बड़ी देर तक किसी ने कुछ नहीं कहा, कमरे में शान्ति छाई रही

कृष्णदयाल ने कहा—'गोरा, मैं उन दिनों यह सब नहीं मानत था, इसलिए मैंने इतनी बड़ी भूल की है। इसके पश्चात् भूल-सुधा करने का कोई रास्ता नहीं था।'

यह कह वे फिर चुप हो गये। गोरा भी उसी भांति शान्त बै रहा।

कृष्णदयाल ने कहा—'मैंने सोचा था, जैसे चल रहा है, वैसे चलता जायगा। किसी दिन भी तुमको बताने की आवश्यकता न पड़ेगी। किन्तु अब देख रहा हूं कि ऐसा होने का उपाय नहीं है। मे मृत्यु के पश्चात् तुम मेरा श्राद्ध किस प्रकार करोगे?'

ऐसी सम्भावना मात्र से कृष्णदयाल मानो सिहर उठे। गोरा यह जानने के लिए कि असल बात क्या है, अधीर हो उठा। उस आनन्दमयी की ओर देखकर कहा—'मा, तुम बताओ क्या बात है श्राद्ध करने का अधिकार मुझे नहीं है?'

आनन्दमयी अभी तक शान्त भाव से सिर झुकाये बैठी हुई थी गोरा का प्रश्न सुनकर उन्होंने अपना सिर ऊपर उठाया और गोरा मुंह पर दृष्टि स्थिर रखकर कहा—'नहीं बेटा, नहीं है।'

गोरा यह सुनकर चौंक उठा—'मैं इनका पुत्र नहीं हूं?'

आनन्दमयी ने कहा—'नहीं।'

अग्निउच्छ्वास की तरह गोरा के मुँह से निकल पड़ा—'मा तुम
री मा नहीं हो!'

आनन्दमयी की छाती फट गई। उन्होंने अश्रुहीन रुलाई के स्वर
कहा—'बेटा गोरा, तू इस पुत्रहीना का ही पुत्र है, तू तो गर्भ से
उत्पन्न लड़के से भी बहुत अधिक है, बेटा।'

गोरा ने तब कृष्णदयाल के मुँह की तरफ देखकर कहा—'तुम
मुझे कहाँ पाया?

कृष्णदयाल ने कहा—'वह गदर अर्थात् सिपाई-विद्रोह का समय
ा। हम उन दिनों इटावे मे थे। तुम्हारी मा ने सिपाहियों के डर से
भाग कर हमारे घर मे रात को आश्रय लिया। तुम्हारे पिता एक दिन
पहले ही लड़ाई मे मारे जा चुके थे। उनका नाम था······'

गोरा गरज कर बोल उठा—'मैं उनका नाम नहीं जानना
चाहता। कोई जरूरत नहीं है। उनके नाम की।'

गोरा की उत्तेजना को देखकर कृष्णदयाल आश्चर्य में पड़ कर
रुक गये। उसके बाद वे बोले—'वे आयरिशमैन थे। उसी रात को
तुम्हारी मा तुमको जन्म देकर मर गई। उसके बाद से ही तुम्हारा हमारे
घर में पालन-पोषण हुआ।'

एक ही क्षण में गोरा को अपना समस्त जीवन एक अत्यन्त
अद्भुत स्वप्न की भांति हो गया। बचपन से लेकर इतने वर्षों तक
उसके जीवन की जो दीवार तैयार हुई थी, वह एकदम लुप्त हो गई। वह
कौन है, वह कहाँ है, यह मानो समझ ही न सका। उसके पीछे अतीत
काल नामक पदार्थ ही नहीं रहा और उसके सामने उसके इतने दिनों
का एकाग्र लक्ष्य वाला सुनिश्चित भविष्य, मानो बिल्कुल ही लुप्त हो
गया। वह मानो क्षणमात्र के कमल के पत्ते पर पड़े हुए शिशिर-बिन्दु की
तरह बहने लगा। उसकी मा नहीं है, उसका पिता नहीं है, उसका गोत्र
नहीं है, उसके देवता नहीं है, उसका नाम नहीं है। उसका सब कुछ
केवल 'नहीं' है। वह किस चीज का सहारा पकड़ेगा, क्या करेगा, फिर

कहाँ से आरम्भ करेगा, फिर किस तरह लक्ष्य स्थिर करेगा, फिर दिन-
रे कर्मों के उपकरणों को कहाँ से किस तरह संग्रह करेगा ?
ह-हीन अद्भुत प्रश्न के बीच गोरा निर्वाक् होकर बैठा रहा।
खकर फिर किसी को दूसरी बात कहने का साहस नहीं

समय परिवार के बंगाली चिकित्सक अंग्रेज डाक्टर को साथ
। डाक्टर ने कमरे में आकर जैसे ही रोगी की तरफ देखा,
की तरफ नजर उठाए बिना न रह सका। उसने सोचा—
कौन है ?' उस समय तक भी गोरा के मस्तक पर गंगा की
लक लगा हुआ था और स्नान के बाद जो रेशमी धोती
थी, इस समय भी उसे ही पहन कर वह चला आया था।
र्त्ता नहीं था। चादर के भीतर से उसका विशाल शरीर
हा ा।

पहले की अवस्था रहती तो गोरा के मन में अंग्रेज डाक्टर
आप ही आप विद्वेष उत्पन्न हो जाता। आज जब डाक्टर
ीक्षा कर रहा था, तब गोरा ने उसके प्रति एक विशेष उत्सु-
दृष्टिपात किया, वह अपने मन से बार-बार प्रश्न करने लगा,
ानुष्य यहाँ मेरा सबसे अधिक निकट का आत्मीय है।'

ंज डाक्टर ने परीक्षा करके कहा—'मैं तो कोई विशेष खराब
देखता। नाड़ी भी शंकाजनक नहीं है और शरीरयन्त्र में भी
नहीं हुई है। चिन्ता की कोई बात नहीं, सतर्क रहने की
है।'

टर आश्वासन देकर चला गया। गोरा कुछ भी न बोलकर
ने को तैयार हो गया।

नंदमयी डाक्टर के आने पर वहाँ से उठकर, पास वाले कमरे
थीं। डाक्टर के चले जाने पर, वे तुरन्त कमरे में फिर
और गोरा का हाथ पकड़ कर बोलीं—'गोरा बेटा, तू मेरे
मत करना, यदि क्रोध करोगे तो मैं अब बचूँगी नहीं।'

गोरा ने कहा—'तुमने अब तक मुझे क्यों नहीं बताया ? अब तक तुम मुझसे बातें छिपाती रहीं, बताने से तुम्हारी कोई हानि नहीं होती।'

आनन्दमयी ने अपने सिर पर सारा दोष लिया और कहा–'बेटा तुझे पाकर फिर खो देने के भय से ही, मुझे यह पाप करना ही पड़ा। अन्त में यदि वही बात हो जायेगी, तू यदि मुझे छोड़ कर चला जायेगा, तो मैं किसी पर दोष न मढ़ सकूंगी। किन्तु गोरा, मेरे लिये तो वह मृत्यु-दण्ड होगा 'बेटा।'

गोरा ने केवल कहा—'मा !'

गोरा के मुंह से 'मा' सम्बोधन सुनकर इतनी देर के बाद आनंद मयी के रुके हुए अश्रु उमड़ पड़े।

गोरा ने कहा—'मा, अब मैं एक बार परेशबाबू के घर जाऊंगा।'

आनंदमयी की छाती का बोझ हल्का हो गया। उन्होने कहा—'जाओ बेटा।'

शीघ्र मरने की आशा नहीं है, किन्तु गोरा को छिपी बात मालूम हो गई, इससे कृष्णदयाल अत्यन्त ही भयभीत हो गये। बोले—'गोरा देखो, यह बात किसी और को बताने की आवश्यकता मैं तो नहीं समझता। केवल कुछ समझ-बूझकर तुम काम करते रहोगे तो जैसे काम चलता रहा है वैसे ही चलता रहेगा। किसी को पता ही न चलेगा।'

गोरा इसका कोई उत्तर न देकर बाहर चला गया कृष्णदयाल के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह स्मरण करके उन्हें आराम मिला।

महिम की छुट्टी नहीं थी, आफिस से गैर हाजिर रहने का कोई उपाय नहीं था। वह डाक्टर और दवा आदि का प्रबन्ध करके, बड़े साहब से छुट्टी मांगने गये। गोरा ज्योंही घर के बाहर निकला त्योंही महिम आ गये, बोले—'गोरा कहां जा रहे हो ?'

गोरा ने कहा--'डाक्टर आया था, उसने देखकर कहा है कि स
: है, चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

महिम ने अत्यन्त ही सुख का अनुभव करते हुए कहा—'तुम
बचा लिया ? परसों शुभ दिन है, उसी दिन में शशिमुखी का विव
'गा। गोरा तुमको भी कुछ सहायता करनी पड़ेगी और देख
य को पहले ही से सावधान कर देना। उस दिन वह न आये। अ
ा कट्टर हिन्दू है। उसने विशेष रूप से कह दिया है कि उसके विवा
वनय की तरह के आदमी न आने पावें। तुम्हें एक बात और बता
क उस दिन में आफिस के बड़े-बड़े लोगों को निमन्त्रण देकर बुल
ा। तुम उन लोगों के साथ शुष्क व्यवहार मत करना और कु
क नहीं जरा सिर हिलाकर 'गुडईवनिंग सर' कह देने से तुम्हा
दू-शास्त्र की मर्यादा न घट जायेगी। बल्कि इस सम्बन्ध में पण्डितों
राय ले लेना। समझ गये भाई ? वे लोग राजा की जाति के
के सम्मुख अगर तुम अपना अहंकार कुछ कम करोगे, तो उससे तुम्हा
मान न होगा।'

गोरा महिम की बात का कोई उत्तर न देकर चला गया।

७०

सुचरिता जिस समय अपने आंसू छिपाने के लिए, सन्दूक पर झु
कपड़े सजाने में व्यस्त थी, उसी समय उसे गौरमोहनबाबू के अ
समाचार मिला।

सुचरिता उसी समय झटपट आंखें पोंछकर, अपना काम छोड़
पड़ी और उसी क्षण गोरा ने कमरे में प्रवेश किया।

गोरा के मस्तक पर तिलक अब भी उसी प्रकार लगा हुआ था
सम्बन्ध में उसे ख्याल ही नहीं रहा था। शरीर पर भी पवित्र रेश
त्र था। ऐसे वस्त्रों में साधारणतः कोई भी किसी के घर भेंट करने
ं जाता। प्रथम दिन जब गोरा की भेंट सुचरिता से हुई थी, उस दिन
बात उसे याद आ गई। सुचरिता जानती थी उस दिन गोरा विशेष-

रूप से युद्ध के वेश में आया था। आज भी क्या उसी युद्ध का पह
नावा है ?

गोरा ने आते ही एकदम जमीन पर माथा रखकर, परेशबाबू क
प्रणाम किया और उनके पैरों की धूलि मस्तक पर चढ़ाली। परेश
घबडाकर गोरा को उठा लिया और कहा—'आओ बेटा, बैठो।'

गोरा बोल उठा—'परेशबाबू अब मैं पूर्णरूप से स्वतन्त्र हूँ, मु
कोई बन्धन नही।' परेशबाबू ने आश्चर्य में पडकर कहा—'कै
बन्धन ?'

गोरा ने कहा—'मैं हिन्दू नही हूँ।'

परेशबाबू ने कहा—'हिन्दू नहीं हो ?'

गोरा ने कहा—'हाँ मैं हिन्दू नही हूँ। आज मुझे ज्ञात हुआ
सिपाही-विद्रोह के समय का आश्रयहीन अनाथ लड़का हूँ—मेरे पि
आयरिश थे। भारतवर्ष के उत्तर से लेकर दक्षिण तक जितने देव-मन्दि
हैं उन सभी के द्वार आज मेरे लिए बन्द हो गये। आज देश में कि
भी जगह मेरे भोजन का आसन नही है।'

परेश और सुचरिता गोरा के मुख से इस प्रकार की बातें सुनक
स्तम्भित होकर बैठे रहे। परेशबाबू को उससे कहने के लिए कोई ब
ही नहीं मिली।

गोरा ने कहा—'परेशबाबू, आज मैं मुक्त हूँ। मुझे पतित
जाने का अब भय नही है। अब मुझे पग-पग पर जमीन की तरफ
कर पवित्रता बचाकर चलने की जरूरत नही रही।'

सुचरिता गोरा के तेजस्वी चेहरे की ओर टकटकी बाँधे देखतीर

गोरा ने कहा—'परेशबाबू, इतने दिनों से मैं भारतवर्ष को
के लिए पूरे प्राणपण से साधना करता रहा हूँ। किसी न किसी ज
रुकावटें पडती रही। उन बाधाओं के साथ अपनी श्रद्धा का मेल क
के लिए, मैं सारे जीवन भर दिन-रात केवल चेष्टा करता रहता
इस श्रद्धा की दीवार को ही खूब सुदृढ़ बनाने की चेष्टा में रहने
कारण, मैं कोई दूसरा काम भी नही कर सका। वही मेरी एक

ा। इसी कारण यथार्थ भारतवर्ष के प्रति सत्य दृष्टि रखकर, सेवा करने को तत्पर होकर, मैं बार-बार भय के कारण लौट मैं एक निष्कण्टक निर्विकार भाव का भारतवर्ष तैयार करके दुर्ग में अपनी भक्ति को पूरे निरापदरूप से सुरक्षित करने के तक चारों ओर कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ता रहा हूँ! आज ण में उस भाव का मेरा दुर्ग स्वप्नों की भांति उड़ गया। मैं मुक्ति पाकर एक वृहत् सत्य में आ गया हूँ। समस्त भारत-लाई-बुराई, सुख-दुख, ज्ञान-अज्ञान बिल्कुल ही मेरे वक्ष के ाए हैं। आज मैं सच्ची सेवा का अधिकारी बन गया हूँ। र्म-क्षेत्र मेरे सम्मुख आ गया है। वह क्षेत्र मेरे मन के अन्दर ै। वह बाहर के इन पच्चीस करोड़ नर-नारियों के यथार्थ ा क्षेत्र है।'

ोरा के इस नए अनुभव के प्रबल उत्साह का वेग परेशबाबू को झकझोरने लगा। वे फिर बैठे न रह सके, कुर्सी छोड़कर उठ

ोरा ने कहा—'क्या आप मेरी बात समझ सके हैं?' मैं जैसा बन जाना चाहता था, किंतु सफलता प्राप्त न कर न्तु आज मैं वही बन गया हूँ। आज मैं भारतीय हूँ! मुझमें समान, ईसाई किसी समाज का कोई विरोध नहीं है। आज वर्ष की तमाम जातियाँ ही मेरी जाति, सभी का अन्त ही है। देखिए, मैंने बंगाल के अनेक जिलों में भ्रमण किया है, गाँवों में भी आश्रय लिया है। मैंने केवल शहरों की सभाओं ण किए हैं, ऐसा मत सोचिएगा। किन्तु किसी प्रकार भी के पास जाकर मैं न बैठ सका। इतने दिनों तक मैं अपने अदृश्य व्यवधान लेकर घूमता रहा, किसी तरह भी मैं अपने न बना सका! इस कारण मेरे मन में एक शून्यता मौजूद शून्यता को भिन्न-भिन्न उपायों से अस्वीकार करने का मैंने ा। इस शून्यता के ऊपर तरह-तरह की कारीगरियों के द्वारा

उसको ही और भी सुन्दर बना देने की चेष्टा की है। क्योंकि, भारतवर्ष को मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ, मैं उसके जिस अंश को देख पाता था, उस अंश के किसी स्थान पर ज़रा भी त्रुटि या शिकायत मुझसे सही न जाती थी। आज मुझे उन व्यर्थ की चेष्टाओं से छुटकारा मिल गया। मैं बच गया, परेशबाबू ?'

परेशबाबू ने कहा—'सत्य को जब हम पाते हैं, तब वह अपने सभी अभावों व अपनी अपूर्णता को लेकर भी हमारी आत्मा को तृप्त करता है—उसको मिथ्या उपकरणों से सजा देने की इच्छा मात्र भी नहीं होती।'

गोरा ने कहा—'देखिए परेशबाबू ! कल रात को मैंने भगवान् से प्रार्थना की थी कि आज प्रातःकाल मुझे नव-जीवन दो। मुझे इतने दिनों तक बचपन से जो अपवित्रता, जो कुछ मिथ्या घेरे रही, वह आज सब एकदम नष्ट हो जाए और मुझे नया जन्म मिल जाए। मैंने ठीक जिस कल्पना की सामग्री की प्रार्थना की थी, ईश्वर ने उस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अपना सत्य अचानक मेरे हाथों में सौंप कर मुझे चौंका दिया। वे मेरी इस तरह अशुचिता को बिल्कुल ही जड़ से नष्ट कर देंगे, यह मैं स्वप्न में भी नहीं जानता था। आज ऐसा पवित्र हो गया हूँ कि चाण्डाल के घर में भी मुझे अपवित्रता का भय नहीं रहा। परेशबाबू, आज प्रातःकाल मैंने खुले हुए चित्त के साथ भारतवर्ष की गोद में जन्म ग्रहण किया है। इतने दिनों के पश्चात् मैं आज यह पूर्णरूप से समझ सका हूँ कि माता की गोद किसे कहते हैं ?'

परेशबाबू ने कहा—'गोरा ! तुमने अपनी माता की गोद में जो अधिकार प्राप्त किया, उस अधिकार में तुम मुझे भी लिवा कर ले चलो।'

गोरा ने कहा—'आप जानते हैं कि आज मुक्ति पाने के पश्चात् सर्वप्रथम आपके पास मैं क्यों आया हूँ ?'

परेशबाबू ने कहा—'क्यों ?'

गोरा ने कहा—'इस मुक्ति का मन्त्र आपके ही पास है, इसी

कारण आपको आज तक किसी समाज में स्थान नहीं मिला। मुझे अपना शिष्य बनाइये। आप मुझे भी उसी देवता का मन्त्र दीजिये जो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्म-सभी के हैं जिनके मन्दिर का द्वार किसी जाति, किसी भी व्यक्ति के लिए किसी दिन भी बन्द नहीं रहता, जो केवल हिन्दुओं के देवता नहीं हैं, जो समस्त भारतवर्ष के देवता हैं।'

परेशबाबू के चेहरे पर भक्ति की गहरी मधुरता झलक उठी। वे आँखें झुकाये चुपचाप खड़े रहे।

इतनी देर की बातचीत के बाद गोरा ने सुचरिता की ओर दृष्टि डाली। सुचरिता अपनी कुर्सी पर शान्त बैठी हुई थी।

गोरा ने हँसकर कहा—'सुचरिता, मैं अब तुम्हारा गुरू नहीं हूँ, मैं तुमसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि तुम मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपने गुरू के पास ले चलो।' यह कह कर गोरा ने अपना सीधा हाथ सुचरिता की ओर बढ़ा दिया, सुचरिता ने कुर्सी पर से उठकर अपना हाथ गोरा के हाथ पर रख दिया, तब गोरा ने सुचरिता के साथ परेशबाबू को प्रणाम

परिशिष्ट

...या के बाद जब गोरा अपने घर लौटा, तो उसने देखा ... अपने कमरे के सामने बरामदे में चुपचाप बैठी हुई हैं।

...ोरा ने आते ही उनके दोनों पैरों पर अपना माथा रखकर प्रणाम ... आनंदमयी ने अपने दोनों हाथों से गोरा का मस्तक ऊपर उठा- ...शीर्वाद दिया।

गोरा ने कहा—'मा तुम्हीं मेरी मा हो! जिस मा को खोज घूम रहा था, वे ही मेरे कमरे में आकर बैठी थीं। तुम जाति- नहीं मानतीं, तुम नीच-ऊँच का कोई विचार नहीं करतीं— ...ल कल्याण की मूर्ति हो! तुम्हीं मेरी भारतमाता हो।'